भारतीय राष्ट्रवाद के विकास
को
हिन्दी-साहित्य में अभिव्यक्ति

[दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० सुषमा नारायण
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
इन्द्रप्रस्थ कालिज फॉर विमेन,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य संसार
दिल्ली-७ :: पटना-४

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य संसार
दिल्ली ७
ब्रांच
खजाञ्ची रोड पटना ४

मूल्य
बीस रुपये,
(२०-००)
प्रथम संस्करण

मुद्रक :
धनौर प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली ६

परिचय

श्रीमती डा० सुषमा नारायण के "भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य मे अभिव्यक्ति" शीर्षक प्रस्तुत अध्ययन का मैं स्वागत करता हू। मूल रूप मे यह अध्ययन दिल्ली विश्वविद्यालय की डाक्टरेट उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया था। वर्तमान ग्रन्थ उसी का सशोधित तथा परिवर्धित रूप है।

ग्रन्थ दो खडो मे विभक्त है (क) भूमिका खंड तथा (ख) शोध-खड। भूमिका खड मे राष्ट्रवाद के स्वरूप के वैज्ञानिक विश्लेषण के उपरान्त १८५७ से १६२० तक की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियो के चित्रण के साथ उस काल के साहित्य मे राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का स्वरूप निरूपित किया गया है। ये प्रारम्भिक तीन अध्याय शोध खड की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हैं।

शोध-खड चौथे अध्याय से नवम अध्याय तक है। चौथे अध्याय मे १६२० से १६३७ तक की राजनीतिक परिस्थितियो का चित्रण किया गया है तथा पांचवें अध्याय में इसी काल के हिन्दी साहित्य मे राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का दिग्दर्शन है। आगे के तीन अध्याय (६—८) पूर्णतया मौलिक है और इनमे प्रचुर उदाहरणो की सहायता से राष्ट्रवाद के रागात्मक पक्ष, प्रभावात्मक पक्ष तथा भावात्मक पक्ष के अनेक रूपो पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है अन्तिम नवम् अध्याय मे इस काल के हिन्दी साहित्य मे भारत के भविष्य और स्वराज्य की रूपरेखा के सबध मे पाए जाने वाले विचार सक्षेप मे दिए गए हैं।

इस ग्रन्थ की कई विशेषताएँ हैं। प्रथम, मुख्य अध्ययन को प्रारम्भ करने के पूर्व सुयोग्य लेखिका ने राष्ट्रवाद के स्वरूप तथा राष्ट्रीय चेतना के विकास का इतिहास प्रामाणिक सामग्री के आधार पर दिया है। दूसरे, शोध-खड के निष्कर्षों का आधार उस काल के हिन्दी साहित्य का विस्तृत और गभीर अध्ययन है। प्रचुर उदाहरण इसके प्रमाण हैं। तीसरे, लेखिका ने निष्कर्ष अत्यत सतुलित रूप मे दिए हैं—भावुकता से अपने को दूर रक्खा है।

विषय से सबंधित प्रचुर विचार सामग्री प्रस्तुत करने के लिए मैं सुयोग्य लेखिका को हार्दिक बधाई देता हू। मुझे विश्वास है कि भारतवर्ष के इस काल के राजनीतिक तथा साहित्यिक इतिहास में दिलचस्पी रखने वाले पाठक ग्रंथ को अत्यंत रोचक, ज्ञानवर्धक तथा उपयोगी पावेंगे। इस प्रकार के अन्य अध्ययनों के लिये प्रस्तुत रचना आदर्श स्वरूप है।

जबलपुर, धीरेन्द्र वर्मा

प्राक्कथन

सन् १९२० से १९३७ के साहित्य मे राष्ट्रवाद के विकास की अभिव्यक्ति का स्वरूप-विश्लेषण इस शोध-प्रबध का विषय है। नि सन्देह भारतेन्दु युग से ही हिन्दी साहित्यकार युगीन राष्ट्रीय चेतना क प्रतिबिंबन के प्रति सजग एव सचेष्ट हो गए थे और द्विवेदी युग तक राष्ट्रीयता हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई थी। लेकिन सन् १९२० के पश्चात् समग्र हिन्दी-साहित्य पर राष्ट्रवाद की स्पष्ट छाप लग गई। इसका कारण यह है कि भारतीय इतिहास का यह विशेष काल राष्ट्रवाद के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गाधी जी ने सन् १९२० मे राष्ट्रीय क्षेत्र मे प्रवेश कर देश-जीवन की रग-रग मे राष्ट्रवाद का सचरण कर दिया था। उन्होने भारत देश को ही नही, सम्पूर्ण विश्व को युग-युग के लिए राष्ट्रवाद का आदर्श रूप प्रदान किया। आलोच्य काल के हिन्दी साहित्य-स्रष्टा भी इस क्षेत्र मे पीछे नही रहे। उन्होने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रवाद के सभी अगो की सशक्त एव पुष्ट अभिव्यक्ति की, यह इस शोधप्रबन्ध से स्पष्ट है। हिन्दी साहित्य के विविध रूपो एव अनेक कला-शैलियों मे राष्ट्रवाद की जितनी कलात्मक अभिव्यक्ति इस विशेष युग मे की गई, वह अपूर्व है।

अब तक राष्ट्रवाद के विकास की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य का अनुशीलन नही हुआ था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से श्रीमती कीर्तिलता ने 'भारत का स्वतन्त्रता प्राप्ति-सबधी आन्दोलन और हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव १८८५-१९४७ ई०' विषय पर शोध-प्रबध प्रस्तुत किया है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति का आन्दोलन राष्ट्रवाद का लक्ष्य मात्र था, अत इस विषय का सबध राष्ट्रवाद के विकास के सम्यक् विवेचन से नही है। उसी विश्वविद्यालय मे शैलकुमारी गुप्त ने 'हिन्दी-काव्य मे राष्ट्रीय भावना' विषय लेकर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया है, किन्तु उसमे आदिकाल से भारतेन्दु युग का ही समय लिया है। अत. यह आवश्यक था कि सन् १९२०-१९३७ जैसे महत्वपूर्ण काल पर कार्य किया जाता।

विषय की स्पष्टता के लिए प्रथम अध्याय मे ही राजनीति-शास्त्र के मान्य विद्वानो द्वारा प्रस्तुत विभिन्न परिभाषाओ के आधार पर राष्ट्रवाद का स्वरूप-विश्लेषण किया गया है। इस प्रबध की पृष्ठभूमि सन् १८५७ से १९२० ई० तक मानी गई है क्योकि सन् ५७ के विद्रोह के पश्चात् ही भारत पूर्णतया अंग्रेजी साम्राज्यवाद के

अधीन हुआ और हिन्दी-साहित्य में भी आधुनिक काल का सूत्रपात हुआ। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद के विकास की अभिव्यक्ति को अधिक स्पष्ट करने के लिए इस युग का इतिहास देना आवश्यक था, जिसकी सामग्री के लिए इतिहास के मान्य विद्वानों के ग्रन्थों से बहुत सहायता मिली है। इस प्रकार ऐतिहासिक और सात्विक विवेचन के अतिरिक्त जितना भी साहित्यिक विवेचन-विश्लेषण है, वह प्रायः मेरा अपना ही मौलिक प्रयास है।

कविता, नाटक, उपन्यास एवं कहानियों से संबंधित सामग्री अत्यधिक मात्रा में मिल जाने के कारण निबंध-साहित्य को इसके अन्तर्गत नहीं लिया जा सका है। इसके अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य के प्रतिनिधि लेखकों की प्रतिनिधि रचनाओं का ही आधार ग्रहण किया है।

अन्त में, गुरुवर आचार्य डा० नगेन्द्र के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करती हूं जिनके सम्यक निर्देशन के फलस्वरूप यह कठिन कार्य पूर्ण हुआ। अपने पूज्य पिता प्रोफेसर डॉ० विश्वेश्वर प्रसाद अध्यक्ष, इतिहास-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय के लिये मैं शब्दों में कुछ भी नहीं कहना चाहती, क्योंकि पितृ हृदय सदा सन्तान-उन्नति चाहता है, मेरी उन्नति के लिए उनका आशीर्वाद आजीवन मेरे साथ है। जबलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० धीरेन्द्र वर्मा एवं रायपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० बाबूराम सक्सेना की अमूल्य सहायताओं के प्रति भी मैं विशेष आभारी हू और अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हू। इस शोध-प्रबन्ध के प्रकाशन में डॉ० दशराज चानना, रीडर संस्कृत-विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय तथा डॉ० ओमप्रकाश शास्त्री की सहायता के प्रति धन्यवाद देना मेरा कर्त्तव्य है। अन्य उन सभी कलाकारों एवं समालोचकों के प्रति आभार प्रकट करती हू जिनकी कृतियों से इस प्रबन्ध में सहायता मिली है।

हिन्दी-विभाग,
इन्द्रप्रस्थ कालिज फार विमेन
दिल्ली।

सुषमा नारायण

ममतामयी माता

एवं

वात्सल्यमय पिता को—

विषय-सूची

भूमिका-खण्ड

शोध-खण्ड

राष्ट्रवाद का स्वरूप-विश्लेषण

राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद की मान्य परिभाषायें .

सभ्यता तथा बुद्धि के निरन्तर विकास ने मानव को कुटुम्ब, ग्राम तथा छोटे राज्य की सीमा के पार देश के विस्तृत भूखड के मोह-पाश मे बाध दिया है। राष्ट्रीय भावना से युक्त देश को ही एक राष्ट्र की सज्ञा से अभिहित किया जाता है । राष्ट्र के प्रति तीव्र एव गहन अपनत्व तथा ममत्व की भावना मे राष्ट्रीयता का जन्म हुआ है। यद्यपि वर्तमान युग मे व्यक्ति का व्यक्तित्व राष्ट्र अथवा राष्ट्रीयता की दीवार को तोडकर अन्तर्राष्ट्रीयता के क्षेत्र मे आना चाहता है, तथापि राष्ट्रीयता की भावना इतनी प्रबल एव आकर्षक है कि "वसुधैव कुटुम्बकम्,' की भावना अप्राप्य आदर्श मात्र रह गई है। राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद की विभिन्न मान्य परिभाषाओ का विवेचन विषय की स्पष्टता के लिए आवश्यक है।

हैस कोहन् ने अपनी पुस्तक 'आइडिया आफ नेशनलिज्म' मे राष्ट्रवाद की भावना को १८वी शताब्दी से अधिक पुराना नही माना है।[1] तत्कालीन यूरोप की राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो ने राष्ट्रवाद की उत्पत्ति तथा विकास मे महत्वपूर्ण योग दिया था। इस काल के पूर्व न केवल यूरोप वरन् समस्त भूखड छोटे-छोटे राज्यो मे विभाजित हो चुका था, जिसमे सामतवादी समाज व्यवस्था प्रचलित थी। राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से ये छोटे छोटे राज्य स्वतन्त्र तथा आत्मनिर्भर होते थे। सम्पूर्ण देश को एक सूत्र म आबद्ध करने वाली शासन-सत्ता का अभाव था— अर्थात्, राष्ट्रवादी राज्यो का सूत्रपात नही हुआ था। राज्य के भीतर तथा अन्य देशो से व्यापार होता था, किन्तु बडी-बडी मिलें तथा बडे बाजार नही थे। मध्यम वर्ग अथवा जिसे शिक्षित वर्ग भी कहा जा सकता है, और जिसका उस समय उद्‌भव हो रहा था, इस सामतवादी समाज-व्यवस्था का विरोधी था। उसने छोटे-छोटे राज्यो को मिटा कर देश मे एक शासन सत्ता की नीव डालनी चाही। देशीय प्रति-

---

1 Nationlism as we understand it is not older than the second half of the eighteenth Century."

Hans Kohn—Tha Idea of Nationalism—P. 3, 1956 edition.

बन्धों के उन्मूलन के साथ-साथ स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व के आधार पर बूर्ज्वा—क्रान्तिकारी वर्ग ने सघर्ष प्रारम्भ किया। यातायात और आवागमन के साधन बढे नवीन आविष्कारो का जन्म हुआ, बडे बाजार खुले तथा इन सबके समन्वय मे देश एक शृखला मे बध गया। व्यापार की प्रगति ने उत्पादन की अभिवृद्धि की तथा अन्य देशो मे इसकी खपत के प्रयत्न किये जाने लगे। इसके लिए राज्य-सहयोग तथा सैन्यशक्ति की भी आवश्यकता हुई। इस प्रकार आर्थिक आवश्यकताओ ने नवीन समाज-व्यवस्था की ओर इगित किया, और पुरानी समाज व्यवस्था के पैर उखडने लगे। सम्पूर्ण देश का जनसमुदाय नवीन व्यवस्था के कारण अधिक निकट सम्पर्क मे आया और परिणामस्वरूप, एक देश के निवासियो का ध्यान अपने इतिहास, सभ्यता, सस्कृति तथा भाषा की समानता या एकता की ओर गया। यद्यपि जनजीवन सामतवाद के चगुल से मुक्ति पाकर भी पूजीवादी-व्यवस्था की कठोर जजीर म जकड गया था, राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीयता का पूर्ण विकास हुआ। इस नवीन समाज व्यवस्था में ही राष्ट्रवाद की भावना का उदय हुआ जिसका ध्येय एक देश–एक राष्ट्र था। वस्तुत राष्ट्रवाद की जड म गौरवमय अतीत की स्मृति है, पर उसकी दृष्टि वर्तमान पर केन्द्रित है, जिसम भविष्य के सुन्दर स्वप्न सजोये रहते हैं। हैंस कोह्न ने इसी कारण राष्ट्रवाद को उत्पत्ति मस्तिष्क की एक विशेष दशा बतलाई है।[1] हैंस कोह्न की भाति जी० पी० गूच ने भी राष्ट्रवाद का सूत्रपात १८वीं शताब्दी मे फ्रांस की क्रान्ति से माना है।[2] इन विद्वानो के अनुसार फ्रास की क्रान्ति के उपरान्त मानव समुदाय मे राष्ट्रवाद की भावना अथवा राष्ट्रीय-चेतना का अधिक प्रचार हुआ।

राष्ट्रवाद के जन्म तथा विकास के सम्बन्ध में निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि जो चिनगारी आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियो के उलट-फेर के कारण सामतवाद की समाज-व्यवस्था को भस्मीभूत करने के लिए सुलग उठी थी, उसे फ्रास की क्रान्ति के तीव्र झकोरो ने आग की लपटो म परिणत कर राष्ट्रवाद के ज्वलत रूप को यूरोपीय राष्ट्रो के सम्मुख रखा। १८वीं शताब्दी मे फ्रास की क्रान्ति व्यक्ति की स्वतन्त्रता का ध्येय तथा विश्वमैत्री की भावना लेकर आरम्भ हुई थी, किन्तु १६वी शताब्दी में यह विचारधारा राष्ट्रवाद तक परिसीमित हो गई। फ्रास में इस क्रान्ति की सफलता ने अन्य देशो मे भी अपनी सभ्यता, सस्कृति, इतिहास, साहित्य और कला के प्रति विशेष श्रद्धा और गर्व की भावना विकसित की। अनेक राष्ट्र फ्रास की देखा-देखी अपनी सस्कृति, कला, इतिहास, साहित्य आदि राष्ट्र की इकाई को

1 'Nationalism is first and foremost a State of mind' Hans Kohn.

The Idea of Nationlism—P 10, 11

2—'Nationlism is the child of French Revolution'
G P. Gooch—Studies in Modern History P. 217
London—Longmans

महानता देने वाले तत्वो की श्रेष्ठता प्रतिपादन के हेतु प्रयत्नशील हुए। अन्य यूरोपीय देशो, विशेषतया जर्मनी तथा इटली, मे पितृभूमि के प्रति गर्व की भावना जाग्रत हुई और उनका जन-समाज अपने राष्ट्र की उन्नति एव एकता की भावना को सुदृढ करने के लिए कटिबद्ध हो गया। परन्तु अपने राष्ट्र के अगो मे एकता तथा सौहार्द की भावना की अभिवृद्धि मे अन्य राष्ट्रो के प्रति उपेक्षा की भावना भी निहित थी। पुन जब पश्चिमी जगत की राष्ट्रवादी लहरें एशिया मे भूखड पर भी तरंगित होने लगी तब पराधीन देशो मे भी जागृति का मानवसदेश प्रवाहित हुआ। वहाँ विद्रोह व आन्दोलन प्रारम्भ हुए तथा अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रो के समान स्तर तक पहुचने के लिए प्राणो की बाजी लग गई।

१६वी शताब्दी मे 'धर्म की एकता राष्ट्रीयता का आधारभूत सिद्धान्त मानी जाती थी, किन्तु समय के साथ विचारो मे परिवर्तन हुआ और धर्म के अतिरिक्त अनेक नवीन सिद्धान्तो को भी मान्यता दी गई। इनमे प्रधान भूमि, शासन तथा सस्कृति की एकता है। भूमि की एकता, अर्थात् राष्ट्र का स्वतन्त्र निजी भूभाग, और राजनैतिक तथा सास्कृतिक एकता के सम्मिलन मे राष्ट्र का स्वरूप निर्मित होता है। भौगोलिक एकता राष्ट्रीयता का वाह्य आकार कहा जा सकता है। राजनैतिक एकता प्राण, सास्कृतिक एकता मानस और आर्थिक एकता शक्ति। इनमे से एक के भी अभाव मे राष्ट्र का जीवित रहना दुष्कर हो जाता है।

डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने अपनी पुस्तक 'फन्डामैंटल यूनिटी आफ इ डिया' मे भारतवर्ष की एकता के सम्बन्ध मे लिखते हुए, राष्ट्रीयता के उदय के लिए भौगोलिक एकता को प्राधान्य दिया है। उनका कथन है कि जिस प्रकार शरीर के अभाव मे कपडो का कोई अस्तित्व ही नही हो सकता, उसी प्रकार स्थायी भूमि के अभाव मे राष्ट्रीयता की भावना निरर्थक है। नि सन्देह, इतिहास ने यह स्पष्ट कर दिया है कि निश्चित भौगोलिक सीमा के अभाव मे राष्ट्र की कल्पना स्वप्नमात्र है। राष्ट्रीयता की भावना अथवा राष्ट्र बनाने की इच्छा को देश की कठोर भूमि साकार रूप प्रदान करती है। कतिपय विद्वान भौगोलिक आधार को प्रधानता नही देते हैं, तथा अपने पक्ष के समर्थन के लिए यहूदी लोगो का उदाहरण देते है। किन्तु यहूदियों की राष्ट्रीयता मे भी भौगोलिक एकता की तीव्र इच्छा निहित थी। उनकी राष्ट्रीयता का आधार भी सीमाओ से घिरा हुआ एक भूखड था, जहाँ वे अपनी सस्कृति, सभ्यता, भाषा आदि का विकास कर सकते। स्थायी भूमि प्राप्ति के अथक प्रयत्न तथा सघर्ष के पश्चात् अब इस्राइल मे उनको अपना देश मिल गया है। वर्तमान युग मे धर्म,

1 A form of corporate sentiment of peculiar intensity, intimacy and dignity related to a definite home-country

Zimmer

2 A common memory and a common ideal—these are mre than a blood—make a nation

Burn

जाति, भाषा, संस्कृति की एकता राष्ट्रवाद के लिए अनिवार्य रूप से अपेक्षित नहीं है, किन्तु भू भाग की अवहेलना नहीं की जा सकती।

जिमर ने राष्ट्रीयता की जो परिभाषा दी है, उसके अनुसार राष्ट्रीयता किसी एक देश से सम्बद्ध समष्टि चेतना का नाम है जिसमें विशेष प्रकार की तीव्रता अन्तरंगता तथा गौरव की भावना सन्निहित रहती है।[1] बर्न का मत है कि—राष्ट्र के निर्माण के लिए रक्त की एकता से अधिक महत्वपूर्ण तत्व ध्येय की एकता और ऐतिहासिक समानता है।[2] मिल के अनुसार राष्ट्रीयता के चार मुख्य तत्व हैं —

१—पूर्वजों की एकता
२—भौगोलिक एकता
३—भाषा और जाति की एकता
४—राजनैतिक-लक्ष्य की एकता

रैम्जे म्योर ने अपनी पुस्तक 'नेशनेलिज्म' में राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में इन तत्वों का उल्लेख किया है—जाति की एकता, सांस्कृतिक एकता, शासन की एकता, आर्थिक एकता, राजनैतिक लक्ष्यों की एकता तथा महापुरुषों की जीवन गाथाओं व विजय गानों की मान्यता आदि। उन्होंने इन तत्वों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर दिया है कि एक या अनेक के संयोग से राष्ट्रीयता सम्भव है। प्रोफेसर मजूमदार के अनुसार वह जनसमूह जो यह अनुभव करता है कि उसका एक निजी सामाजिक-व्यक्तित्व है, अपना साहित्य है, अपनी भाषा है, एक ही ध्येय है, एक से रीति रिवाज हैं और जो अन्य राष्ट्रों से इन विशेषताओं के कारण एक भिन्न अस्तित्व रखता है—एक राष्ट्र का निर्माण करता है। उसकी निजी एकता और अन्य राष्ट्रों से भिन्नता की भावना ही राष्ट्रवाद है। प्रोफेसर हेज ने राष्ट्रवाद की परिभाषा दी है—आंशिक रूप से राष्ट्रवाद स्वदेश प्रेम है, परन्तु मुख्यतया राष्ट्रवाद अपने राष्ट्र के प्रति गर्व और अन्य राष्ट्रों के प्रति उपेक्षा की भावना है। यह भावना इस विश्वास से भरी हुई होती है कि उसके राष्ट्र के सदस्यों के कार्य सदैव उचित होते हैं।[1] शूमैन ने अपनी पुस्तक 'इन्टरनेशनल पालिटिक्स' में लिखा है कि 'राष्ट्रवाद, जातिवाद का विकसित रूप है जिसमें एक वृहद भूखंड में बसने वाली जाति-विशेष की सामाजिक एकता की सीमायें, भाषा और संस्कृति की सीमाओं से एकाकार रहती हैं।[1] डा० सुधीन्द्र के अनुसार 'राष्ट्रवाद एक व्यक्तिगत नहीं समष्टि-

1. "Nationalism is an advanced form of ethnocentrism in which the limts of social cohesion are coterminous with the boundrf the language and culture of people in a large community inhabiting extensive territories '

by Frederick L Schuman—International politics—P 424 Fourth edition, New York

गत (सामूहिक) चेतना है —जिसकी दृष्टि समूह या सर्व के अभ्युदय और प्रगति पर है। और वह प्रगतिशील तत्व भी है। देशभक्ति राष्ट्रीयता का सनातन स्वरूप है और राष्ट्रवाद है और राष्ट्रवाद उसका प्रगतिशील (ऐतिहासिक) स्वरूप है।'

राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद की विभिन्न मान्य परिभाषाओं का सूक्ष्म विवेचन करने पर, उसके विकासशील तत्वों के सम्बन्ध में निश्चित मत स्थापित करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। प्राय सभी विद्वानों ने राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीयता की परिभाषा, तथा उसके तत्वों का निरूपण अपने ढग से किया है। जिमर की परिभाषा में, राधा कुमुद मुखर्जी की भाँति, निश्चित भौगोलिक सीमा उस राष्ट्रीयता का आवश्यक तत्व है। जिमर ने राष्ट्रीयता की परिभाषा की परिधि को छूने का प्रयास किया है, क्योंकि, राष्ट्रीयता के लिये केवल भौगोलिक उपकरण पर्याप्त नहीं हैं जब तक विशेष रूप से राष्ट्र बना कर रहने की इच्छा न हो। राष्ट्र की सज्ञा से विहीन, देश के जन-समूह में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध हो सकता है, तथा दो या अधिक राष्ट्रों के भी ऐसे घनिष्ठ सम्बन्ध पाये जाते हैं। गौरव की तीव्रतम सामूहिक चेतना के पीछे इतिहास की एकता तथा अतीत गौरव गान भी आवश्यक तत्व हैं। बर्न ने रक्त की एकता की अपेक्षा ध्येय की एकता को अधिक महत्व दिया है। नि सन्देह, रक्त की एकता का मिलन असम्भव तथा कठिन है, क्योंकि आज सभी जातियों के रक्त आपस में इतने घुलमिल गये हैं कि रक्त की पवित्रता का मिलना नितान्त असम्भव है। इसके अतिरिक्त स्विटजरलैण्ड के उदाहरण से इनके मत की पुष्टि हो जाती है, क्योंकि वहाँ तीन जातियों के लोग तथा तीन भाषायें हैं और फिर भी वह एक सफल राष्ट्र है। बर्न की परिभाषा तथ्य के अधिक निकट है। राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता को इस परिभाषा की कसौटी पर कसा जा सकता है।

मिल के मत का समर्थन अधिकाश विद्वानों ने किया है। पूर्वजों की एकता या ऐतिहासिक समानता राष्ट्रीयता के विकास में सहायक है, इसमें सन्देह नहीं—किन्तु अमरीका एक ऐसा राष्ट्र है जिसने इस तत्व की भी अवहेलना कर दी है। अमरीका के राष्ट्रवाद के एकमात्र तत्व—'एक शासन में रहने की इच्छा' का सिद्धान्त—अन्य राष्ट्रों द्वारा मान्य होना कठिन है, क्योंकि अन्य देशवासियों में इस प्रकार के विचार नहीं पाये जाते। भौगोलिक एकता दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है, जिसकी महत्ता सिद्ध की जा चुकी है। भाषा और जाति की एकता अवश्य महत्व रखती है, क्योंकि इसके द्वारा विचार विनिमय तथा घनिष्ठता सहज हो जाती है। ऐतिहासिक एकता तथा भाषा की समानता का अन्योन्याश्रित सबन्ध होता है। वैसे अपवाद-स्वरूप स्विटजरलैण्ड का नाम लिया जा सकता है जहाँ तीन भाषायें राष्ट्रीय कार्य-सचालन में महत्व रखती हैं। जातीय एकता की अपेक्षा एक शासन अथवा राजनैतिक लक्ष्य की एकता अधिक आवश्यक तत्व है। अत मिल द्वारा निरूपित तत्व उल्लेखनीय है किन्तु इनमें

१—डा० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर। पृ० २३७ प्रथम संस्करण

से किसी एक तत्व के आधार पर भी राष्ट्रवाद के विकास में पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है।

रेम्जे म्योर की परिभाषा इतनी विस्तृत है कि उसमें किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीयता का आधार सुगमता से ढूंढा जा सकता है। वे एक राष्ट्र को केवल इसलिए राष्ट्र मानते हैं कि उसके निवासियों का ऐसा विश्वास होता है, और उनके आपस के घनिष्ठ सम्बन्ध इस विश्वास की जड़ में निहित होते हैं। निःसन्देह, लक्ष्य तथा स्वार्थों की समानता, घनिष्ठ सम्बन्ध, समष्टिगत स्वार्थ तथा सुख के लिए व्यक्तिगत-स्वार्थों का त्याग राष्ट्रीयता के लिए आवश्यक हैं, किन्तु इसके लिए अन्य तत्व अप्रत्यक्ष रूप से क्रियाशील रहते हैं। रेम्जे म्योर ने राष्ट्रीयता की कोई निश्चित एवं मान्य परिभाषा नहीं दी है। प्रोफेसर मजूमदार की परिभाषा भी आवश्यकता से अधिक विस्तृत है। रीति-रिवाज अथवा रहन सहन में समानता न होने पर भी एक राष्ट्र में राष्ट्रवाद की भावना मिल सकती है। प्रोफेसर हैज की परिभाषा में राष्ट्रवाद का अधिक विस्तृत एवं उज्ज्वल रूप नहीं मिलता। यद्यपि राष्ट्रवाद का जन्म, फ्रांस में, राष्ट्र के प्रति गर्व की भावना से हुआ था किन्तु आज अन्य राष्ट्रों के प्रति उपेक्षा की भावना उपयुक्त नहीं समझी जाती। सच्चे राष्ट्रवाद में अपने राष्ट्र के प्रति गर्व की भावना के साथ अन्य राष्ट्रों के सम्मान का उच्च आदर्श रहता है। यह तो एक राष्ट्र के जन-समुदाय को कस कर बांध रखने की शृंखला मात्र है जिससे वह छिन्न, भिन्न न हो जाये।

शूमैन की परिभाषा भी सीमित और संकुचित है। वर्तमान युग का राष्ट्रवाद जातिवाद का विकसित रूप नहीं कहा जा सकता। राष्ट्रवाद विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों का फल है, तथा उसे हम मानव-बुद्धि की प्रगति का परिणाम कह सकते हैं। जातिवाद अथवा जातीय एकता तो उसका एक तत्व मात्र बन सकता है। भाषा तथा संस्कृति की एकता भी आवश्यक नहीं है। डा० सुधीन्द्र ने राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता का सूक्ष्म विवेचन न करके, स्थूल रूप से समझाने का प्रयत्न किया है।

एक देश 'देश' की संज्ञा से ऊपर उठकर 'राष्ट्र' की संज्ञा को तभी प्राप्त करता है, जबकि उसके निवासियों में कुछ सामान्य विशेषताओं के आधार पर घनिष्ट संबंध स्थापित हो जाता है, तथा वे सब अपने को देश की इकाई के रूप में देखते हैं। जब एक निश्चित सीमा में आबद्ध भूभाग के लोगों का इतिहास एक होगा—उनमें अतीत गौरव-गाथाओं के प्रति गर्व होगा, तथा भविष्य में अपने राष्ट्र को सुदृढ़ करने वाली योजनाओं के प्रति उत्साह होगा—तभी राष्ट्रीयता की भावना संभव हो सकेगी। एक राष्ट्र के जन अपनी राष्ट्रीय भावना को साहित्य, शिल्पकला, चित्रकला, संगीत आदि कला-माध्यमों के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं जिससे अन्य राष्ट्र उनकी राष्ट्रीयता से परिचित हो सकें। इस प्रकार राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रीय भावना का सम्बन्ध केवल बाह्य शरीर अथवा जड़ भूमि मात्र से न होकर, आन्तरिक होता है। अन्त में यह

स्पष्ट है कि राष्ट्रवाद के अनेक तत्व हैं जिनमे से एक या अनेक के सयोग से इसका उद्भव एव विकास होता है। ये तत्व हैं—जाति की एकता, धर्म की एकता, भाषा की एकता इतिहास की एकता, सामान्य स्वार्थ की एकता आदि। इनके केन्द्र मे एकता बिन्दु रूप मे अवस्थित रहती है। नाजी लोग आकृति की समानता अथवा शारीरिक समानता पर बल देते थे, अग्रेजो के लिए भाषा, इतिहास तथा सस्कृति की एकता राष्ट्रीयता के लिये आवश्यक है अमरीका निवासियो के लिये एक शासनाधिकार मे रहने की इच्छा ही पर्याप्त है। अत कदाचित् ही ससार के कोई दो राष्ट्र-राष्ट्रवाद के समान तत्वो के विषय मे एकमत हो।

आज विश्व-जीवन की शाति के लिए नितात आवश्यक है कि राष्ट्रवाद के शुद्ध रूप की स्थापना की जाये। यदि वह उग्र रूप ले लेता है तो विश्व शान्ति भग होने की सम्भावना बढ जाती है। राष्ट्रवाद को जातीयता, धर्म, साम्प्रदायिकता सकीर्णता, स्वार्थपरता से ऊपर उठकर, राष्ट्र की सीमा मे विश्वास रखते हुये भी मानव-कल्याण की भावना से अभिप्रेरित होना चाहिये। गाधीजी ने राष्ट्रवाद का जो रूप देश को दिया था वह अत्यन्त व्यापक, उदार तथा प्राणिमात्र के कल्याण की भावना से परिपूर्ण था। उनके सिद्धान्तो का विवेचन विस्तार के साथ शोध खड के अन्तर्गत किया गया है।

राष्ट्रवाद, देशभक्ति, जातिवाद अथवा सम्प्रदायवाद से भिन्न है प्राय इन शब्दो को एक मे मिलाने का प्रयत्न किया जाता है। अत इनका अन्तर स्पष्ट कर देने से राष्ट्रवाद का स्वरूप अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

राष्ट्रवाद और देशभक्ति

भक्ति का क्षेत्र, भावना अथवा हृदय है तथा वाद का सम्बन्ध बुद्धि से है। अत देशभक्ति, देश के प्रति एक प्रकार का अनुराग है और राष्ट्रवाद मस्तिष्क के तर्क से उत्पन्न विचार। राष्ट्रवाद के मूल मे देशभक्ति बीज रूप मे सुरक्षित रहती है। अनेक अन्य प्रकार की भक्ति की भाति देशभक्ति भी देश की रज के प्रति भक्ति की भावना है। प्रारम्भ मे मनुष्य की भक्ति तथा ममत्व की भावना जन्मभूमि तक सीमित थी किन्तु शनै शनै उसका विस्तार राज्य की सीमा मे बढा। शिक्षा के प्रसार, तथा यातायात की सुविधाओ के साथ मनुष्य का परिचय एक बड भूखड के अन्य भागो से भी हुआ। सामान्य विशेषताओ, रीति-रिवाज और सस्कृति की एकता के आधार पर आपस मे सम्बन्ध स्थापित हुये। इसी कारण आज देशभक्ति की भावना जिस विस्तृत रूप मे ससार के सम्मुख आयी है, वैसी इसके पहले कभी न थी। आज हम अपने पूरे देश या राष्ट्र को जन्मभूमि की सज्ञा देते है। जन्मभूमि का अर्थ स्वदेश है, जिसके प्रति रागात्मक वृत्ति सजग रहती है। सामन्तवादी सम्यवस्था मे व्यक्ति की भक्ति-भावना के क्षेत्र केवल छोटे-छोटे राज्य थे। उनकी भक्ति शासक के प्रति मोह तक ही सीमित थी।

देशभक्ति अथवा राष्ट्रभक्ति का मूलमन्त्र है—हमारा देश, हमारा राष्ट्र, अन्य राष्ट्रों से श्रेष्ठ, सुन्दर तथा समृद्ध है। जार्ज बर्नर्डशा ने कहा है कि 'राष्ट्रभक्ति मे ऐसा दृढ विश्वास होता है कि जिस देश मे जन्म हुआ है वही देश ससार मे श्रेष्ठ है। डा० राधाकुमुद मुखर्जी के मत मे भारत मे जन्मभूमि के प्रति भक्ति तथा स्वदेश की भावना वैदिक काल से पायी जाती है—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी—जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् है, मातृभूमि के सम्मुख स्वर्ग-सुख भी त्याज्य है। विष्णु पुराण मे भारत-भूमि के प्रति महान् भावना मिलती है—

गायन्ति देवा किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते
भवन्ति भूय पुरुषा सुरत्वात।

बाल्यावस्था मे जो स्नेह, श्रद्धा, भक्ति अपने माता-पिता, कुटुम्बीजन, तथा आसपास के वातावरण के प्रति जाग्रत होती है। वही अवस्था बुद्धि के विकास के साथ कालान्तर मे देश के प्रति भक्तिभाव मे परिणत हो जाती है। देश की वन्दना, गौरवगान, जयजयकार, जागरण और अभिमान के गान देशभक्ति के विभिन्न पक्ष हैं। राष्ट्र अथवा राष्ट्रवाद के अभाव मे भी देशभक्ति वर्तमान रह सकती है।[1] अत राष्ट्रीयता से देशभक्ति का मौलिक अन्तर है। इन शब्दो को एक अर्थ मे प्रयुक्त करना असगत है।

राष्ट्रवाद और जातिवाद

राष्ट्रवाद, सम्प्रदायवाद, साम्राज्यवाद, व्यक्तिवाद, समष्टिवाद आदि विभिन्न वादो के सदृश जातिवाद को १९वी शताब्दी मे महत्व दिया गया। एक जाति के व्यक्तियो के सगठन मे इसका आविर्भाव हुआ। इसका प्रमुख सम्बन्ध शरीरशास्त्र से है अर्थात् इसने आकृति, वर्ण तथा रक्त के आधार पर समस्त ससार को अनेक जातियो उपजातियो मे विभाजित किया है। इसमे अपनी जाति तथा वर्ण के व्यक्तियो के अभ्युदय एव प्रगति की शुभकामना वर्तमान रहती है।

जातिवाद तथा राष्ट्रवाद मे विशेष अन्तर है। राष्ट्रवाद जाति, वर्ण, रक्त देन को भुलाकर राष्ट्र के कल्याण की भावना से अभिप्रेरित होता है। रक्त की स्थापि अथवा जाति की एकता राष्ट्रवाद की पुष्टि मे सहायक एक तत्व मात्र बन एक निर्ि। कदाचित् इसी कारण दूर्मैन ने राष्ट्रवाद को जातिवाद का विकसित रूप गौरव गाथा न्तु यह नितान्त आवश्यक तत्व भी नही है जैसा कि राष्ट्रीयता की मान्य योजनाओ के विवेचन मे सिद्ध किया जा चुका है। वस्तुत, आज के अधिकाश एक राष्ट्र के जन भावना के पीछे केवल जातिवाद की भावना नही है।

आदि कला-माध्यमों क—

ना और जन सस्कृति राष्ट्र के तीन पार्श्व हैं—परन्तु देश-
परिचित हो सकें। इस
उसके बिना 'राष्ट्रीयता' की कल्पना नहीं की जा सकती।
बाह्य शरीर अथवा जड भू-
वता मे युगान्तर : पृ० २३१

राष्ट्रवाद और सम्प्रदायवाद

कुछ विशिष्ट सिद्धान्तो को कट्टरता के साथ ग्रहण करने वाले जनसमुदाय को सम्प्रदाय की सज्ञा प्रदान की जाती है। राजनैतिक आर्थिक, सामाजिक, स्थूल या सूक्ष्म मतभेदो के आधार पर छोटे बडे सम्प्रदायो की नीव पडती है। एक देश या राष्ट्र मे सैद्धान्तिक विभिन्नता के आधार पर निर्मित छोटे मोटे अनेक सम्प्रदाय मिल सकते हैं। धर्म, सस्कृति, तथा आचार विचार मे समझौता न हो सकने के कारण कभी कभी सम्प्रदाय बडा उग्र रूप धारण कर लेते हैं। विशेषतया धार्मिक मतभेदो के आधार पर एसे सम्प्रदायो का निर्माण होता है। भारत मे सम्प्रदायवाद अधिक लोकप्रिय रहा है। धर्म क्षेत्र मे केवल नाममात्र के मतभेदो को कारण मान कर नवीन सम्प्रदायो का सृजन कर लेना अति साधारण बात थी। इससे मनोवृत्ति अधिक सकुचित हो गई। भारत देश के विभाजन का प्रमुख कारण यही सम्प्रदायवाद रहा है जिसका मूलाधार धार्मिक सकीर्णता था।

राष्ट्रवाद तथा सम्प्रदायवाद दोनो ही मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है लेकिन राष्ट्रवाद का जन्म अनुकूल परिस्थितियो मे हुआ और सम्प्रदायवाद का प्रतिकूल परिस्थितियो तथा मतभेदो मे। मतभेद तथा साम्प्रदायिकता, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता अथवा राष्ट्रवाद के विकास म अवरोधक है। राष्ट्रवाद राष्ट्र की एकता तथा विशिष्टता की समतल भूमि पर आधारित है—भिन्नता मे अभिन्नता भेदो मे अभेद का इच्छुक है। सम्प्रदायवाद अभिन्नता से भिन्नता अभेद से भेद, एकता से अनेकता की ओर जाने की प्रेरणा देता है और राष्ट्र के एकत्व को छोटी छोटी साम्प्रदायिक टुकडियो मे विभक्त करने मे विश्वास रखता है। राष्ट्रवाद की अपेक्षा सम्प्रदायवाद अधिक सीमित, सकुचित तथा सकीर्ण है। प्राय सम्प्रदायवाद राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद की भावना पर कुहरा बन कर छा जाता है जिससे उसका शुद्ध रूप स्पष्ट दृष्टिगत नही होता। कभी कभी तो सम्प्रदायवाद की आधी राष्ट्रवाद की सशक्त जडो को उखाडने मे भी समर्थ हो जाती है और राष्ट्रीय एकता को छिन्न भिन्न कर पराधीनता की बेडियो मे जकड देती है। भारत का इतिहास इसका साक्षी है। सकीर्ण सम्प्रदायवाद राष्ट्र, राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद के लिए अमृत की अपेक्षा गरल का ही कार्य करता है किन्तु विरोधाभास यह है कि राष्ट्रवाद के भीतर ही सम्प्रदायवाद पलपता है। अन्त मे यह कहा जा सकता है कि सम्प्रदायवाद तथा राष्ट्रवाद मे अन्तर ही नही विरोध भी है।

राष्ट्रवाद और साम्यवाद

राष्ट्रवाद तथा साम्यवाद, दोनो ही व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि मे विश्वास रखते हैं। राष्ट्रवाद राष्ट्रीयता का प्रगतिशील रूप है। यह एक प्रकार की चेतना है जो राष्ट्र के एक व्यक्ति मे स्पन्दित रहती है जिसमे एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से स्वतन्त्र एव पृथक् अस्तित्व बना रहता है। इसमे एक निश्चित भूभाग की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक सीमाए एक ही दिशा मे चलती हैं, कहीं भी विरोध नहीं होता, किसी प्रकार की विषमता अथवा कटुता नही आने पाती। स्वदेश प्रेम राष्ट्र-

वाद का आवश्यक अंग है, जिसके अभाव मे राष्ट्रवाद अपूर्ण एव विकलांग हो जाता है। राष्ट्रवाद की अपेक्षा साम्यवाद ने जीवन को नवीन दृष्टि से देखा है। उसने भौतिक आवश्यकताओ को महत्वपूर्ण स्थान देकर, उसे सभी परिवर्तनो का मूल कारण माना है। साम्यवाद ने राजनैतिक सामाजिक धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक अर्थात् जीवन की समस्त प्रणालियो को एक बार फिर से छिन्न भिन्न करके नवीन ढग से सजाने का प्रयत्न किया है। उसने आज तक चली आती हुई व्यवस्था को हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा जड से उखाड फेंकने का सकल्प ले रखा है। साम्यवाद कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तो पर आधारित है। यह राज्य क्रान्ति सन् १९१७ मे रूस म प्रारभ हुई थी। इसका मूल सिद्धान्त है वर्गहीन समाज की स्थापना, व्यक्तिमात्र की स्वतन्त्रता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर पग बढाना। यह ससार की मानवता को राष्ट्रीयता, रक्त, जाति, वर्ग अथवा अन्य छोटी छोटी सीमाओ मे बाँटने म विश्वास नही रखता। पू जीवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप इसका जन्म हुआ था अत उसे मिटा कर वर्गहीन समाज की स्थापना इसका एकमात्र लक्ष्य है। इसका विचार है कि मजदूर शासन सत्ता की स्थापना की जाये। तत्पश्चात् सम्पूर्ण विश्व मे समानता के आधार पर कार्यक्रम प्रसारित हो। साम्यवादी हिंसात्मक क्रान्ति का चक्र तब तक चलाना चाहते हैं जब तक समाज सच्चे अर्थों मे जनकल्याणकारी जनस्वतन्त्रता का पोषक, राज्य-विहीन, अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य तथा विद्वेष की भावना से रहित न हो जाये।

साम्यवाद एक सुन्दर स्वप्न है जिसे वास्तविकता म परिणत करना अथवा मूर्त्त रूप प्रदान करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। मनुष्य के स्वभाव अथवा मनोरचना से भी इसके सिद्धान्तो का मेल नही हो पाता। इसके अनुसार सम्पूर्ण समाज मे दो प्रमुख वर्ग हैं—शोषक और शोषित, पू जीपति और श्रमिक। इसके विपरीत राष्ट्रवाद मनुष्य को अलग अलग श्रेणियां नही बनाता। तथा उसका मनुष्य की रागात्मक प्रवृत्ति के साथ भी सहज ही सामजस्य हो जाता है। इसके अस्तित्व मे साम्यवाद की उपस्थिति असभव है और साम्यवाद मे राष्ट्रवाद की। परन्तु आज के सभी साम्यवादी राष्ट्र अपनी निश्चित भौगोलिक सीमाओ मे घिरे हैं और अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर पग बढाने मे असमर्थ हैं। राष्ट्रीय सीमा मे आबद्ध साम्यवादी राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय भावना के विकास मे बाधक हैं। वैसे साम्यवाद का आदर्श राष्ट्रवाद की अपेक्षा अधिक उच्च, उदात्त एव महान् है। वह तो राष्ट्रवाद के आधारमूल-तत्वो—जाति, रक्त भाषा, आचार विचार, सभ्यता सस्कृति, इतिहास की एकता, भौगोलिक सीमा आदि को तोडने म विश्वास रखता है। यदि राष्ट्रवाद एक विशिष्ट भूखड के निवासियो की उन्नति तथा प्रगति के सयोजक तत्वो को ही महत्व देता है, अन्य भूखंडो मे बसने वाले जनसमुदाय की उपेक्षा करता है, तो साम्यवाद विश्व-ऐक्य, मानवमात्र की समानता को जनकल्याण के लिए उपयुक्त समझता है।

साम्यवाद और राष्ट्रवाद मे साम्य की अपेक्षा विषमता ही अधिक है। जहा राष्ट्र की मान्यता नही वहा राष्ट्रवाद असम्भव है तथा जहाँ अपने राष्ट्र के प्रति मोह

व ममत्व है वहा साम्यवाद कठिन है। यदि साम्यवाद अपने सच्चे अर्थो मे, विशुद्ध रूप मे मान्यता पाता है तो राष्ट्रवाद की भावना दूर हट जाती है। दोनो की विचारधारा व मूल दर्शन मे विरोध है। राष्ट्रवाद की सीमा मे साम्यवादी विचारधारा का आरोपण भ्रम मात्र है।

राष्ट्रवाद की आधुनिक विकृतियाँ

राष्ट्रवाद के साथ भिन्न भिन्न राष्ट्रो की विभिन्न सभ्यता तथा सस्कृतियाँ आई, इतिहास और गौरव गाथाओ का गान हुआ तथा राष्ट्रो के अभ्युदय व विकास की योजनाए बनी। इसके विकास के साथ विभिन्न राष्ट्रो म स्वार्थवश स्पर्द्धा तथा प्रतिद्वन्द्विता की मात्रा बढती गई। फलत विकृतिया आई जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं—प्रथम तथा द्वितीय महायुद्ध। श्री अप्पादोराय ने अपनी पुस्तक मे राष्ट्रवाद की विकृतिया पर प्रकाश डाला है। उनके मत म राष्ट्रवाद सम्पूर्ण विश्व की आर्थिक एव राजनीतिक दृष्टि से मानव के लिए अहितकर है।[1] वैज्ञानिक यातायात के साधनो के कारण विश्व के सभी भाग निकट आ गय हैं लेकिन राष्ट्रीय प्रतिबन्धो के कारण सम्पूर्ण विश्व के आर्थिक उत्पादन का मानव मात्र के लिए अधिक से अधिक उपयोग असभव हो गया है। इनके मत मे भी राजनैतिक दृष्टि से युद्ध सबसे बडी विकृत है जिसका उल्लेख किया जा चुका है।

स्वतन्त्र राष्ट्रो मे प्रेरणा ग्रहण कर पराधीन राष्ट्रो ने भी अपने छिन्न भिन्न अगो को समेट कर सुदृढ राष्ट्र मे परिणत होने के लिए क्रान्ति प्रारम्भ की। मध्यम श्रेणी के राष्ट्र उन्नत राष्ट्रो की पगत मे बैठने के लिए अपने राजनैतिक सामाजिक एव आर्थिक क्षेत्रो को दढ बनाने लगे और उन्नत राष्ट्रो ने राष्ट्रवाद के विकृत रूप से प्रेरित होकर साम्राज्यवाद का विस्तार करने के लिए निर्बल राष्ट्रो पर आक्रमण किया। अत इसकी प्रथम विकृति है राष्ट्र सघर्ष जिसको इससे प्रोत्साहन मिलता है।

राष्ट्रवाद मे स्वार्थ भावना अधिक प्रबल होती है। इसकी प्रबलता अन्य राष्ट्रो के लिए घृणा की भावना का सचार करती है, जिससे मानव जाति के कल्याण की अपेक्षा ध्वस ही अधिक होता है। निरीह मानवता सकीर्ण एव विकृत राष्ट्रवाद की चक्की मे बुरी तरह पिस जाती है। प्रोफेसर हेज ने इसी कारण अपनी परिभाषा मे राष्ट्रवाद को अपने राष्ट्र के प्रति गर्व तथा अन्य राष्ट्रो के प्रति उपेक्षा की भावना माना है। साम्यवाद का जन्म इसकी विकृति की प्रतिक्रिया-स्वरूप हुआ। विकृत राष्ट्रवाद के परिणामस्वरूप उन्नत, समृद्ध तथा शक्तिशाली राष्ट्र पराधीन राष्ट्रो के साथ बर्बर और नृशस व्यवहार करने में तनिक भी सकोच नहीं करते।

भारत और राष्ट्रवाद

राजनीतिशास्त्र के मान्य विद्वानो द्वारा प्रस्तुत राष्ट्रवाद की ग्राह्य परिभाषाओ

---

1 A Appadorai—The Substance of Politics—P 150, 154 Eighth Edition—*Oxford University Press* 1957

की कसौटी पर यदि भारत को देखा जाय तो अंग्रेजी शासन के पूर्व यहाँ राष्ट्रवाद नहीं मिलता। १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में राष्ट्रीय महासभा ने जिस राष्ट्रीय कार्यक्रम का प्रचार किया उसने राष्ट्रीय चेतना के विकास में पर्याप्त सहायता पहुंचाई। भारत में इस भावना अथवा चेतना का जन्म धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक सुधारों में हुआ। अंग्रेजी शासन काल में यातायात की सुविधाओं तथा एक शासन के कारण देश की मनःस्थिति ऐसी हो सकी जिसमें सम्पूर्ण देश की उन्नति तथा प्रगति के लिए कार्य प्रारम्भ हुआ। देशवासियों का ध्यान राष्ट्रनिर्माण के अवरोधक तत्वों की ओर आकृष्ट कर उसके विकास के लिए उपयोगी वातावरण निर्मित किया गया।

भारत एक विशाल देश है जिसे स्वयं प्रकृति ने भौगोलिक सीमाएं प्रदान की हैं। उसका इतिहास संस्कृति, साहित्य, आचार-विचार रहन-सहन अति पुरातन है। पराधीनता की बेड़ियों में कसे होने पर भी, वह निरन्तर स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करता रहा और अन्त में विदेशी दासता से मुक्ति पाकर ही निश्चिन्त हुआ। २०वीं शताब्दी में राष्ट्रीय एकता तथा स्वतन्त्रता के लिए जो आन्दोलन हुए उन्हें लक्ष्य की एकता कहना चाहिए।

मिल द्वारा उल्लिखित राष्ट्रीयता के चारों तत्व आज भारत में उपलब्ध हैं—अर्थात् पूर्वजों की एकता भौगोलिक एकता, भाषा और जाति की एकता, राजनैतिक लक्ष्य की एकता। बर्न की परिभाषा पर भी भारत की राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद खरा उतरता है। अतः भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व स्वतन्त्रता को ध्येय बनाकर राष्ट्रवाद का पूर्ण विकास हो गया था। आधुनिक हिन्दी साहित्य में इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है जो इस शोध प्रबंध का विषय है।

: २ :

राजनैतिक सामाजिक-परिस्थिति तथा राष्ट्रीय चेतना

१८५७-१९२० ई०

वैदिक एव संस्कृत-साहित्य मे आर्यावर्त्त की भौगोलिक एकता की भावना स्पष्ट है, किन्तु उसे राष्ट्रीय भावना या चेतना कहना अत्युक्ति होगा। कतिपय विद्वानो के मत मे-'भारतवर्ष नाम तथा चक्रवर्ती राजा बनने की महत्वाकाक्षा राजनैतिक एकता का सूचक है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र, पतजलि के महाभाष्य (१५० ई० पू०), रामायण, महाभारत, वराहमिहिर की बृहत्सहिता तथा कालिदास के ग्रन्थो मे भारत के अनेक भागो का वर्णन मिलता है।[1] तुर्कों के आगमन के पूर्व देश की भौगोलिक एकता के वर्णन, उसको एकसूत्र मे बाँधने के प्रयत्न तथा धार्मिक एकता की भावना पाई जाती है लेकिन देश के भिन्न भिन्न भागो में आचार विचार, रहन-सहन तथा भाषा का अन्तर भी था। तुर्क साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् भी सपूर्ण भारत-भूमि एक शासन सूत्र मे पूर्णतया न बध सकी और अनेक स्वतन्त्र राज्य शेष रहे। इस काल में सभी शक्तिशाली शासकों ने सम्पूर्ण भारतदेश को एक छत्र के नीचे लाने के प्रयत्न किये और वे किसी अश मे सफल भी हुए, लेकिन जैसे ही केन्द्रीय शासन शिथिल होता था, देश पुन अनेक भागो मे बट जाता था। अत आज राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद शब्द का प्रयोग जिस अर्थ मे किया जा रहा है, उस रूप मे राष्ट्रीय भावना आधुनिक काल के पूर्व नही मिलती। यूरोप मे भी यह भावना इसी काल की देन है।

अग्रेजी शासनकाल से शासनिक एकरूपता, अंग्रेजी भाषा के सार्वदेशिक प्रयोग तथा यातायात की सुविधा के फलस्वरूप उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक देशवासी, एकता के सूत्र मे आबद्ध हो, निकट सम्पर्क मे आये, जिससे राष्ट्रीयता की नवीन चेतना का उदय हुआ। यद्यपि भारत की भौगोलिक एकता पर्वतो तथा सागरो की विशाल लहरों द्वारा सुरक्षित थी और राष्ट्र-निर्माण मे सहयोगी सभी उपकरण

---

1 Radha Kumud Mukerjee —The Fundamental Unity of India-P. 17, 63, 110. 1914 Edition-Longmans Green & Co.

विद्यमान थे, किन्तु सगठन के अभाव मे राष्ट्र का निर्माण न हो सका था। सहस्रों वर्षों मे उपलब्ध राष्ट्रनिर्माण की आधारभूमि भौगोलिक एकता निष्प्रयोजन सी ही थी। अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने इस चेतना के उद्बोधन हेतु अनुरूप वातावरण तथा उपयुक्त सामग्री प्रदान की। शनैः शनैः सुप्त भारतवासियों ने जागृत हो अपनी दीन हीन दशा की ओर दृष्टिपात किया और वे विक्षुब्ध हो उठे। अतः अंग्रेजी साम्राज्यवाद बाधक के साथ साधक भी सिद्ध हुआ क्योंकि इसी शासन काल मे भारतीयों ने नवजागृति का सदेश सुना।

१८५७ ई० से पूर्व ईस्ट इंडिया कम्पनी के सौ वर्ष के शासन काल मे भारतीयों के साथ व्यवहार रूप मे लाई गई राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक नीति के कारण देश मे विद्रोह के लक्षण स्पष्ट हो रहे थे।[1] लार्ड डलहौजी की देशी राज्यो के विलय की नीति और अवध प्रदेश का अंग्रेजी साम्राज्य मे समाहार महत्वपूर्ण घटनाएं थी जिनसे जनता की स्वाधीन भावनाओं पर कठोर प्रहार हुआ था। विदेशी शासन की शिक्षा-आयोजना, रेल-तार-डाक का प्रचार, नहरो तथा सड़को के निर्माण आदि ने विद्रोहाग्नि प्रज्ज्वलित करने मे समिधा का काम किया। देशी राज्यो तथा अवध के सिपाहियों की आजीविका छिन गई थी, वे किसी भी क्षण विद्रोह करने के लिए तत्पर बैठे थे। भारतीय नरेशों की स्वतन्त्रता के अपहरण के साथ अंग्रेजी अधिकारी वर्ग ने उन्हें अपमानित भी किया था। अतः असंतोष तथा विक्षोभ के के अतिरेक ने १८५७ ई० मे विद्रोह का रूप ले लिया, जिसने हिन्दी प्रदेश मे उग्रतम रूप धारण किया।

सन् १८५७—१८८५ ई०

१८५७ ई० के विद्रोह के कारणो के सबंध मे मतभेद है। अनेक पश्चिमी इतिहासकार इसे सिपाही-विद्रोह की सज्ञा देते हैं, किन्तु बहुधा भारतीय इतिहासकार इसको स्वतन्त्रता-सग्राम की ओर ले जाने वाला प्रथम सोपान मानते हैं।[2] निःसन्देह १८५७ ई० का विद्रोह अंग्रेजी सत्ता को मिटा देने का महान् उद्योग था जिसका प्रभाव

१—अंग्रेजों का भारतीयों के प्रति व्यवहार कठोर और अमानुषिक हो चला था और पादरियों का धार्मिक प्रचार पूर्ण वेग से बढ़ रहा था। शासन मे सभी सम्मानित पदों से भारतीय अलग कर दिये गये थे। भूमि-कर-व्यवस्था के नये नये कानूनों और परिवर्तनों से पुराने शासकीय वर्ग की स्थिति बहुत गिर गई और कृषक वर्ग पर भारी आर्थिक बोझ पड़ा। ...

डा० रघुवंशी—भारतीय सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० २२

२—अंग्रेजी लेखक इस युद्ध को बगावत कहते हैं परन्तु यह गलत है। यह कुछ सिरफिरे देशी नरेशों की छुटपुट बगावत नहीं थी, बल्कि सामन्तवाद की अन्तिम और सगठित कोशिश थी अपने को जीवित रखने के लिए।

—कृष्णदास : स्वतन्त्रता सग्राम ६० वर्ष : पृ० १०

कालान्तर म स्पष्ट हुआ ।[1] इसके पश्चात् ही भारत का शासन-सूत्र ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के माध्यम द्वारा सीधा इगलैण्ड की पार्लियामण्ट के हाथ म आया । महारानी विक्टोरिया ने भारतीय जनता के असन्तोष, अविश्वास तथा विदेशी शासको के प्रति घृणा एव कटुभावनाओ को शान्त करने के लिए घोषणा की कि अग्रेजी शासनान्तर्गत योग्यतानुसार भारतीय सभी पदा पर नियुक्त होगे तथा सामाजिक एव धार्मिक विषयो मे शासको का हस्तक्षेप नही होगा ।[2] देशी शासकों के विक्षोभ को शान्त करने के लिए उन्हें विश्वास दिलाया गया कि उनके राज्य, उनके वशजो के लिए सुरक्षित रहेंगे । इस विद्रोह को राष्ट्रीय आन्दोलन न कहा जा सकता हो, फिर भी इसने आन्दोलन के बीजारोपण के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण कर दिया था और भारतीयो की विदेशी शासन से मुक्त होने की आकाक्षा स्पष्ट हो रही थी ।

महारानी विक्टोरिया की घोषणा तथा शासनसूत्र का ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के अधिकार मे आ जाने से विद्रोहाग्नि पर राख डालने का प्रयत्न किया गया था किन्तु यह आग अन्दर ही अन्दर धधकती रही । १८५७ के विद्रोह के पश्चात् बीस वर्षों तक ऊपरी शाति बनी रही लेकिन जनता का असतोष तथा क्षोभ प्रच्छन्न रूप से अग्रेजी साम्राज्यवादी स्वार्थपूर्ण नीति के कारण उग्र रूप धारण करते जा रहे थे ।

भारतीय शासन का सीधा सम्बन्ध ब्रिटिश पार्लियामेट मे हो गया था फिर भी भारतीय जनता की दशा म अधिक सुधार न हुआ, विदेशी सरकार की गति विधि पूर्ववत ही कठोर बनी रही । अग्रेज शासक दृष्टि से भारतीयो को देखते थे और भारतीय उनको घृणा की दृष्टि से। इसके फलस्वरूप अग्रेजी सेना की सख्या मे अभिवृद्धि हुई तथा सना के कुछ विभागा म भारतीयो को स्थान न दिया गया। इसके अतिरिक्त विदेशी शासको ने अपनी सुरक्षा की क्षुद्र भावना से प्रेरित होकर सम्पूर्ण देश का नि शस्त्रीकरण भी किया और शस्त्र अधिनियम बडी दृढता के साथ क्रियान्वित किया गया । समय समय पर राष्ट्रीय जीवन के निर्माण-विकास मे योग देने वाले समाचारपत्रो की स्वाधीनता पर भी प्रेस अधिनियम द्वारा बन्धन लगाया गया जिससे जनता अपनी व्यथा की कथा कहने मे भी असमर्थ हो गई। साम्राज्यवादी शोषक नीति के कारण ग्रामीण व्यवस्था तथा गृह उद्योगों को

१– पट्टाभिसीतारम्मैया काग्रेस का इतिहास पृ० ५

2—We hold ourselves bound to the native of our Indian territories by the same obligations of duties which bind us to all our other Subjects In their prosperity wil be our strength, in their contentment our security and in their gratitude our best rewards Mahatma Life of Mohan Das Karam Chand Gandhi—P. 3 Vol 1 published dy Vithal Bhai K. Zhaveri & D. G Tendulkar, 64, Walkeshwar Road, Bombay—6-

भारी आघात पहुँचा, कर में निरन्तर वृद्धि हुई, तथा महारानी विक्टोरिया की घोषणा के विपरीत जाति-भेद तथा रंग भेद का विष बीज बोया गया। आर्थिक शोषण का भीषण परिणाम था दुर्भिक्ष तथा महामारी का नग्न ताडव। जिस समय मृत्यु की विभीषिका भारतीयों के जीवन को आक्रान्त किए हुए थी, अंग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रतिनिधि देश के धन को 'दिल्ली दरबार' तथा अफगान युद्ध जैसे निरर्थक कार्यों मे मुक्तहस्त व्यय कर रहे थे। धार्मिक क्षेत्र मे भी निरन्तर ईसाई धर्म का प्रचार हो रहा था। देश की इस विषम परिस्थिति में एक ओर तो जनता में कटुता, घृणा और अवज्ञा की भावना बढ़ी, जिसने कुछ सुशिक्षित भारतीयों का ध्यान देश दशा की ओर आकृष्ट किया तथा दूसरी ओर उनके हृदय में देश प्रेम की भावना का जन्म हुआ, जो राष्ट्रीय चेतना का कारण बन बैठा। इलबर्ट बिल सम्बन्धी आन्दोलन के पश्चात् तो इस शिक्षित वर्ग की धारणा प्रबल हो गई कि बिना संगठन और अखिल भारतीय आन्दोलन के उनके अधिकारों की रक्षा न हो सकेगी।

राष्ट्रीय चेतना के प्रचार तथा प्रसार में भारत की कुछ महान् विभूतियों का विशेष स्थान है जिन्होंने संस्थाओं तथा सभाओं की स्थापना कर जन-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार करना चाहा। उन्होंने निश्चेष्ट निराश एवं निरवलम्ब जनता को अपने उच्च विचारों का दान तथा नवचेतना प्रदान कर, उनके जन्मजात अधिकारों की ओर दृष्टि आकृष्ट की। सर्वप्रथम राजा राममोहनराय ने धार्मिक व सामाजिक सुधार अन्दोलन का नेतृत्व कर भारतीय जनता की अन्ध विश्वास तथा रूढ़िवादिता द्वारा होने वाले अनर्थों से मुक्त करने का प्रयत्न किया।[१] बम्बई में 'बम्बई सभा' (१८५२) के प्रमुख संस्थापक दादाभाई नौरोजी तथा विश्वनाथ नारायण माण्डलिक थे। समाज सुधार का कार्य बम्बई में प्रार्थना-समाज तथा बंगाल में ब्राह्म समाज ने किया। भंडारकर, आगरकर, तेलंग तथा रानाडे आदि ने भी सामाजिक विषमताओं को मिटाने का सफल प्रयास किया।[२] स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार-आन्दोलन के जन्मदाता भी ये ही थे। १८७० ई०

१—'ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथ मे शासनसूत्र चले जाने के बाद भी भारत-सरकार की गतिविधि पहले की ही तरह जारी रही, हां, एक बात जरूर हुई कि उसका शासन २० साल तक बिना खरखशा जारी रहा। इस बीच कोई युद्ध वगैरा नहीं हुआ। परन्तु इसके यह मानी नहीं कि कोई रगड़झगड़ और कोई अशान्ति थी ही नहीं। ब्रिटिश शासन मे बड़ी बड़ी खराबियां थीं, जिन्हें मि० ह्यूम जैसे हमदर्द अंग्रेज अकसर दिखाया भी करते थे और कोशिश भी किया करते थे कि वे दूर हों।'

—पट्टाभिसीतारमैया कांग्रेस का इतिहास पृ० ५

२—डा० रघुवंशी : भारतीय सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० ४८

३—जावेरी और तन्दुलकर महात्मा पृ० ३

में गणेश वासुदेव जोशी ने महाराष्ट्र में सार्वजनिक सभा की सस्थापना कर स्वदेशी वस्तु के प्रचार के हेतु कुछ दुकानें खुलवाईं तथा देशी करघों के ताने-बाने से बुने वस्त्रो द्वारा देशवासियो को स्वदेश प्रेम के रग में रग देना चाहा। इसके अतिरिक्त इनका उद्देश्य भारतीय कलाकौशल को प्रोत्साहन देकर, भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार करना तथा क्रमश बढती हुई निर्धनता तथा वेकारी को कम करना भी रहा होगा।

१८७५ ई० में वम्बई तथा १८७७ ई० में लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना कर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने धार्मिक आन्दोलन प्रारम्भ किया। इनका ध्येय धर्म को भारतीय राष्ट्रीय जीवन की गत्यात्मक शक्ति बनाकर देशवासियों को धार्मिक रूढिवादिता तथा अन्धकार से मुक्त कर वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करना था। जन-जीवन में आत्मविश्वास की भावना भरने के लिए उन्होने प्राचीन जीवन के गौरव तथा आदर्शों को सम्मुख रखा। तत्पश्चात् स्वामी रामकृष्ण परमहस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने दक्षिण में कुमारी अन्तरीप से उत्तर में अल्मोडे तक नवयुवको को आध्यात्मिक शक्ति द्वारा ससार पर विजय पाने का सदेश सुनाया।

'ये सुधार आन्दोलन मुख्यत धार्मिक होने के साथ ही, राष्ट्रीय भी थे। इन्होंने भारतवासियो को अपने महान् अधिकार के प्रति सचेत किया और उनमे राष्ट्रीय भावना जाग्रत की। धर्म ने राष्ट्रीयता को प्रेरित किया।'[1] मि० गेट्ट के अनुसार 'राष्ट्रीयता मे शिक्षित वर्ग का अनुराग, हमेशा ही कुछ हद तक आर्थिक और कुछ हद तक धार्मिक कारणों से हुआ है'[2] इन धार्मिक नेताओ ने वैदिक साहित्य के प्रति जनता मे अभिरुचि तथा श्रद्धा उत्पन्न की। नव शिक्षा मे दीक्षित भारत का एक वर्ग पश्चिमी सभ्यता और सस्कृति की चकाचौंध मे अपने इतिहास, धर्म तथा सस्कृति को हेय समझने लगा था। उसकी भ्रान्त धारणा को दूर करने के लिए तथा विदेशी साम्राज्य द्वारा उत्पन्न मानसिक दासता से रक्षा करने के लिये अपने प्राचीन साहित्य, धर्म तथा सस्कृति के उच्चतम तथ्यो को रखने मे इन्होंने अपूर्व परिश्रम किया। इस कार्य का बहुत कुछ श्रेय उन विदेशियों को भी दिया जायेगा जिन्होंने वैदिक एव संस्कृत साहित्य के अमूल्य ग्रन्थो का अध्ययन कर उनकी प्रशसा की, जिससे भारतीयो को अपने धर्म तथा साहित्य का गौरव ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी काल मे अग्रेजी भाषा शिक्षा का माध्यम बनाई गई और शासन कार्य मे प्रयोग की गई। इसके दो प्रभाव हुए, देश के भिन्न प्रान्तो के शिक्षित वर्ग को परस्पर विचार विनिमय के लिए एक सर्वग्राह्य भाषा मिली, जिसमे राष्ट्रीय सगठन मे प्रजातत्र के प्रति श्रद्धा बढी और इसकी माग दृढ होती गई। शिक्षित वर्ग मे राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता,

१—गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास : पृ० १२७
अनुवादक—सुरेश शर्मा : आत्माराम एड सस, १९५२

२—गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास : पृ० १२५

स्वशासन आदि की स्पष्ट धारणाएँ बनी तथा उनका ध्यान अपनी भाषा संस्कृति, व इतिहास के अध्ययन की ओर गया। देश की बढती हुई आर्थिक अवनति ने इस अध्ययन की ओर विशेष रूप से प्रेरित किया।

अत इस युग मे कितनी ही शक्तियां एक साथ कार्य कर रही थी, जिनके परिणामस्वरूप देश मे राष्ट्रीय चेतना का उद्भव एव विकास हो रहा था। गुरुमुख निहालसिंह ने अपनी पुस्तक 'भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास' मे राष्ट्रीय आंदोलन को जन्म देने वाली मुख्य बातो को निम्न शीर्षकों मे विभाजित किया है —

(१) पश्चिम के राजनीतिक आदर्शों की प्रेरणा।

(२) धार्मिक पुनरुत्थान और भारत के प्राचीन वैभव के प्रति श्रद्धा का भाव।

(३) आर्थिक असन्तोष और ब्रिटिश आश्वासनो के पूर्ण न किये जाने के कारण निराशा भाव।

(४) भारतीय समाचारपत्रो का और साथ ही देशी साहित्य का प्रभाव।

(५) सचारसाधनो का विकास और साम्राज्यीय दरबारो का आयोजन।

(६) शासक जाति के उद्धत एव अहकारपूर्ण व्यवहार के कारण जातीय-भावनाओ की कटुता मे वृद्धि, लार्ड लिटन का प्रमत्त एव अविवेकपूर्ण शासन और हतभाग्य इल्बर्ट बिल के सम्बन्ध मे यूरोपियनो तथा आग्ल भारतीयो द्वारा उग्रता और सगठित तीक्ष्ण प्रचार का प्रदर्शन।[1]

राष्ट्रीय भावना से यद्यपि अल्पसख्या ही प्रभावित हुई थी फिर भी इन थोड़े लोगो ने ही देश के ढाचे को बदलने के लिए उथल-पुथल मचा दी। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास आदि मुख्य स्थानों मे अनेक राजनीतिक सस्थाओ की स्थापना हुई, साथ ही यह भी विचार दृढ होता गया कि जब तक एक राष्ट्रीय राजनैतिक सस्था न बनेगी और वह आन्दोलन को अपने हाथ मे न लेगी तब तक जनहित की साधना न हो सकेगी। १८८५ ई० में 'इडियन नेशनल कांग्रेस' के जन्म से यह अभाव दूर हुआ तथा राष्ट्रीयता के विकास में एक बडा कदम उठाया गया।

राष्ट्रीय भावना अथवा राष्ट्रीयता का स्वरूप (१८५७—८५ ई० तक) :

राजराममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहस आदि के अथक प्रयत्नों से तथा पाश्चात्य सभ्यता एवं सपर्क के फलस्वरूप देश मे एक नवीन चेतना का जन्म हुआ जिसे राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद की सज्ञा दी गई। इस काल मे देश की अनेक शक्तियां छोटी-छोटी धार्मिक सस्थाओ तथा स्थानीय सभाओ के रूप मे राष्ट्रीय-चेतना के प्रसार मे प्रयत्नशील थी। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से उनका ध्येय धार्मिक तथा सामाजिक सुधार कर जन-जीवन को एक नवीन दिशा की ओर अग्रसर करना था। अप्रत्यक्ष रूप से यही राष्ट्रवाद का बीजारोपण हुआ। राष्ट्रीयता को मूल प्रेरणा धर्म

१—गुरुमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० १२५

से मिली। धर्म का व्यक्तिगत पक्ष कुंठित था, परन्तु राष्ट्रीयता अथवा देश-सुधार का पक्ष प्रबल था। इस काल की धार्मिक राष्ट्रीयता का प्रमुख ध्येय था भारत के अतीत गौरव तथा प्राचीन संस्कृति को नवजीवन प्रदान कर, देश मे पुन उसकी स्थापना करना। अज्ञान, मूर्खता तथा कूपमण्डूकता से मुक्त कर, उसमे आत्मविश्वास तथा पौरुष की भावना को जगाना ही तत्कालीन राष्ट्रीयता की परिसीमा थी। धर्म के माध्यम से राष्ट्रीय भावना उद्वेलित हुई, जिससे जनता तत्कालीन परिस्थितियो के प्रति सजग हो सकी।

राष्ट्रीय चेतना अथवा भावना जनजीवन के अन्तर मे अपनी जडे जमा रही थी, जिसका व्यक्त रूप था अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति असन्तोष तथा क्षोभ। इस काल के अनेक नेताओ का अंग्रेजी शासन अथवा साम्राज्य से कोई विरोध न था तथापि वे, शासन विधान मे सुधार चाहते थे और उनकी प्रबल धारणा थी कि सामाजिक सुधार तथा पश्चिमी शिक्षा के प्रचार से ही राष्ट्र की उन्नति हो सकेगी और कालान्तर मे शनै शनै शासन प्रजा के प्रतिनिधियो द्वारा हो सकेगा। यह राष्ट्रीयता का ऊषाकाल था जबकि भारत के नभ मे राष्ट्रीयता की केवल सुखदायिनी लालिमा ही फैली थी। क्रमश राष्ट्रीय भावना का सूर्य अखिल भारतीय महासभा के रूप मे उदित हो दिन प्रति दिन प्रखर होता गया।

राष्ट्रीय चेतना के विकास का इतिहास : कांग्रेस स्थापना के कारण : १८८५ ई० से १९०५

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि सन् १८८५ के पूर्व ही देश के अनेक प्रान्तो मे, विशेषकर बगाल, महाराष्ट्र तथा युक्तप्रान्त मे धार्मिक सामाजिक एव राजनीतिक सुधार सम्बन्धी सस्थाओ की जडें सुदृढ हो चुकी थी। देश के सुशिक्षित जनो में आत्मगौरव तथा आत्मविश्वास के जागरण की भूमिका प्रस्तुत की जा चुकी थी। राजेन्द्र लाल मित्र, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर तथा लोकमान्य बाल गगाधर तिलक संसार के सम्मुख भारतीय इतिहास, धर्म, सस्कृति तथा दर्शन की प्राचीनता तथा भारत की विद्वत्ता की धाक, अपनी अमूल्य साहित्य-रचना द्वारा जमा चुके थे। दुर्भिक्ष तथा महामारी की विभीषिका मे, वैभवपूर्ण दिल्ली-दरबार तथा अफगान युद्ध ने जनता के असन्तोष तथा विक्षोभ को तीव्रता प्रदान की थी। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि दिल्ली दरबार में ही भारतीय नेताओ के मस्तिष्क मे यह विचार विद्युत-सा चमक गया था कि क्यो न वे भी भारतीय एकता के लिए कोई सगठन बनायें।[1] पाश्चात्य शिक्षा ने विचार-स्वातन्त्र्य को जन्म दे ही दिया था तथा वैज्ञानिक आविष्कार इसके प्रसार मे सहयोगी बने थे। अत आर्थिक शोषण, अराष्ट्रीय आर्थिक नीति, वर्णभेद तथा जातीयता की कटु भावना तथा लार्ड लिटन की साम्राज्यवादी स्वार्थ नीति ने देशवासियो को अपने अधिकारो के प्रति सचेत कर विदेशी शासन के अभिशाप से मुक्त

1. Mahatma : A Life of Mohandas Karam Chand Gandhi—P. 8.

होने के लिए प्रेरित किया। महारानी विक्टोरिया की घोषणाओं द्वारा उत्पन्न आशा पर तुषारापात हो चुका था और निकट भविष्य में उनके पूर्ण होने की आशा न देख शिक्षित समुदाय को कड़ा आघात पहुँचा था। पुनः देश में विद्रोह के बादल दृष्टिगत होने लगे थे, केवल सुयोग्य पथ-प्रदर्शक और नेतृत्व का अभाव था। इसी समय भारतीय राष्ट्रीय सभा की स्थापना हुई, जिसने हिंसक विद्रोह के स्थान पर शान्तिमय वैधानिक आन्दोलन को प्रवृत्ति दी।

कांग्रेस महासभा की स्थापना

ई० सन् १८८५ में ए० ओ० ह्यूम के विशेष प्रयत्नों के कारण भारत की इस महान् राष्ट्रीय संस्था की स्थापना हुई थी और उस समय से इस राष्ट्रीय महासभा का इतिहास ही वास्तव में राष्ट्रीय प्रगति एवं आन्दोलनका इतिहास रहा है। ह्यूम ने भारत की तत्कालीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में भारतीय जनता की समस्याओं उनकी मन:स्थिति तथा उन पर विदेशी शासन की प्रतिक्रिया का स्वतन्त्रतापूर्वक अध्ययन किया था। उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने अज्ञान तथा आलस्य में डूबी जनता के अन्तर में उग्र होते विरोध के भयकर परिणामों को देख लिया। यह प्रत्यक्ष था कि धार्मिक तथा समाज सुधार सम्बन्धी प्रवृत्तियां राष्ट्रीय चेतना को उद्वेलित करने में प्रयत्नशील थीं। मुसलमानों में भी शासनसूत्र छिन जाने के कारण भीतर ही भीतर विद्रोहाग्नि धधक रही थी। यह कहना कठिन है कि किस प्रेरणा से अभिभूत होकर ह्यूम ने राष्ट्रीय आकांक्षाओं की मूर्त्त रूप इस महासभा की स्थापना की—साम्राज्य की रक्षा के लिए अथवा राष्ट्रीय भावना को निश्चित रूप देने के लिए। उन्होंने कलकत्ता विश्व-विद्यालय के स्नातकों के सम्मुख जो आदर्श रखा था उसमें राष्ट्रीय भावना तथा देश के एकीकरण पर बल दिया गया था।[1] भारत की प्रगति में प्रयत्नशील ह्यूम ने इस संस्था के संचालन के लिए ऐसे व्यक्तियों की माँग की थी जो सच्चे, निःस्वार्थी, आत्मसंयमी, नैतिक साहस से पूर्ण तथा परहितकारी हो। उन्होंने लिखा था—'आत्म बलिदान और निःस्वार्थता ही सुख और स्वतन्त्रता के अचूक पथ प्रदर्शक हैं।'[2]

ह्यूम के अतिरिक्त सुरेन्द्रनाथ बनर्जी प्रभृति बंगाल के नेता भी एक अखिल भारतीय राजनैतिक संस्था की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे। १८८४ ई० में कलकत्ता में जो महासभा हुई थी, उसमें इस आशय के प्रस्ताव पास हुए थे। मद्रास में भी थियासाफिकल सोसाइटी के महोत्सव के अवसर पर १९ नेताओं ने इस समस्या पर विचार किया था और आगामी वर्ष एक राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन करने का

१—'सभा का विधान प्रजासत्तात्मक हो, सभा के लोग व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से परे हों, और उनका यह सिद्धान्त वचन हो, कि जो तुममें सबसे बड़ा है उसी को तुम्हारा सेवक होने दो।

—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास, पृ०७

2. Mahatma · A life of Mohandas Karam Chand Gandhi—p. 11.

निश्चय किया गया था। ह्यूम के प्रयत्न ने इन सभी प्रयत्नो में योग दिया। यद्यपि पहले वे केवल समाज-सुधार संस्था ही चाहते थे, परन्तु लार्ड डफरिन से परामर्श के पश्चात् उन्होंने इसको राजनैतिक रूप दिया। इगलैण्ड मे भी उनको प्रोत्साहन मिला और इस प्रकार भारत सरकार तथा अंग्रेजी नेताओं की शुभकामनाओं के साथ राष्ट्रीय महासभा की स्थापना बम्बई मे १८८५ में की गई।

इन कांग्रेस के प्रत्यक्ष रूप से दो उद्देश्य थे, प्रथम भारत के सच्चे कार्यकर्ताओं को एकत्रित कर राष्ट्रीय प्रगति के हेतु उनमे घनिष्ठ सम्पर्क तथा मैत्री भाव बढाना तथा द्वितीय, जातीय, प्रान्तीय, धार्मिक भेदभाव मिटाकर राष्ट्रीय भावना और एकता को सुदृढ कर आगामी वर्ष के लिए शासन सुधार-सम्बन्धी योजना प्रस्तुत करना। अप्रत्यक्ष रूप से इस संस्था की स्थापना का ध्येय था प्रतिनिधि शासन के लिए योग्य व्यक्ति तैयार करना।[1] ह्यूम ने तो केवल सामाजिक विषयों पर वाद-विवाद करने के लिए इस संस्था की स्थापना करनी चाही थी किन्तु जब देश के भिन्न भागो के राजनीतिज्ञ निकट सम्पर्क मे आए तो राजनैतिक विषयो पर ही विचार किया गया।

इस प्रकार देश के कुछ सच्चे जनसेवकों ने सार्वजनिक सेवा के भाव से प्रेरित होकर इस राष्ट्रीय महासभा का प्रारम्भ किया, जिसने प्रति वर्ष अपने अधिवेशनो द्वारा शासक वर्ग के सम्मुख जनता की कठिनाइयो का उल्लेख करते हुए, उनकी प्रगति मे अवरोध नियमो का विरोध किया तथा उनकी दशा सुधार के संबध मे सुझाव प्रस्तुत किये।

कांग्रेस की मांगें :—कांग्रेस की प्रारम्भिक मांगो पर दृष्टिपात करने से तत्कालीन राष्ट्रीय प्रवृति का इतिहास अधिक स्पष्ट हो जायेगा। ये मांगें विशेषकर शासन सम्बन्धी थी तथा कुछ का सम्बन्ध भारतीय जन समाज से था। प्रथम चार-पांच वर्ष तक कांग्रेस का लक्ष्य निश्चित नहीं था। इस कारण अधिक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक विषयो पर प्रस्ताव प्रस्तुत न किये जा सके। प्रथम अधिवेशन मे कांग्रेस ने भारतीय शासन सम्बन्धी कार्य की जाच के लिए रायल कमीशन की माग की थी तथा इंडिया कौंसिल को भंग करने का प्रस्ताव भी किया था।[2] १८६० के लगभग कांग्रेस का लक्ष्य तथा उसकी नीति स्पष्ट होने लगी थी, देश विदेश मे यह संस्था अत्यधिक लोकप्रिय होती जा रही थी। अब इस महासभा ने विशाल देशवासी जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली तथा उनके प्रति पूर्णरूपेण उत्तरदायी शासन-व्यवस्था पर बल दिया। चार्ल्स ब्रैडला के उस बिल का स्वागत किया गया था—जिसमे भारत के मनोनुकूल शासन-सम्बन्धी सुधारो की ओर इंगित किया गया था। १८६३ में कौंसिल एक्ट क्रियान्वित होने पर शासक-वर्ग की उदारता के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव भी किया गया।

१८३३ के कानून तथा १८५७ की महारानी की उद्घोषणा द्वारा भारतीयों को उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त होने का अधिकार मौखिक रूप से दिया जा चुका था

1. Annie Besant : How India Wrought her Freedom—P. 3,
2. Same, P. 13.

किन्तु व्यावहारिक रूप मे उच्च पद पाने के नियम अति कठिन थे। इस राष्ट्रीय महासभा का विशेष सम्बन्ध उच्च मध्यवर्गीय समाज से था, और सिविल सर्विस की उच्च नौकरियो को प्राप्त करने वाली परीक्षाओं को इगलैण्ड तथा भारत मे एक साथ करने की माँग रखी गई। सन् १८९३ मे कामन सभा ने यह माग स्वीकार कर शिक्षित वर्ग को उत्साह व उल्लास से भर दिया किन्तु बाद मे अस्वीकृत होने पर निराश भावना तथा असन्तोष का रग अधिक गहरा हो गया। जातिभेद तथा रगभेद की भावना की अभिवृद्धि के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन को तीव्रगति मिली। काँग्रेस की यह इच्छा कि अधिक से अधिक भारतीय शासन कार्य सचालन के हेतु उच्च पदो को विभूषित करें, पूर्ण न हो सकी।

अपने प्रथम अधिवेशन मे ही काँग्रेस की जागरूक प्रवृत्ति ने अग्रेजी स्वार्थपूर्ण साम्राज्यवादी नीति के कारण उत्पन्न व्ययपूर्ण सैनिक व्यवस्था का विरोध किया था। देश की अर्थ-व्यवस्था विशृ खलित हो जाने के कारण भारतीय हित-सरक्षा के लिए देशवासियो को सैनिक स्वय सेवक बनाने की प्रथा पर तथा सेना के उच्च पदो पर भारतीयों को रखने पर बल दिया गया था। १८९१ ई० मे कांग्रेस अधिवेशन ने प्रस्ताव रखा था—'भारतीय लोकमत का सम्मान करके भारतवासियों को प्रोत्साहन देकर इस योग्य बनावे कि वे अपने देश और सरकार की रक्षा कर सकें।'[1]

कानून तथा न्याय म सुधार आन्दोलन का सूत्रपात राजा राममोहनराय ने किया था। कांग्रेस के तत्कालीन सदस्य भी अग्रेजी कानून तथा न्याय का पक्षपातपूर्ण तथा अन्यायपूर्ण नीति से भलीभाति परिचित थे। उनके पास उसके प्रमाण भी उपस्थित थे। शासन तथा न्याय के पृथक्करण के सम्बन्ध में दादाभाई नौरोजी ने भी अपने विचार अभिव्यक्त किये थे। काग्रेस अधिवेशनो से प्राय प्रतिवर्ष इस प्रश्न पर प्रकाश डाला गया। १८९३ मे इस सम्बन्ध मे विशेष रूप से नम्रतापूर्वक आवेदन भी किया गया था।[2] इगलैण्ड तथा भारत सरकार ने इस विषय को विचाराधीन रखकर जनता को आश्वस्त अवश्य किया था किन्तु अन्त मे निराशा ही हाथ लगी। न्याय व शासनकार्य सम्मिलित रहे तथा जूरी व्यवस्था मे भी कोई सशोधन न हुआ। राजनैतिक नेताओ के प्रति दमन नीति का प्रारभ हुआ, जिसके प्रथम ग्रास सरदार नातू बन्धु थे जिन्हें बिना मुकदमा चलाये ही कारागार की बेड़ियो मे जकड दिया था। शासकीय नीति कठोर हो गई और लोकमान्य तिलक को राजद्रोह के अपराध मे दण्डित किया गया।[3] विदेशी सरकार ने कानून और न्याय को अपनी दमन नीति का मुख्य अस्त्र बनाया। परिणामस्वरूप भारतीय शिक्षित जन समूह की स्वतन्त्रता की भावना दमन नीति की अग्नि म तप कर अधिक निखर आई। देश मे इस दमन नीति

१—पट्टाभि सीतारम्मैया : काग्रेस का इतिहास : पृ० २९
२—वही : पृ० ३३
३—वही : पृ० ३४

का विरोध प्रत्यक्ष हुआ और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की माग प्रबल हुई । सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने १८९७ ई० मे अपनी विशेष शैली मे सरकार की नीति का विरोध करते हुए कहा था—'अंग्रेजो ने अपने लिए मेग्नाचार्टा और हैबियस कार्पस प्राप्त किये थे, इनके द्वारा उन्हें जो सुविधाए प्राप्त हैं वे सिद्धान्त रूप मे उनके गौरव-विधान मे सम्मिलित हैं पर मुझे यह कहने म कोई हिचकिचाहट नही होती कि वह शासन विधान हमारा पैदाइशी हक है । हम ब्रिटिश प्रजा हैं, इसलिए ब्रिटिश प्रजाजनो को जो विशेषाधिकार मिले हैं उनके हम भी हकदार हैं । इन अधिकारो को हमसे कौन छीन सकता है ? हमने निश्चय कर लिया है और कांग्रेस इस बात का प्रण करेगी, आप और हम सब मिलकर इसके लिए एक गम्भीर निश्चय करेंगे । इस सभा भवन से निकल कर उसकी ध्वनि भारत भर की जनता मे फैलेगी कि हम इस बात के लिए तुल गये हैं, इस बात पर जोर देने मे हम किसी भी वैध उपाय को बाकी नही छोडेंगे, कि ईश्वर की छत्रछाया मे ब्रिटिश प्रजाजन की हैसियत से हमारे भी वे ही अधिकार हैं जो *अन्य प्रजाजनो के हैं और उनमे भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अधिकार* किसी तरह कम महत्वपूर्ण नही है ।'[1]

विदेशी शासको की आर्थिक शोषणात्मक नीति के कारण शताब्दियो से चले आ रहे घरेलू उद्योग धधो का विनाश हो गया था, और ग्रामवासी जनता के पास कृषि ही जीविका का एकमात्र साधन बच रही थी ।[2] शासक वर्ग की स्वार्थपूर्ण नीति के कारण कृषि अवलम्बित जनता भी शान्ति से न बैठ सकी, लगान में निरन्तर वृद्धि ने उसका जीवन भार-स्वरूप बना दिया । राष्ट्रीय महासभा ने प्रारम्भ से ही, विनीत भाव से कर वृद्धि का विरोध किया था । इस विरोध का परिणाम निराशाजनक ही रहा था । इसके अतिरिक्त कांग्रेस ने आबियाने, गरीबी तथा अकाल जैसे तत्कालीन जन जीवन से सबधित महत्वपूर्ण प्रश्नो को भी अपने प्रस्तावो द्वारा शासक वर्ग के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया था । दुर्भिक्ष का आशिक कारण करो और महसूलो की निरन्तर वृद्धि, अत्यधिक सैनिक व्यय, स्थानीय तथा देशी कला कौशल का नष्ट हो जाना ठहराया गया था । भारत सरकार से दुर्भिक्ष पीडितो की सहायता, कृषको की अवस्था के सुधार, निर्धनता को दूर करने के प्रयास का अनुरोध भी कांग्रेस ने किया था । भारतीयो की आर्थिक अवस्था की जाच कराने के लिए एक कमीशन बैठाने का प्रस्ताव रखा गया था । कांग्रेस ने जगलात के कानून से उत्पन्न कठिनाइयो की ओर भी इगित किया था पर कुछ समय पश्चात् ये विषय *स्वशासन तथा राष्ट्रीयता जैसे महत्वपूर्ण* विषय के सम्मुख गौण तथा महत्वहीन हो गये ।

रक्षा, शिक्षा तथा यातायात के सुलभ साधनों की दृष्टि से अंग्रेजी राज्य ने

१—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ३४

2—A. R. Desai Social Background of Indian Nationalism—P. 55

मुसलमानी राज्य की अपेक्षा जनता को अधिक सुखी बताया किन्तु आर्थिक शोषण असह्य था। देश का धन विदेश जाता देख देशवासी विक्षुब्ध हो उठे थे। शासन की आयात-निर्यात-नीति मुसलमानी शासन से भिन्न थी, और देश के लिए अत्यधिक अहितकर थी। अंग्रेजी सरकार देश के उदीयमान उद्योग को दबाने के लिए विदेशी कपड़े के आयात पर कोई कर न लगने देना चाहती थी परन्तु जब भारत सरकार को आय वृद्धि के लिए ऐसा करना ही पड़ा तो देश में उत्पन्न नए कारखानों के कपड़े पर चुंगी लगाई गई। राष्ट्रीय महासभा ने सूती माल पर कर लगाए जाने का १८६७ ई० में विरोध किया गया क्योंकि इससे भारतीय हितों का बलिदान हो रहा था। १८६८ ई० में मदनमोहन मालवीय ने यह प्रस्ताव रखा था कि—'सरकार को देशी उद्योग-धंधों एवं कला-कौशल की उन्नति करनी चाहिये।'[1] इसके लिए राष्ट्रसेवियों ने प्रयत्न किया और १६०१ ई० में कलकत्ता अधिवेशन के साथ औद्योगिक प्रदर्शनी का प्रारम्भ किया जो कालान्तर में स्वदेशी प्रदर्शनी के रूप में परिवर्तित हो गई। इसी के फलस्वरूप स्वदेशी आन्दोलन हुआ। राष्ट्रीयता की प्रगति के इतिहास में इस प्रदर्शनी का विशेष स्थान है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में कांग्रेस की दृष्टि अफ्रीका निवासी भारतीयों की शोचनीय अवस्था की ओर आकृष्ट होने लगी थी। १६०१ ई० में गांधी ने अफ्रीका प्रवासी भारतीयों की ओर से प्रार्थी रूप में दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव भेजा था। १६०३ व १६०४ ई० में ये प्रस्ताव पुनः प्रेषित किये गये। इनका परिणाम भी नगण्य ही रहा। इस दक्षिणी अफ्रीका के प्रश्न ने भारतीयों के हृदय में अपने प्रवासी भाइयों के लिए सहानुभूति उत्पन्न की तथा अंग्रेजों के प्रति कटुता की मात्रा में अभिवृद्धि की। डा० मुंजे ने अफ्रीका यात्रा के पश्चात् आकर कहा था—'हमारे शासक हमें मनुष्य नहीं समझते।'[2] वी० एन० शर्मा ने तो यहां तक कह दिया था कि 'यदि हम अपने प्रति सच्चे रहें तो बड़े-बड़े दार्शनिक महान् राजनीतिज्ञ और वीरवर योद्धाओं को उत्पन्न करने वाली जाति छोटी छोटी बातों के लिए दूसरी जाति के पाव नहीं पड़ सकती।'[3] दक्षिणी अफ्रीका के प्रश्न की ओट में देश में आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास की भावना जागी।

इन प्रश्नों तथा मांगों के अतिरिक्त राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशनों में कुछ अन्य विषयों पर भी विचार किया गया था जिनका सम्बन्ध देश की जनता के नैतिक, मानसिक एवं बौद्धिक स्तर की उन्नति से था। १८८६ ई० में कांग्रेस ने संयम तथा मद्यनिवारण की मांग रखी थी। प्रारम्भ में सरकार ने इस मांग से प्रभावित होकर १८६० ई० में शराब पर आयात कर की वृद्धि की, देशी शराब पर कर लगाया,

१—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ३७
२—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ४४
3—वही : पृ० ४८

बगाल सरकार ने ठेके पर शराब बनाने की पद्धति को दूर करने का निश्चय किया और मद्रास मे ७००० दुकानें बन्द की गई। १६०० ई० से पुन मद्यपान मे वृद्धि हुई क्योंकि सरकार ने युद्ध, यात्राओ मे, सैनिको की छावनियो मे स्त्रिया एकत्रित कर मद्यपान को प्रोत्साहन दिया। इसका कांग्रेस ने विरोध किया। भारत सरकार ने पवित्रता सम्बन्धी कानून बनाया जिसके लिये कांग्रेस ने धन्यवाद दिया।[1] इसके अतिरिक्त शिक्षा तथा बेगार-सम्बन्धी समस्याओ मे भी अभिरुचि ली गई।

आर्य समाज की स्थापना तथा उसका राष्ट्रीय दृष्टिकोण

सन १८७५ ई० मे स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना बम्बई मे की थी। यह धार्मिक सस्था के साथ ही उस काल की सर्वप्रमुख राष्ट्रीय सस्था भी कही जायेगी। धार्मिक आन्दोलन का विशेष सम्बन्ध देश के राष्ट्रीय जीवन से था। धर्म तथा राष्ट्र पृथक नही थे। राष्ट्रीयता धार्मिकता का बाना पहन कर भारत म जन्मी थी। आर्य समाज ने वैदिक आचार विचार, धर्म साधना पर विशेष बल दिया। भारतीयो के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए भारतीय वैदिक धर्म तथा सस्कृति का आदर्श रखा। वैदिक पुनरुत्थान मे ही उन्हें भारत की सोई हुई आत्मा की जागृति का सदेश मिला। धर्म के आश्रय मे समाज-सुधार तथा देश-कल्याण का पुनीत कार्य प्रारम्भ हुआ।

आर्य समाज ने अपने आन्दोलन द्वारा राष्ट्रीय भावना के उत्तेजन मे विशेष योग प्रदान किया। उसने धार्मिक रूढियो, अन्धविश्वास तथा विचार-सकीर्णता का मूलोच्छेद कर वैदिक हिन्दू धर्म की पुन प्रतिष्ठा की। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने धर्म को राष्ट्रीय जीवन की गत्यात्मक शक्ति बना दिया। प्राचीन हिन्दू धर्म तथा सस्कृति के प्रति विश्वास तथा श्रद्धा उत्पन्न कर भारतीयो मे पुन आत्मविश्वास तथा आत्मगौरव की सुदृढ भावना भर दी। आर्य समाज का राष्ट्रीय दृष्टिकोण भारत की अति पुरातन धर्म तथा समाज व्यवस्था पर केन्द्रित था। अत राष्ट्रीय भावना अथवा चेतना की प्रगति के इतिहास मे आर्यसमाज के धार्मिक राष्ट्रवादी विचारो का विशेष स्थान है।

राष्ट्रवाद का स्वरूप (१८८५-१६०५ ई०)

राष्ट्रीय महासभा की स्थापना के पूर्व राष्ट्रीय भावना प्रधानत धार्मिक तथा समाज-सुधार सबधी प्रवृत्ति तक ही सीमित थी। जन-जीवन मे, राजनैतिक अथवा प्रशासन सबधी अभावो के प्रति विक्षोभ अदर ही अदर उभर रहा था, उसे मूर्त रूप नही मिला था। १८८५ ई० में राष्ट्रीय महासभा की स्थापना के पश्चात् राष्ट्रीय एकता तथा बौद्धिक, नैतिक, आर्थिक व व्यावसायिक साधनो के सगठन एव विकास का सुयोग प्राप्त हुआ। अब विभिन्नता मे एकता राष्ट्रवादियो का मूलमत्र हो गया

१—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ४८

था। कांग्रेस सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय महासभा थी, इसके पूर्व जिन संस्थाओं का आविर्भाव हुआ था, वे अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीयता की साधक थी।

राष्ट्रीय महासभा द्वारा प्रस्तुत मांगो, प्रस्तावो तथा कार्यों पर विहगम दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका प्रमुख लक्ष्य शासन-सबधी न्यूनताओं को मिटा कर भारतीयों को शासन व्यवस्था मे अधिक से अधिक पद तथा अधिकार दिलाना था। अन्य भारतीय जन जीवन से सबधित समस्याए गौण थी इस युग के राष्ट्रीय आदोलन का प्रारम्भ मध्य वर्ग से हुआ था जिसमे अधिक सख्या वकील, बैरिस्टर व्यापारियो तथा डाक्टरो की थी। कुछ प्रस्ताव किसानो की दयनीय अवस्था के सुधार के लिए प्रस्तुत अवश्य किये गये थे, किन्तु प्राय प्रमुख मागो का स्वरूप शिक्षित उच्च मध्यवर्गीय दृष्टिकोण तथा स्वार्थों के ही अनुकूल था।[1]

प्रारम्भ मे राष्ट्रीय सस्था के सदस्यो की नीति ब्रिटिश सरकार के प्रति सहयोग की थी। जनजीवन के हित मे सबधित सरकार के प्रत्येक कार्य के प्रति वे विनम्र भाव से अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते थे। राष्ट्रीय नेतागण नए करो, सैनिक-व्यय वृद्धि, शासन की अनुदार एव स्वार्थपूर्ण नीति से असन्तुष्ट थे, किन्तु उन्होने किसी प्रकार का प्रत्यक्ष विरोध प्रदर्शित नही किया।[2] शासकों द्वारा अधिकतर मांगें अस्वीकृत होने पर भी, उस युग की मनोदशा तथा वातावरण सक्रिय विरोध के अनुकूल न थे। राष्ट्रीयता असतोष के उच्छवास के रूप मे व्यक्त होकर ही पूर्ण हो गई।[3] राष्ट्रीय भावना राज

१ पिछली सदी के अन्त के प्रारम्भिक पन्द्रह सालों की लड़ाई झगडो मे जो कांग्रेसी नेता रहे वे ज्यादातर वकील बैरिस्टर और कुछ व्यापारी एव डाक्टर थे, जिनका सच्चे दिल से यह विश्वास था कि हिंदुस्तान सिर्फ इतना ही चाहता है कि अग्रेजो और पार्लियामेंट के सामने उनका पक्ष बहुत ही सुन्दर और नपी तुली भाषा मे रख दिया जाय। इस प्रयोजन के लिए, उन्हे एक राजनैतिक सगठन की जरूरत थी और इसके लिए उन्होने राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। उसके द्वारा वे राष्ट्र के दु खों और उच्च आकांक्षाओं को प्रकट करते रहे।

पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ० ५६

२ Mahatma A Life of Mohandas Karam Chand Gandhi—p 12

३ "वह जमाना और हालतें भी ऐसी थीं कि अपने दु ख दर्द दूर करने के लिए हाकिमों के सामने सिवा दलील और प्रार्थना करने के और नई रियायतों और विशेषाधिकारों के लिए मामूली मांग करने के और कुछ नहीं हो सकता था।"

"—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ५७

भक्ति का आंचल पकड़े थी, उसमे पृथक् होने का साहस नही आ पाया था। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट प्रजातन्त्र पद्धति की जननी होने के कारण इनकी आदर्श थी। अंग्रेजो की उदारता, न्याय विधान तथा सत्यता से विश्वास पूर्णतया नही उठा था। इस युग की राजभक्ति के संबंध मे किसी प्रकार का दोषारोपण करना असंगत होगा। यदि हम इस काल की राष्ट्रीय भावना का मूल्यांकन युगीन मर्यादाओ की परिसीमा तथा मनोरचना को दृष्टि मे रख कर करें तो वह कदापि हीन नही कही जायेगी। राजभक्ति राष्ट्रीय भावना की पावन गंगा मे यमुना के मिलन के समान अति स्वाभाविक लगेगी। गुरुमुख निहालसिंह के शब्दो मे किंतु यह बात ध्यान रखने योग्य है कि यद्यपि १८८५-१९०७ के युग मे इंडियन नेशनल कांग्रेस राजभक्ति प्रदर्शित करती थी, उसकी सुनिश्चित नीति नरमदली थी और उसकी भाषा निवेदनात्मक ही नही वरन याचनापूर्ण थी, तथापि, उसने उस युग मे, भारतवासियो मे राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने, उन्हें एक सूत्र मे बाधने और उनमे राष्ट्रीय एवं राजनीतिक जाग्रति फैलाने के लिए महत्वपूर्ण मौलिक काम किया था।"[1] इसी प्रकार डा० पट्टाभि सीतारम्मैया ने इस युग की राजभक्ति के संबध म लिखा है—'हमारे इन पूर्व-पुरुषो ने अंग्रेजो और इगलैंड क प्रति जो विश्वास रखा वह कभी-कभी दयाजनक और हेय मालूम होता है, परन्तु हमारा कर्तव्य तो यही है कि हम उनकी मर्यादाओ को समझें।'[2]

राष्ट्रीय भावना का विकास उत्तरोत्तर होता गया। सर्वप्रथम सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दो मे सन् १८९७ म स्वराज्य अथवा स्वशासन का अस्पष्ट एव धुंधला सा चित्र मूर्त हुआ।[3] व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के विषय मे भी पुकार की गई तथा राजभक्ति का स्वर धीमा पडता गया। लोकमान्य तिलक के राष्ट्रीय क्षेत्र मे प्रवेश तथा राजद्रोह मे दण्डित होने से राष्ट्रीय भावना मे उग्रता आई। १९०० ई० के पश्चात् राष्ट्रीय नेताओ की नीति उपनिवेशो के ढग का स्वशासन बन गई तथा कांग्रेस देश के समस्त शिक्षित वर्ग की राष्ट्रीय भावनाओ का प्रतीक हो गई। शासको की कठोर नीति तथा दमन प्रणाली के आघात से राष्ट्रीय भावना का विकास अधिक तीव्रगति से होने लगा और बीसवी शताब्दी ने जनजीवन मे नवीन उत्साह का रग घोल दिया। इस नवीन शताब्दी मे लोकमान्य तिलक के रूप मे राष्ट्रीयता मूर्तमती हो उठी। इनके राष्ट्रवादी सिद्धान्त उदारदली नेताओ से भिन्न थे, ये पश्चिम की भौतिकतावादी विचारधारा को भारतीय जीवन तथा राष्ट्र की उन्नति के लिए अनुपयोगी मानते थे। वे भारतीयता के पूर्ण पक्षपाती थे, *'स्वधर्म' अर्थात भारतीय जीवन दर्शन*, आध्यात्मिकता तथा राजनीति की ठोस आधारभूमि पर वे राष्ट्र का निर्माण करना चाहते

---

१ गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० १३५
२. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ५८
३ पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ३४

थे।[1] वे धर्म व समाज की रूढियो और अन्ध-विश्वास के घोर विरोधी थे। उन्होंने देश के नवजागरण के लिए भारतीय राष्ट्रीय मूल्यो की खोज की। अन्य राष्ट्र सेवियो द्वारा भी राष्ट्र की दयनीय अवस्था के विषय मे महत्वपूर्ण तथ्य तथा आकडे उपस्थित किये गये जिनमे राष्ट्रीयता के विकास मे सहायता मिली।[2]

अन्त म यह नि सन्देह कहा जा सकता है कि १८८५ से १९०५ ई० तक भारतीय राष्ट्रवाद के भव्य प्रासाद के निर्माण-हेतु प्रारंभिक साधन तथा सुदृढ नीव प्रस्तुत की गई। भारत के सच्चे कार्यकर्ताओं के बीच घनिष्ठ सम्पर्क एव मैत्रीभाव की अभिवृद्धि हुई तथा जातीय, प्रान्तीय व धार्मिक भेदभावो को मिटाकर राष्ट्रीय भावना और एकता को सशक्त कर शासन सुधार के लिए कार्य किया गया। शासक वर्ग के विरोध मे राष्ट्रीयता का सगठन करना एक कठिन कार्य था। आज हमारी राष्ट्रीयता जिस रूप को धारण करने मे समर्थ हुई है उसका समस्त श्रेय इन प्रारंभिक राष्ट्रीय प्रतिनिधियो को दिया जायेगा।[3] सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने शिक्षित मध्यवर्गीय जनता को राष्ट्रीय आन्दोलन की कला मे पारगत किया था, जिसके फलस्वरूप सार्वजनिक कार्यों मे अभिरुचि रखने वालो की सख्या मे वृद्धि हुई थी। इगलैण्ड में प्रतिनिधि मण्डल भेजकर भारतीय राष्ट्रीयता की शखध्वनि देश देशान्तर मे गुजा दी गई थी। यह राष्ट्रीयता वैध थी तथा नैतिकता पर आधारित थी। गोपाल कृष्ण गोखले ने राजनीति मे सच्चरित्रता तथा सहिष्णुता के सिद्धान्तो पर विशेष बल दिया था, जिसका चरम विकास गाधी जी द्वारा किया गया। दादा भाई नौरोजी ने नारी की शिक्षा तथा स्वतन्त्रता के सबध में भी कार्य किया था। इस काल के राष्ट्र भक्तो की प्रथम श्रेणी मे दादा भाई नौरोजी गोपाल कृष्ण गोखले व सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का नाम आयेगा जिन्होंने राष्ट्रीय भावना के सुगठित तथा सुव्यवस्थित रूपनिर्माण में अपूर्व योगदान दिया था।

राजनीतिक आदर्शों तथा जीवन-दर्शन की दृष्टि से बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ म राष्ट्र निर्माताओं की दो श्रेणिया थी, प्रथम वे राष्ट्रवादी नेता जो भारतीय सस्कृति एव सभ्यता मे विश्वास रखने पर भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए पश्चिमी आदर्शों व जीवन दर्शन का अनुकरण आवश्यक समझते थे, द्वितीय श्रेणी तिलक आदि ...

---

१ 'It was he who first rediscovered the moral basis by which to define the direction and the goal of the independence movement'

Theodore L. Shay—The Legacy of the Lokmanya Tilak—Introduction—p 19

२ डा० रघुवशी : भारत का सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० १५१

३ तेन्दुलकर : महात्मा : पृ० १३

विचार वाले राजनीतिक राष्ट्रवादी नेताओं की थीं जो भारतीय जीवन दर्शन तथा राजनीतिक आदर्शों द्वारा स्वतन्त्रता आन्दोलन का संचालन करना चाहते थे। अन्य शब्दों में इन्हें नरम दल तथा गरम दल पुकारा जाता है। गांधी जी के राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश के पूर्व तिलक आदि उग्र राष्ट्रवादियों का अधिक प्रभाव हो गया था जिसका विवेचन आगे किया जायेगा। इस काल में राष्ट्रीय भावना के प्रथम उत्थान की भूमिका का भलीभांति निर्वाह किया गया। सन् १८९९ से १९०४ ई० तक राजनीतिक क्षेत्र में अवरुद्ध शांति रही किन्तु सन् १९०५ में प्रबल वेग से राष्ट्रीयता की आंधी चल पड़ी तथा एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ हुआ।[1]

राष्ट्रवाद के विकास का इतिहास एवं स्वरूप (१९०५-१९१९ ई०)

भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास में बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ विशेष महत्व रखता है। उन्नीसवीं शताब्दी में जिस साहस का प्रत्यक्ष अभाव था, उसकी पूर्ति बीसवीं शताब्दी ने कर दी। राष्ट्रीय उद्गारों को निःशंक रूप में स्वर प्रदान कर जनजीवन में नवचैतन्य तथा नवीन क्रान्ति की भावना का प्रसार हुआ। राष्ट्रवादी विचारधारा प्रबल रूप में सम्पूर्ण देश में छा गई। प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की धाक भारतीय मस्तिष्क में बैठाई जा चुकी थी तथा साम्राज्यवादियों की निरंकुशता से मुक्ति पाने के लिए अतीत-गौरव एक सुदृढ़ रक्षा कवच के समान बन गया था। १९वीं शताब्दी की राष्ट्रीयता अधिक व्यापक न थी। उसका अर्थ हिन्दू पुनरुत्थान अथवा पुनरुज्जीवन मात्र था।[2] स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द ने, पश्चिमी भौतिकवाद तथा अर्थवाद की तुच्छ नीति की अपेक्षा भारतीय आध्यात्मिकता की श्रेष्ठता का प्रतिपादन कर जनजीवन में आत्मविश्वास तथा पौरुष की भावना भर दी थी।[3] परन्तु नई शताब्दी के आरम्भ में देश की नवीन परिस्थितियों के अतिरिक्त विदेशों में घटित होने वाली घटनाओं का भी भारतीय राष्ट्रीय चेतना के विकास पर प्रभाव पड़ा। विदेशों में घटने वाली दो प्रमुख घटनाएं थी जिन्होंने भारतीय राजनीतिक मस्तिष्क का मथन कर, उनकी राष्ट्रीय भावना के उद्वेलन में सहयोग प्रदान किया। ये घटनाएं थीं—१८९६ ई० में एबीसीनिया निवासियों द्वारा इटली की पराजय तथा १९०५ ई० में जापान के विरुद्ध रूस की हार। अब यूरोपीय अजेयता का भय छिन्न भिन्न हो गया तथा पूर्वीय शक्ति पर पुनः विश्वास पुष्ट होने लगा। जापान ने भारत को अंग्रेजों के निरंकुश एवं घातक बन्धन से मुक्त होने की प्रेरणा दी तथा उसका पथप्रदर्शन किया। सम्पूर्ण एशिया में नवयुग का प्रारम्भ

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास (सन् १६००-१९०० तक) : पृ० १७२

२. प्रो० शान्तिप्रसाद शर्मा : स्वाधीनता की चुनौती . पृ० १४३

३ Sir Verney Lovett . A History of Indian Nationalist Movement—p. 64, 65.

हुआ।[1] मैजिनी, गैरी बाल्डी आदि राष्ट्र निर्माताओ की कृतियो का भी शिक्षित वर्ग पर प्रभाव पडा। भारतीय भाषाओ मे उनकी जीवन व्याख्याओ का अनुवाद हुआ जिसमे स्वदेश-प्रेम अत्यन्त वेग से जागृत हुआ।

जनता दैवी विपत्तियो का ग्रास बनी हुई थी निरन्तर दुर्भिक्षो तथा महामारियो से उसे सघर्ष करना पड रहा था। शासक वर्ग द्वारा जनता को इन विपत्तियो से मुक्त करने की उचित एव सन्तोषजनक नीति न अपनाई जाने के कारण असतोष तीव्र रूप धारण कर रहा था। सरकार की राष्ट्र विरोधी नीति के प्रति जनता पूर्णतया सचेत हो गई थी। शनै शनै भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन सच्चे अर्थों मे जन आन्दोलन का रूप धारण करने लगा। जनता ने विदेशी शासन मे अपनी दरिद्रता तथा कष्टों का मूल कारण खोजा।[2] अत जन जीवन मे स्वतन्त्रता के लिए बलिदान की भावना का जन्म हुआ।[3] युवक वर्ग मे परिवर्तन की आकाक्षा तीव्र होती जा रही थी। उनमे यह धारणा भी दृढ हुई कि वर्तमान काल से प्राचीन युग कही अच्छा था।[4] महारानी विक्टोरिया के शासन काल के चालीस वर्षों के शान्त वातावरण की अपेक्षा १६०३ ई० मे सम्राट एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के उपलक्ष मे आयोजित दरबार मे जनता का असन्तोष स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ था।[5] इसके अतिरिक्त काग्रेस के प्रयत्नो से सार्वजनिक कार्यों मे रुचि रखने वालो की सख्या मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपतराय आदि राष्ट्रीय नेतागण जनता की करुण अवस्था से विक्षुब्ध होकर विदेशी राज्य के कट्टर विरोधी बन बैठे। स्वाधीन भारत के उज्ज्वल स्वप्न ने उन्हे अग्रेजी शासन के विरुद्ध ठोस कदम उठाने को बाध्य किया।

भारतीय इतिहास मे प्रतिक्रियावादी, निरकुश शासक सदैव हितकर सिद्ध हुए है। बीसवी शताब्दी के प्रथम पाच वर्ष लार्ड कर्जन की निरकुशता तथा कठोर नीति के लिए इतिहास मे प्रसिद्ध है। उन्होने कलकत्ता कार्पोरेशन के अधिकारो मे कमी की, तथा स्थानीय निकायो जैसी सार्वजनिक सस्थाओ को केन्द्रीय नियत्रण के अन्तर्गत रखने के लिए केन्द्रीकरण की नीति को अपनाया पुलिस व्यवस्था के पुन सगठन तथा रेलवे शासन सबधी विषयो मे भी अपना नियत्रण सुदृढ किया। इसके अतिरिक्त देशवासियो पर यह आरोप लगाया कि वे चारित्रिक सच्चाई की कमी के कारण उत्तरदायित्वपूर्ण

---

१. Mahatma A Life of Mohandas Karam Chand Gandhi—p 14

२ Mahatma, A Life of Mohandas Karam Chand Gandhi - p 13

३. गुरमुख निहालसिह भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास • पृ० १४०

४ Lovett. A History of Nationalist Movement—p. 54

५. 'Yet in fact this Durbar marked the end of the comparatively restful and untroubled era which had lasted for forty years' Lovett A History of Nationalist Movement—p 54

पद पाने के अयोग्य हैं, जिसे देशवासी सहन न कर सके। अन्त मे बगाल का विभाजन किया, जिसने राजभक्त देश की कमर तोड दी।[1] अब शासको की नीति अपने नग्नरूप मे देशवासियो के सम्मुख आई और इस रहस्य का उद्घाटन हो गया कि बंगाल-विभाजन का मूल उद्देश्य प्रशासनिक सुविधा न होकर, साम्प्रदायिक विद्वेष बढा कर नई राष्ट्रीय भावना को कुचलना है। लार्ड रोनाल्ड शे ने इस सम्बन्ध मे लिखा है—'प्रात के जागृत वर्ग के अनुसार इस विभाजन द्वारा बगाली राष्ट्रीयता की बढती हुई दृढता पर आक्रमण किया गया था'[2] मजूमदार ने भी लार्ड कर्जन की अत्यधिक स्वार्थ-परक एव कुटिल नीति का वर्णन इन शब्दों मे किया है—' नई चेतना को कुचलने के उद्देश्य से लार्ड कर्जन पूर्वी बगाल गये। वहा पर इसी उद्देश्य से एकत्रित की हुई मुसलमानो की सभाओ मे उन्होने कहा कि यह विभाजन केवल शासन की सुविधा के लिये ही नही किया जा रहा था वरन् उसके द्वारा एक मुस्लिम प्रान्त भी बनाया जा रहा था जिसमे इस्लाम और उसके अनुयायियो की प्रधानता होगी।'[3] गुरुमुख निहालसिंह ने लिखा है कि लार्ड कर्जन दोनो जातियो के बीच एक खाई तैयार करना चाहते थे और साथ ही बगाल की नई राष्ट्रीयता को कुचलना चाहते थे।[4] इस प्रकार न केवल बगाल वरन् सम्पूर्ण देश की राष्ट्रीय भावना को चुनौती दी गई थी। इसने व्यापक आन्दोलन को जन्म दिया। विदेशी सरकार का प्रत्यक्ष विरोध हुआ।

बगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो मे भी जलूस, सभाओ तथा प्रदर्शनो द्वारा विक्षोभ की भावना को मूर्त रूप प्रदान किया गया। विद्यार्थी वर्ग ने विशेष उत्साह के साथ राजनैतिक क्षेत्र मे प्रवेश कर आन्दोलन की तीव्रता को सहयोग दिया था। राजनीति मे भाग लेने के कारण उन्हें स्कूलो से निकाल दिया गया। स्कूलो को सरकारी सहायता बन्द कर देने की धमकी दी गई।[5] सरकार के दमन चक्र के तीव्र एवं कठोर हो जाने पर उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप देश की रग रग मे नवीन राष्ट्रीयता का प्रवाह अधिक व्यापक, तीव्र एव गम्भीर रूप मे हुआ।[6] अनुकूल परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और विपिनचन्द्र पाल जैसे नेताओ ने सम्पूर्ण देश का भ्रमण

---

१ पट्टाभि सीतारम्मैया · कांग्रेस का इतिहास : भाग—१ · पृ० ६४

२ Ronald Shaw Life of Lord Curzon—p 332

३ A C Mazumdar Indian National Evolution—p 207

४. गुरुमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास : पृ० १७२

५. वही : पृ० १७४

६. "सरकार को उत्तरोत्तर उग्र और नग्न-रूप-धारण करने वाली दमन नीति के कारण नव जागृत चेतना भी सचमुच व्यापक, विस्तृत और गहरी होती गई। देश के एक कोने मे जो घटना होती थी वह सारे देश मे फैल जाती थी।"
—पट्टाभि सीतारम्मैया ; कांग्रेस का इतिहास ; भाग—१ : पृ० ६४

कर राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय शिक्षा और नवचैतन्य का प्रबल वेग से प्रचार किया। उन्होने विराट सभाओ मे भाषण देकर स्वदेशी और बहिष्कार की शपथ ग्रहण कराई।[1] विद्यार्थियोको राष्ट्रीय सैन्य शिक्षा देने का आयोजन भी किया गया। इस प्रकार बीसवी शताब्दी के प्रथम दशाब्द मे भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में राष्ट्रीय शिक्षा का अध्याय भी जुड गया।

इन ब्रिटिश विरोधी कारणो के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी राष्ट्रीय भावना की प्रगति मे सहायक थे जैसे आग्ल भारतीय पत्रो का भारत विरोधी प्रचार, स्कूल और कालेजो की शिक्षा का प्रभाव, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसाफिकल सोसाइटी भारत सेवक समिति जैसी सस्थाओ का प्रभाव, बकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे उपन्यासकारो, रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे राष्ट्रीय कवियो, भारतीय सगीत, साहित्य तथा सस्कृति के पुनरुत्थान का प्रभाव भी जनजीवन को राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर कर रहा था।[2] इन सबके फलस्वरूप १९०७ ई० मे स्वदेशी बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा की पुस्तको पर विशेष बल दिया गया। राष्ट्रीय नेताओ ने यह स्पष्ट कर दिया था कि विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्तुओ के प्रचार से ही देश पुन विगत समृद्धि तथा राष्ट्रीय गौरव को प्राप्त कर सकता है। श्री अरविन्द घोष तथा श्री विपिनचन्द्र पाल का स्वदेशी आन्दोलन की प्रगति मे महत्वपूर्ण स्थान है। विदेशी सरकार ने स्वदेशी सभाओ को बलपूर्वक विच्छिन्न किया तथा स्वदेशी प्रचार को रोका।[3]

निरन्तर शासक वर्ग के दमन तथा दण्ड नीति को सहन करने का भारतीय जनजीवन अभ्यस्त हो गया था। अब राजद्रोह अथवा दण्ड का भय जनता के हृदय से उठ गया था। भारत मे युवको का एक ऐसा वर्ग भी उत्पन्न हुआ जिसने हिंसात्मक क्रान्ति के मार्ग को स्वतन्त्रता प्राप्ति का साधन बनाया। राष्ट्रीय महासभा की वैधानिक विचारधारा के साथ राष्ट्रीयता की इस नवीन विचारधारा ने क्रान्तिकारी दल का सगठन किया जिसके नेता वारीन्द्र कुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त थे।[4] देश के विभिन्न भागो मे हिंसात्मक क्रान्ति के चिह्न प्रकट हुए। इस दल के कार्यक्रम मे छ बातो पर बल दिया गया जिनके विषय मे गुरुमुख निहालसिंह ने अपनी पुस्तक में लिखा है। वे बातें थी—

१—पत्रों की सहायता से प्रबल प्रचार द्वारा शिक्षित लोगो के मस्तिष्क मे दासता के प्रति घृणा जागृत कर दी जाए।

२—लोगों के मस्तिष्क से बेकारी और भूख का डर दूर कर दिया जाए और

१. गुरुमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास : पृ० १०३
२. वही : पृ० १६२
३. वही : पृ० १७४
४ वही : पृ० १७६

उनमे मातृभूमि व स्वतन्त्रता का प्रेम भर दिया जाए। इसके लिए संगीत व नाट्यकला को साधन बनाया गया। राष्ट्रीय वीरो और शहीदो के जीवनचरित्र का अभिनय द्वारा चित्रण करने के लिए कहा गया और साथ ही देशभक्ति से ओतप्रोत गाथाओ को हृदयस्पर्शी संगीत द्वारा लोगो तक पहुचाने के लिए कहा गया।

३—शत्रु को प्रदर्शनी और आन्दोलन—बन्देमातरम् जलूस, स्वदेशीसम्मेलन वहिष्कार—सभा आदि में व्यस्त रखा जाये।

४—नवयुवको की भर्ती की जाए, छोटे छोटे जत्थो मे उनका संगठन किया जाए, उन्हें शारीरिक व्यायाम, शस्त्रोपयोग और शक्ति उपसना की शिक्षा दी जाए। क्रांतिकारी साहित्य पढाया जाए और उन्हें अनुशासन पालने और दल के भेद को गुप्त रखना सिखाया जाये।

५—बम बनाये जाए। बन्दूको और अन्य शस्त्रों की चोरी की जाए, विदेशों से शस्त्रों को क्रय करके भारत मे गुप्त रूप से लाया जाए।

६—चन्दे तथा दान द्वारा और साथ ही क्रांतिकारी डकैतियो द्वारा धन की व्यवस्था की जाये।[1]

बंगाल मे इस दल के कार्यो का प्रारम्भ हुआ था। १९०८ मे मुजफ्फरपुर के अप्रिय जज की हत्या करने के उद्योग मे गाडी पर बम फेंका गया जिसमे दो अंग्रेज महिलाओ की मृत्यु हुई। खुदीराम बोस के नेतृत्व मे यह कार्य हुआ था, अत उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हे फासी दी गई। उनकी तस्वीर घर घर मे पहुच गई और विदेशी शासन के प्रति विरोध तीव्र हुआ। १० फरवरी १९०९ को अलीपुर षड्यन्त्र अभियोग और गोसाईं-हत्या अभियोग के सरकारी वकील को गोली से मार दिया गया। २४ जनवरी १९१० को पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० शमसुल आलम को गोली से मार दिया गया।[2] बंगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो मे भी यह दल सक्रिय था। १९१२ मे लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया। इस प्रकार पुलिस अधिकारियो, अभियोग निर्णय करने वाले मजिस्ट्रेटो, सरकारी वकीलो और सरकारी गवाहो को आतंकित करने के लिए इस दल ने हत्याए की, डकैतिया डाली और निर्भयता से काम लिया। भारत के अतिरिक्त यूरोपीय महाद्वीप मे भी भारतीय क्रांतिकारी समुदाय के लोगो ने पूरी शक्ति से कार्य प्रारम्भ किया, जिसके नेता श्यामजी कृष्ण वर्मा, एस० आर० राना और कामा दम्पत्ति थे।[2]

राष्ट्रीय आन्दोलन का परिणाम भारतीयो के हित मे हुआ। शीघ्र ही सरकार को राष्ट्रवादियो की शक्ति का आभास हो गया। विदेशी साम्राज्य की नींव हिल

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० १७९-८०
२ गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास (१९००-१९१९) : पृ० १८२

गई थी। अतः १९०९ में कौंसिल सुधार अधिनियम बना। यह केवल उच्च वर्ग तथा मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए बनाया गया था। इस सुधार योजना ने मुसलमान जाति को पृथक् निर्वाचन और प्रतिनिधित्व का पोषण ही किया।[1] ब्रिटेन की लिबरल सरकार १९०६ से ही विभाजन रद्द करने की चिन्ता में थी।[2] १९११ में दिल्ली में दरबार हुआ जिसमें इंगलैंड के सम्राट् ने घोषणा कर बंग भंग रद्द किया। लार्ड हार्डिंग ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना में प्रान्तीय स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों को स्वीकार किया। इस कानून से ग्राम्य जनता को आशा की नई किरण चमकती दिखाई दी। राजनैतिक जीवन में आत्मविश्वास तथा नवीन उत्साह छा गया अब भारतवासियों को इस बात की आशा बंध गई थी कि भारत स्वशासन प्राप्त राष्ट्रों के स्वतन्त्र संघ-साम्राज्य का एक अभिन्न अंग बन जायगा। जैसे जैसे इस आशा को साक्षात रूप प्रदान करने की आकांक्षा प्रबल होती गई, वैसे ही वैसे देशव्यापी आन्दोलन की आवश्यकता का अनुभव भी किया जाने लगा।

इसी बीच मुस्लिम लीग का जन्म हो चुका था, जिसका कारण था लार्ड कर्जन की बंगभंग द्वारा हिन्दू मुसलमानों के बीच फूट डालने की नीति। दिसम्बर १९०६ में विभिन्न प्रान्तों के मुसलमानों ने ढाका में मुस्लिम शिक्षण सम्मेलन के लिए एकत्रित होकर कांग्रेस से पृथक् भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना की।[3] इसकी शाखाएं भारत के विभिन्न प्रान्तों के साथ लन्दन में भी फैल गईं। यह एक राजभक्त संस्था थी। इसमें राष्ट्रीय आदर्शों का अभाव था और यह नौकरशाही में विश्वास रखती थी। इसका संगठन भारतीय मुसलमानों के राजनैतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए किया गया था, जिसमें यह मृदु भाषा में उनकी माँगों को सरकार के समक्ष रख सके। यह साम्प्रदायिक संस्था राष्ट्रवाद के पनपते हुए वृक्ष पर कुठाराघात थी, किन्तु १९१३ में इसने भी ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन के ध्येय को स्वीकार किया और हिन्दू मुस्लिम-ऐक्य भावना को प्रोत्साहन मिला। मुहम्मद अली के नेतृत्व में उग्र विचारों का एक दल संगठित हुआ, जो कांग्रेस से समझौता करना चाहता था। इसके अतिरिक्त १९१४ के प्रथम महायुद्ध में टर्की ने अंग्रेजों के विरुद्ध जर्मनी का साथ दिया और भारत के मुसलमान इस घटना से अंग्रेज विरोधी बन गये।[4]

१९०५ से १९०७ तक भारतीय राष्ट्रीयता के क्षेत्र में उग्र राष्ट्रवादियों का प्राधान्य था, किन्तु सरकार की दमन नीति ने नेताओं को कारावास में बन्द कर आन्दोलन की तीव्रता को दबा दिया था। उग्र पक्ष ने किसी संस्था की स्थापना नहीं

---

१ डा० रघुवंशी भारतीय सांविधानिक तथा राष्ट्रीय विकास पृ० ८८
२ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० २६१
३. गुरुमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास . पृ० २२६
४ वही, पृ० २२७
५. डा० रघुवंशी भारतीय सांविधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० १११

की थी ग्रत वह छिन्न-भिन्न हो गया। काग्रेस विशुद्ध रूप से नरमदली सस्था हो गई थी।[1] १६०८ से १६१६ तक काग्रेस की कार्यपद्धति पूर्ववत् ही थी ग्रर्थात् प्रतिवर्ष ग्रधिवेशन मे राजनैतिक एव ग्रार्थिक प्रश्नो पर सामान्य प्रस्ताव रखे जाते थे।[2] दक्षिणी ग्रफ्रीका मे भारतीयो के साथ किया जाने वाला दुर्व्यवहार, इस समय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एव उत्तेजक विषय था, जिस पर काग्रेस तथा देश मे ग्रसतोष, क्रोध तथा ग्रवमान की भावना से विचार हुग्रा था। गाधी जी ने वहा भारतीयो की ग्रोर से सरकार तथा उसके काले कानूनो के विरुद्ध सत्याग्रह किया था। 'दक्षिणी ग्रफ्रीका की क्रूर एव ग्रन्यायपूर्ण सरकार के विरुद्ध वहा के भारतीय समुदाय की वीरता की सारे भारत म प्रशसा की गई। सारे देश मे विराट सभाए की गईं।'[3]

सन् १६१४ मे प्रथम महायुद्ध छिडा। इगलैंड ने फ्रास, रूस तथा ग्रन्य मित्र राष्ट्रो के साथ मिलकर जर्मनी ग्रौर टर्की की सम्मिलित शक्ति मे युद्ध प्रारम्भ किया। प्रारम्भ मे इसके प्रति भारत की साधारण जनता उदासीन थी।[4] किन्तु राष्ट्रीय नेताग्रो ने जनता को सरकार की सहायता के लिए तत्पर किया। नरम दल के साथ उग्र दल के राष्ट्रवादी नेता लोकमान्य तिलक ने भी कारावास से मुक्त होकर भारतीयो का सम्राट-सरकार को यथा-सामर्थ्य सहायता देना कर्तव्य वतलाया।[5] महात्मा गाधी ने भी इस समय लन्दन से ग्राकर युद्ध सहायता कार्य का प्रचार किया। युद्धकाल मे दोनो राष्ट्रीय दल ग्रर्थात् नरम व गरम दल तथा हिन्दू, मुसलमान नेताग्रो मे किसी प्रकार का विरोध नही था ग्रौर राष्ट्रीय ऐक्य भावना को भी विकास मिला। भारत ने युद्ध मे इस ग्राशा से ग्रग्रेजो का साथ दिया कि वे उनकी सेवा से प्रसन्न होकर स्वशासन का ग्रधिकार दे देंगे, जिससे वह सघ साम्राज्य का एक ग्रग बन जायेगा। भारतीय सैनिक दल विदेशो मे ग्रपनी योग्यता ग्रौर वीरता का प्रमाण देने के लिए भेजे गए। वहा उन्हे जीवन के नवीन ग्रनुभव हुए। उनमे ग्रात्माभिमान तथा ग्रात्मविश्वास का उदय हुग्रा। ग्रन्त मे युद्ध मे विजय से भारतीय सैनिको मे ग्रपनी वीरता पर पुन विश्वास जम गया, देश मे नवीन जागृति ग्राई। जापान की रूस पर विजय द्वारा भारतवासियो को प्रेरणा मात्र मिली थी किन्तु इस युद्ध मे स्वय भाग लेकर तथा विजय प्राप्त कर एशिया व यूरोप मे देश को एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुग्रा। देश ने महायुद्ध मे विदेशी सरकार की सहायता ग्रवश्य की थी किन्तु उसका राष्ट्रीय कार्यक्रम समाप्त नही हुग्रा था। राष्ट्रीय ग्रान्दोलन की गति पूर्ववत् बनी रही, ग्रर्थात् भारतीय शासन-व्यवस्था की नीतियो की तीव्र ग्रालोचना

---

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० ३०४
२. वही पृ० ३०५
३. वही पृ० ३०६
४ डा० रघुवशी : भारतीय सावैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० ११२
५. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास : पृ० ३१५

होती रही और श्रीमती एनी बेसेण्ट तथा लोकमान्य तिलक के नेतृत्व मे स्वशासन के उद्देश्य से वैधानिक आन्दोलन क्रियान्वित हुआ।

श्रीमती एनी बेसेण्ट ने होम रूल आन्दोलन के पुनीत कार्य द्वारा स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा तथा होमरूल का कार्यक्रम जीवित रखा। १६१४ मे जेल से मुक्त होते ही तिलक का त्रिमुखी कार्य था—कांग्रेस मे मेल कराना, राष्ट्रीय दल का पुनर्संगठन करना तथा एक दृढ एव सुसगठित होमरूल आन्दोलन चलाना। उन्होने श्रीमती बेसेण्ट का साथ दिया। इस प्रकार होमरूल का विचार देश के प्रत्येक कोने मे दावानल-सा फैल गया। १६१७ मे यह आन्दोलन अपने चरम पर पहुँच गया। श्रीमती एनीबेसेण्ट, अरुण्डेल तथा वाडिया को सरकार ने नजरबन्द किया। दमन के अन्य उपाय भी काम मे लाये गये। उन्हे मुक्त करने के लिए सत्याग्रह की योजना बनी किन्तु इसी समय अंग्रेजी सरकार ने मान्टेग्यू द्वारा यह घोषणा कराई कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य है कि भारतवर्ष मे उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की शनै. शनै. स्थापना हो और इसका प्रारम्भ प्रान्तो मे हो। इस विषय पर और सरकार से राजनीतिक प्रश्नो पर सलाह करने के लिए वे भारत आने वाले हैं। इस घोषणा ने विद्रोह की प्रबलता को क्षणिक शान्ति दी। लेकिन साथ ही कांग्रेस, नरम दल और उग्र राष्ट्रवादियों के बीच फूट पड गई। श्रीमती बेसेण्ट को मुक्त कर दिया गया था। नवम्बर १६१७ मे जब मान्टेग्यू ब्रिटिश सरकार के अन्य प्रतिनिधियों के साथ दिल्ली पहुचे तो तिलक और डा० बेसेण्ट ने भी उन्हे मालाए पहनाई।[1] मान्टेग्यू ने भारत मे स्वशासन प्रणाली की स्थापना की आशा दिलाई।[2] भारतीयो को सेना मे उच्च पद मिले व राजनैतिक नेता मुक्त किये गये। माण्टेग्यू मिशन ने परामर्श तथा जाच का कार्य प्रारम्भ किया जिसके फलस्वरूप भारतमत्री और वाइसराय ने सुधारो की एक सयुक्त योजना प्रस्तुत की। यही योजना बाद मे १६१६ क गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट के रूप मे प्रस्तुत की गई।

भारतीय वैधानिक सुधारो से सबधित रिपोर्ट ८ जुलाई १६१८ को प्रकाशित हुई। किन्तु काम पूरा करने के लिए तीन कमेटियाँ नियुक्त की गईं। जून १६१६ मे नया अधिनियम प्रकाशित हुआ। यह अधिनियम अंग्रेज सरकार ने बडी चतुराई से तैयार कराया था। इसमे तीन महत्वपूर्ण बातें थी—उत्तरदायी शासन का प्रारम्भ; देशी नरेशों का भारतीय शासन मे—विशेषकर देशी राज्यों से सबधित विषयो मे सहयोग; और प्रान्तो मे द्वैध शासन व्यवस्था का प्रवर्तन।[3] प्रान्तीय स्वायत्तता के लिए दो महत्वपूर्ण बातें प्रारभ हुईं, उच्च सत्ता के नियत्रण से स्वतत्रता और जनता के प्रति शक्ति का हस्तान्तरण। प्रान्तीय विषयों को दो वर्गों मे विभाजित किया गया

१. डा० रघुवशी : भारतीय सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास। पृ० ११७
२. गुरमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास : पृ० ३२१
३. वही, पृ० ३३३

था—'सरक्षित' और 'हस्तातरित'। प्राय सभी महत्वपूर्ण विषय 'सरक्षित' श्रेणी में रखे गये थे और हस्तातरित विषयो मे ही भारतमत्री व भारत सरकार के नियत्रण मे कुछ कमी आई थी। प्रान्तीय सरकारो को पूर्ण रूप से स्वायत्त नही बनाया था। उन्हें अब भी सपरिषद् गवर्नर-जनरल की आज्ञाओ का पूर्णतया पालन करना आवश्यक था।[१] राजनैतिक सुधारो की न्यूनता से असतोष बढा और युद्धकाल मे देशवासियो ने जिस आशा से सरकार की सेवा और सहायता की थी उसे गहरा आघात पहुचा। इसके अतिरिक्त १९१९ एक्ट के अन्तर्गत बने नियमो के अनुसार मुसलमानो, सिक्खो, भारतीय ईसाइयो, यूरोपियनो और आग्ल-भारतीयो को पृथक् प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ और अब्राह्मणो व मराठो के लिए धारासभाओ मे स्थान सुरक्षित किये गये। इस प्रकार साम्प्रदायिकता की भावना को उभाडा गया। वैसे १९१७ मे बडा भारी साम्प्रदायिक दगा हुआ था १९१८ मे—हिन्दुओ द्वारा मुसलमान मारे गये थे और मद्रास मे १९१६-१७ मे अब्राह्मण आन्दोलन प्रारभ हो गया था। १९१९ से सिक्खो के साथ यूरोपियनो, आग्ल भारतीयो और भारतीय ईसाइयो मे भी साम्प्रदायिक भावना बढी।

इन सबके परिणामस्वरूप १८५७ के बाद १९१९ मे भारतवासियो ने ब्रिटिश सत्ता को पुन राष्ट्रीय परिमाण पर चुनौती दी।[२] जलियावाला बाग मे विदेशी सत्ता से असन्तुष्ट नि शस्त्र एव निरीह भारतीय जनता पर तब तक गोलिया बरसाई गई जब तक वे समाप्त न हो गई। पजाब की यह घटना अमानुषिक एव बर्बरतापूर्ण थी। इससे देश के जनजीवन का रक्त उबल गया। यह दुर्घटना भारतीय इतिहास मे विदेशी शासको के पाशविक कृत्यो की रक्त से अकित कथा है। गाधी जी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओ को इससे हार्दिक दुख हुआ। राष्ट्रीय शक्ति को अधिक सुदृढ बनाने के लिए हिन्दू मुस्लिम ऐक्य और स्वदेशी प्रचार के कार्य को प्रोत्साहन दिया गया। गाधी जी ने सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश किया, जिससे राष्ट्रवाद के इतिहास मे एक नवीन गति मिली। उन्होंने अहिसा तथा प्रेम का पाठ पढाकर राष्ट्रीय आन्दोलन को नवीन दिशा का दिग्दर्शन कराया।[३]

प्रथम महायुद्ध आरभ होने के पूर्व भारत की वित्तीय स्थिति अच्छी थी किन्तु उसके प्रारभ होते ही १९१६ मे २६ लाख पौण्ड के घाटे को पूरा करने के लिए सीमा शुल्क बढाया गया।[४] विदेशो मे भारतीय सेना के व्यय का सम्पूर्ण भार देश पर पडा और उसके साथ ही ब्रिटिश राज्य कोष को भारत सरकार द्वारा १० करोड पौण्ड की सहायता दी गई जिससे कर-भार अधिक हो गया था। इसके अतिरिक्त जीवन के

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० ३३९
२ वही पृ० ३८९
३. ठाकुर राजबहादुरसिंह : कांग्रेस का सरल इतिहास : पृ० ३२
४. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० ३९०

साधारण उपयोग की अधिकतर वस्तुओं के दाम बढ गये थे। बड़े व्यापारियों के सट्टे तथा नियत्रण के कारण स्थिति अधिक बिगड गई थी।[1] नगर तथा ग्रामों की जनता मे अशान्ति बढ रही थी, औद्योगिक केन्द्रों मे मजदूरों ने हडताल करनी शुरू कर दी थी।

ब्रिटिश काल मे देश की आर्थिक स्थिति भी बिगडती ही गई और साधनहीन जनता को उत्तरोत्तर कर वृद्धि का भार भी उठाना पडा। सैनिक व्यय बढता रहा और विदेशी सेना की अभिवृद्धि के साथ इसका भार असह्य हो उठा। सीमान्त युद्धो ने भी इसमे योग दिया और भारतीय सेना को विदेश में साम्राज्य के हित मे युद्ध मे भेजे जाने से व्यय और भी अधिक बढ गया। इसके अतिरिक्त देश की औद्योगिक अवनति हुई क्योकि शासन ब्रिटिश उद्योग को सहायता दे रहा था। नगरो और ग्रामो मे उद्योग तथा कला का ह्रास हुआ अत अन्य जीवकोपार्जन साधनो के अभाव मे कृषि अवलम्बित जनता की सख्या मे निरन्तर अभिवृद्धि हुई।[2] इस कारण भूमि का विभाजन छोटे छोटे हिस्सो मे हो गया, जिससे भारतीय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था अव्यवस्थित हो गई। नवीन भूमिकर व्यवस्था का भी अहितकर प्रभाव पडा था। जगल से लकडी काटने का अधिकार भी छिन गया था। अत कृषक की आर्थिक अवस्था दिन प्रतिदिन शोचनीय होती जा रही थी। कष्टकर दिवसो के लिए उनके पास कुछ भी सम्पत्ति शेष नही बचती थी। वह अपने तथा अपने परिवार के लिए भरपेट भोजन जुटाने मे असमर्थ था।[3]

इन सबके परिणामस्वरूप कृषक अशान्ति के दो प्रदर्शन चम्पारन (बिहार) तथा खेडा (गुजरात) मे हुए जो राष्ट्रवाद के इतिहास मे कृषक वर्ग की जागृति के द्योतक हैं। चम्पारन म कृषक नील की कोठियो के लगाव की वृद्धि, विदेशी मालिको के अत्याचार, एकमुश्त रकम तथा अन्य अवैध रकमो के बोझ से विक्षुब्ध हो गया था। गाधीजी ने १९१७ अप्रैल मे वहा पहुचकर किसानो की शिकायतो की जाच प्रारम्भ की। अन्त मे १९१८ का चम्पारन कृषक-ऐक्ट बनाया गया और सरकार द्वारा कर व्यवस्था मे अनेक सुधार हुए।[4] इसी बीच गाधी जी को खेडा जाना पडा क्योकि वहा अतिवृष्टि के कारण फसल की हानि हुई थी और कृषक वर्ग मालगुजारी देने मे असमर्थ था। गाधी जी न प्रथम बार वहा सत्याग्रह प्रारम्भ किया। सरकार की दमन

---

१ गुरमुख निहालसिंह · भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० ३१

२ 'However the most decisive factor which accelerated the process of subdivision of land and its fragmentation was overpressure on agriculture bought about by economic imination of Millions of urban and village handicraftsmen and artisons'
A R Desai Social Background of Indian Nationalism—p 41.

३ A R Desai Social Background of Indian Nationalism—p. 47

४. गुरमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास : पृ० १६१

नीति के कारण सत्याग्रही किसानो की सम्पत्ति कुर्क कराई गई, जमीन को जब्त करने की आज्ञा दी गई। तथापि किसानो ने दृढता के साथ इन विपत्तियो का सामना किया। इसी बीच गाधीजी को किसी प्रकार सरकारी निर्णय का ज्ञान हो गया कि वह माल गुजारी के सम्बन्ध मे छूट देने वाली है। अत सत्याग्रह आन्दोलन समाप्त किया गया। इस आन्दोलन का परोक्ष रूप से अत्यधिक प्रभाव पडा सार्वजनिक जीवन मे नया साहस आया और किसानो को अपनी शक्ति का बोध हुआ।[1] विदेशी सत्ता के प्रति विक्षोभ की भावना की अभिवृद्धि के साथ राष्ट्रीय नेता देशदशा के अभावात्मक पक्ष की ओर अधिक सजग हुए।

सामाजिक तथा धार्मिक सुधार कार्य भी पूर्ववत अनेक सस्थाओ—जैसे प्रार्थना-समाज, आर्य समाज, ब्रह्मसमाज के सरक्षण मे चल रहा था। सामाजिक असमानता, जाति-वर्णभेद, बाल-विवाह, विधवाओ की दुरवस्था के विरुद्ध सुधार पर बल दिया गया। भारतीय आदर्शों तथा नैतिकता की रक्षा के साथ बुद्धिवादी समाज सुधारक समुदाय सामाजिक धार्मिक परिवर्तन के लिए आवाज उठा रहा था। १६१६ ई० तक नारी वर्ग मे भी विशेष जागृति आ गई थी और वह भी तीव्र गति से राजनीति मे भाग लेने लगा।

१६०५-२० तक के राष्ट्रवाद का आधारभूत दर्शन तथा स्वरूप

१६०५ के उपरात राष्ट्रीय ध्येय को पाने के लिए दो विभिन्न साधन अपनाए गए—वैधानिक तथा क्रातिकारी। वैधानिक आन्दोलन काग्रेस तथा उसके सदस्यो द्वारा अपनाया गया था, इसके अन्तर्गत भी दो विचारधाराए कार्य कर रही थी, उग्र तथा नरम। उग्र दल के महत्वपूर्ण नेता थे लोकमान्य तिलक, अरविन्द घोष, विपिन चन्द्र पाल, लाला लाजपतराय आदि। नरम दल के प्रमुख नेता थे—गोपाल कृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी, फीरोजशाह मेहता आदि। इस दल के नेताओ की राष्ट्रीयता प्रार्थना तथा प्रस्तावो तक ही सीमित थी। ये लोग भारतीयता की अपेक्षा पश्चिम की उन्नीसवी शताब्दी के राजनीतिक आदर्शों तथा जीवन दर्शन से प्रभावित थे। इनके सामाजिक सुधारो का स्वरूप भी बहुत कुछ पाश्चात्य शिक्षा तथा आदर्शों से प्रेरित था।

इनके विपरीत इस काल के उग्र राष्ट्रवादी नेताओ ने भारत के नव निर्माण के लिए भारतीय जीवन दर्शन और राजनीतिक आदर्शों का आधार ग्रहण किया था।[2]

१ गुरुमुख निहालसिह भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास . पृ० ३६५

२ 'Dharma was the integrating principles and Swadharma the speritual and social duty of each individual Here was the guide to *social and political action* Projecting these values the new leaders began to build the emerging philosophy of Indian Nationalism"

Theodore L Shay The Legacy of the Lokmanya—The Political philosophy of Bal Gangadhar Tilak—p 60

इनकी राष्ट्रीयता धार्मिक भावना से अभिप्रेरित थी—उनकी दृष्टि से राष्ट्रीयता किसी राजनीतिक उद्देश्य अथवा भौतिक सुधार के किसी साधन से कही बडी चीज थी। उनकी दृष्टि मे उसके चारो ओर एक ऐसा तेजपुंज था जो मध्यकालीन सन्तो की दृष्टि मे धर्म पर बलि हो जाने वालो के चारो ओर होता था।[1] लोकमान्य तिलक के राष्ट्रवादी विचारो का प्रभाव अधिकांश देशवासियो पर पडा था, अत उनके राष्ट्रवाद के दर्शन का विवेचन आवश्यक है। वस्तुत इस युग के राष्ट्रवाद का यही प्रमुख रूप था।

लोकमान्य तिलक की राष्ट्रीयता का मूल प्रेरक तत्त्व था भारतीय सांस्कृतिक आदर्श एव उसकी पुरातन रीति। प्रत्येक देश का अपना जीवनदर्शन, संस्कृति और आदर्श होता है। इस युग के आन्दोलन की भी यह मौलिकता एव विशेषता थी कि उसे भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के आदर्शों से प्रेरणा मिली थी।[2] १६वी शताब्दी मे ईसाई धर्म के प्रचार और पश्चिमी संस्कृति के आदर्शों की प्रतिक्रियास्वरूप पुन भारतीय धर्म, जीवन-दर्शन और प्राचीन आदर्शों की खोज की गई थी और उनके पुन स्थापना के प्रयास का प्रारम्भ हुआ था। बीसवी शताब्दी मे उग्र राष्ट्रवादियो ने तिलक के नेतृत्व मे पूर्णतया उसका आधार ग्रहण किया। इनकी दृष्टि भारत के गौरवमय अतीत की ओर गई और भारतीय इतिहास का हिंदू काल इनका आदर्श बना। ये नेतागण अपनी स्वाभाविक प्रेरणा तथा अपनी समस्त चेतना के साथ पुरानी परम्पराओ की ओर झुके थे। इनकी स्वराज्य अथवा स्वायत्त शासन की माग का मूल कारण था भारतीय सांस्कृतिक जीवनदर्शन को विकास की स्वाभाविक गति प्रदान करना। अत स्वधर्म की स्थापना के लिए भारत की स्वतन्त्रता को आवश्यक माना गया। इनके अनुसार समाज अर्थात राष्ट्र की प्रत्येक इकाई को सर्वोच्च आदर्शों की प्राप्ति मे सहायता देनी चाहिये, क्योकि राष्ट्र तथा समाज का उद्देश्य भिन्न नही होता। इस प्रकार इतिहास, धर्म-ग्रन्थो, भारतीय जीवन-दर्शन के महत्वपूर्ण तथ्यो की खोज की गई तथा गम्भीर अध्ययन हुआ। सत्य स्वभाव का अनुसरण कर मोक्षप्राप्ति इनका ध्येय था। राजनीति धर्म तथा दर्शन के समन्वय मे राष्ट्रवाद का क्षेत्र विस्तृत एव विकसित हुआ। अन्त मे यह कहा जा सकता है कि इस युग मे राष्ट्रवाद का समुचित विकास हुआ। राष्ट्रीयता धार्मिक भावनाओ से ओतप्रोत थी और राजनीतिक उद्देश्य अथवा भौतिक सुधार से कही बडी चीज थी।[3] इसके विकास मे प्रेसो ने विशेष सहयोग दिया था। प्रेस एक्ट लागू होने पर भी राष्ट्रीय विचारों के प्रचार तथा उत्तेजन मे समाचार पत्रों एव पत्रिकाओ से सहायता मिली।

---

१. गुरुमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० १६३

२ Shay—The Legacy of Lokmanya—Introduction. p. 13

३. गुरुमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास ; पृ० १६२

: ३ :

साहित्य में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति

(१८५७ ई० से १६२० तक)

सन् १८५७ का विद्रोह स्वतन्त्रता प्राप्ति का प्रथम उद्योग कहा जा सकता है, जिसका विशेष संबंध हिन्दी प्रदेश से था। यह आश्चर्य का विषय है कि इस युग के प्रसिद्ध साहित्यकार भारतेन्दु आदि ने अपनी लेखनी द्वारा इसका वर्णन नहीं किया। राजाओं, जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों आदि के आश्रय में बसने वाले कवि वर्ग ने अवश्य इस विद्रोह में भाग लेने वाले अपने आश्रयदाताओं की वीरता तथा यश का गान गाया।[1] विदेशी शासन व्यवस्था से सन्तुष्ट तथा उसकी संगठित शक्ति से प्रभावित कवि वर्ग ने विद्रोह की निंदा की। प्रायः इस युग के कवि नवीन शिक्षा में दीक्षित मध्यम अथवा व्यापारी वर्ग के थे जिन्होंने विद्रोह की असफलता के कारण उसे अपनी राष्ट्रीय भावना का मूलाधार नहीं बनाया। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि ये कवि या लेखक देश की तत्कालीन परिस्थितियों से अनभिज्ञ थे अथवा राष्ट्रीय भावना या देशभक्ति से शून्य थे। इन्होंने यह भलीभांति जान लिया था कि सुदृढ़ केन्द्रीय शक्ति के अभाव में भारत की एकता को आघात पहुंचा है अतः नवीन वैज्ञानिक साधनों से विभूषित अंग्रेजी साम्राज्यान्तर्गत ही देश एक सूत्र में आबद्ध हो प्रगतिशील हो सकता है। अंग्रेजी शासकवर्ग ने, मुसलमान बादशाहों नवाबों, हिन्दू राजाओं तथा ताल्लुकेदारों के अधीन देश के अनेक छोटे बड़े भागों को अपने अधिकार में करके, अपनी शक्ति तथा कुशाग्र बुद्धि का परिचय भी दे दिया था। भारतेन्दु युगीन हिन्दी-साहित्य मनीषी इस तथ्य से परिचित हो गये थे कि अंग्रेजी शक्ति का विरोध करना मूर्खता होगी।' 'कांग्रेस का इतिहास' में पट्टाभि सीतारम्मैया ने इस समय की मनोवृत्ति के विषय में लिखा है।[2] इसके अतिरिक्त महारानी विक्टोरिया की घोषणा ने भी साहित्यकारों में

---

१. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० २८६
हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, १६४८ ई० संस्करण।

२ "अब लोग यह समझने लग गये कि भारत में अंग्रेजी राज्य ईश्वर की एक देन है और लोग उसी उदासीन और अलिप्त भाव से अपने कामकाज में लग गये, जो कि हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक खासियत है।"
—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ५

विदेशी शासन के प्रति विरोध भाव को दबा दिया था, घोषणा ने घावो पर मरहम का कार्य किया था।[1] शासको के प्रति विरोध भाव न रहने पर भी देश की शासन सबधी तथा आर्थिक कठिनाइयो, धार्मिक एव सामाजिक कुरीतियो के प्रति साहित्य मे विक्षोभ की भावना मिलती है। अत राजभक्ति युग की माग थी किन्तु देशभक्ति आत्मा की पुकार थी।

सन १८५७ से १९०० तक के साहित्य मे राष्ट्रीय भावना

१८५७ ई० के पश्चात का हिन्दी साहित्य राष्ट्रवाद का प्रारम्भिक इतिहास कहा जा सकता है। अब हिन्दी साहित्य परपाटी विहीन तथा रूढिग्रस्त साहित्य सृजन को त्यागकर नवीन दिशा की ओर मुड चला था। साहित्याकाश मे भारतेन्दु के उदित होते ही नवजीवन का सचार हुआ। तत्कालीन साहित्य ने जीवन की परिस्थितियो का अनुगमन किया।[2] *इस युग के साहित्य को सामाजिक एव सास्कृतिक पुनर्जागरण का साहित्य कह सकते हैं।*[3] *साहित्य के समस्त अग देश की समसामयिक* राजनीतिक धार्मिक, आर्थिक व नैतिक परिस्थितियों का यथातथ्य चेतना-उद्‍बोधक वर्णन करना अपना प्रमुख लक्ष्य समझते थे। रीतिकाल की सकीर्ण सकुचित मनोवृति का परित्याग कर साहित्य ने देश की एकता का गान गाया तथा पाखड, अधविश्वास, रूढिवादिता आदि राष्ट्रीय प्रगति के अवरोधक तत्वो को मिटाने का प्रयत्न किया, जिससे राष्ट्रीय जागरण की भूमिका प्रस्तुत हो गई।

देश मे सार्वजनिक जीवन की नीव डालने वाली सस्थाओ का निर्माण, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, डा० राजेन्द्रलाल मित्र, रामगोपाल घोष, दादा भाई नौरोजी, नायूभाई, श्रीमती एनीबेसेन्ट आदि के सदुउद्योग से प्रारम्भ हो गया था।[4] यद्यपि इन सस्थाओ द्वारा गतिशील सामाजिक धार्मिक, नैतिक सुधार जन आदोलन का रूप न ले सके थे किन्तु राष्ट्रीय भावना के प्रसार के लिए अनुकूल वातावरण *निर्मित करने का श्रेय इन्हीं को मिलता।*[5] *भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी* लेखको पर इन सस्थाओ तथा व्यक्तियो का विशेष प्रभाव लक्षित होता है। नवयुग ने विचार-स्वातन्त्र्य को जन्म दिया था अत इस अनुकूल वातावरण मे लेखको ने देश की प्रगति के कारणो पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया तथा साहित्य द्वारा समाज, धर्म,

---

१ "For many years the proclamation acted like a balm and Indian leaders vied with one another in their loyalty to the British Crown"

—Mahatma—A life of Mohandas Karam Chand Gandhi

२ डा० वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य (द्वितीय सस्करण) पृ० १६

३. श्री रामगोपाल सिंह भारतेन्दु साहित्य पृ० ६

४. पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ० १२

५. भावेरी और तन्दूलकर महात्मा पृ० ३, ४, ५

एव शासन सम्बन्धी सुधार का व्रत लिया। देश, समाज तथा संस्कृति को नवीन दृष्टि से देखा। भारतेन्दु इसके प्रतीक थे और जैसा डा० वार्ष्णेय ने लिखा है, 'उन्होंने देशभक्ति, लोकहित, समाजसुधार, मातृभाषोद्धार, स्वतन्त्रता, आदि की वाणी सुनाई।'[१]

भारतेन्दु हरिचन्द्र के नेतृत्व मे इस काल के साहित्य का पथ निर्दिष्ट हुआ अत साहित्यिक क्षेत्र में यह ही इस नवोत्थान काल के प्रमुख नेता कहे जायेंगे। इस युग की राष्ट्रीय भावना अपने प्रथम चरण मे होने पर भी राजनीति के साथ धार्मिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक पक्षो को भी समाहित किये थी। अग्रेज भारत पर राजनीतिक ही नही सास्कृतिक विजय के भी आकाक्षी थे। पश्चिमी शिक्षा, सभ्यता तथा विचारधारा से प्रभावित अधिकाश शिक्षित वर्ग, अपनी मातृभाषा, सस्कृति तथा धर्म को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगा था। भारतेन्दु तथा इस काल के हिन्दी साहित्यकारो की दृष्टि से यह छिप न सका कि अग्रेजी राज्य केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नही वरन् धार्मिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टि से भी अभिशाप बन कर आया है। उन्होंने सभ्यता, सस्कृति तथा ज्ञान के क्षेत्र में अति प्राचीन भारत की सुदृढ आधारशिला को हिलते देखा। भारतीयता पर आघात न सहन कर सकने के कारण उनका सम्पूर्ण अन्तस्तल विक्षोभ एव ग्लानि से परिपूर्ण हो गया। इन्होंने अपनी वाणी द्वारा पूर्वजो की गौरवमय स्मृति का कलापूर्ण सुन्दर चित्रण कर देशवासियो को सचेत किया। इस अतीत गौरवगान के वर्तमान दुर्दशा तक पहुचाने वाले हानिकारक तत्त्वो की ओर भी सकेत किया। विदेशी सत्ता की जजीरो मे जकडी जनता परमुखापेक्षी हो गई थी। वह अपनी देशी वस्तुओ के मूल्याकन का विवेक खो बैठी थी। इन सरस्वती क वरद पुत्रो ने जनता की दृष्टि स्वदेशी के प्रचार तथा विदेशी के बहिष्कार की ओर आकृष्ट की अर्थात् देशवासियो को उनके आर्थिक हितो की ओर सचेत किया। अपनी भाषा के महत्त्व तथा उसके प्रचार का मार्ग भी दिग्दर्शित किया, जिससे जनता विदेशी भाषा मे मोह के हानिकारक कारणो से सावधान हो जाये।

इस काल के साहित्य मे जिन राष्ट्रीयता उद्बोधक तत्वो का विस्तार के साथ वर्णन मिलता है उनका विस्तृत विवेचन अपेक्षणीय है। यह विशेष तत्त्व हैं—

(क) प्रचीन गौरव की स्मृति

(ख) वर्तमान स्थिति के प्रति क्षोभ, पतन के कारणो का स्पष्टीकरण

(ग) देश प्रेम, भारतीय धर्म तथा सस्कृति के प्रति श्रद्धा।

(घ) हिन्दी का प्रचार।

राष्ट्रीय भावना राजभक्ति के आवरण मे लिपटी हुई है, उससे मुक्त नही है। अत राजभक्ति सम्बन्धी उक्तियाँ देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता मे किस अश तक बाधक हैं, इसका वणन भी उपेक्षणीय नही है।

१ डा० वार्ष्णेय . आधुनिक हिन्दी साहित्य : पृ० २७७

प्राचीन गौरव तथा स्मृति

भारत का गौरव अक्षुण्ण है, केवल कुछ काल के लिए वह लुप्त हो गया था। देश के अतीत गौरव उसके प्राचीन ग्रन्थ तथा उसकी वीरगाथाओं के इतिहास की सुरक्षा ही जीवन मे नवजागृति का साधन बन सकती थी। राष्ट्रीय चेतना के आरम्भ तथा विकास की स्थितियो के विवेचन से यह स्पष्ट है कि राजेन्द्रलाल मित्र, भडारकर, तिलक आदि राष्ट्रीय नेताओ द्वारा रचित विद्वत्तापूर्ण साहित्य, ऐतिहासिक अध्ययन तथा नवीन खोजो ने विश्व के सम्मुख यह सिद्ध कर दिया था कि ज्ञान-विज्ञान की गूढ़तम बातो पर केवल पश्चिम का ही एकाधिकार, नही था, सर्वप्रथम भारत ने ही इस क्षेत्र मे प्रगति की थी। साहित्य के क्षेत्र मे भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र श्रीनिवासदास राधाचरण गोस्वामी प्रभृति साहित्यकारो ने इतिहास परम्परा तथा साहित्य ग्रन्थो द्वारा रक्षित अतीत गौरव तथा वीर कृत्यो का उत्तेजनापूर्ण शब्दो मे वर्णन किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द ने अति आर्त्त स्वर मे भारत के प्राचीन एव आध्यात्मिक वीरपुरुषो को वर्तमान दुखमोचन के लिए स्मरण किया है—

> कहं गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर।
> चद्रगुप्त चाणक्य कहां नासे करिकै थिर॥
> कहं क्षत्रिय सब मरे जरे सब गये किते गिर।
> कहां राज को तौन साज जेहि जानत है चिर॥
> कहं दुर्ग-सेन धन-बल गयो धूरहि धूर दिखात जग।
> जागो अब तो खल-बल दलन रक्षहु अपनो आर्य-मग॥[1]

इसी प्रकार प्रेमघन' ने 'जीर्णजनपद'[2] मे अपने पूर्वजो के निवास स्थान दत्तापुर ग्राम की प्राचीन विभूति और आधुनिक दशा का यथार्थ वर्णन किया है। इस प्रबन्ध काव्य मे देश के अतीत गौरव का वर्णन प्रतीकात्मक शैली मे किया गया है। इसके अतिरिक्त 'पितर विलाप'[3] कविता मे उन्होने पितृपक्ष मे आये पितरजनो द्वारा भारत की वर्तमान दुर्दशा पर विलाप कराया है जिससे भूतकालीनगौरव के रग अधिक गहरे हो जाते हैं। उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक भारत की भौगोलिक एकता की पुष्टि करने वाले सुविख्यात नगरो—काशी, अयोध्या, प्रतिष्ठानपुर, इद्रप्रस्थ, मथुरा, उज्जैन, द्वारिका, चित्तौड, पाटलिपुत्र, पजाब, कश्मीर की विशेषताओ का

१. सकलनकर्त्ता तथा सम्पादक ब्रजरत्नदास : भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग : पृ० ६८३, ६८४ दूसरा सस्करण, सवत् २०१० वि० प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

२. सम्पादक—श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय, श्री दिनेशनारायण उपाध्याय : प्रेमघनसर्वस्व प्रथम भाग पृ० १ प्रथमावृत्ति सवत् १९९६ : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

३ प्रेमघन सर्वस्व . पृ० १५४

उल्लेख करते हुए कवि इनके पतन या विनाश पर शोक प्रकट करता है। यह अतीत गौरव गान वर्तमान दुरवस्था की अनुभूति को अधिक तीव्रता प्रदान करने वाला है—

> नहि वह काशी रह गई, हती हेम मय जौन।
> नहि चौरासी कोस की, रही अयोध्या तौन॥
> राजधानि जो जगत की, रही कभौं सुख साज।
> सो बिगहा दस बीस मे सिकुड़ी सी जनु आज॥[1]

दया, धर्म और सत्यता के शुद्ध मार्ग का आचरण करने वाले दिग्विजयी तथा प्रजाप्रतिपालक राजा अब नही रहे 'ललकि लरे मरि मिटे ना लियो देन का नाम।'[2] भारतेन्दु जी के 'भारत दुर्दशा' नाटक के एक गीत मे भी अतीत गौरव तथा वर्तमान दुर्दशा का क्षोभपूर्ण शब्दो मे तुलनात्मक विवेचन मिलता है—

> रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
> हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
> सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
> सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीन्हो।
> सबके पहिले जो रूप-रग-रस भीनो।
> सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो॥
> अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
> हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥[3]

यह विचार कर कविहृदय अत्यन्त दुखित होता है कि जहा राम, युधिष्ठिर, वासुदेव, हरिश्चन्द्र, नहुष, ययाति, भीम, अर्जुन, जैसे महान पुरुषो ने अपनी छटा दिखाई थी, वहा आज मूढता, कलह और अविद्या का राज्य है।[4] बालमुकुन्द गुप्त ने 'पुरानी दिल्ली' कविता मे भारत के ऐतिहासिक नगर की प्राचीन गौरव-गाथा का चित्र अंकित कर काल के घातक प्रभाव को बताया है।[5]

काव्य के सदृश नाटको मे भी पौराणिक, ऐतिहासिक, परम्परागत वीर चरित्रो

---

१. प्रेमघन सर्वस्व · पृ० १५५
२. प्रेमघन सर्वस्व . पृ० १५५
३. सम्पादक—ब्रजरत्नदास भारतेन्दु ग्रन्थावली 'भारत दुर्दशा'. नाट्य रसिक व लास्य रूपक—पृ० ४६६ . पहला खड प्रथम सस्करण, २००७ वि० प्रकाशक—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
४. ब्रजरत्नदास : भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग दो : पृ० ४६६
५. डा० नत्थनसिंह गद्यकार—बाबू बालमुकुन्द गुप्त : जीवन और साहित्य। पृ० १२४

का आस्थान मिलता है। इसका श्रेय भी भारतेन्दुजी को दिया जाता है क्योंकि उन्होंने 'मुद्राराक्षस', नीलदेवी' आदि ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित नाटक लिखे। 'मुद्राराक्षस' अनुवाद है लेकिन इसकी विस्तृत भूमिका में, पूर्वकथा और उपसंहार में, भारतेन्दु ने इतिहास सम्बन्धी शोध के विवरण दिए हैं जिनसे ऐतिहासिक नाटककारों को नई दिशा का संकेत मिला।[1] 'नीलदेवी' गीतिरूपक है जिसमें मुस्लिम काल की ऐतिहासिक घटना को लेकर भारतीय हिन्दू नारी की वीरता पर प्रकाश डाला गया है। भारतेन्दु का अनुगमन कर इस युग के अन्य नाटककारों ने भी अतीत गौरव की अभिव्यंजना के लिए नाटक लिखे। श्रीनिवासदास का 'संयोगिता स्वयंवर,' राधाकृष्णदास के 'महाराणाप्रताप', 'पद्मावती नाटक', राधाचरण गोस्वामी कृत अमरसिंह राठौर', प्रतापनारायण मिश्र कृत 'हठी हमीर' आदि कुछ प्रसिद्ध नाटक हैं। डा० दशरथ ओझा ने अपने शोध प्रबंध में राधाकृष्णदास के 'महारानी पद्मावती तथा 'महाराणा प्रताप' नाटक को राष्ट्रीयता से ओतप्रोत देश पर बलिदान होने का आह्वान करने वाला माना है।[2] ये सभी नाटक वीर रस प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त पौराणिक कथानकों को लेकर भी भारत के चिर पुरातन धर्म तथा नैतिक आदर्शों को प्रतिष्ठित करने वाले नाटक लिखे गए जैसे श्री निवासदास का 'प्रह्लाद-चरित्र' नाटक। इनके द्वारा भारत के चिरपुरातन धर्मादर्श पर प्रकाश डाला गया।

उपन्यास साहित्य तथा छोटी कहानियों का अधिक विकास न होने के कारण, अतीत गौरव की अभिव्यक्ति करने वाले उपन्यास अथवा कहानियां नहीं मिलती हैं।

इस युग के साहित्य मनीषियों ने देशभक्ति की भावना की जागृति के लिए भारत के जिस अतीत काल का गान किया था, वह हिन्दू काल का स्वर्णयुग था। उनकी अवस्था के प्रतीक हिन्दू इतिहास तथा परम्परा के वीर पुरुष तथा नारी थे। और यदि उन्होंने इतिहास के मुसलमान काल से वीर राजपूतों का चरित्र चुना तो उनका प्रयत्न यही था कि उनकी तुलना में मुसलमान पात्रों का चरित्र अधिक श्यामल दृष्टिगत हो। पूर्व शताब्दियों के मुसलमान शासकों के अत्याचार तथा अन्याय को विस्मरण करना उनके लिए कठिन था क्योंकि जहां 'विसेसर सोमनाथ माधव के मन्दिर' थे वहां मसजिदें बन गई थीं और अल्लाह अकबर की ध्वनि सुनाई पड़ती थी।[3] हिन्दी-साहित्य प्रणेता हिन्दू थे और राष्ट्रवाद के इस अभ्युत्थान काल में उनकी राष्ट्रीय भावना जातीयता या धार्मिकता से मुक्त नहीं हो सकी थी। अतः हिन्दू साहित्यिक अपने धर्म, इतिहास, संस्कृति, वीर चरित्रों की ओर स्वाभाविक रूप से आकृष्ट हुए थे। देशवासियों को अज्ञान, मूर्खता, कूपमण्डूकता से मुक्त करने, उनमें आत्मविश्वास भरने तथा उन्हें साहस प्रदान करने के लिए अतीत गौरव का यह स्मरण पर्याप्त मात्रा में सहायक हुआ।

---

१ डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक उद्भव और विकास पृ० २२६
२ डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक उद्भव और विकास पृ० २६७
३ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ६८४

भारतेन्दु, प्रेमघन आदि लेखको ने अतीत गौरव के विनाश का कारण भारतवासियो के चारित्रिकपतन मे ढू ढा था। उनके मतानुसार देशवासियो की फूट, आपसी महाभारत, आलस्य आदि का लाभ उठा कर अतीत म यवनो ने मन्दिर फोडे थे, मूर्तियां तोडी थी और अब अग्रेजी राज्य म देश पराधीनता की बेडियो म जकड गया था।[1] प्राय इस युग का अतीत गौरव-गान वर्तमान दुरवस्था के विक्षोभ की भावना से आच्छादित है। डा० केसरी नारायण शुक्ल के शब्दो म — अतीत के प्रति अनुराग से उद्भूत इनके उद्गार कही भारत की सभ्यता की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट करते हैं, कही प्रकट रूप से उज्ज्वल भविष्य बनाने का सकेत देते हैं और कही इन कवियो के अन्तर का क्षोभ प्रकट करते हैं। इस प्रकार अतीत का अनुराग काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई है।'[2]

वर्तमान स्थिति के प्रति क्षोभ एव पतन के कारणो का स्पष्टीकरण

इस युग के साहित्य मे अतीत गौरव की स्मृति के साथ वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक दुरवस्था के प्रति क्षोभ की भावना भी मिलती है। लेखकों ने युगीन स्थितियो का यथार्थ शैली मे वर्णन किया है, जो साहित्य को अपूर्व देन है। प्रेस ऐक्ट जैसे बन्धनो मे बधे होने पर भी, इन लोगो ने तत्कालीन दुर्दशा के कारणो का अपनी रचनाओ मे विश्लेषण किया। देश की हीनावस्था के दो मुख्य कारण थे— प्रथम स्वय भारतीयो का मानसिक, नैतिक, बौद्धिक अध पतन, द्वितीय पराधीनता का अभिशाप। इस काल के लेखको ने प्रथम कारण को प्रमुखता दी थी, द्वितीय कारण गौण था। इसका कारण था, उस युग की परिस्थितियां तथा जनता की विशेष मनोवृत्ति जैसा कि राष्ट्रीयता के विकास के इतिहास म स्पष्ट किया जा चुका है।

तत्कालीन हिन्दी साहित्यकारो न देश के नैतिक पतन, सामाजिक एव धार्मिक अवनति, सास्कृतिक ह्रास तथा राजनैतिक अभिशाप का निन्दक भाव से वर्णन किया है। अज्ञान, आलस्य तथा मूर्खता के कारण दीन हीन देशवासियो को देखकर उन्हें मानसिक क्लेश होता है। भारतेन्दु जी ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

डूबत भारत नाथ वेगि जागो अब जागो।
आलस-दव एहि दहन हेतु चहु दिसि सों लागो॥
महामूढ़ता वायु बढावत तेहि अनुरागो।
कृपा दृष्टि की वृष्टि बुझावहु आलस त्यागो॥
अपनो अपनायो जानि कै करहु कृपा गिरिवरधरन।
जागो बलि वेगहि नाथ अब देहु दीन हिदुन सरन॥[3]

---

१ प्रेमघन सर्वस्व पृ० ५१ प्रथम भाग

२ डा० केसरी नारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा का सास्कृतिक स्रोत. पृ० ११२

३. भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग · पृ० ६८३

'प्रेमघन' ने भी इसी प्रकार 'पितर-प्रताप' काव्य में पितृ पक्ष में आये स्वर्गीय पितर जनों द्वारा देश की दुर्दशा पर प्रलाप दिखाया है।[1] इसके अतिरिक्त निर्ममता पूर्वक देश की अवनति के कारणों पर प्रकाश डाला है। भारतेन्दु के सदृश यह भी आपसी फूट, परस्पर कलह-द्वेष, अमितव्ययिता तथा विलासप्रियता को सर्वनाश का कारण मानते हैं—

भए एक के चार चार घर अलग अलग जब।
भए परस्पर कलह द्वेष तब कुशल होत कब॥
भए दीन बनि सबै मिटी या दल की शोभा।
ताहि एक दिन लखन हेत को नहिं मन लोभा॥[2]

इसी प्रकार प्रतापनारायण मिश्र ने भी भारतेन्दु तथा प्रेमघन के स्वर में स्वर मिलाते हुए भारत के विनाश के कारणों का उल्लेख किया है। उन्हें दुःख है कि फूट, वैर और स्वार्थ-साधन में रत रहने के कारण हिन्दू देश की दुर्दशा नहीं देखते और मुसलमान धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दुओं का अनर्थ कर रहे हैं। हिन्दुओं के मन्दिर ढहते हैं, गायों का हनन होता है और अंगरेज सरकार मायाजाल रचा कर धन खींचे लिये जा रही है।[3] राधाकृष्ण दास ने देश की दुर्दशा पर दुःख अभिव्यक्त करते हुए लिखा है कि भारत ही एक ऐसा देश है जो रोकर अपना समय खो रहा है; यूरोप, अमरीका फ्रांस, जर्मनी आदि सभी देश मोद से भरे आनन्द में मग्न हैं।[4] उन्होंने भी भारतेन्दु या 'प्रेमघन' की भांति देशवासियों को रोने का सदेश नहीं दिया है।[5] उन्होंने सवत् १९५३ तथा १९५६ के अकाल का भी वर्णन किया है।[6]

प्रायः राजभक्ति सम्बन्धी कविताओं में भी राजभक्ति की अपेक्षा देशदशा के प्रति विषाद की मात्रा ही अधिक मिलती है। भारतेन्दु ने 'भारत भिक्षा' कविता में जननी के रूप में देश का मानवीकरण करते हुए भारत जननी से राजकुमार के शुभागमन पर उनका स्वागत करने का आग्रह किया है। महारानी विक्टोरिया ने करुणा कर राजकुमार को भेजा था किन्तु भारत माता अपने पूर्व गौरव की स्मृति तथा वर्तमान को दृष्टिगत कर अति व्याकुल हो कहती है—

लखिहैं का कुमार अब धाई।
गोद बैठि हँसिहैं इत आई॥

---

१ प्रेमघन सर्वस्व पृ० १५४ · प्रथम भाग
२ प्रेमघन सर्वस्व : पृ० ५१ . प्रथम भाग
३. प्रतापलहरी विषाद पचक पृ० १२९-१३० · प्रथम संस्करण
४. राधाकृष्ण ग्रन्थावली : भाग १ पृ० १५
सकलन और सम्पादन—श्यामसुन्दरदास प्रथम संस्करण
५. भारतेन्दु ग्रन्थावली भारत दुर्दशा : नाटक
६ राधाकृष्ण ग्रन्थावली : भाग १ : पृ० २०

परन्तु काव्य की अपेक्षा, इस युग के नाटको मे देश के नैतिक पतन, सामाजिक तथा धार्मिक अवनति का अधिक विशद चित्र मिलता है। भारतेन्दु के 'भारत दुर्दशा' नाट्य-रासक के नाम से ही यह स्पष्ट है कि इसकी कथावस्तु का विशेष सम्बन्ध देशदुर्दशा से है। इसमे देशवासियो की चारित्रिक-हीनता, आलस्य, मूर्खता, अन्धविश्वास, रूढिवादिता आदि का विस्तृत उल्लेख मिलता है

जह भए शाक्य हरिचदरु नहुष ययाती।
जह राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती॥
जह भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तह रही मूढता कलह अविद्या-राती॥
अब जह देखहु तह दुखहि दुख दिखाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥[1]

इसी प्रकार 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाटक मे भारतेन्दु जी ने हिन्दुओ के धार्मिक तथा चारित्रिक पतन पर क्षोभपूर्ण व्यग्य कसा है। उस समय देश के राजा, मत्री, पुरोहित, शैव, वैष्णव सभी की बुरी दशा थी। यमराज की सभा मे महाराजा चित्रगुप्त द्वारा गुरु लोगो के सम्बन्ध में कहलाया है—'महाराज ये गुरु लोग हैं इनके चरित्र कुछ न पूछिये, केवल दभार्थ इनका तिलक मुद्रा और केवल ठगने के अर्थ इनकी पूजा, कभी भक्ति मे मूर्ति को दण्डवत् न किया होगा पर मन्दिर मे जो स्त्रिया आई उनको सर्वथा तक्ते रहे।'[2] 'विषस्य विषमौषधम्' नाटक मे भारतेन्दु ने देश मे व्याप्त फूट और वैमनस्य को विदेशी पराधीनता के बन्धन मे जकडे जाने का प्रमुख कारण माना है।[3] भारतेन्दु द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलने के कारण प्रतापनारायण मिश्र ने 'भारतदुर्दशा' नाटक लिखा था, जिसमे देशदशा का यथार्थ चित्र मिलता है।

भारतेन्दु युग समाज सुधार तथा धार्मिक आन्दोलन का काल था। स्वय भारतेन्दु जी ने समाज मे आमूल परिवर्तन कर देश की दशा को सुधारना चाहा था। इसी कारण 'भारत दुर्दशा', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अधेर नगरी', 'प्रेम जोगिनी' आदि नाटको मे सामाजिक कुरीतियो पर विचार किया है। भारतीयो की कूपमण्डूकता दूर करने के लिए वे समुद्र-यात्रा के पक्ष मे थे, नारी-शिक्षा को आवश्यक समझते थे। उनके लेख 'वैष्णवता और भारतवर्ष' में इससे सम्बन्धित विचार सगृहीत हैं। 'भारत दुर्दशा' नाटक मे मद्य निषेध पर भी सकेत किया है। 'पूर्ण प्रकाश चन्द्रप्रभा' उपन्यास भारतेन्दुकृत माना जाता है, जिसमे लेखक ने बहुविवाह और अनमेल विवाह की असामाजिक और अकल्याणकारी परम्परा को हिन्दू समाज और देश के लिए अभि-

---

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली पहला भाग पृ० ४६६
२ वही · पृ० ६०
३ वही . पृ० ३६३

शाप माना है तथा उस पर निष्ठुर व्यंग्य किया है।[1] इस दिशा में भारतेन्दु से अधिक उग्रता बालकृष्ण भट्ट में मिलती है। भट्ट जी राष्ट्र की आधारशिला को सुदृढ बनाने के लिये विधवाविवाह के समर्थक थे तथा छुआछूत को मिटाकर देश में नवजीवन का संचार करना चाहते थे। 'वे उस समाज के प्रति विद्रोही हो उठे थे जहां नवयुवकों का दम घुटता है और पुरानी पीढ़ी अमरबेल की तरह नई पौध का जीवन शोषण कर लेती है।'[2] यद्यपि भारतेन्दुमण्डल द्वारा हिन्दी उपन्यासों का अधिक विकास न हो सका, लेकिन किशोरीलाल गोस्वामी के 'कुसुम कुमारी' उपन्यास में हिन्दू समाज की कुरीतियों का यथार्थ चित्र मिलता है। १८८८ ई० में देवीप्रसाद शर्मा, तथा राधाचरण गोस्वामी ने मिलकर 'विधवाविपत्ति' नामक उपन्यास निकाला था, जिसमें विधवा की दयनीय अवस्था का वर्णन मिलता है।

सामाजिक एवं धार्मिक पतन के साथ देश सांस्कृतिक हीनता को भी प्राप्त हो रहा था। देशवासी अपनी भाषा तथा आचार-विचार का परित्याग कर अंग्रेजी वेशभूषा अपना रहे थे। प्रेमघन ने इसी की ओर संकेत किया है —

> अगरेजी पढ़ि राजनीति सूरप आजादी।
> सीखि, हिन्द में बसि, निरख्यो अपनी बरबादी॥
> करि भोजन में कमी किते अगरेजी बानो।
> बनवत, पै नहिं बनत कँसहु ढग बिरानो॥[3]

अगरेजी शिक्षा देश के लिए अहितकर थी तथा देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये आवश्यक था कि शिल्पकला की शिक्षा भी दी जाती। इस सम्बन्ध में प्रेमघन जी ने लिखा था—

> विद्या उपकारी जितो, ताहि पढ़ें कोउ नाहिं।
> कथा कहानी सिखन हित, इस्कूलन में जाहिं॥
> कला कुशलता शिल्प की, क्रिया न सीखन जांय।
> करें धनत व्यापार नहि, निज घर बैठे खांय॥[4]

भारतेन्दु जी ने भी अपनी भाषा की उन्नति को ही सब उन्नति का मूल माना था—'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।'[5] प्रतापनारायण मिश्र ने भी हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान 'बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल' का राग छेड़ा था। श्रीधर पाठक भी हिन्दी प्रेमी थे। अंग्रेजी पढ़े लिखे बाबुओं से पाठक जी

---

१ डा० राजेन्द्र शर्मा : हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट : पृ० ४१
२. वही पृ० २५४
३ प्रेमघन सर्वस्व पृ० ५७ · प्रथम भाग
४. प्रेमघन सर्वस्व पृ० १२६
५. भारतेन्दु ग्रन्थावली · दूसरा भाग पृ० ७३१

की अरुचि थी क्योंकि अंग्रेज भक्त होकर वे हिंदी की उपेक्षा करते थे—

अंग्रेजी पढे बाबू को हिन्दी से क्या गरज।
इंगलिश की बराबर तो किसी मे मजा नहीं ॥[1]

देशवासियो का मानसिक पतन इतना अधिक हो चुका था कि विदेशी सरकार से 'राजा' 'सितारे हिन्द' 'रायबहादुर' आदि आनरेबुल खिताब अथवा उपाधियां पाने के लिये लालायित रहते थे।[2] 'स्टार आफ इण्डिया' पाने के लिए अंगरेजी सरकार के चित्तानुसार आचरण करते थे।[3]

भारतेन्दु युग राष्ट्रीय भावना के प्रादुर्भाव का युग था अत विदेशी शासको के प्रति विरोध की मात्रा अधिक व्यक्त नही की गई। किंतु इसका अर्थ यह नही है कि उनमे राष्ट्रीय चेतना का उदय नही हुआ था। तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं की भांति वे भी विदेशी दासता के अभिशाप से पूर्णतया अभिज्ञ थे। अंगरेजी साम्राज्य मुगल शासन के अस्तव्यस्त होने के पश्चात आया था तथा महारानी विक्टोरिया ने दयाहित की घोषणा की थी इस कारण प्रारम्भ मे वह सुखदायी प्रतीत हुआ था। हिन्दू जनता के साथ ही हिंदी साहित्यकारो को भी उसमे विश्वास था—

जैसे आतप तपित को छाया सुखद गुनात।
ज्वन राज के अंत तुव आगम तिमि दरसात ॥
मसजिद लखि बिसु नाथ ढिग परे हिए जो घाव।
ता वह मरहम सरिस यह तुव दरसन नर राव ॥[4]

लेकिन साथ ही विदेशी सत्ता ने भारत की रीढ भी तोड दी थी। केवल शारीरिक दृष्टि से ही नही मानसिक एवं सांस्कृतिक रूप से भी वह देशवासियो को पराधीनता की बेडी मे जकडने के लिए क्रियाशील था। भारतेन्दु जी ने नृपगण नवाव, अमीरो द्वारा भारतीय संस्कृति के त्याग पर कटु व्यंग किया है—

कहा सबै राजा कुंवर और अमीर नवाब।
आज राजदरबार मैं हाजिर होहु सिताब ॥
सिरन झुकाइ सलाम करि मुजरा करहु जुहारि।
जटितहु जूतन त्यागि कै स्वच्छ बूट पग धारि ॥
जानु सु पानि नवाइ कै पद पै धरि उसनीस।
चूमि चूमि बर अभय प्रद कर जुग नावहु सीस ॥

---

१ हिंदी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट पृ० २००
२ प्रेमघन सर्वस्व प्रथम भाग पृ० १७७
३ भारतेन्दु ग्रन्थावली प्रथम भाग पृ० ८६
४ भारतेन्दु ग्रन्थावली द्वितीय भाग पृ० ६६६

परम मोक्ष फल राज पद परसन जीवन माहिं।
बृटन-देवता-राज सुत-पद परसहु चित माहिं।।[1]

होलकर, सिंधिया, भूपाल की बेगम, काशीपति, राजा परिमाल, मेवाड के मानी नृप, कोल्हापुर, ईजानगर, जोधपुर, जयपुर, त्रावकोर, कछार, भरतपुर, धौलपुर के शासकों और दक्षिण के निजाम सभी को सम्बोधित कर भारतेन्दु ने व्यंग्यात्मक शैली में कहा था—

राजसिंह छूटे सबै करि निज देस उजार।
सेवन हित नृप बर कुअर धाये बाधि कतार।।
तजि अफगानिस्तान को धाये पुष्ट पठान।
हिमगिर को दे पीठ किए काश्मीरेश पयान।।
नाभा पटियाला अमृतसर जम्बू अस्थान।
कच्छ सिंधु गुजरात मेवाडरु राजपुतान।।
कोल्हापुर ईजानगर काशी अरु इंदौर।
धाए नृप एक साथ सब करि सूनो निज ठौर।।[2]

'करि निज देस उजार', 'हिमगिरि को दे पीठ', 'करि सूनो निज ठौर', आदि शब्दों से यह स्पष्ट है कि कवि को देशी राजाओं द्वारा विदेशी सरकार की सेवा प्रिय नहीं थी। इस कविता में राजभक्ति की अपेक्षा पराधीनता के कारण उद्भूत पीड़ा का स्वर ही प्रधान है।

विदेशी शासन के प्रति उग्र विरोध न होने पर भी शासकों की नीति असह्य हो गई थी। देश का आर्थिक शोषण सर्वाधिक कष्टकर था जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, राष्ट्रीय नेताओं ने इस ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाया था। भारतेन्दु जी ने भी इस सम्बन्ध में कहा कि 'अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी। पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।'[3] भारतेन्दु की अपेक्षा 'प्रेमघन' ने अधिक तीव्र शब्दों में स्पष्टतया कह दिया था कि मुसलमानी राज्य की अपेक्षा अंगरेजी राज्य अधिक दुःखद है।[4] उन्होंने देशवासियों के पतन का कारण विदेशी दासता में खोजा था।[5] लार्ड रिपन के समय में कई सुधार हुए थे अतः वे अधिक लोकप्रिय हो गये थे किन्तु उनके पश्चात् लार्ड डफरिन की टैक्स प्रिय नीति ने विदेशी शासन को अप्रिय बना दिया

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ७०३
२ भारतेन्दु ग्रन्थावली पृ० ७०४
३ भारतेन्दु ग्रन्थावली पहला भाग पृ० ४७०
४ प्रेमघन सर्वस्व पहला भाग। पृ० १६२
५ वही • पृ० १५६

था।[1] बढे हुए कर के प्रति जो असन्तोष तथा क्षोभ की भावना जनता मे व्याप्त थी उसे प्राय सभी साहित्यिकों की रचनाओ मे अभिव्यक्ति मिली है—

जब से लागल इ टिकस, हाय उड़ा होस मेरा।
रोवैं के चाही हसी ठी ठी ठठाना कैसा ॥[2]

प्रेमघन शासको की स्वार्थपूर्ण नीति का उद्घाटन करते हुए लिखते हैं —

लूटि विलायत भारत खाय। माल टाल बहु बिधि फैलाय।
ताको मासूली छुटि जाय। जामैं लागैं लाभ दिखाय ॥
देसी माल न इहा बिचाय। घाटा भारत के सिर जाय।
रोओ सब मिलि हाय हाय। हय हय टिक्कस हाय हाय ॥[3]

देशी वस्तुओ पर कर बढ जाने से व्यापारियो को लाभ के स्थान पर मूलधन की भी प्राप्ति नही हो पाती थी।[4] देश का कला कौशल समाप्त-प्राय हो गया था। भारतेन्दु जी ने भी विदेशी वस्तुओ के उपयोग के सम्बन्ध मे देश की विवशता लक्षित कर ईश्वर को स्मरण किया था—

जीवत बिदेश की वस्तु लै ता बिनु कछु नहिं कर सक्त।
जागो जागो अब सावरे सब कोउ रुख तुमरो तकत ॥[5]

भारत की आर्थिक विपन्नता का कारण यह भी था कि विदेशी सरकार अपने सभी युद्धो का व्यय भारत मे 'टैक्स' बढा कर पूरा करती थी। सन् १८८६ मे 'अपर बर्मा' के राजा तीबो से युद्ध कर अग्रेजो ने उन्हे पेन्शन देकर भारत भेज दिया था। उसके सम्पूर्ण व्यय की पूर्ति भारतवासियो पर 'टैक्स बढा कर की गई थी। इसी प्रकार जब रूस बढा चला आ रहा था, उस समय भी टैक्स बढाया गया था। 'प्रेमघन' ने अपनी रचना द्वारा इस ओर देशवासियो का ध्यान आकृष्ट किया था। अन्त मे महारानी के हृदय मे, मेमने के समान चिल्लाती प्रजा के लिए दया उत्पन्न करने की ईश्वर से प्रार्थना की थी।[6] भारतीय जीवन पर कर की अभिवृद्धि से नौकरशाही का स्वार्थ साधन हो रहा था। घूस की अनिष्टकारी प्रथा बढती जा रही थी—

रोओ ! अब मुह बाय बाय। हय हय टिक्कस हाय हाय ॥
रोज कचहरी धाय धाय। अमलन के ढिग जाय जाय ॥
रोओ ! सब मुह बाय बाय। हय हय टिक्कस हाय हाय ॥
रोकड जाकड ल्याय ल्याय। लेखा बही मिलाय आय ॥

---

१ प्रेमघन सर्वस्व पहला भाग पृ० १८५
२ वही पृ० १८३
३ वही पृ० १८५
४ वही. पृ० १८४
५ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ६८४
६ प्रेमघन सर्वस्व पृ० १८६

घुड़की उत्तर पाय पाय । खिसियाने घर आय आय ॥
रोओ ! सब मुंह बाय बाय । हाय हाय टिक्कस हाय हाय ॥
आमला सब हरखाय हाय । दूना टिकस बताय हाय ॥
स्वान सरिस मुंह बाय बाय । घूस भली विधि खाय हाय ॥
पीछे घता बताय हाय । टिक्कस ले धरि धाय धाय ॥[1]

प्रेमघन के 'कचहरी दीवान' में भी न्यायालयों में फैले व्यभिचार का उल्लेख मिलता है ।[2]

भारतेन्दु के 'भारत दुर्दशा', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', प्रताप नारायण मिश्र के 'भारत दुर्दशा' आदि नाटकों में भी विदेशी राजत्व के कारण दुखी प्रजा का सच्चा चित्र मिलता है । भारतेन्दु के 'भारत दुर्दशा नाटक में भारत दुर्दैव प्रवेश कर कहता है :—

कौड़ी कौड़ी को करू, मैं सबको मुहताज ।
भूखे प्रान निकालूं इनका, तो मैं सच्चा राज ॥
काल भी लाऊं महंगी लाऊं, और बुलाऊं रोग ।
पानी उलटा कर बरसाऊं, छाऊं जग में सोग ॥
फूट बैर और कलह बुलाऊं, ल्याऊं सुस्ती जोर ।
घर घर में आलस फैलाऊं, छाऊं दुख घनघोर ॥
काफिर काला नीच पुकारुं, तोड़ूं पैर और हाथ ।
दूं इनको संतोष खुशामद, कायरता भी साथ ॥
मरी बुलाऊं देश उजाड़ूं, महंगा करके अन्न ।
सबके ऊपर टिक्कस लगाऊं, धन है मुझको धन्न ॥
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी ॥[3]

वस्तुत पराधीनता भारत का दुर्भाग्य था । इसी कारण इस नाटक में विदेशी शासन का प्रतीक भारत दुर्दैव है । देश के चारित्रिक पतन तथा आर्थिक शोषण का मूल कारण यही था । भारत दुर्दैव के शब्दों में भारतेन्दु जी ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि देश-दशा के सुधार के लिए जो व्यक्ति अथवा संस्थाएं कार्य कर रही थी, उन्हें 'डिसलायल्टी' में पकड़ा जाता था ।[4] काव्य की भांति नाटकों में भी इस बात का संकेत मिल जाता है कि कचहरियों में घूस ली जाती थी । 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाटक में यमराज के दरबार में चित्रगुप्त पुरोहित से कहते है—'अरे दुष्ट यह

१. प्रेमघन सर्वस्व पृ० १८३
२ वही : पृ० १४
३ भारतेन्दु ग्रन्थावली . पहला भाग पृ० ४७३
४ वही : पृ० ४७८

भी क्या मृत्युलोक की कचहरी है कि तू हमें घूस देता है और क्या हम लोग वहां के न्यायकर्त्ताओ की भांति जंगल से पकड कर आए हैं कि तुम दुष्टो के व्यवहार नही जानते। जहा तू आया है और जो गति तेरी है वही घूस लेने वालो की भी होगी।"[१] भारतेन्दु काल मे राजनीतिक पराधीनता के कारण उद्भूत देश दुर्दशा का चित्रांकन करने वाले उपन्यास और कहानियो का प्राय. अभाव है। भारत की भाग्यवादिनी जनता अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा बलात् लादे गये दुःख और कष्टो को अपने जीवन मे समेट निश्चेष्ट पडी थी। उसकी सोई आत्मा को, देशभक्ति की भावना को जगाने के लिए, साहित्य के माध्यम से देश दशा के प्रति करुणा की धारा बहाना आवश्यक था। करुण रस से अधिक उपयुक्त अन्य अस्त्र नही था। अत उस युग की सर्वांगीण दुर्दशा के चित्रण मे साहित्यकारो ने करुण रस को मूर्त रूप प्रदान किया है। भारतेन्दु, 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र आदि हिन्दी साहित्य मनीषियो ने जिस नि.शंक एव निर्भय भाव से देशदशा का वर्णन किया था, वह उनकी परिस्थितियो को दृष्टि में रखते हुए अत्यन्त प्रशसनीय कार्य था।

देश-प्रेम :

भारतेन्दु युगीन साहित्य मे राष्ट्रवाद का अन्य प्रबल पक्ष है देशप्रेम। यह राष्ट्रीयता का मूलाधार है। भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी इस भावना से ओतप्रोत थे। कवियो ने देश की प्राकृतिक सुषमा का सुन्दर एव कलापूर्ण चित्रण किया। श्रीधर पाठक ने भी इसी समय काव्य द्वारा देश की नदियो, पर्वतो वृक्षो आदि का स्तवन किया। उनकी उस समय की 'भारतप्रशंसा' तथा 'हिंदवन्दना' मे उन्होंने लिखा :—

जय जयति विंध्य—कंदरा, हिंद
जय मलय—मेरु—मंदरा, हिंद
जय चित्रकूट—कैलास, हिंद ॥[२]
—हिंद-वन्दना—(संवत् १६४२)

नागपचमी, रामलीला, विजयादशमी आदि हिन्दू त्यौहारो के प्रति आस्था देशभक्ति का प्रमुख अग थी।[३] प्रेमघन ने 'वर्षा ऋतु व्यवस्था' मे मेघ की गर्जना के साथ ढोल पर गाये जाते आल्हा द्वारा देशवासियो को वीरता की लहरो से आच्छादित सागर मे डुबा देना चाहा था।[४] भारतेन्दु जी ने भी देश की ऋतुओ का मनोहारी वर्णन किया था।[५]

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली : पहला भाग : पृ० ६३
२ श्रीधर पाठक : भारत गीत . पृ० ४६ . सम्पादक—श्री दुलारेलाल भार्गव, गंगा पुस्तक माला का छठा पुष्प : द्वितीय सस्करण
३. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० १५३
४. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० २७
५. भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग : पृ० ६६६

देश का मानवीकरण कर 'जननी' के अति पुनीत पद पर प्रतिष्ठित करना इस युग की देशभक्ति का चरम उत्कर्ष था। देश अब भौगोलिक सीमाओं में बद्ध जडभूमि मात्र नही रह गया था। वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि माता भूमि नए युग की देवता है।[1] साहित्यक्षेत्र मे भी सरस्वती के वरद पुत्रो की प्रतिभा तथा हृदय की पवित्र भावनाओ के स्पर्श से देश अति पुनीत एव गौरवमय मातृपद को प्राप्त हुआ। भारतेन्दु ने 'भारत भिक्षा' कविता मे भारत का जननी के रूप मे मानवीकरण किया है यद्यपि इस काव्य मे राजभक्ति देशभक्ति की पुनीत भावना पर कुहरा सी छाई हुई है।[2] उनका 'भारत जननी' नाटक भी इसी के अन्तर्गत रखा जायगा। भारतेन्दु के 'भारत दुर्दशा' नाटक तथा 'प्रेमघन' के 'भारत सौभाग्य' नाटक मे भारत नायक के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। प्रतीकवादी रूपक द्वारा भारत के दुर्बल अध्यायो का इतिहास दिखाकर अगरेजी साम्राज्य की स्थापना मे पुन आशातीत सुव्यवस्था की कल्पना की गई है।[3] अत भारतेन्दु युगीन देशप्रेम जड न होकर चेतन था, निर्जीव न होकर सजीव था। देश प्रेम के स्पन्दन से वे स्वय गतिमान् हुए थे तथा उसकी ऐसी तान छेडी थी कि निद्रित भारतीय जनता भी जाग कर गतिशील हो उठी। इनके जीवन के सभी पक्ष, सभी भाव देशभक्ति के रग म रगे थे। इसी कारण उन्होने अपनी व्यक्तिगत ईश्वर भक्ति को भी देशव्यापी रूप प्रदान किया। भक्तिभाव पूर्ण कविताओ मे व्यक्तिगत मोक्ष की अपेक्षा देश के उद्धार की कामना प्रमुख दृष्टिगत होती है। आध्यात्मिकता तथा देश-प्रेम का समन्वय अपूर्व है। भारतेन्दु जी की यह पक्ति 'डूबत भारत नाथ वेगि जागो अब जागो' इसका सुन्दर उदाहरण है। अतीत गौरव की अनुभूति तथा वर्तमान स्थिति के प्रति क्षोभ, देशभक्ति के विकसित रूप हैं जिन्होने राष्ट्रीयता का पोषण किया। इस प्रकार अपने व्यक्तिगत हित को देशहित मे अतभूँत कर देना इस युग की प्रमुख विशेषता है। इनकी देशभक्ति मुसलमानो को अपनत्व की सीमा रेखा मे न बाध सकी थी, वह हिन्दू धर्म हिन्दू जनता आचार विचार तथा हिन्दू सस्कृति तक सीमित थी। इसके अतिरिक्त जैसा कि कई स्थलों पर सकेत किया जा चुका है यह देशभक्ति अथवा राष्ट्रीय चेतना राजभक्ति स मुक्त नही थी। अत इस युग के साहित्य मे राजभक्ति किस रूप म मिलती है, इसका विवेचन अति आवश्यक है।

राजभक्ति

भारतेन्दु तथा उनके सभी सहयोगी साहित्यिको की राष्ट्रीय भावना राजभक्ति से प्लावित थी। राजभक्ति देशभक्ति का अग बन गई थी। यह इस युग की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी क्योकि महारानी विक्टोरिया की घोषणा के उपरान्त बीस वर्ष तक शान्ति पूर्ण वातावरण बना रहा। साथ ही यवनो के अत्याचार, धार्मिक पक्षपात तथा

१ वासुदेवशरण अग्रवाल मातामूमि (लेख सग्रह) पृ० १

२ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ७०६

३ डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल भारतेन्दु जी का नाट्य साहित्य

देशी राजाओ के अव्यवस्थित, अराजकतापूर्ण शासन की अपेक्षा अगरेजी राज्य मे जन-जीवन अधिक सुरक्षित समझा जाता था। रेल, तार, डाक आदि नवीन वैज्ञानिक आविष्कारो ने जीवन को अधिक सुविधाजनक बना अगरेजी राज्य के प्रति विश्वास को पुष्टि प्रदान की थी। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ मे प्रत्यक्ष रूप मे अगरेजी सरकार भारतीयो के शुभचिंतक की भावना व्यक्त करती रही। समय-समय पर शासन तथा देश के सुधार का झूठा दम भरती रही। अत इस युग के साहित्य मे राजवश के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति की अजलि समर्पित की गई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राधाकृष्णदास आदि ने महारानी विक्टोरिया तथा उनके वशजो का गुणगान किया है।

भारतेन्दु जी ने सर्वप्रथम प्रिस एलबर्ट की मृत्यु पर सन् १८६१ मे कविता लिखी थी। कतिपय विद्वानो के मत मे यह कवि की बाल-क्रीडा मात्र थी।[1] इसके उपरान्त सवत् १६२६ मे ड्यूक आफ एडिनबरा के भारत आगमन के अवसर पर 'राजकुमार सुस्वागत पत्र' लिखा गया था।[2] राजकुमार एडिनबरा ग्रहण के अवसर पर काशी भी गये थे, जहा उनके स्वागतार्थ सवत् १६२७ मे भारतेन्दु जी के प्रतिनिधित्व मे 'सुमनाजली' (स्वागत-पत्र) भेंट की गई थी।[3] यद्यपि 'सुमनाजली' मे भारतेन्दु जी की कोई रचना न थी, लेकिन 'राजकुमार सुस्वागत पत्र' लिखने का यही कारण रहा होगा कि उन्हे काशी मे राजकुमार के स्वागत का कार्य-भार मिला था। वस्तुत. यह काव्य कवि हृदय की सच्ची भावना न थी और सामतवादी सस्कारवश राजवश के सम्मानार्थ रची गई होगी। सवत् १६२८ मे प्रिस आफ वेल्स के पीडित होने पर भी उन्होंने कविता लिखी थी और जगदाधार प्रभु से महाराजकुमार के शीघ्र नीरोग होने की प्रार्थना भी की थी।[4] भारतेन्दुजी ने भारत की प्रजा का यह कर्तव्य समझा था कि राजा के सुख मे सुखी तथा दुख मे दुखी होना चाहिये। राजा ईश्वर का अश होता है, यह विचारधारा इस राजभक्ति की रचनाओ की ओट मे कार्य करती लक्षित होती है। इसी कारण भारतेन्दु जी ने सवत् १६३१ मे महारानी विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र ड्यूक आफ एडिनबरा के विवाह के उपलक्ष मे *'मुंह दिखावनी' कविता* लिखी थी :—

> तब हम भारत की प्रजा मिलि कै सहित उछाह।
> लाए 'आशा' दासिका लीजै एहि नर-नाह॥
> सेवा मे एहि राखियो नवल वधू के नाथ।
> यह भाग निज मानिकै छनक न तजिहै साथ॥

---

१ किशोरीलाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि : पृ० २०७
२. भारतेन्दु ग्रन्थावली · दूसरा भाग . पृ० ६२५
३ वही : पृ० ६३०
४. वही : पृ० ६३३

× × ×

जो यासो जिय नहिं रमे वा कछु जिय अकुलाय।
सौत वधू वा एहि लखें तौ हम कहत उपाय॥
जब हम सब मिलि एक मत ह्वै तोहिं करहिं प्रनाम।
फरि दीजिये तब हमें दै कछु और इनाम॥'[1]

अन्तिम दो पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि राजभक्ति 'कुछ और इनाम' पाने की आशा से की गई थी। कदाचित् इस इनाम से उनका संकेत स्वतन्त्रता से रहा होगा। 'भारत भिक्षा' (१८७५ ई०)[2] कविता में भारतेन्दु की राजभक्ति में देशभक्ति का स्वर अधिक प्रखर हो गया है। 'भारत वीरत्व', 'विजय वल्लरी' आदि कविताओं में, जिनका रचना काल सन् १८७५ ई० के पश्चात् है, राजभक्ति के आवरण में देशभक्ति ही प्रमुख हो गई है। डा० वार्ष्णेय के मतानुसार '१८७७ ई० के दिल्ली दरबार में विक्टोरिया को साम्राज्ञी घोषित कर अंगरेजों ने भारत तथा इंगलैंड के बीच परिवर्तित परिस्थिति का स्पष्ट परिचय दे दिया था, अब उनकी नीति स्पष्ट थी कि भारत केवल साम्राज्यवादी इंगलैंड का उपनिवेश मात्र था, अतः राजभक्ति का उत्साह धीमा पड़ गया था।'[3] राजवंश के अतिरिक्त केवल लार्ड रिपन का यशगान भारतेन्दु के 'रिपनाष्टक' काव्य में मिलता है। क्योंकि इसी काल विशेष में इलबर्ट बिल का प्रस्ताव हुआ था, अफगान युद्ध समाप्त हुआ था, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट तोड़ दिया गया था और शिक्षित भारतीयों को राज्य प्रबन्ध में लाने का प्रयत्न किया था।[4]

भारतेन्दु के सदृश, उस युग के प्रायः सभी कवियों ने महारानी विक्टोरिया, युवराज अथवा उदार शासक वर्ग के प्रति अपनी कृतज्ञता तथा भक्ति का प्रदर्शन किया था। 'प्रेमघन' ने संवत् १९४६ में अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा करते हुए लिखा था—

जाकी कृपा प्रभाय गयो भारत को दुरदिन।
यह अंगरेजी राज इतै आयो प्रयास बिन॥
स्वस्थ भये स्वच्छन्द स्वार लहि हर्षित हम सब।
पाय ज्ञान विद्या नव उन्नति सजन लगे अब॥
हरे अनेकन दुख राजा बिन कहे हमारे।
बचे अहैं, या भए भए जे टरत न टारे॥[5]

---

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ६७६
२ वही पृ० ७०१
३ डा० वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० ६६
४ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ८१५
५ प्रेमघन सर्वस्व प्रथम भाग, पृ० २४८

उन्होंने लार्ड रिपन की प्रशसा भी की थी[१] तथा अग्रेजी शासन के अन्तर्गत स्वच्छन्दता, स्वाधीनता और लिबरल एसोसिएशन को धन्य बताते हुए ब्रिटिश राज्य के सुयश का समस्त श्रेय लिबरल दल को दिया था।[२] अत जब भी देश के कल्याण की कामना से अभिप्रेरित होकर कोई भी कार्य विदेशी शासको द्वारा किया जाता था, तो काग्रेस तथा राष्ट्रीय नेताओ के साथ साहित्यकार भी अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते थे। इसी कारण दादाभाई नौरोजी के भारत प्रतिनिधि बन कर इगलैड जाने पर कवि ने मगलाशा व्यक्त की थी।[३] 'प्रेमघन' को भी यह विश्वास था कि देशवासियो की यथार्थ स्थिति का सच्चा ज्ञान इगलैड के राजा को नही है।[४] स० १९५७ मे उन्होने महारानी विक्टोरिया ही हीरक जयन्ती पर 'हार्दिक हर्षादर्श काव्य रचा था।[५] इसमे महारानी विक्टोरिया के प्रताप, यश तथा विशाल देश भारत पर अनुशासन की प्रशसा क साथ भारत के पतन के कारणो का उल्लेख तथा महामारी, अकाल आदि देश-दुर्दशा का चित्रण भी मिलता है।[६] उनकी राजभक्ति देशभक्ति से शून्य नही थी। 'प्रेमघन' ब्रिटिश राज्य की प्रजातत्रात्मक प्रणाली से भी प्रभावित थे। किन्तु उन्हे यह कष्टकर प्रतीत होता था कि ब्रिटेन की प्रजा अपने स्वार्थ के लिए भारतीय शासन सबधी सब नीति नियम बनाती थी और वही भारत की भाग्यविधाता बनी हुई थी। उनकी सम्मति मे भारत के दुर्भाग्य का यह कारण था कि राजा के प्रतिनिधि राज्य करते है, स्वय राजा उनके विरुद्ध कुछ नही कर सकता।[७]

प्रतापनारायण मिश्र ने 'युवराज स्वागतते', 'ब्रैडला स्वागत' तथा लार्ड रिपन से सबधित कतिपय राजभक्ति की रचनाए की थी। राधाकृष्ण दास ने १६०० ई० मे न्यायालयो मे हिन्दी प्रवेश पर प्रसन्न होकर 'मेकडानेल पुष्पाजलि[८] तथा महारानी विक्टोरिया की मृत्यु पर 'विजयनी विलाप[९] कविताए लिखी थी। मिश्र जी तथा राधाकृष्ण दास की ये कविताए राजभक्ति की अपेक्षा अग्रेजी शासको की उदारवृत्ति के प्रति कृतज्ञता की भावना को ही अधिक अभिव्यक्त करती हैं।

काव्य के समान उस युग के नाटको म भी राजभक्ति का प्रदर्शन किया गया

---

१ प्रेमघन सर्वस्व प्रथम भाग पृ० १८५
२ वही पृ० २५०
३ वही पृ० २४६
४ वही पृ० २४६
५ वही पृ० २६५
६ वही पृ० २८३
७ वही पृ० २४८
८ राधाकृष्ण ग्रन्थावली . भाग १ पृ० ३
९ वही पृ० ६

था। 'विषस्य विषमौषधम्' के अन्त मे तो भारतेन्दु जी ने भरतवाक्य के रूप मे कहा है —

> परतिय परधन देखि न नृपगन चित्त चलावैं।
> गाय दूध बहु देहिं, मेघ शुभ जल बरसावैं॥
> हरिपद मे रति होई न दुख कोऊ कहू व्यापै।
> अगरेजन को राज ईस इत थिर करि थापै॥
> श्रुति पथ चलैं सज्जन सबै सुखी होंहि तजि दुष्ट भय।
> कवि बानी थिर रस सों रहै भारत की नित होइ जय॥[1]

इन पक्तियो पर एकाएक दृष्टिपात करने पर ऐसा आभास होता है कि भारतेन्दु जी कट्टर राजभक्त थे। पर केवल इन पक्तियो के आधार पर भारतेन्दु जी के सबध म एसा विचार अमगत होगा। काव्य की भाति नाटको म भी प्रच्छन्न रूप मे उनकी देशभक्ति राजभक्ति के आवरण म व्यक्त हुई है। सूक्ष्म दृष्टि से इसका अध्ययन करने के पश्चात् इन पक्तियो की सत्यता सदिग्ध हो जाती है। नाटककार ने इसी नाटक मे भारतीय नरेशो के आत्मिक, नैतिक पतन पर क्षोभ प्रकट किया है। देशी राजाओ की आपसी फूट, वैमनस्य तथा कलह के कारण अगरेजो ने किस प्रकार बुद्धि-चातुर्य के बल पर बिना रक्तपात के देश मे अपने पैर जमा लिये थे इसका व्यग्यात्मक शब्दो म उल्लेख करते हुए उन्होने यह भी स्पष्ट कह दिया है कि 'ऐसे ही सारे भारतवर्ष की प्रजा का सरकार ध्यान नही रखती।' देशभक्ति हर राजभक्ति का मुलम्मा चढाते हुए उन्होने लिखा है—'सरकार बचारी कुछ देखने थोडे ही आती है। धन्य है ईश्वर सन् १५६६ म जो लोग सौदागरी करने आये थे व आज स्वतत्र राजाओ को यो दूध की मक्खी बना देते हैं।[2] इसके अतिरिक्त नाटक संस्कृत नाट्य शैली पर लिखा गया था, जिसमे राजवश की प्रतिष्ठा तथा स्थायित्व की मगल-कामना से सबधित भरतवाक्य लिखने की परम्परा थी।

भारतेन्दु युग म प्राय ऐतिहासिक, पौराणिक तथा देश दुर्दशा स सबधित नाटक लिखे गये थे। नाटको मे देशभक्ति तथा राष्ट्रीय चेतना को वाणी मिली है। डा० दशरथ ओझा ने अपने शोधप्रबध हिन्दी नाटक उद्भव और विकास मे ऐतिहासिक पौराणिक, सामाजिक नाटको का विस्तृत उल्लेख करते हुए राष्ट्रीय नाटको के सबध म लिखा है—सभी नाटको म देश-दैन्यरूपी रोग का निदान पराधीनता और तज्जन्य आलस्य, फूट प्रमाद और पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुसरण बताया गया है।[3]

---

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग १ पृ० ३६८
२ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग १ पृ० ३६०
३ डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास पृ० २७७

इनकी देशभक्ति अथवा राष्ट्रीयता को शासकवर्ग से निरोध नही था। इसी कारण उनकी राजभक्ति देशदशा की सुधार भावना से आच्छादित थी। 'धनजय-विजय' नाटक का भरत वाक्य है—

राजवर्ग मद छोडि निपुन विद्या मे होई।
आलस मूरखतादि तजं भारत सब कोई॥
पडितगन परकृति लखि कं मति दोप लगावं।
छुटं राजकर, मेघ समं पै जल बरसावं॥[1]

नाटको मे राजभक्ति का प्रदर्शन अधिक मात्रा मे नही मिलता। साहित्य मे अभिव्यक्त राजभक्ति के विशेष कारणो का उल्लख किया जा चुका है। अत मे यह कहा जा सकता है कि कतिपय रचनाओ के पीछे देश के आतिथ्य सत्कार की भावना कार्य कर रही थी, क्योकि अतिथि का स्वागत तथा सत्कार देश की प्रधान विशेषता है, कुछ रचनाए महारानी के पुत्र तथा पति के स्वागत मे लिखी गई थी, इस क्षेत्र मे साहित्यकार कैसे पिछड सकते थे। राजा ईश्वर का अश है, यह ध्यान कर उन्होने राजवश के कल्याण की कामना से अभिप्रेरित होकर भी कुछ रचनाए की थी। इसके अतिरिक्त काग्रेस मे भी शासको के प्रत्येक अच्छे कार्य के लिए कृतज्ञता प्रदर्शित की जाती थी। उसे स्वर प्रदान करना साहित्यकारो ने अपना कर्तव्य समझा। साहित्यकार स्वभाव से अधिक उदार होता है। अत इनकी राजभक्ति राष्ट्रभक्ति मे बाधक नही है।

राष्ट्र निर्माणात्मक कार्यो का साहित्य मे उल्लेख

राष्ट्रीय निर्माण सम्बन्धी जो कार्य किया जा रहा था उसके उस युग के साहित्यकारो को विशेष हर्ष होता था। यद्यपि १८८५ ई० के पूर्व अनेक धार्मिक, सामाजिक सस्थायें राष्ट्र निर्माण मे सहायक थी किन्तु सर्वप्रथम काग्रेस की स्थापना मे एक महान राष्ट्रीय सस्था का जन्म हुआ था। राष्ट्रवाद के विकास के इतिहास मे काग्रेस की स्थापना, उद्देश्य तथा मागो का विस्तृत विवेचन करते हुए यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इसके प्रथम अधिवेशन मे ही साम्राज्यवाद की स्वार्थपूर्ण नीति का विरोध हुआ था तथा राष्ट्रीय एकता के विकास का प्रयास किया गया था। हिन्दी-साहित्य मे प्रतापनारायण मिश्र ने काग्रेस अधिवेशन को महापर्व कहा तथा उसके सम्मान मे काव्य रचा।[2] दुखी भारत देश के लिए इस प्रकार की राष्ट्रीय सस्था की स्थापना अति उत्तम कार्य था। उन्होने लिखा था —

जुटिहैं तीरथराज मे कागरेस के लोग।
महापर्व सुभ जोग यह मिलिहि न बारहिं बार।

---

१ भारतेन्दुग्रन्थावली भाग १ पृ० ११७
२. प्रतापलहरी पृ० ३५

तातें धावहु वेगि सब भारत सुत समुदाय ।।[1]

इसी प्रकार दादाभाई नौरोजी के इंगलैंड की पार्लियामेंट में निर्वाचित होने पर 'प्रेमघन' को अति प्रसन्नता हुई थी। उन्होंने यह 'मंगलाशा' व्यक्त की थी कि उनके द्वारा लोकसभा में यहां की दुर्दशा का वर्णन होने से देश की दशा सुधरेगी।[2] भारत को निज प्रतिनिधि भेजने का जो सम्मान ब्रिटिश लिबरल दल ने दिया था। उसकी प्रशंसा के साथ भारतवासियों को दादाभाई नौरोजी पर अभिमान हुआ था। 'प्रेमघन' ने उन्हें सच्चे अर्थों में भारत का सपूत कहा था।

विजय तुमारी अहै विजय जातीय सभा की।
सिगरे भारत की तासों गौरव अति मा की ।।[3]

आगे चलकर कांग्रेस ने जो मांगें ब्रिटिश सरकार के सम्मुख रखी थी, उनका पूर्वाभास 'प्रेमघन' के काव्य में मिल जाता है —

बृटिश राज की प्रजा बृटिन औ हिन्द उभय की।
लखहु दशा पर मुगल भाग के अस्त उदय की ।।
वें निज देश हेतु विरचत हैं नीति नियम सब।
बिन उनकी सम्मति कछु राजा करत भला कब ।।[4]

प्रतापनारायण मिश्र की राष्ट्रीय भावना राजनैतिक जीवन से अधिक संबंधित थी। इल्बर्ट बिल आन्दोलन के संबंध में उन्होंने एंग्लो इंडियन के मुख से कहलवाया था कि इस बिल ने अनर्थ किया है और छाती को जलाने वाली सौत के समान है। उन्होंने प्रायः व्यंग्यात्मक शैली में अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं, इसी कारण सीधे शब्दों में इल्बर्ट बिल का अनुमोदन नहीं किया है।

राष्ट्रीय भावना शनैः शनैः धार्मिक तथा सामाजिक सुधार कार्यों के माध्यम से मूर्त रूप पाने लगी थी। भारतेन्दु युग के अन्तिम चरण में उसका स्वरूप प्रत्यक्ष होने लगा था। साम्प्रदायिक भेदभाव इस भावना में बाधक था। शासकों की चाटुकारिता को बुरी दृष्टि से देखा जाने लगा था। अतः बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने सर सैयद की साम्प्रदायिक भावना तथा शासकों की चाटुकारिता की प्रतिक्रियास्वरूप 'जातीय राष्ट्रीय भावना' की रचना की थी।[5]

भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रवाद के सभी प्रमुख तत्व अपने प्रारंभिक रूप में मिल जाते हैं जैसे अतीत गौरव गान, वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति, राष्ट्र निर्माणात्मक

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली पृ० ३७ ३८
२ प्रेमघन सर्वस्व पृ० २४६
३. वही : पृ० २५६
४ प्रताप लहरी : पृ० १६६
५ गुप्त निबंधावली : पृ० ६२१

कार्यों का उल्लेख आदि। अपने युग की राष्ट्रीय चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति साहित्य ने की है। राष्ट्रीय नेताओ के विचारो को साहित्य मे मुखरित कर तत्कालीन लेखको ने अपने दायित्व का पूर्णतया निर्वाह किया है। इस प्रकार साहित्य तथा देशदशा का अनन्य सबध स्थापित हुआ।

सन् १६०० १६२० ई० तक के साहित्य मे राष्ट्रीय भावना

१६०० ई० के बाद उत्तरोत्तर राष्ट्रीय भावना विकसित होती गई और राष्ट्रीय उद्गारो को नि शक रूप मे अभिव्यक्त करने का साहस आ गया। अब अग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रति किसी प्रकार की श्रद्धा अथवा भक्ति नही रह गई थी। हिन्दी साहित्य ने भी अपने युग की राष्ट्रीय विचारधारा को विशुद्ध रूप मे प्रतिबिम्बित किया। राष्ट्रवाद के विभिन्न अगो की पुष्टि काव्य, नाटक एव कथा साहित्य द्वारा हुई। जैसा कि राष्ट्रवाद के विकास के इतिहास एव स्वरूप (१६०५ १६१६ ई०) मे स्पष्ट किया जा चुका है कि राष्ट्रवादी विचारधारा प्रबल रूप मे सम्पूर्ण देश मे छा *गई थी, प्राचीन भारतीय सस्कृति तथा सभ्यता की धाक भारतीय मस्तिष्क मे बैठाई* जा चुकी थी और साम्राज्यवादियो की निरकुशता से मुक्ति पाने के लिए अतीत-गौरव एव सुदृढ रक्षा-कवच के समान था। अत हिन्दीसाहित्य मे भी भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक उत्कर्ष के सुन्दर, प्रभावोत्पादक, पुराण तथा इतिहास सम्मत विषय चुने गये। अतीत-गौरव की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति मे तीव्रता आई। भौगोलिक एकता एव मातृभूमि स्तवन पर विशेष बल दिया गया। वर्तमान के अभावो—राजनीतिक अभिशाप, सामाजिक कुरीतियो, आर्थिक शोषण, सास्कृतिक हीनता का चित्रण किया गया। राष्ट्रवाद के भावात्मक पक्ष स्वदेशी आन्दोलन, तिलक की उग्र राष्ट्रवादिता, होमरूल आन्दोलन, अहिंसात्मक सत्याग्रह, बलिदान की भावना की साहित्य मे अभिव्यक्ति की गई। भारत के भविष्य के सुन्दर स्वप्न सजोये गये।

अतीत-गौरव गान

अतीव-गौरव जन-जीवन मे आत्म-विश्वास एव स्वाभिमान की भावना भरने मे अधिक सहायक होता है। इसी कारण स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द तथा राष्ट्रीय नेताओ ने भारतीय जीवन-दर्शन एव आध्यात्मिक विचारधारा का आधार ग्रहण किया था। लोकमान्य तिलक की राष्ट्रीयता का मूल प्रेरक तत्व, *भारतीय सास्कृतिक आदर्श एव उसकी पुरातन रीति थी।* *इनके अध्ययन के निमित्त* इतिहास, धर्मग्रन्थो, भारतीय जीवन-दर्शन के महत्वपूर्ण तथ्यो का अनुसधान प्रारम्भ हो गया था।

हिन्दी-साहित्य मे भी भारतीय सास्कृतिक आत्मा अर्थात् भारत के विगत आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक उत्कर्ष के चित्र मिलते हैं।

हिन्दी कविता में अतीत गौरव-गान

भारत के विगत-गौरव का हिन्दी-कविता में वर्णनात्मक एवं इतिवृत्तात्मक रूप में चित्रण मिलता है। इस युग के काव्य की विशेषता यह है कि पौराणिक, प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक आख्यान लेकर कथा काव्य अधिक संख्या में लिखे गए, जैसे—मैथिलीशरण गुप्त का 'रंग में भंग', (१९०९), जयद्रथ-वध (१९१०), अयोध्यासिंह उपाध्याय का प्रिय-प्रवास, सियारामशरण गुप्त का 'मौर्य विजय' (१९१४), जयशंकरप्रसाद का महाराणा का महत्व, लोचनप्रसाद पाण्डेय का 'मेवाड़-गाथा' आदि। मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रीय काव्य-पुस्तक 'भारत-भारती' की रचना भी इसी काल में की, जिसमें वर्तमान अधोगति को अतीत गौरव गान से उत्कर्ष की प्रेरणा मिली। अनेक स्फुट रचनाएं भी भारत के गत गौरव से सबंधित मिलती हैं। इस युग के कवियों ने भारत की पुरातन आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, नैतिक मान्यता पर विशेष बल दिया, जिसने पूर्वजों के भौतिक उत्कर्ष को नियमित कर रखा था।

आध्यात्मिक उत्कर्ष

भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष के उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत कर देशवासियों को उनकी आध्यात्मिक उच्चता का संदेश देने के लिए राम एवं कृष्ण के चरित्र पर प्रकाश डाला गया। रामचरित्र की विशेषताओं के उद्घाटन के लिए माखनलाल चतुर्वेदी ने सन् १९०६ और सन् १९१६ में दो 'रामनवमी' कविताओं की सर्जना की। रामनवमी के पुण्य पर्व पर पुनः रामजन्म का आह्वान करता हुआ कवि आर्यधर्म के विस्तार की आकांक्षा रखता है। १९०६ में रचित 'रामनवमी' कविता में चतुर्वेदी जी ने यह आशा व्यक्त की है कि राम के आगमन से मेघनाद सम शत्रु दब जायेंगे और भारत भूमि पुनः पवित्र हो जायेगी।[1] इस कविता में मर्यादा पुरुषोत्तम राम को आध्यात्मिक वीर-पुरुष के रूप में दृष्टिगत किया गया है। नाथूराम शंकर शर्मा ने पवित्र रामचरित पर काव्य रच देशवासियों से उसे उर में धारण करने का आग्रह किया है।[2] 'रामलीला' कविता में राम की लीला गाई है।[3] कृष्णचरित्र की गौरव गरिमा का गायन अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" के प्रिय-प्रवास महाकाव्य में मिलता है। इस ग्रन्थ में 'हरिऔध' जी ने कृष्ण को एक आदर्श चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। यशोदा मातृत्व रस में पगे हुए शब्दों द्वारा कृष्ण के चरित्र

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी माता प्रथम संस्करण सं० २००८, पकज प्रकाशन खंडवा
२ नाथूरामशंकर शर्मा शंकर सर्वस्व पृ० ६६
३ नाथूरामशंकर शर्मा . शंकर सर्वस्व पृ० २७४

की दिव्य विशेषताओ—शील सौजन्य, परदुखकातरता, मृदु-भाषिता आदि का उल्लेख करती है।[1]

'भारत-भारती' मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध राष्ट्रीय कृति है। प्रो० सुधीन्द्र ने इस ग्रथ के सबध मे लिखा है- 'भारत भारती' ने अतीत-दर्शन का एक गौरव-गर्वित वातावरण बनाया और उसकी प्रतिध्वनि कई वर्षों तक कवियो के कण्ठो से स्फुट कविताओ के रूप मे होती रही।[2] इस काव्य-पुस्तक को कवि ने तीन खण्डो मे विभाजित किया है अतीत वर्तमान एव भविष्य। अतीत खड मे पूर्वजो का कीर्ति गान मिलता है। कवि ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि हमारे पूर्वज धर्मवीर, गभीर, वरवीर तथा ध्रुववीर थे। उनका मानसिक स्तर अति उच्च था। उन्नति के उत्तु ग शिखर पर पहुच कर भी हमारे पूर्व-पुरुष विनीत, परदुखकातर एव परमार्थी थे।[3]

देखो हमारा विश्व मे कोई नहीं उपमान था।
नर देव थे हम और भारत देव लोक समान था॥[4]

पुरुष-वर्ग ही नही नारी-वृन्द भी आध्यात्मिक एव दैवी गुणो से विभूषित था। प्रिय प्रवास की राधा इसका सुन्दर निदर्शन है। मैथिलीशरण गुप्त न भारत भारती मे सावित्री, सुकन्या, अशुमती जैसी सती एव सेवार्थ जीवन व्यतीत करने वाली नारियो का उल्लेख किया है। नारी वर्ग म भी दिव्य बल था जैसे गान्धारी, दमयन्ती आदि मे।[5]

भारत मे अध्यात्म विद्या का आलोक फैला हुआ था। सृष्टि के गूढ रहस्य को सर्वप्रथम भारत मे समझा गया था। यौगिक विद्या मे पारगत योगी आज भी मिल जायेंगे।[6] गुप्त जी के मत मे जगत ने सर्वप्रथम दार्शनिक सिद्धान्त गौतम, कपिल, जैमिनि, पतजलि, व्यास और कणाद से पाये हैं। जब ससार म इजील और कुरान की रचना नही हुई थी, वेद ग्रन्थ रचे जा चुके थे।[7]

सियारामशरण गुप्त ने 'मौर्य विजय' नामक काव्य ग्रन्थ मे इतिहास प्रसिद्ध वीर नृपवर, चन्द्रगुप्त मौर्य की कथा ली है। इस आख्यान-काव्य मे सियाराम जी ने भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष के सबध मे लिखा है कि अन्य देशो न

---

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध प्रिय प्रवास पृ० ७१-७२ पचम बार, प्रकाशक—खग विलास प्रेस, बाकीपुर, बा० रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित
२ प्रो० सुधीन्द्र हिन्दी कविता मे युगान्तर पृ० २५८
३ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० १६ चौबीसवा सस्करण २००६ वि०
४ वही पृ० १६
५ वही पृ० १३-१४'
६ वही पृ० २८
७ वही पृ० ४३

इसी देश से सदुपदेश-पीयूष का पान किया है —

है क्या कोई देश यहा से जो न जिया है ?
सदुपदेश पीयूष सभी ने यहा पिया है।
नर क्या, इसको अवलोक कर कहते हैं सुर भी यही—
जय जय भारतवासी कृती, जय जय जय भारत मही ॥[1]

हिन्दी साहित्य म अतीतकालीन भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष के चित्र पुरातन हिन्दू धर्म हिन्दू दर्शन एव आध्यात्मिक भावना को दृष्टि में रखकर रचे गये हैं। वस्तुत भारत का आध्यात्मिक ज्ञान अति पुरातन है। अन्य अल्पसख्यक भारतीय जनता के धर्म की उपेक्षा न करने पर भी हिन्दू आध्यात्मिकता के सम्मुख उन्हे अधिक प्राचीन नही माना गया है। इस युग के काव्य से यह भी स्पष्ट ध्वनित होता है कि *अन्य धर्म भी भारत की ही पुरातन आध्यात्मिक विचारधारा से अनुप्राणित हैं।*

नैतिक उत्कर्ष

नैतिकता आध्यात्मिक उत्कर्ष तक पहुचने का आवश्यक साधन है। इन दोनों का *अन्योन्याश्रित सबध है। इस युग के काव्य मे पूर्वजो के नैतिक उत्कर्ष एव आदर्श* जीवन के वर्णन भी मिलते हैं। राम और कृष्ण जैसे ईश्वरावतारो को आधुनिक युग मे यथासभव मानव चरित्र के रूप मे चित्रित किया गया और उनके माध्यम से मानव के उच्च नैतिक गुणो को प्रकाशित कर राष्ट्र-जीवन के उत्थान के लिये मान्य ठहराया गया। आर्य समाज जैसी सस्थाए और स्वामी विवेकानन्द जैसी महान आत्मायें देश *की आध्यात्मिक नैतिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील थीं ही।*

अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रिय-प्रवास' मे कृष्ण का आदर्श चरित्र मिलता है। कृष्ण चरित्र द्वारा नैतिक आदर्शों की पूर्ति की गई है। वे एक आदर्श मानव, समाज सेवक के रूप मे सत्याचरण का महान् आदर्श रखते हैं। वृज मे घनघोर वृष्टि होने पर, परोपकार-भावना से, वृजवासियो की रक्षा करने के लिए असीम साहस भर कर, मनुष्यो और गौओ को गोवर्द्धन पर्वत की सुरक्षित कदराओ मे पहुचाते हैं —

भ्रमण ही करते सबने उन्हें,
सकल काल लखा सप्रसन्नता।
रजनि भी उनकी कटती रही,
स विधि-रक्षण मे ब्रज-लोक के।
सब अपार प्रसार गिरीन्द्र मे
ब्रज-धराधिप के प्रिय-पुत्र का,

१ सियारामशरण गुप्त मौर्य विजय पृ० ११, २००५ विक्रम, प्रकाशक—साहित्य सदन, चिरगाव, झांसी

सकल लोग लगे कहने उसे
रख लिया उगली पर श्याम ने ॥[1]

राम का चरित्र तो नैतिकता का प्रतिरूप है । उन्होने अधर्म अन्याय, अत्याचार को मिटाकर अपना राज्य स्थापित किया था । आज भी 'रामनवमी' का पुण्य पर्व देशवासियो को नैतिकता का महत्वपूर्ण सदेश देता है। इस युग मे राम चरित्र को लेकर कई कविताए लिखी गई हैं । माखनलाल चतुर्वेदी की 'रामनवमी' कविताए[2] और 'पवित्र रामचरित्र[3] कवि शकर की ।

१६०० २० ई० के काल मे पुरातत्व विभाग और कनल टाड के 'राजस्थान' के फलस्वरूप राजस्थान के अनेक वीरत्व एव नैतिक उच्चादर्शो से पूर्ण चरित्रो का उद्घाटन हुआ । साधारण हिन्दू जनता को अपने देश की वीर जाति राजपूतो पर गर्व होना स्वाभाविक था। कवियो ने इनकी वीरता का गान कर पराधीन हतोत्साह, अवनत भारत जनता को ओज से ही नही भरा वरन् वीर पात्रो के नैतिकतापूर्ण चरित्र द्वारा जनता को सयम और नियम का पाठ भी पढाया । मैथिलीशरण गुप्त ने रग मे भग' (१६०६) नामक ऐतिहासिक कथाकाव्य लिखा । इसकी भूमिका मे महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है 'देश के विशेषकर राजपूताने के इतिहास मे ऐसी अनन्त वीरोचित, गाढ देशभक्ति-दर्शक और गम्भीर गौरवास्पद घटनाए हुइ हैं जो चिरस्मरण योग्य हैं । उनको भूलना, उनसे शिक्षा न लेना, उनके महत्व को लेख, पुस्तक और कविता द्वारा न बढाना दु ख की बात है—दुर्भाग्य की बात है । '[4] द्विवेदी जी के इस परिताप का साहित्यकारो पर विशेष प्रभाव पडा होगा, और रग मे भग' के पश्चात् शिक्षा प्रद नैतिकता एव वीरतापूण ऐतिहासिक आख्यानो को लेकर काव्य, नाटक, कथा-साहित्य लिखने की परम्परा द्रुत गति से चल पडी। 'रग मे भग' काव्याख्यान मे कवि ने नारी के नैतिक उच्चादर्श की स्थापना की है । बूदी नरेश नरसिह के भाई लालसिह की कन्या का विवाह सीसोदिया वश के भूप 'खेतल' से होता है लेकिन विदा के समय लालसिह नृपाल ने वरपक्ष के राजकवि से कह दिया कि मूर्ति को देखकर जो उसने अपने महाराजा की प्रशसा की थी वह मात्र चाटुकारी थी । राजकवि ने सलापवश शीश काट डाला, जिसने वर पक्ष को कन्या-पक्ष से युद्ध के लिए प्रेरित किया । वर को भी वीर गति मिली । नव विवाहिता वधू का सौभाग्य

१ अयोध्यासिह उपाध्याय हरिऔध प्रिय-प्रवास पृ० १५६

२ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ११

३ शकर शकर सर्वस्व पृ० ६६ प्रथमावृत्ति सम्पादक—श्री हरिशकर शर्मा, प्रकाशक—गयाप्रसाद एण्ड सस, आगरा

४ मैथिलीशरण गुप्त रग मे भग भूमिका द्वादश सस्करण प्रकाशक—साहित्य सदन, चिरगाव, झासी

लुट गया लेकिन उसने पति के साथ भस्म होकर सतीत्व का महान् आदर्श रखा। भारतीय नारी की नैतिकता का यह अनुपम उदाहरण, भारत की विश्वख्याति का कारण है —

> धन्य है तू आर्य कन्ये। धन्य तेरा धर्म है,
> देवि तू ! स्वर्गीय है, स्वर्गीय तेरा कर्म है।
> प्राण देना धर्म्म पर तेरे लिये क्या बात है,
> कीर्ति भारत की तुभी से विश्व मे विख्यात है।[1]

मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' के अतीत-खण्ड मे भी पूर्वजो के नैतिक उच्चादर्शों का उल्लेख किया गया है। भारत वह देश है जहा अतीत काल मे, जब वह किसी भी विदेशी शासक से आक्रान्त नही हुआ था राजा भी भोग से मुक्त रहा करते थे। भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता एव नैतिकता जीवन का लक्ष्य था। प्रजा को अपनी सतान समझते थे—'होते प्रजा के अर्थ ही वे राज्यकार्यासक्त थे'[2] गुप्त जी के अभिमत मे भारतवासियो ने शक्ति का उपयोग अन्याय एव अत्याचार के दमन के लिए किया था। वह कभी अशान्ति और भ्रान्ति का कारण नही बना।[3] 'भारत भारती' को राष्ट्रीय गीता की सज्ञा से विभूषित करना अनुचित न होगा क्योकि इसमे भारतीयो के उद्बोधन का सफल प्रयास हुआ है।

जयशंकर प्रसाद का 'महाराणा का महत्व' और सियारामशरण गुप्त का 'मौर्यविजय' ग्रन्थ प्रसिद्ध ऐतिहासिक वीराख्यानक काव्य ग्रन्थ हैं। प्रसाद जी के 'महाराणा का महत्व' की मूल भावना महाराणा प्रताप के चरित्र की नैतिक श्रेष्ठता का दिग्दर्शन कराना है। महाराणा का शारीरिक बल विक्रम नैतिकता की अग्नि मे तपकर स्वर्ण-सा दमक गया था। इसी कारण इस काव्य ग्रन्थ मे महाराणा कृष्णसिंह द्वारा बन्दिनी नवाब की पत्नी को सादर नवाब को लौटा देते हैं। उनकी दृष्टि मे अनुचित बल से काम लेना सुकर्म नही था —

> कहा तमक कर तब प्रताप ने—" क्या कहा
> अनुचित बल से लेना काम सुकर्म है।
> इस अबला के बल से होंगे सबल क्या?
> रण मे टूटे ढाल तुम्हारी जो कभी
> तो बचने के लिये शत्रु के सामने
> पीठ करोगे? नहीं कभी ऐसा नहीं,

१. मैथिलीशरण गुप्त रग मे भग पृ० २४
२ मैथिलीशरण गुप्त, भारत भारती पृ० ५३
३. वही, पृ० ५३

दृढ प्रतिज्ञा यह हृदय, तुम्हारी ढाल बन
तुम्हे बचायेगा। इस पर भी ध्यान दो।'[1]

प्रसाद जी ने महाराणा द्वारा यह भी कहलाया है कि 'परम सत्य को छोड न हटते वीर हैं।'[2] यवनो से महाराणा की शत्रुता थी युद्ध था, लेकिन यवनीगण से द्वेष नही था।

महाराणा प्रताप ने अपने आदर्श चरित्र का प्रमाण देकर नैतिकता के युद्ध मे नवाव को पराजित कर दिया था। 'कर्मयोग—रतन वीर को मिलती सिद्धि सदा अपने सत्कर्म से' यही इस कथा का मूल मन्त्र है।

सियारामशरण गुप्त ने 'मौर्यविजय नामक ऐतिहासिक काव्य मे चन्द्रगुप्त मौर्य के तेज, विक्रम, प्रजावत्सलता, न्याय आदि का उल्लेख किया है।

भारत भूपति चन्द्रगुप्त थे तेजोधारी
शासन उनका प्रजावर्ग को था सुखकारी।
थे वे सद्गुणशील और बल विक्रम वाले।'
पद-मर्दित सब शत्रु उन्होंने थे कर डाले।।[3]

मौर्य-कालीन देशवासियो की चारित्रिक श्रेष्ठता के सम्बन्ध मे कवि ने लिखा है :—

दुश्चरित्रता नहीं देखने मे आती थी,
नहीं किसी की वृत्ति अकार्यों पर जाती थी।
सब प्रेम सहित थे चाहते एक दूसरे को सदा,
सद्भाव-पद्म परिपूर्ण थे सबके मानस सर्वदा।।[4]

कवि के मतानुसार उस समय देश अत्यधिक समुन्नत था, जैसा कि अन्य कोई भी देश न था, सब नियमपूर्वक रहते थ, कोई झूठी वात न कहता था और शासन का सब कार्य इस प्रकार होता था जैसे स्वय धर्म ही राजकाज करता हो।[5] अर्द्ध एशिया खण्ड को विजित करने वाला सिल्यूकस भी भारत के चारित्रिक उत्कर्ष को देख अति प्रभावित होकर कहता है —

धीर-वीर ये भारतीय होते हैं कैसे,
किसी देश के मनुज न देखे इनके जैसे।

---

१ जयशङ्कर प्रसाद महाराणा का महत्व पृ० ११ : तृतीय सस्करण, स० २००५ प्रकाशक तथा विक्रेता भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

२. जयशंकर प्रसाद महाराणा का महत्व पृ० १२

३ सियारामशरण गुप्त : मौर्य विजय : पृ० ५ : २००५ वि०

४ वही, पृ० ६

५ वही, पृ० ७

क्या ही उज्ज्वल, गेय चरित इनके होते हैं,
ग्रीकों का भी गर्व कार्य इनके खोते हैं।[1]

इतिहास हमारे इस अतीतकालीन उत्कर्ष का साक्षी है। लोचनप्रसाद पाण्डेय ने भी 'मेवाड-गाथा' (१६१४ ई०) नामक ऐतिहासिक काव्य मे मध्यकालीन देश के नैतिक उत्कर्ष का उल्लेख इन पक्तियो मे किया है —

शुचि स्वदेश वात्सल्य, सत्य प्रियता, सहिष्णुता।
आत्मत्याग, श्रमशक्ति, समर दृढ़ता रण पटुता॥
विमल धीरता, वीरता, स्वाधीनता, अखण्ड।
करती है जिस भूमि को, उज्ज्वल भारत खण्ड,
अखिल भूलोक मे।[2]

'रत्नाकर' ने भी काव्य द्वारा नैतिकता, धार्मिकता, सत्यता का उच्च आदर्श ब्रजभाषा मे रखा है। 'हरिश्चन्द्र' नामक काव्य मे पौराणिक कथा मे देशभक्ति की झलक स्पष्ट है। राजा हरिश्चन्द्र का सत्यनिष्ठ चरित्र आज भी आदर्श एव अनुकरणीय है।[3]

मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, जयशंकर प्रसाद सियारामशरण गुप्त, लोचन प्रसाद पाण्डेय प्रभृति कविगणो को देश के प्राचीन नैतिकादर्शो मे पूर्ण विश्वास था। वे देश की आध्यात्मिक, नैतिक श्रेष्ठता के आकांक्षी थे। अत. इतिवृत्तात्मक कथा काव्य अथवा वर्णनात्मक स्फुट कविता द्वारा पौराणिक अथवा ऐतिहासिक आख्यानो द्वारा देश को आध्यात्मिक, नैतिक आदर्शों से परिचित कराया।

भौतिक उत्कर्ष

भारत शताब्दियो से अपनी आध्यात्मिकता, दार्शनिकता एव नैतिकता के लिए प्रसिद्ध है। इसका यह अर्थ नही कि भौतिक प्रसाधनो, कला-कौशल, ऐश्वर्य वैभव मे वह किसी देश से पिछडा था। पूर्व काल मे वह भौतिक दृष्टि से भी सुसम्पन्न था। शिल्पकला का इतना विकास हो चुका था कि हमारी प्राचीन मूर्तिया भी ऊँचे चढने और आगे बढने का सन्देश देती थी जैसा कि 'रग मे भग' मे मैथिलीशरण जी ने एक पक्ति मे इसका सकेत कर दिया है।[4] 'भारत भारती' म मैथिलीशरण गुप्त जी ने विशेष रूप से अनेक विषयो के अन्तर्गत देश की भौतिक समृद्धि, कला-कौशल, वाणिज्य आदि का विस्तृत वर्णन किया है। कवि के अभिमत मे शिल्प विद्या का चरमोत्कर्ष ही

१ सियारामशरण गुप्त मौर्य विजय पृ० ६
२ लोचनप्रसाद पाण्डेय मेवाड गाथा पृ० ६
३ रत्नाकर : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ५५
४ मैथिलीशरण गुप्त रग में भग : पृ० ७

महाभारत का कारण बना था। पुरातत्व विभाग की ओर से खुदाई का कार्य प्रारम्भ होने पर अनेक चिह्न प्राचीन शिल्प-कला के मिले हैं। सिन्धु-सेतु, दक्षिण के मन्दिर प्राचीन भारत की कला कौशल की वृद्धि के स्मारक हैं। 'चित्रकारी', मूर्ति निर्माण, सगीत, अभिनय आदि कलाएँ अत्यधिक विकसित हो गई थी। पुरुष ही नही स्त्रिया भी चित्रकारी मे निपुण थी।[1] कवि के अनुसार हम रा साहित्य अति प्राचीन है। वेद, उपनिषद्, सूत्र-ग्रन्थ, दर्शन, गीता, धर्मशास्त्र नीति ग्रन्थ, ज्योतिष, अकगणित, रेखा-गणित, सामुद्रिक और फलित ज्योतिष, भाषा और व्याकरण, वैद्यक सभी विषयो के ग्रन्थो की रचना सर्व प्रथम भारत मे हुई थी, जिसका अनुकरण एशिया के साथ पश्चिमी देशो ने भी किया था। इस उल्लेख को पुष्ट तर्कों के साथ गुप्तजी ने रखा है। वाल्मीकि, वेदव्यास और कालीदास के साहित्य-ग्रन्थो की समानता शेक्सपीयर, होमर और फिरदौसी नही कर सकते।[2] हमारा प्राचीन इतिहास आज भी बहुत कुछ सुरक्षित है जो हमासे पूर्वजो के जीवन के गौरवमय पृष्ठो का उन्मूल्यन करता है। 'मौर्य-विजय' मे सियारामशरण गुप्त ने मौर्यकालीन भारत की भौतिक समृद्धि का सुन्दर वर्णन किया है :

उनकी सु-राजधानी विदित पाटलिपुत्र मनोज्ञ थी;
जिसकी उपमा के अर्थ बस अमरपुरी ही योग्य थी ॥[3]

भौतिक-उत्कर्ष के वर्णन मे कवियो का सर्वाधिक ध्यान भारत की प्राचीन वीर-भावना की ओर आकृष्ट हुआ है। इस वर्णन मे ओज की मात्रा का प्राधान्य है। यह लोकमान्य तिलक जैसे उग्र राष्ट्रवादियो का प्रभाव था जिन्होने देशवासियो को अपनी छिपी हुई शक्ति पहचानने के लिए, देश के वीर-चरित्रो की ओर देखने को प्रेरित किया था। राम और कृष्ण जैसे ईश्वरीय पौराणिक चरित्रो के अकन मे भी इस युग के कवि ने, वीरत्व के प्रबल आग्रह से कार्य लिया है। माखनलाल चतुर्वेदी 'रामनवमी, (१९०६ ई०) कविता मे लिखते हैं :—

पधारो, एक बार फिर सुनें, धनुष की वह अद्भुत टंकार,
पधारो मेघनाद दब जाय हो पड़े जहा कठिन हुकार ॥[4]

'प्रियप्रवास' के कृष्ण वीर महापुरुष हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने 'रग मे भग' की कथा राजपूताने के इतिहास से लेकर और 'जयद्रथ-वध' की कथा 'महाभारत' से लेकर दो सुन्दर वीर-रस पूर्ण करुण कथा काव्य लिखे हैं। 'रग मे भग' कथा काव्य मे वीर-हाडा-कुम्भ की वीरता का आदर्श चित्र चित्रित किया गया है। आन और मान पर मर जाने वाली वीर राजपूत जाति हमारे देश का गौरवमय पक्ष है। बू दी निवासी

१. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती पृ० ४६
२. वही, पृ० ४३
३. सियारामशरण गुप्त मौर्यविजय . पृ० ५
४. माखनलाल चतुर्वेदी : माता . पृ० १०

कुम्भ की वीर भावना और देश-भक्ति को यह सहन नही था कि बूँदी के किले की प्रतिकृति बनाकर उसे तोडा जाय —

> स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्म भूमि कही गई,
> सेवनीया है सभी की वह महा महिमामयी ।
> फिर अनादर क्या उसी का मैं खड़ा देखा करू ?
> भीरु हू क्या मैं अहो । जो मृत्यु से मन मे डरू ।[1]

उसने 'नकली किले के लिए प्राणोत्सर्ग कर अपनी वीरता का ज्वलत उदाहरण रखा था । *'जयद्रथ-वध' नामक खड-काव्य महाभारत युग की वीर-भावना को मुखरित करता है* । इसमे चक्रव्यूह तोडने के प्रयास मे वीरगति पाने वाले षोडश वर्षीय वीर अभिमन्यु तथा अर्जुन द्वारा जयद्रथ-वध कर उसकी मृत्यु का प्रतिशोध लेने की *कथा है । आर्य-वीर विपक्ष के वैभव को देखकर डरते नही थे । उनम अतुलनीय साहस* एव पराक्रम था —

> अभिमन्यु षोडश वर्ष का फिर क्यो लडे रिपु से नहीं,
> क्या आर्यवीर विपक्ष-वैभव देख कर डरते कहीं ?
> सुन कर गजो का घोष उसको समझ निज-अपयश-कथा,
> उन पर झपटता सिंह शिशु भी रोष कर जब सर्वथा ।।[2]

अभिमन्यु की वीरता की प्रशसा विपक्षियो ने भी की थी । अर्जुन की वीरता का वर्णन कवि ने आलकारिक भाषा मे किया है —

> जाज्वल्य ज्वालामय अनल की फैलती जो कान्ति है
> कर याद अर्जुन की छटा होती उसी की भ्रान्ति है ।
> इस युद्ध मे जैसा पराक्रम पार्थ का देखा गया,
> इतिहास के आलोक मे है सर्वथा ही वह नया ।।[3]

पुरुषो की भाति नारिया भी वीर थी । स्वय ही प्रियजनो को युद्ध के लिए सुसज्जित कर भेजती थी । जयद्रथ वध म उत्तरा कहती है—

> *मैं यह नहीं कहती कि रिपु से जीवितेश लडें नहीं,*
> तेजस्वियों की आयु भी देखी भला जाती कहीं ?
> मैं जानती हू नाथ यह मैं मानती भी हूँ तथा—
> उपकरण से क्या, शक्ति मे ही सिद्धि रहती सर्वथा ।

---

१ मैथिलीशरण गुप्त रग मे भग पृ० २४
२. मैथिलीशरण गुप्त जयद्रथ-वध पृ० ६
३ वही, पृ० ६६-६७

क्षत्राणियों के अर्थ भी सबसे बड़ा गौरव यही
सज्जित करें पति-पुत्र को रण के लिए जो आप ही ।।[1]

'भारत भारती' में भी कवि ने देश की विगत वीरता का वर्णन किया है। 'हमारी वीरता' कविता में कवि ने लिखा है कि भारत में चारों प्रकार के वीर थे— कर्मवीर, युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर। इतिहास साक्षी है कि पुरुषों के साथ स्त्रियां भी यहां लड़ी हैं। हमारे वीर-पुरुषों के समर-सिद्धान्त भी औदार्य-पूर्ण तथा पवित्र थे, जिनमें केवल युद्ध-क्षेत्र में ही शत्रु वैरी था अन्यथा मित्र।[2]

जयशंकरप्रसाद का 'महाराणा का महत्व' और सियारामशरण गुप्त का 'मौर्य-विजय' भारत की अतीतकालीन वीर-भावना के परिचायक काव्य ग्रन्थ हैं। राजपूत वीरों की आकृति ही उनके वीरत्व की झलक दिखाने वाली थी। महाराणा के वीर सैनिक 'लू' सदृश विरोधी यवनों पर आक्रमण करते थे।[3] महाराणा प्रताप तो आर्य जाति के तेज, देशभक्त, जननी के सच्चे वीर पुत्र थे।[4] सियारामशरण गुप्त ने इतिहास प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त मौर्य की कथा लेकर 'मौर्य विजय' में भारतवासियों की सिल्युकस जैसे विश्व विजय के आकांक्षी वीर पर विजय दिखाई है। इस पुस्तक की भूमिका में मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है— "यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हो और वह उस पर अभिमान करे तो उसका भविष्यत् भी गौरवपूर्ण हो सकता है। जो जिस बात पर अभिमान करता है—अथवा अभिमान करना सीखता है—वह एक न एक दिन उसके अनुकूल कार्य करने की चेष्टा भी कर सकता है। पतित जातियों की उनके उत्थान में उनके अतीत गौरव का स्मरण बहुत बड़ा सहायक होता है।"[5] निःसन्देह 'मौर्यविजय' जैसी अतीत-गौरव स्मरण के हेतु लिखी गई कृतियां, पराधीन एवं दलित भारतवासियों को स्वाभिमान एवं उत्साह से भरने में सहायक थीं। कवि ने काव्य के अन्त में लिखा है—

जग में अब भी गूंज रहे हैं गीत हमारे,
शौर्य-वीर्य गुण हुए न अब भी हम से न्यारे।
रोम, मिस्र, चीनादि कांपते रहते सारे,
यूनानी तो अभी अभी हम से हैं हारे।
सब हमें जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय;
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय।।[6]

---

१. मैथिलीशरणगुप्त जयद्रथ वध पृ० ७
२ मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० ५२
३ जयशंकर प्रसाद : महाराणा का महत्व, पृ० ५
४ वही, पृ० ६
५ सियारामशरण गुप्त मौर्य विजय : भूमिका
६ वही, पृ० ३०

चन्द्रगुप्त मौर्य की वीरता पर मुग्ध होकर ग्रीक सम्राट् ने उनसे अपनी सुता का विवाह किया था। प्रच्छन्न रूप से प्रसाद जी ने इस इतिहास प्रसिद्ध घटना द्वारा भारतीयो को प्रोत्साहित किया है कि उनके पूर्वजो ने विदेशी शक्तियो को परास्त किया था, अत उनके लिए भी विदेशी शासको से मुक्त होना असभव अथवा कठिन नही है।

भारतेन्दु युग की अपेक्षा द्विवदी युग मे अतीत के अधिक भव्य चित्र कवियो की लेखनी द्वारा प्रस्तुत किये गये। इस युग के कवियो का मनोभाव बदल गया था, इस कारण अतीत की दुर्बलताग्रो अथवा भूलो पर बल न देकर उज्ज्वल पक्ष के अकन पर दृष्टि रही। भारतेन्दु युग की निराशा के स्थान पर आशा और विश्वास से भरा हुआ अतीत सम्मुख आया। यह चित्रण देशवासियो की शिराओ मे आध्यात्मिकता नैतिकता एव वीर भावना का रक्त-सचार करने मे पूर्ण समर्थ था। अतीत गौरव गान मे भारतीय जीवन-दर्शन, आदर्श, मूल्य और मान्यताओ की प्रतिष्ठा की गई।

काव्य मे वर्णित अतीत-गौरव वर्णन पर यह दोष लगाया जा सकता है कि यह केवल हिन्दू जाति अथवा हिन्दू सम्प्रदाय की स्वाभिमान की भावना के उद्रेक अथवा जागृति मे सहायक है।[1] हिन्दी के कविगणो ने देश मे बसने वाली अन्य अल्प सख्यक जातियो का विचार नही रखा जैसा कि इस युग की राष्ट्रीवादी विचारधारा के विकास के इतिहास मे स्पष्ट किया जा चुका है मुसलमानो ने राष्ट्रय भावना के विकास मे अपना पूर्ण सहयोग प्रदान नही किया था और लार्ड कर्जन की बग भग नीति ने हिन्दू-मुस्लिम-वैषम्य का बीज वपन कर मुस्लिम-लीग जैसी साम्प्रदायिक सस्था को जन्म दिया था। इस कारण इतिहास के मुस्लिम काल और मुसलमान पात्रो के प्रति हिन्दी कवियो की सवेदना जाग्रत न हो सकी थी। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती मे यह स्पष्ट कह दिया है कि मुसलमान शासको के युग मे ही भारत की स्वतन्त्रता सो गई थी।[2] युग की ऐतिहासिक परिस्थिति म कवि इतना उदार न बन सका कि देश के मुसलमानो की सास्कृतिक चेतना को अपना सकता। वैसे इस युग के काव्य मे यवनो के प्रति विद्वेष का भाव नही मिलता। आर्य-समाज, स्वामी विवेकानन्द और राष्ट्रवादी नेतागण उदाहरणार्थ लोकमान्य आदि की प्राचीन भारतीय सस्कृति, हिन्दू धर्म, वेद-ग्रन्थो पर अटूट श्रद्धा थी जिनसे अधिकाश कवि प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त गाधी जी के आगमन के पूर्व राष्ट्रवाद का विस्तृत रूप भी नहीं आ पाया था। तत्कालीन परिस्थितियो को दृष्टिगत कर कवियो की अतीतकालीन हिन्दू सास्कृतिक चेतना *न्याय्य एव सगत लगती है।*

---

१ डा० केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा का सास्कृतिक स्रोत। पृ० ११६
२ मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० ७४

अतीत-गौरव की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति

इस युग के कवियो की, अतीत गौरव की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति भी अधिक तीव्र थी। अतीत-गौरव-गान का सबसे बडा उद्देश्य यही होता है कि दुर्दशाग्रस्त देशो मे अपनी अवनति के प्रति क्षोभ का भाव जाग जाये। इस प्रकार अतीत गौरव से सम्बन्धित सभी काव्य-ग्रन्थ प्रत्यक्ष रूप मे इस ध्येय की पूर्ति करते हैं। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, जयशकर प्रसाद, सियाराम शरण गुप्त सभी ने अतीत-गौरव से भारत के तत्कालीन वर्तमान की तुलना की है।

मैथिलीशरण गुप्त ने रग मे भग' के प्रारम्भ मे ही विगत गौरव का वर्णन करते समय वर्तमान परिवर्तित दशा का सकेत कर दिया है —

जिस समय से इस कथा का है यहां वर्णन चला,
था अनल निधि गुण अवनि तव बिक्रमी सवत् भला।
उस समय से इस समय की कुछ दशा ही और है,
पलटता रहता समय ससार मे सब ठौर है॥[1]

'भारत भारती की रचना का उद्देश्य ही प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का वर्णन और भविष्यत् के लिए प्रोत्साहन है। अतीत गौरव की स्मृति की पृष्ठ-भूमि म कवि ने वर्तमान पर विचार किया है और भविष्य का स्वप्न देखा है। कवि ने लिखा है कि भारत भूमि का उत्कर्ष अति प्राचीन है, आज भी इससे पुरातन देश विश्व मे नही है।। विद्या कौशल के प्रथम आचार्य यही हुए, यहा के निवासी आर्य-जन हैं लेकिन आज उनकी सन्तान अधोगति मे पडी है।[2] कवि ने अपने देश की पुरातन सभ्यता, सस्कृति राजनीति आदि की श्रेष्ठता का वणन कर अप्रत्यक्ष रूप से अग्रेजी शासको की कुटिल नीति की निन्दा भी की है।[3] कवि इस तुलनात्मक विवेचन से निष्कर्ष निकालता है कि आज हम पराधीन हैं तो क्या हुआ जो स्वाधीन जातिया है उनकी स्वाधीनता की शक्ति भारत से उधार ली हुई है। यूनान के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि उसे दार्शनिकता और अलौकिक ज्ञान का प्रकाश भारत से मिला है।[4] कभी कभी कवि अपने पूर्वजो के शुद्ध, बुद्ध, स्वस्थ एव कर्तव्य की दृढता से पूर्व जीवन का स्मरण कर और वर्तमान जीवन के आलस्य, व्यभिचार तथा व्याधियो से पूर्ण

---

१ मैथिलीशरण गुप्त रग मे भग पृ० ५
२ मैथिलीशरण गुप्त भारत-भारती पृ० ५
३ वही, पृ० १६
४. वही, पृ० २३

जीवन से तुलना कर अति खिन्न हो जाता है।[१] पतन के कारणो पर भी प्रकाश डाला गया है।[२]

माखनलाल चतुर्वेदी ने भी अतीत से वर्तमान की तुलना करते हुए क्षोभपूर्ण शब्दो मे लिखा था —

कहाँ देश मे हैं वशिष्ठ, जो तुझको ज्ञान बतायें ?
किये गये नि:शस्त्र, किसे, कौशिक रण-कला सिखायें ?[३]

सियारामशरण गुप्त ऐतिहासिक-कथा काव्य "मौर्य-विजय" मे अतीत-गौरव की स्मृति के प्रकाश मे वर्तमान अवनति की कालिमा को नही भूले हैं—

धीर वीर उस समय सभी थे भारतवासी,
थे अब के से नहीं दीन, जड, रुग्ण, विलासी।
आर्योचित ही कार्य सभी कोई करते थे,
रणक्षेत्र मे नहीं काल से भी डरते थे।
आलस्य अनुद्यम आदि का पता न लगता था कहीं,
था देश समुन्नत विश्व मे ऐसा कोई भी नहीं॥
सब कोई उस समय नियमपूर्वक रहते थे,
कभी न कोई झूठी बात मु ह से कहते थे।
शासन का सब कार्य सदा होता था ऐसे—
स्वय धर्म ही राज-काज करता हो जैसे॥[४]

भारतेन्दु युग की निराशा की अपेक्षा द्विवेदी युगीन काव्य मे अतीत-गौरव का वर्णन एव वर्तमान दुर्दशा की अतीतोत्कर्ष से तुलना आशा से भरी हुई है। देश के पुनरुत्थान के लिए देश-जीवन म ऐसा उत्साह था कि काव्य मे भी कवियो की वाणी मे हाहाकार और रोदन नही रह गया था —

जग मे अब भी गू ज रहे हैं गीत हमारे,
शौय वीर्य गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे॥[५]

भारतीय सदा अभय हैं, उनका जय-जयकार सदैव विश्व मे गू जता रहेगा।

हिन्दी नाटको मे अतीत-गौरव का चित्रण :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् कुछ काल तक हिन्दी नाट्य-साहित्य की

---

१ मथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० ५७
२ वही, पृ० ७३-७४
३. माखनलाल चतुर्वेदी माता
४ सियारामशरण गुप्त मौर्यविजय पृ० ६-७
५ वही, पृ० ३०

परम्परा मे उच्च कोटि के कलापूर्ण नाटको का अभाव-सा रहा। जयशंकर प्रसाद के आगमन के पश्चात् ही पुन हिन्दी नाटको को सुदृढ नेतृत्व मिल सका। इस बीच पारसी थियेटर्स के कारण नाटको का ढेर तो अवश्य लगा लेकिन नाट्यकला के विकास एव राष्ट्रीय भावना के प्रसार की दृष्टि से उनका कोई मूल्य नही है। नारायण प्रसाद 'बेताब' हरिकृष्ण जौहर, तुलसीदत्त शैदा', राधेश्याम कथावाचक ने अनेक नाटक लिखे हैं। इस समय लिखे गए नाटको मे सबसे अधिक सख्या पौराणिक नाटको की है। नाट्यकला के तत्वो से पुष्ट नाटक हैं—बदरीनाथ भट्ट का 'कुरु वन दहन' (१६१२ ई०), माधव शुक्ल रचित महाभारत (१६१७) नारायण प्रसाद बेताब का महाभारत' (१६१२), जयशंकरप्रसाद का 'सज्जन आदि। इन पौराणिक नाटको से अतीतकालीन भारत की धार्मिक श्रेष्ठता का प्रतिपादन होता है। अतीत गौरव के अन्य पक्षो का चित्रण नही मिलता। 'सज्जन' नाटक मे जयशंकर प्रसाद ने युधिष्ठिर की सज्जनता एव सत्यता पर प्रकाश डाला है।

भारत के विगत नैतिकादर्श अथवा वीर भावना का चित्रण करने वाले ऐतिहासिक नाटको की परम्परा जयशकर प्रसाद से प्रारम्भ हुई, उनके पूर्व इस प्रकार के नाटको की भी कमी थी।

हिन्दी कथा साहित्य मे अतीत गौरव का वर्णन

इस युग मे उपन्यास कला का भी यथेष्ट विकास न हो सकने के कारण, पौराणिक अथवा ऐतिहासिक आख्यानो को लेकर अतीतोत्कर्ष की झलक दिखाने वाले उपन्यासो का नितान्त अभाव था। किशोरीलाल गोस्वामी ने अवश्य इतिहास से कुछ प्रसग लेकर 'तारा', रजिया बेगम 'द्रौपदी आदि उपन्यास लिखे थे, लेकिन ऐतिहासिक तत्वो की न्यूनता के कारण राष्ट्रवाद की दृष्टि से भी इनका विशेष महत्व नही है। स्वर्गीय बाबू रामप्रताप गुप्त का महाराष्ट्र वीर'[1] उपन्यास मिलता है जो युगीन परिस्थितियो के प्रकाश मे लिखा गया दृष्टिगत होता है। इसमे शिवाजी के साथ महाराष्ट्र के एक अन्य वीर युवक 'कुमार' की देशभक्ति और वीरता का ओजस्वी वर्णन मिलता है।

१६०० ई० के पश्चात् 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के सहयोग से हिन्दी कहानियो का विकास द्रुत-गति से प्रारभ हो गया था। वृन्दावनलाल वर्मा,मैथिलीशरण गुप्त, जयशकरप्रसाद ने भारत के गत वैभव की झाकी दिखाने वाली सुन्दर लघु कहानियों की रचना की थी। वृन्दावनलाल वर्मा की राखी बन्द भाई (१६०८) कहानी मे यवन द्वारा भारतीय आदर्श की रक्षा करवाई गई है। यह दोनो जातियो की एकता का अद्भुत प्रयास भी है। एक यवन एक कुमारी की राखी स्वीकार कर

१ स्वर्गीय बाबू रामप्रताप गुप्त महाराष्ट्र वीर : तृतीय सस्करण, स० १६७८ वि० प्रकाशक—रामलाल वर्मा, ३७१ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता

कर्तव्य पालन का उच्चादर्श रखता है। मैथिलीशरण गुप्त के 'नकली किला' (१६०६ ई०) मे वीर कुम्भा द्वारा मातृभूमि के लिए प्राणोत्सर्ग का महान् दृष्टान्त रखा गया है। इसमे राजपूतो की आन, मर्यादा और वीरभावना पर प्रकाश डाला गया है।

जयशकर प्रसाद की १६२० ई० के पूर्व की कहानियो का सकलन 'छाया' है। नाटक की भाति प्रसाद जी ने कहानियो मे भी भारत के अतीत-गौरव के विभिन्न पक्षो का चित्रण किया है। प्रसाद जी ने नैतिक श्रेष्ठता और परि-भावना को अधिक महत्व दिया है। 'सिकन्दर की शपथ', 'अशोक', 'चित्तौर का उद्धार' कहानिया इसका निदर्शन हैं। 'सिकन्दर की शपथ' कहानी मे राजपूत पुरुष और नारियो की वीरता के साथ नैतिक आदर्शो का अपूर्व सम्मिश्रण मिलता है। वीर राजपूतो ने मृत्यु को अगीकार किया लेकिन 'अपने भाइयो पर अत्याचार करने मे ग्रीको का साथ' नहीं दिया।[1] अफगान रमणी और भारतीय नारी के अन्तर को स्पष्ट करते हुए प्रसाद जी ने भारतीय नारी को नैतिकादर्श का मूर्त रूप और रणचडी घोषित किया है। "रणचण्डियाँ भी अकर्मण्य न रही, जीवन देकर अपना धर्म रखा।' इसी प्रकार 'अशोक' कहानी मे कुणाल एव उसकी पत्नी धर्मरक्षिता के नैतिकतापूर्ण आचरण, कष्ट-सहन, त्याग पर प्रकाश डाला है।[2] 'धर्मरक्षिता पत्नी धर्म का पूर्ण निर्वाह करती है। 'चित्तौर उद्धार'[3] मे वीर हम्मीर अपना स्वत्वाधिकार चित्तौड अपनी पत्नी की सहायता से ले लेते हैं। प्रसाद जी की धर्म-सहिष्णु-प्रवृत्ति तथा राष्ट्रीय भावना ने मुस्लिम काल के आदर्श मुसलमान पात्रो को भी नही छोडा था। 'जहानारा' कहानी मे मुगल शाहजादी के जीवन की विशेषताओ का प्रकाशन हुआ है। 'तानसेन' कहानी मुस्लिम काल की सगीत-कला के उत्कर्ष की द्योतक है।[4]

उपन्यास की अपेक्षा इस युग की कहानियो ने अतीतोत्कर्ष के चित्रण मे अपना विशेष सहयोग प्रदान किया था। अप्रत्यक्ष रूप से इन कहानियो ने देशवासियो को अतीत के वैभवमय आलोचक मे वर्तमान दुर्दशा को देखने के लिए बाध्य किया होगा। प्रसाद जी की कहानियो के अवलोकन के पश्चात् यह नि सन्देह कहा जा सकता है कि कहानी साहित्य ने राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक पक्ष की अभिवृद्धि मे पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

राष्ट्रवाद का रागात्मक पक्ष—देशभक्ति

देश के भौतिक पक्ष के प्रति अनन्य अनुराग से उद्वेलित होकर भी साहित्यिक रचना हुई। हिन्दीकविता मे विशेष रूप से देश की भौगोलिक एकता, प्राकृतिक

१. जयशकर प्रसाद छाया पृ० ५६
२. वही, पृ० ६७
३. वही, पृ० ५६
४. जयशंकर प्रसाद · छाया : पृ० १

सुषमा एव अतुल निधि का निष्पक्ष एव उन्मुक्त भाव से चित्रण किया गया।

इस क्षेत्र मे श्रीधर पाठक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारत देश की वन्दना, जय जयकार एव प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन कई कविताओ मे मिलता है। देश गीत (स० १६७५),[1] जय जय भारत (सवत् १६७४)[2], जय जय भारत (स० १६७४)[3], नौमि भारतम् (स० १६७०)[4], भारताष्टक[5], भारत स्तव (स० १६७४)[6] स्वदेश पचक[7] आदि प्रसिद्ध रचनाए हैं। उनकी दृष्टि मे मातृभूमि भारत धरनि 'सकल जग-सुख-श्रेनि, सुखमा-सुमति सपति-सरनि है, नान धन विज्ञान धन निधि, प्रेम निर्झर झरनि' है और 'त्रिजग-पावन-हृदय भावन भाव तन-मन झरनि' है। भारत की प्राकृतिक शोभा उसके हिमशृग, सुरसरि गगा साधु समाज का जय जयकार करते हुए पाठक जी का देश प्रेम पराकाष्ठा पर पहुच कर मातृभूमि को तीनो लोको का स्तम्भ रूप मानता है, जो अत्यधिक सुन्दर सुख की खान, सती, स्वधर्म मे कुशल और जगत् की ज्योति, जग सृष्टि धुरधरि है।[8] पाठक जी की देशभक्ति मे 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी—' की भावना मिलती है। उन्होंने देश को परम पुनीत मातृ रूप मे देखा है। उनका प्रेम केवल देशवासियो पर ही नही, देश की नदियो पर्वतो पेड पत्तियो पर भी है। उनकी देशभक्ति अति उदार थी, जिसका ब्रिटेन से कोई विरोध नही था—

> प्रिय भारत देश हमारा है। है हमे स्वर्ग से प्यारा
> त्यो ही ब्रिटेन भी सारा। है प्यारा मित्र हमारा
> हम दोनों के सेवक हैं, सेवाधर्म निभावेंगे
> हम सेवा कर सब भाति जगत् सुख पहुचावेंगे।[9]

पाठक जी की देशभक्ति विश्वप्रेम तथा सेवा की भावना से पूर्ण और अति उदार थी। इसी कारण उनका ब्रिटन से विरोध नही था। इसे राजभक्ति नही कहा

१ श्रीधर पाठक भारत गीत पृ० २७ सम्पादक—श्री दुलारेलाल भार्गव, गगा पुस्तकमाला का छठा पुष्प द्वितीय सशोधित एव परिवर्द्धित सस्करण
२ श्रीधर पाठक भारतगीत पृ० ३०
३ वही, पृ० ३२
४ वही, पृ० ३३
५ वही, पृ० ३६
६ श्रीधर पाठक भारत गीत : पृ० ३८
७ वही, पृ० ४१
८ वही, पृ० २०
६ वही, पृ० १२३

जा सकता। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी 'जननी जन्मभूमि' का यशोगान किया है।[1]

मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'रंग में भंग' कथा-काव्य में जननी जन्मभूमि को स्वर्ग से भी महान् कहा है।[2] उनकी देशभक्ति का सांस्कृतिक पक्ष अधिक प्रबल है। भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा के वर्णन की अपेक्षा उसकी सांस्कृतिक श्रेष्ठता के प्रतिपादन में उनकी वृत्ति अधिक रमी है। सियारामशरण गुप्त ने 'मौर्यविजय' में भारतभूमि के बाह्य सौंदर्य का सुन्दर वर्णन किया है।[3] लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'मेवाड़ गाथा' में भारतभूमि का यशोगान करते हुए लिखा है —

शुचि स्वदेश वात्सल्य, सत्य प्रियता, सहिष्णुता।
आत्मत्याग श्रमशक्ति, समरदृढता, रणपटुता॥
विमल धीरता, वीरता, स्वाधीनता, अखण्ड।
करती है जिस भूमि को, उज्ज्वल भारत खण्ड॥
अखिल भूलोक में॥[4]

नाथूराम शंकर की देशभक्ति में वर्तमान दुर्दशा के विषाद का रंग अधिक गहरा है। देश के भौतिक पक्ष—मातृभूमि का स्तवन, भारत माता की विशेषताओं का स्वच्छन्द चित्रण नहीं मिलता।

गिरिधर शर्मा नवरत्न के वन्देमातरम् की धुन पर अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था —

मेरा देश, देश का मैं, देश मेरा जीव प्रान,
मेरा सम्मान मेरे देश की बड़ाई में।
जियूंगा स्वदेश हित, मरूंगा स्वदेश काज
देश के लिये न कभी करूंगा बुराई मैं॥[5]

माधव शुक्ल की 'स्वदेश गीतांजलि' और 'भारत गीतांजलि' स्वदेश के प्रति भक्तिभावना की अंजलियाँ हैं।

भारतेन्दु युग की अपेक्षा द्विवेदी युग में देशभक्ति की अधिक सुपुष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। देश के मानवीकरण के साथ दैवीकरण भी किया गया। अधिक आत्म विश्वास और अनन्य अनुराग के साथ देश की वन्दना, स्तुति, आराधना, पूजन एवं भक्ति-भाव का समर्पण किया गया। देश की उसकी भौगोलिक एकता की पीठिका में

---

१ जन्मभूमि भारतभूमि, सरस्वती, फरवरी माघ १९०२
२ मैथिलीशरण गुप्त, रंग में भंग, पृ० ३८
३ सियारामशरण गुप्त, मौर्यविजय, पृ० ११
४ लोचनप्रसाद पाण्डेय, मेवाड़ गाथा, पृ० ६ (सन् १९१४)
५ गिरिधर शर्मा : पद्यपुंज, पृ० ७८, सम्पादक—धीरामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', प्रकाशक—दत्त ब्रदर्स, अजमेर—प्रथम संस्करण, सन् १९३३ ई०

देखा गया।'[१]

हिन्दी नाटकों मे देशभक्ति की भावना .

हिन्दी साहित्य के इस युग विशेष मे राष्ट्रीय-भावनासयुक्त नाटको की रचना का प्राय अभाव रहा। पौराणिक नाटको की रचना का प्राधान्य रहा। देश की भौगोलिक एकता, वन्दना, मानवीकरण अथवा दैवीकरण आदि राष्ट्रवाद के रागात्मक पक्षो का विवेचन प्राय. नही मिलता।

हिन्दी कथा साहित्य मे देशभक्ति का वर्णन

इस समय तिलस्मी, अय्यारी, जासूसी उपन्यास लिखने की धूम थी। बाबू रामप्रताप गुप्त के 'महाराष्ट्र वीर' नामक वीर-रसपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास मे प्रच्छन्न रूप मे युगीन परिस्थितियो को प्रकाशित किया गया है। इसमे सन्यासी द्वारा वीर कुमार को देशभक्ति का उपदेश दिलाया गया है जिससे भारत तथा भारतवासियो की भलाई हो।[२] वह देश-भक्त, धर्म-सेवक और जीव-प्रेमी है।

देश के प्रति रागात्मक अनुभूति की अभिव्यजक कहानिया भी केवल एक दो ही मिलती हैं। उदयनारायण वाजपेयी की 'जननी जन्मभूमिश्चस्वर्गादपि गरीयसी' कहानी देशभक्ति से सबधित है। अधिकाश कहानिया ऐतिहासिक अथवा सामाजिक लिखी गई थी।

राजभक्ति

ईसवी सन् १६०० के पश्चात् देश की स्थिति मे बहुत परिवर्तन हो गया था। आत्मविश्वास एव स्वाभिमान की भावना आ जाने से विदेशी शासको की अनुनय विनय की नीति मे विश्वास नही रह गया था। 'स्वराज्य' जन्मसिद्ध अधिकार था उसके लिए भिक्षा क्यो मागी जाये। इसी कारण हिन्दी साहित्य मे भी राजभक्ति से मुक्त देशभक्ति अथवा राष्ट्रीय भावना का उद्भव और विकास प्रारम्भ हुआ था। 'नरम दली' राष्ट्रीयता मे विश्वास रखने वाले कवियो की वाणी मे ही अगरेजी राज्य के प्रति मैत्री भावना का स्वर मिलता है। श्रीधर पाठक और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' उदारवादी साहित्यिक नेता थे।

श्रीधर पाठक की राष्ट्रीय-भावना विश्वमैत्री अथवा विश्व-प्रेम की भावना मे पगी हुई थी। अत उन्हें ब्रिटेन से भी कोई विद्वेष नही था।[3] 'पूर्ण' जी ने स्वदेशी के साथ राजभक्ति का भी गान गाया था। उन्होंने प्रत्यक्ष कहा था 'राजभक्ति भी चाहिए सच्ची सहित सुकर्म'।[४] हिन्दू विश्वविद्यालय के डेप्यूटेशन के स्वागत मे

---

१ प्रो० सुधीन्द्र · हिन्दी कविता मे युगान्तर · पृ० २३८

२ स्वर्गीय बाबू रामप्रताप गुप्त . महाराष्ट्र वीर : पृ० ६

३ श्रीधर पाठक : भारत गीत : पृ० १२३

४. पूर्ण पराग : पृ० १७६

उन्होंने अगरेजी राज्य को औरगजेबी राज्य से अच्छा कहा था :—

> है अगरेजी राज नहीं अब औरगजेबी
> सुनौ करै उपदेश देश की वसुधा देवी।
> अवसर है अनुकूल किये जो कुछ बनि आवै,
> भारत भारत पुन पुरानी महिमा पावै।[1]

प्रथम महायुद्ध के अवसर पर राष्ट्रीय नेताओ के साथ देश ने अग्रेजो की पूरी सहायता की थी। इस बीच विदेशी शासन का विरोध बहुत कम हो गया था। अत इस समय परिस्थितिवश शासकों की कुछ प्रशसा हो गई थी। भारतेन्दु युग के अतिरिक्त अन्य युगो मे राजभक्ति से सबधित अधिक रचनाए मिलती।

राष्ट्रवाद का अभावात्मक पक्ष वर्तमान दुदशा के प्रति क्षोभ और आक्रोश

बीसवी शताब्दी ने देश-जीवन मे एक नवीन जागृति भर दी थी। वह सरकार की राष्ट्र विरोधी नीति के प्रति पूर्णतया सचेष्ट हो गई और अब विदेशी शासन मे आस्था एव विश्वास की भावना विच्छिन्न हो गई। देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक दुर्दशा का पर्यवेक्षण कर उसके कारणो का अन्वेषण किया गया। हिन्दी साहित्य मे राष्ट्रवाद के इस अभावात्मक पक्ष की पूर्ण एव नि शक अभिव्यक्ति मिलती है।

लार्ड कर्जन की बग-विभेदक नीति ने अग्रेजी साम्राज्यवाद की दूषित एव स्वार्थपूर्ण नीति को खोलकर रख दिया था। राष्ट्रीय नेताओ को यह भली भांति समझ मे आ गया था कि स्वराज्य प्राप्ति की आशा दुराशा मात्र है। राजनीतिक पराधीनता का असह्य अभिशाप उग्र राष्ट्रवादिता का कारण बनी। देश का युवक वर्ग विदेशी शासकों की नीति से सर्वाधिक विक्षुब्ध हुआ। हिन्दीसाहित्य मे, विशेष रूप से काव्य मे तत्कालीन दुर्दशा के विविध रूपो का वर्णन अधिक मिलता है।

हिन्दी कविता मे दुदशा का चित्रण

माखनलाल चतुर्वेदी ने लार्ड कर्जन की बग-भग जैसी विदेशी सत्तावादियो की नृशस नीति का क्षोभपूर्ण शब्दो मे वर्णन किया है।[2] जुलूस, सभाओं तथा प्रदर्शनों द्वारा शासन-व्यवस्था के प्रति विरोध प्रकट किया गया था। राष्ट्रीयता के साधकों को देश-निकाले का दण्ड मिलता था अथवा चक्की पीसनी पड़ती थी। इस राजनीतिक सघर्ष मे उनका धर्म भी सकट में पड गया था।[3] देश के वीर पुरुषों की गिनती डाकू और लुटेरों में की जाती थी। प्रथम महायुद्ध म भारत ने अपने जन-मन-धन से अग्रेजो की सहायता इस आशा से की थी कि कदाचित् उन्हें स्वराज्य का पुरस्कार मिल जायेगा।

---

१. पूर्ण पराग, पृ० १६५
२ माखनलाल चतुर्वेदी . माता पृ० ६१
३. वही, पृ० २३

सन् १९१७ मे मान्टेग्यू का वक्तव्य पढ कर देश दुखित हो गया था क्योकि पुरस्कार के स्थान पर कठोर प्रतिबध ही मिले थे। माखनलाल चतुर्वेदी ने देश की राजनीतिक परिस्थितियो को काव्य द्वारा व्यक्त किया है।[1] सर सत्येन्द्र प्रसन्न द्वारा भारत को राजभक्ति का उपदेश देने पर कवि हृदय की ग्लानि अभिव्यक्त हुई थी।[2] भारत सरकार ने सन् १९१७ में भी जब अपनी पुरानी बात दुहराई कि हमारे हाथ मे भारत का भाग्य सुरक्षित है तो चतुर्वेदी जी ने व्यग्यात्मक शैली मे उनकी कूटनीति का उल्लेख किया था।[3]

राजनीतिक पराधीनता का भीषण परिणाम आर्थिक दुर्दशा मे घटित हुआ था। माखनलाल चतुर्वेदी ने प्रच्छन्न रूप मे 'रामनवमी (सन् १९०६) मे पराधीनता के कारण उत्पन्न आर्थिक दुर्दशा से मुक्त करने के लिए राम का आह्वान किया है —

> लगा वह सागर पार अशोक
> शोक ! भारत लक्ष्मी जा पडी
> देश ने छोडे हैं निज स्वत्व
> विश्व कर रहा दु खों की झडी।[4]

इसी प्रकार सन् १९१९ मे रचित 'रामनवमी' कविता मे कवि ने लिखा है कि देश के जगल ही नही नगर और ग्राम भी अस्थि के ढेर हो गए थे। राम की पुण्य कथा मे देश की पराधीनता एव अन्य अभावो का भावात्मक चित्रण माखनलालजी की विशेपता है। देश तत्कालीन आर्थिक विपन्नता का करुण वर्णन कर, अर्थाभाव को देश के अपमान का कारण माना है।[5]

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' के वर्तमान खण्ड मे देश के आर्थिक सकट का विशद एव आर्द्र चित्र प्रस्तुत किया है। भारत के अमित अपकर्ष की कथा कहते हुए कवि के हृदय का रोदन फूट पडा है कि श्रीहीन भारत मे कमल क्या जल तक नही है केवल पक ही शेष है। विदेशी शासको ने इसके वैभव का शोपण कर अत्यधिक दीन हीन अवस्था मे पहुचा दिया है।[6] भारत के दारिद्रय का वर्णन करते हुए राष्ट्रकवि ने कहा था कि जो भारत स्वर्णभारत' के नाम मे सम्पूर्ण विश्व मे विख्यात था, आज वही दारिद्र्य का दुर्घट नृत्य चल रहा है। दुर्भिक्ष जैसी दैवी

१ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० २६
२ वही, पृ० ४१
३ वही, पृ० ८१
४ वही, पृ० ११
५ वही, पृ० ४५
६ मैथिलीशरण गुप्त भारत-भारती पृ० ८६

विपत्तियो से त्रसित जनता की अवस्था शोचनीय थी, चहु ओर से हा अन्न ! हा अन्न ! की पुकार उठती थी मानो स्वय दुर्भिक्ष देह धारण कर घूम रहा था।[1] गुप्त जी ने अपना यह स्पष्ट अभिमत दिया था कि दुनिया की लडाई मे सौ वर्षों मे जितने मरे हैं उससे चौगुने भारत मे दस वर्षों मे अकाल और भूख के कारण मरे थे। भूख के कारण देश की जो दशा हो गई थी उसका यथार्थ एव रोमांचकारी वर्णन किया था।[2] अभी भी कवि को विदेशी शासन-व्यवस्था मे कुछ विश्वास था, इसी कारण उन्होने दुर्भिक्ष काल की अव्यवस्था का दोष विदेशी शासकों पर नहीं मढा था।[3] अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य इसका कारण पराधीनता मे ही खोजा था। सात सागर पार जिन विदेशी शासको का 'मार्केट' था और जो अपने को अति सभ्य समझते थे, गुप्त जी ने उन पर तीव्र व्यग्य कसा था।

रामनरेश त्रिपाठी ने '*मिलन*' नामक काव्यात्मक प्रेम कहानी मे विदेशी शासन के कारण उत्पन्न आर्थिक विपन्नता, अत्याचार, कुनीति आदि का मार्मिक शब्दो मे वर्णन किया है —

> किया जिन्होने स्वर्णभूमि को
> कौडी का मुहताज।
> किया पद-दलित हाय! हमारा
> देव-समर्पित ताज॥
> कण-कण मे जिनकी कुनीति की।
> कथा हो चुकी व्याप्त।
> हाय! अभी तक हुआ न जिनका
> अत्याचार समाप्त।[4]

पराधीनता के कारण उत्पन्न देश-दुर्दशा मे सबसे अधिक संतप्त भारतीय कृषक वर्ग था। कृषकों की दयनीय अवस्था के कारणो का उन्मूलन करते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा था कि *अब देश मे पूर्व-सा अन्न उत्पादन नहीं रह गया था।* वैज्ञानिक साधनों के अभाव मे भूमि उर्वर होती जा रही थी और साथ ही कर-वृद्धि के कारण उन्हे किसी प्रकार का लाभ नही रह गया था। भारत का अन्न अन्य देशों मे भेजा जाता था, जबकि पचासी प्रतिशत जनता आधे पेट भोजन पर निर्वाह करती थी। कभी अकाल पडता था कभी अति वर्षा और यदि फसल अच्छी भी हो जाती थी तो बहीखाते बीज ऋण से रगे होने के कारण सारा अन्न महाजन के घर चला जाता था।[5] व्यापार की दशा भी बुरी होने के कारण देश पूर्णतया परमुखापेक्षी हो

१ मैथिलीशरण गुप्त भारत-भारती पृ० ८७
२ वही, पृ० ८८
३ वही, पृ० ६०
४. रामनरेश त्रिपाठी मिलन पृ० ४ पांचवां सस्करण—हिन्दी मन्दिर, प्रयाग
५. मैथिलीशरण गुप्त . भारत भारती पृ० ६६

गया था।[1] मैथिलीशरण गुप्त ने कृषक की दीन हीन, कष्टकर कथा 'किसान' मे लिखी है। अन्नदाता किसान आसू पीकर रहता था।[2] जमीदार और महाजन रूपी चक्की के दो पाटो मे पिस कर वह कृपक से मजदूर बना फिजी भेज दिया जाता है। जमीदारी व्यवस्था मे कृषक को बेगारी भी करनी पडती थी। कृषक का जीवन अति कष्टकर था। इसी प्रकार 'सनेही' जी का काव्य 'कृषक क्रन्दन' तथा 'आर्त्त कृषक' भी कृषक जीवन का करुण क्रन्दन है। इसमे कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि जमीदार, साहूकार, महाजन की स्वार्थ, घृणित, लोभवृत्ति के कारण कृपक स्वत्वविहीन हो गया था।[3] उनकी आर्थिक स्थिति अति हीन थी —

भूख भूख चिल्लाय कभी बालक रोते हैं।
टुकडे सौ सौ हाय कलेजे के होते हैं॥[4]

नित्य शीत, धूप सहकर भी कृषक के जीवन को जिल्लत और हैरानी थी। उसे भूस्वामी की डाट, लात और कुवाणी चुपचाप सहन करनी पडती थी। आर्त्त कृषक मे कवि ने कहा है —

गये गुजरे ससार मे हीन हैं हम।
सुदामा से भी सौगुने दीन हैं हम॥
पड़ी भाड मे हो जो वह मीन हैं हम।
महा घोर अज्ञान मे लीन हैं हम॥[5]

कृषक की इस दुर्दशा का कारण था, उसकी अशिक्षा एव अज्ञान जिसके कारण उसे अपनी उन्नति का मार्ग नहीं सूझता था।[6]

राजनीतिक दासता ने देश की विवेक बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया था। देश-वासियो की मानसिक अवस्था भी विकृत होने लगी थी। मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' मे लिखा है कि यह दैव का अभिशाप था कि शरीर की लाज रखने के लिए विदेशी वस्त्रो का प्रयोग होता था और नारियो के सौभाग्य चिन्ह चूडिया भी विदेशो से बनकर आती थी। विदेशी के सम्मुख स्वदेशी वेश भूषा, भाषा आदि की उपेक्षा हो रही थी।[7] माखनलाल चतुर्वेदी ने भी इस सम्बन्ध मे काव्य द्वारा दुख प्रकट किया

१ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती, पृ० १०५
२ मैथिलीशरण गुप्त किसान पृ० ८ पण्डावृत्ति साहित्य प्रेस, चिरगाव, झासी
३ सनेही कृषक-क्रन्दन तथा आर्त्त कृषक . पृ० ४ प्रताप कार्यालय, कानपुर, १९१६
४ वही, पृ० ७
५ वही, पृ० १४
६ मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० ९६
८ वही, पृ० १०३

था कि देशवासी मानसिक ह्रास को प्राप्त होकर पश्चिमीकरण की ओर प्रवृत हो रहे थे।[1] 'पूर्ण जी' ने भी भारत की अवनति देखकर स्वदेशी के प्रयोग का उपदेश दिया था।

कविवर 'शकर' ने भी पराधीनता के अभिशाप का विक्षोभपूर्ण वर्णन किया है।[2] उन्हें भी देश की आर्थिक दुर्दशा, राज कर्मचारियो द्वारा घूस लिया जाना और परतन्त्रता के कारण बढती हुई तुच्छ भावना असह्य थी।[3] उन्होने राजनीतिक दुर्दशा की अपेक्षा सामाजिक दुर्दशा के प्रकाशन पर अधिक बल दिया था। 'शकर' जी ने सामाजिक दुर्दशा के प्रत्येक पक्ष पर लेखनी उठाई थी। कवि को दुख था कि समाज मे आचार-विचार धर्मनिष्ठा, प्रण-पालन प्रेम-प्रतिष्ठा विद्या बल आदि का अभाव हो गया था।[4] देश जीवन, अन्धविश्वास, रूढियों और पाखण्ड मे जकडा हुआ था।[5] धर्म के नाम पर व्यभिचारी पुजारी बाल-ब्रह्मचारी बने हुए थे। विधवाओ की समाज मे बुरी दशा थी। विधवा-विवाह की प्रथा प्रचलित न होने के कारण निराश्रय, अशिक्षित विधवा नारी देश के नैतिक पतन मे सहयोग दे रही थी।[6] कवि ने बाल विवाह की बुराइयो की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। बूढो द्वारा कुमारी कन्याओ से विवाह कवि की दृष्टि में अनैतिक था।[7] छुआछूत और पाखण्ड के कारण ईसाई धर्म के प्रसार मे सहायता मिल रही थी। साम्प्रदायिक विद्वेष राष्ट्रहित मे घातक था।[8] अत शकर' ने सामाजिक अध पतन का भण्डाफोड किया है। अविद्यानन्द का व्याख्यान[9] समाज पर कटु व्यग्यात्मक काव्य है। इसी प्रकार 'एरण्ड वन' विडाल व्याघ्र[10] पच-पुकार'[11] आदि कविताएँ राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक दुर्दशा से सम्बन्धित हैं।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी सामाजिक ह्रास पर क्षोभ व्यक्त किया था। 'रईस' ने भारत के राजा रईसो के भोग विलासमय जीवन के प्रति दुख प्रकट

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ४४
२ नाथूराम शकर शर्मा · शकर सर्वस्व पृ० १४७
३ वही, पृ० १५२
४. वही, पृ० १४७
५. वही, पृ० १४८
६ वही, पृ० १४६
७ वही, पृ० १५७
८ वही, पृ० १४६
९. वही, पृ० १५५
१० वही, पृ० १५६
११. वही, पृ० १६४

किया है। यह धनिक वर्ग राष्ट्रीय हित को भूलकर स्वार्थ-साधन मे सलग्न था। देशी राजाओ ने विषयाधीन होकर ही प्रधानता की बेडिया कस ली थी। कवि हृदय वेदना के भार से बोझिल हो कठोर बचन कह उठता है— होवे न ऐसे पुन चाहे हो कुल-क्षय हे हरे।[1] अविद्या ही सब दुर्गुणो का मूल है। नारियो की दुर्दशा कवि से देखी नही जाती। गुप्त जी ने भारतेन्दु के सदृश देशवासियो को नारी के इस पतन पर रोने के लिए आमन्त्रित किया है। कवि की दृष्टि म समाज बेजोड विवाह अन्ध परम्परा, वर-कन्या विक्रय का अड्डा बना हुआ था।[2] गुप्त जी ने शिक्षा और साहित्य की दुर्व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला था। शिक्षा तो दासत्व की बेडिया कठोर करने के लिए दी जाती था। विदेशी शासन मे दी जाने वाली शिक्षा, धर्म एव राष्ट्रीयता से च्युत कर दासत्व की ओर प्रेरित करती थी।[3] हिन्दी साहित्य मे अश्लील ग्रन्थो की भरमार हो रही थी, जो राष्ट्रजीवन मे अविचार की नीव डाल रहे थे। कवि को दुख था कि चद्रशेखर आजाद जैसे राष्ट्रीय क्रातिकारियो की कथा से साहित्य भडार को क्यो नही भरा जाता।[4]

शुकदेव बिहारी मिश्र ने 'भारतविनय' मे भारतवासियो के आपसी विद्रोह, धार्मिक एव सामाजिक कुरीतियो, फूट आदि का वर्णन किया था।[5] इन्होंने भारत की अवनत दशा का कारण भारतीयों को माना था। उदारवादी दल के प्रभाव के कारण इन्हे १९१६ ई० मे भी ब्रिटिश शासको से बहुत आशा थी।

महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, रामचरित उपाध्याय ने भी सामाजिक दुर्दशा, विशेषकर नारियो की स्थिति पर अपनी वेदना काव्य के रूप मे मुखरित की थी।[6]

भारत की दुर्दशा के विविध पक्षो के प्रति कविवर्ग न क्षोभ, आक्रोश, व्यग्य, वेदना की तीव्र अनुभूति को व्यक्त किया है। कभी उसने समाज अथवा देश के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है कभी दुख और कभी कटु व्यग्य कसे हैं। शकर कवि के व्यग्य अधिक तीखे हैं।

हिन्दी नाटको मे वर्तमान दुर्दशा के प्रति क्षोभ और आक्रोश

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इस समय साहित्य के अन्य अगो की तुलना मे हिंदीनाट्यकला का समुचित विकास नही हुआ था,अत युगीन जीवन की राजनीतिक,

१ मैथिलीशरण गुप्त भारत-भारती . पृ० १११
२ वही, पृ० ११३, १४५
३ वही, पृ० ११८
४ वही, पृ० १२५
५ शुकदेव बिहारी मिश्र भारत विनय . पृ० ४
६ प्रो० सुधीन्द्र हिन्दी कविता मे युगान्तर : पृ० २०९, २१०

सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक पक्षो के प्रभावो को दिग्दर्शित कराने वाले नाटक प्राय नही मिलते।

हिन्दी कथा साहित्य मे वर्तमान दुर्दशा के प्रति क्षोभ और आक्रोश

हिन्दी कथा-साहित्य मे राजनीतिक दुर्दशा की अपेक्षा सामाजिक दुर्दशा के ही चित्र मिलते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी ने समाज के सजीव चित्र खीचने वाले उपन्यास लिखे थे, लेकिन वासनाओ के रूप-रग और चित्ताकर्षक वर्णनो की प्रमुखता के कारण उन्हे राष्ट्रीयता-उद्‌बोधक-उपन्यास के अन्तर्गत नही रखा जा सकता। लज्जा राम मेहता ने 'धूर्त रसिकलाल', 'हिंदू रहस्य, आदि पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित लिखे थे। इन उपन्यासो मे राष्ट्र की समस्याएँ नही थी। इस क्षेत्र मे भी सर्वप्रथम प्रेमचन्द जी ने 'सेवासदन' उपन्यास की रचना द्वारा राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष से सम्बन्धित वेश्यावृत्ति, दहेजप्रथा, रिश्वत जैसी राष्ट्रीयता मे बाधक समस्याओ को लिया।

हिन्दी कहानियो मे अवश्य तत्कालीन दुर्दशाग्रस्त स्थिति के अनेक पक्षो को लिया गया था। मास्टर भगवानदास ने सन १९०२मे 'प्लेग की चुडैल'[1] कहानी सामाजिक अन्धविश्वास के दिग्दर्शन के हेतु लिखी थी।

जयशकर प्रसाद ने 'ग्राम'कहानी मे देश की राजनीतिक दुर्दशा की ओर सकेत किया है। विदेशी साम्राज्यवाद मे कृषक वर्ग की दशा अति दीन थी। छल से महाजन उनकी जमीन पर अधिकार कर लेते थे।[2] 'मदन मृणालिनी' मे प्रसाद जी ने भारत की विधवा नारी की दयनीय अवस्था की ओर सकेत करते हुए क्षोभप्रकट किया है कि ह्रासोन्मुखी समाज बगुला भक्तो को परम धार्मिक समझता था।[3] सामाजिक अधविश्वास जैसे समुद्र यात्रा निषेध और अन्तर्जातीय विवाह न होने का उल्लेख भी उन की इस कहानी मे मिल जाता है।

चन्दधर शर्मा गुलेरी की कहानियो मे भी सामाजिक दुर्व्यवस्था का वर्णन मिल जाता है। अपनी 'सुखमय जीवन (१९११) नामक प्रेम-कथा मे गुलेरी जी ने बालविवाह जैसी प्रथा पर आक्षेप करते हुए लिखा है—'हिंदू समाज ही इतना सडा हुआ है कि हमारे उच्च विचार कुछ चल ही नही सकते। अकेला चना भाड नही फोड सकता। हमारे सद्‌विचार एक तरह के पशु हैं जिनकी बलि माता पिता की जिद और हठ की वदी पर चढाई जाती है।' भारत का उद्धार तब तक नही हो सकता।'[4] इसी प्रकार 'बुद्धू का काटा'[5] मे भी बालविवाह की प्रथा की ओर ध्यान

१. हिन्दी कहानियो का विवेचनात्मक अध्ययन पृ० १२६

२ जयशकर प्रसाद : छाया पृ० २३

३ वही, पृ० १११

४ गुलेरी जी की अमर कहानियां पृ० ३ : सम्पादक—शक्तिधर गुलेरी

५. वही, पृ० १७

आकृष्ट किया है। यद्यपि समाज मे कुछ लोग बाल-विवाह के विरोधी हो गये थे, लेकिन प्राय. समाज मे उनकी बदनामी होती थी। विवाह मे लोग मकान और जमीन गिरवी रखकर जीवन भर के लिए कगाली का कम्बल ओढते थे।'[1] इसी प्रकार ज्वालादत्त शर्मा ने 'विधवा'[2] कहानी मे भारतीय विधवा की दयनीय अवस्था की ओर सकेत किया है। शर्माजी ने समाजसुधार की भावना से प्रेरित होकर अपनी विधवा को 'सेल्फ हैल्प पुस्तक की सहायता से शिक्षित कर स्वावलम्बन की महत्ता सिद्ध की है। नारी-शिक्षा द्वारा समाज की दुर्दशा का निराकरण हो सकता था। प्राय यह कहानियां वर्णनात्मक शैली मे लिखी गई थी।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि देश-दुर्दशा का सर्वाधिक वर्णन कविता द्वारा किया गया। तत्पश्चात् कथा-साहित्य द्वारा। सामयिक समस्याओ को लेकर लिखे गए नाटको का अभाव था।

राष्ट्रवाद का भावात्मक पक्ष राष्ट्रीयता-उदबोधक विभिन्न साधनों की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों मे ही देश की राष्ट्रवादी विचारधारा कांग्रेस के सभामण्डप से निकलकर जन-जीवन मे प्रसारित होने लगी थी। कांग्रेस ने भी अनुनय विनय की नीति का परित्याग कर आत्मतेज और आत्मावलम्बन की नीति ग्रहण कर ली थी। अब अंग्रेजो की न्याय प्रियता, उदारता आदि से विश्वास उठ गया था। अब राष्ट्रीय नेताओ ने देश की दयनीय अवस्था के सुधार के लिए ठोस कदम उठाया। लार्ड कर्जन की वग-भग नीति ने विद्रोहाग्नि मे घृताहुति का कार्य किया था। बगाल का प्रश्न सम्पूर्ण भारत का प्रश्न बन गया था। राष्ट्रीयता, राष्ट्र शिक्षा और नवचैतन्य का कार्य बाबू विपिनचन्द्र पाल ने सम्पूर्ण देश मे घूम घूम कर किया। राष्ट्र की आर्थिक स्थिति सुदृढ करने के लिए स्वदेशी आदोलन छेडा गया। अपने युग की राष्ट्रीयता उद्‌बोधक कार्य-प्रणाली को हिन्दी लेखको ने पूर्ण अभिव्यक्ति दी है।

स्वदेशी आन्दोलन

इस युग के प्राय: सभी राष्टीय साहित्यकारो ने देशवासियो को स्वदेशी के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया है। वे जानते थे कि स्वदेशी से ही भारत का कल्याण हो सकता है। विदेशी वस्तुओ के विक्रय के कारण ही भारत का धन विदेश चला जा रहा है और देश दिन-प्रति-दिन निर्धनता से ग्रसित हो रहा है। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने स्वदेशी कुडल' की रचना कर स्वदेशी, हिंदू-मुस्लिम एकता सामाजिक समृद्धि का

१. गुलेरी जी की अमर कहानियां : पृ० १८ : सम्पादक—शक्तिधर गुलेरी

२. डा० श्रीकृष्णलाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : पृ० ३२६, प्रकाशक—हिन्दी-परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग, तृतीय संस्करण

प्रयास किया था। उन्होंने स्वदेशी के विषय मे लिखा था :—

> देशी प्यारे भाइयो ! हे भारत सन्तान।
> अपनी माता-भूमि का है कुछ तुमको ध्यान ?
> है कुछ तुमको ध्यान ? दशा है उसकी कैसी ?
> शोभा देखो नहीं किसी को निद्रा ऐसी ॥[1]

'पूर्ण' जी की राष्ट्रीय भावना अति उदार थी। अतः उन्होंने परमेश्वर की भक्ति राजभक्ति के साथ सुवर्म सहित सच्ची देशभक्ति का उपदेश दिया था—

> मन की सेवा के सुनो मुख्य चिह्न हैं चार;
> १ देश दशा का मनन शुभ २ उन्नति-पन्थ-विचार।
> ३ कार्य समय विश्वास, विदित जो धर्म आर्य का ॥[2]

साम्प्रदायिक एकता भी स्वदेशी का ही प्रमुख अंग थी। अत: 'पूर्ण' जी ने उसके विषय मे लिखा था —

> बन्दे हो सब एक के, नहीं बहस दरकार
> है सब कौमों का वही खालिक और करतार।
> खालिक और करतार वही मालिक परमेश्वर,
> है जबान का भेद, नहीं मानी में अन्तर ॥[3]

उनका स्वदेशी का आदर्श था—

> पानी पीना देश का खाना देशी अन्न,
> निर्मल देशी रुधिर से नस नस हो सम्पन्न
> नस नस हो सम्पन्न, तुम्हारी उसी रुधिर से,
> हृदय, यकृत, सर्वांग, नखों तक लेकर शिर से ॥[4]

उन्होंने देशवासियों से कहा था कि गाढ़ा, भीना जो भी मिले पर स्वदेशी ही पहनो। इस भारत देश के कोरी और जुलाहे भूखे मर रहे हैं और कला कौशल विनष्ट हो रहा है क्योंकि स्वदेशी की उपेक्षा हो रही है।

कवि ने स्वदेशी की पुकार मचाते हुए कहा था कि दैनिक व्यवहार की छोटी से छोटी वस्तु भी या तो स्वदेशी होनी चाहिये अथवा उनका प्रयोग न करना चाहिए।[5]

---

१. हरदयालुसिंह पूर्णपराग पृ० १७६ : प्रकाशक—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग; प्रथमावृत्ति, सन् १९४१ ई०
२ वही, पृ० १७६
३. पूर्ण पराग : पृ० १८५
४. वही, पृ० १८६
५. वही, पृ० १९१

श्रीधर पाठक और मैथिलीशरण गुप्त ने भी स्वदेशी से प्रभावित होकर काव्य रचना की थी। पाठक जी ने 'स्वदेश विज्ञान'[1] लिखा था। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती' मे विदेशी प्रचार पर क्षोभ व्यक्त कर अप्रत्यक्ष के रूप से स्वदेशी प्रचार पर बल दिया था।[2]

हिन्दी कथा साहित्य मे प्रसाद जी की 'शरणागत'[3] कहानी मे भारतीय सभ्यता, सस्कृति, आचार-विचार की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया था। पाश्चात्य नारी एलिस ठाकुर किशोर सिंह की पत्नी सुकुमारी से प्रभावित हो अन्त मे भारतीय वेशभूषा मे विदा होती है। अत कथा-साहित्य मे भी भारतीयता अथवा स्वदेशी का स्वर गूजना आरम्भ हो गया था।

उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा की साहित्य मे अभिव्यक्ति

सन् १९०५ से १९०७ तक उग्र राष्ट्रवादियो का प्राधान्य था। सरकार की कठोर दमन नीति ने लोकमान्य तिलक द्वारा प्रसारित उग्र राष्ट्रवादिता को दबाने के लिए कारावास के कठोर दण्ड का विधान किया। यह आन्दोलन दबा दिया गया लेकिन तिलक के महान् एव दृढ व्यक्तित्व ने गाधी जी के आगमन के पूर्व तक भारत की राष्ट्रीय विचारधारा का नेतृत्व किया। हिन्दीसाहित्य अपने युग की उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रभावित अवश्य हुआ था लेकिन प्रेस एक्ट की कठोरता के कारण इसकी अभिव्यक्ति मे अधिक समर्थ नही था।

हिन्दी कविता मे माखनलाल चतुर्वेदी, माधव शुक्ल ने अपने युग की इस राष्ट्रीय विचारधारा की सशक्त अभिव्यक्ति की है। लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपतराय'—राष्ट्रीय जागरण के तीन प्रमुख नाम थे। इनसे भारत माता को बहुत आशा थी।[4] लोकमान्य तिलक की राष्ट्रीयता का मूल प्रेरक तत्व भारतीयता थी। वे गीता की कर्मण्यता मे विश्वास रखते थे। उन्होने देश को कर्म का सदेश देते हुए पूर्ण स्वतन्त्रता की माग की थी। माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'देश मे ऐसे बालक हो'[5] 'जय गीते' कविताए तिलक की विचारधारा का व्यक्त रूप हैं। 'प्रियप्रवास' के कृष्ण और राधा के चरित्राकन मे हरिऔध जी तिलक की राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। उन्होंने कृष्ण का चरित्र नितान्त नवीन रूप मे प्रस्तुत किया है। कृष्ण स्वजाति और स्वदेश के उद्धार मे सलग्न दिखाये गए है।[6] वियोगी हरि ने गीता रहस्य[7] मे गीता को 'राष्ट्र-जहाज' कहा था।

१ श्रीधर पाठक : भारत गीत पृ० ६७
२ मैथिलीशरण गुप्त भारत-भारती : पृ० १०३
३ जयशकर प्रसाद छाया पृ० ४३
४. माखनलाल चतुर्वेदी : माता पृ० ४२
५. वही, पृ० ४८
६. अयोध्यासिह उपाध्याय हरिऔध : प्रियप्रवास : पृ० १७४
७. वियोगी हरि . वीर-सतसई : पृ० ७५

तिलक के राष्ट्रवाद का मूल प्रेरक तत्व था भारतीय सांस्कृतिक आदर्श एवं उसकी पुरातन रीति। अतीत गौरव-गान के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सियारामशरण गुप्त ने भारतीय आदर्श संस्कृति, पुरातन रीति के प्रकाशन के लिए पूर्वजों के चरित्रों का अनुलेखन किया था। साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिए उन्हें लोकमान्य तिलक से प्रेरणा मिली होगी। रूपनारायण पांडेय ने 'तिलक तिरोधान'[1] लोकमान्य तिलक के निधन पर लिखा था। निःसंदेह उनकी मृत्यु का साहित्यिकों को भी अतीव दुःख हुआ था।

स्वर्गीय बाबू रामप्रताप गुप्त के 'महाराष्ट्र वीर' नामक ऐतिहासिक उपन्यास में तिलक की विचारधारा को प्रच्छन्न रूप में प्रतिध्वनित किया गया है। तिलक भी महाराष्ट्र वीर थे, इस उपन्यास में उनके सदृश कुमार भी महाराष्ट्र में ही नहीं, सम्पूर्ण भारत में वीरता की पताका फहराना चाहता है। सन्यासी जी कर्मण्यता का उपदेश देते हैं—'महाराष्ट्र वीर पुंगवो! प्राणों की माया त्याग, भारत-जननी की सेवा करो। यह तुम्हारा ऐश्वर्य-शाली देश नीच यवनों से कलंकित हो रहा है। तुम्हारे पुरातन धवल-यश में धब्बा लग रहा है। आर्यों की संचित कीर्ति का विनाश हो रहा है। शोक है, कि उत्तर भारत में कोई भी भारत का सच्चा सेवक नहीं देख पड़ता। नहीं नहीं! ऐसा क्या कहूं? वीर अवश्य है पर सब अवसर की ताक में लगे हुए हैं।[2]

हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक प्रयत्न प्राचीन संस्कृति की प्रतिष्ठा के लिए किया गया था। यही भारतीय जीवन-दर्शन की स्थापना तिलक को इष्ट थी।

होमरूल आन्दोलन

श्रीमती एनीबेसेण्ट और लोकमान्य तिलक की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा, स्वदेशी के साथ स्वराज्य की मांग भी प्रबल रूप में रखी गई थी। माखनलाल चतुर्वेदी ने इस आन्दोलन के स्वर में स्वर मिलाते हुए लिखा था—

आर्य-कीर्ति का स्तम्भ, अयोध्या में अब गड़ जाने दे,
राम राज्य का झंडा, नभ से पुन: रगड़ जाने दे।[3]

नारी को भी इस संग्राम में सहयोग प्रदान करने के लिए प्रेरणा दी गई थी। 'तीरन्दाजी' में सीता राम से तीर चलाने के लिए मांगती है।[4] काव्य-कला के सुन्दर रूप में चतुर्वेदी जी ने अपने युग की नारी जागृति को अभिव्यक्त किया है। 'स्वराज्य'

---

१ रूपनारायण पाण्डेय पराग पृ० ८५ प्रथमावृत्ति, सं० १९८१, गंगा पुस्तक-माला कार्यालय, २९-३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ

२ रामप्रताप गुप्त महाराष्ट्र वीर : पृ० ५५

३ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० २७

४. वही, पृ० २८

प्राप्ति के लिए तिलक ने देशवासियो को कर्म करने के लिए, शक्तिचरण आराधना के लिए तत्पर कर दिया था।[1] निराशा छोडकर, देश के वीर बच्चो को, स्वराज के प्रण के लिए प्रप्रसित किया।[2] रामनरेश त्रिपाठी ने भी मिलन' नामक प्रेम कहानी मे युगीन स्वाधिकार प्राप्ति की दृढ पुकार की थी —

पद पद-दलित स्वदेश भूमि का
चलो करें उद्धार॥
हम मनुष्य होकर क्यो छोडें
निज पैतृक अधिकार॥[3]

गाधी जी का अहिंसात्मक सत्याग्रह

महात्मा गाधी ने अफ्रीका मे लौटकर भारत की राजनीतिक गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण प्रारम्भ किया। कृषकवर्ग म जागृति फैलाकर राष्ट्रीय आन्दोलन को जन आन्दोलन का रूप प्रदान करने का श्रेय गाधी जी को है। १९२० ई० के पूर्व ही कृषक प्रशान्ति के दो प्रदर्शन चम्पारन तथा खेडा मे सन् १९१७ और १९१८ मे हो चुके थे। गाधी जी ने भारतीय किसानो को सत्याग्रह का पाठ पढाकर बढे हुए लगान, एकमुश्त रकम तथा अन्य अवैध रकमो का अहिंसात्मक विरोध करना सिखाया था। भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास मे सत्य एव अहिंसा पर आधारित आन्दोलन का सूत्रपात गाधी जी की नवीन देन था।

हिन्दी काव्य क्षेत्र म माखनलाल चतुर्वेदी ने गाधी जी को सत्य अहिंसात्मक नीति का जय जयकार किया था। अन्योक्ति भाषा मे उन्होंने लिखा था :—

जय जय विश्व-स्वरूप,
पार्थ के प्यारे जय जय,
'शस्त्र न लूगा' वाह
सारथी न्यारे जय जय;
जगमग भारत जगे
नये क्रांतिकारी जय जय,
पूज्य प्रजापति रूप,
नये बनवारी जय जय!
जय आख मिचौनी खेलते
जगती के आवेग जय,

१ माखनलाल चतुर्वेदी माता, पृ० ३०
२ वही, पृ० ३७
३ रामनरेश त्रिपाठी मिलन पृ० ६ सशोधित पाचवा सस्करण, स० १९८५ प्रकाशक—हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

जय गुमराहों की राह—
जय, उठतों के आवेश जय।[1]

१६१६ ई० में गांधी जी के देश-आगमन के पश्चात् ही चतुर्वेदी जी ने 'जीवित जोश' कविता लिखी थी। गांधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा कष्ट सहन का अपूर्व आदर्श रखा था। सत्याग्रही वीरों को सर्वस्व बलिदान कर सहर्ष कारावास दण्ड सहन करने का आदेश दिया था। चतुर्वेदी जी ने उनकी नीति की पुष्टि में प्रतीकात्मक शैली में कहा था :—

देश के वदनीय वसुदेव कष्ट में लें न किसी की ओट
देवकी मातायें हो साथ परो पर जाऊगा मैं लोट।
जहां तुम मेरे हित तैयार, सहोगे कर्कश कारागार।
वहा बस मेरा होगा धाम गर्भ का प्रियतर कारागार।।[2]

रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन' कथाकाव्य की विजया सत्य-प्रेम, और सेवा का व्रत धारण कर गाव गाव मे घूम कर सेवा-कार्य साधती है।[3] यहा पर गाधी जी का प्रभाव लक्षित होता है।

गाधी जी ने प्रारम्भ से ही साम्प्रदायिक एकता पर बल दिया था। माखनलाल चतुर्वेदी ने हिन्दू और मुसलमानो को हिन्दमाता की 'दोनों आख' कहा था।[4] 'सनेही' और मैथिलीशरण गुप्त को 'आर्त्त कृषक' तथा 'किसान' लिखने की प्रेरणा गाधी जी से मिली होगी। सत्याग्रह आन्दोलन से सम्बन्धित इन कवियो की अन्य रचनाओं का रचनाकाल नही मिलता है, अतः उन्हें शोध विषय के अन्तर्गत नही लिया गया है।

बल और बलिदान का प्राधान्य

लोकमान्य तिलक ने कर्मयोग की दीक्षा दी थी। गीता में कृष्ण ने अर्जुन को आत्मा की अमरता और अन्याय के निराकरण के लिए बल प्रयोग का उपदेश दिया था, वही तिलक का भी मूलमत्र था। तिलक के सिद्धान्तो का पोषण करते हुए 'सनेही' जी ने लिखा था —

जो साहसी नर है जगत मे कुछ वही कर जायगा
निज देश हित साधन करेगा अमर यश धर जाएगा
आत्मा अमर है, देह नश्वर है, है समझ जिसने लिया।
अन्याय की तलवार से वह क्यों भला डर जायगा ?

१. माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० २१
२. वही, पृ० ६६
३. रामनरेश त्रिपाठी मिलन पृ० ६६
४ माखनलाल चतुर्वेदी : माता पृ० ६५

मैथिलीशरण गुप्त ने 'जयद्रथ-वध' की रचना तिलक द्वारा प्रदत्त बल की प्रधानता की पुष्टि के लिए की होगी अभिमन्यु-वध से सतप्त अर्जुन को कृष्ण आश्वस्त करते हुए गीता के उपदेश की ओर सकेत करते है। बल की महत्ता उद्घोषित करते हुए कृष्ण कहते हैं —

रण मे मरण क्षत्रिय जनो को स्वर्ग देता है सदा,
है कौन ऐसा विश्व मे जीता रहे जो सर्वदा ?

कृष्ण अर्जुन को वैरियो से अन्याय का बदला लेने का आदेश देते हैं। इस खण्ड-काव्य के प्रारम्भ मे ही गुप्त जी ने कह दिया था —

अधिकार खोकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है,
न्यायार्थ अपने व धु को भी दण्ड देना धर्म है ॥[1]

युद मे अभिमन्यु का प्राणोत्सर्ग बलिदान का महत्व प्रतिष्ठित करता है।

रामनरेश त्रिपाठी ने प्रणय-कथा के माध्यम से 'मिलन' नामक कथा-काव्य मे अपनी राष्ट्रीय भावना अति कुशलता एव कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त की है। इस काव्य ग्रन्थ मे स्वदेश-सेवा-व्रत मे तत्पर युवा विदेशी शासको को बल द्वारा प्रतिफल देने मे विश्वास रखता है —

अणु अणु मे हैं व्याप्त इस समय उनके विमुख विचार।
उन्हें देख खग भी उठते हैं उनका अन्त पुकार॥
प्रतिफल देना उन्हे उचित है धर विकराल-कृपाण
निश्चय है, उनका अब होगा बहुत शीघ्र अवसान॥[2]

बल और बलिदान का मूल स्रोत स्वराज्य प्राप्ति की असदिग्ध आशा थी, जिसकी झलक भी इस काव्य खण्ड मे मिल जाती है।

माखनलाल चतुर्वेदी ने भी सफलता प्राप्ति के लिए बल और बलिदान को आवश्यक माना था —

प्रलय-कारिणी युवक-शक्ति की क्या सुन पाये बात नहीं ?
भीष्म प्रतिज्ञा, लव कुश-कौशल पार्थ-पुत्र-बल ज्ञात नहीं ?
भूलो मत, लिख लो नि सशय इसे हृदय मे पक्की मान;
भारत का सब दु ख हरेंगे भारत के भावी विद्वान् ॥[3]

प्रो० सुधीन्द्र ने अपनी पुस्तक मे लिखा है कि उस समय बहुत सी उग्र कविताए केवल जनता के कण्ठो से ही मुखरित हुई थीं, कठोर प्रतिबन्धो के कारण पत्र-पत्रिकाओ मे छप नही सकी थी।[4]

---

१. मैथिलीशरण गुप्त जयद्रथ वध . पृ० ३
२. रामनरेश त्रिपाठी : मिलन पृ० ५
३. माखनलाल चतुर्वेदी . माता · पृ० ४६
४. प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता मे युगान्तर : पृ० २७७

: ४ :

राजनीतिक परिस्थितियां

(१६२० से १६३७ तक)

भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में गांधी जी के प्रवेश के पूर्व ही लोकमान्य तिलक जैसे महापुरुष देशवासियों के सम्मुख भारतीय आध्यात्मिकता की सुदृढ़ आधारशिला पर आधारित राष्ट्रीयता का समुन्नत रूप प्रस्तुत कर चुके थे। जैसा कि भूमिका खंड में उल्लिखित है, सर्वप्रथम तिलक ने राष्ट्रवाद को उदारवादियों की घोषणाओं तथा वक्तृताओं की परिसीमा से मुक्त कर व्यावहारिक सत्य का रूप प्रदान किया था।[1] उनके व्यक्तित्व का राष्ट्र निर्माण पर बहुत प्रभाव पड़ा था। उनकी राजनीति कांग्रेस मण्डल तथा कौंसिल भवन की सीमा में बंधी न रह कर जनता तथा गली बाजारों में फैल चुकी थी। देश के राजनीतिक क्षेत्र में स्वार्थरहित देशभक्ति, त्याग तथा नवीन आत्मविश्वास की भावना भर गई थी। तिलक की राष्ट्रीयता प्रजातन्त्रात्मकता थी।[2] वह अधिक मनोवैज्ञानिक भी थी क्योंकि वे इस तथ्य से भली भांति परिचित थे कि जनता से ऐसा निवेदन करना चाहिए जो उनकी बुद्धि का नहीं, उनके हृदयतल का स्पर्श करने वाला हो, उनके राजनैतिक चातुर्य को नहीं, आध्यात्मिक चेतना को छू दे।[3] अतः उन्होंने भारतीयों का ध्यान उनके अतीत गौरव की ओर आकृष्ट किया, जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नई आस्था, एक नई जागृति और एक नया विश्वास भर दिया।

तिलक के पश्चात् भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन गांधी जी ने किया। वे तिलक के परिवर्तित एवं परिशोधित संस्करण थे। उन्होंने अपने युग की विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक विचारधाराओं का समन्वय कर राष्ट्रवाद का सुविकसित एवं समुन्नत रूप देश के सम्मुख रखा। स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द की धार्मिक राष्ट्रीयता तथा प्राचीन सांस्कृतिक-पुनरुत्थान-सम्बन्धी आन्दोलन में उनकी पूर्ण आस्था थी, तिलक की प्रजातन्त्रात्मक राजनीति में

1. 'Tilak has contributed more by his life and character than by his speeches or writings to the making of the new nationalism'.
Dr M A Buch, The Development of Indian Political Thought
Page 24

2. ibid, Page 25
3. ibid, Page 26.

उनका अटूट विश्वास था अरविन्द घोष की भाति उन्होने राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए आध्यात्मिकता से प्रेरणा ग्रहण की और गोपालकृष्ण गोखले के समान वे अत्यधिक उदार विचारो के थे।[2] वे विरोधियो के साथ घृणा नही प्रेम करते थे। गाधी जी की राष्ट्रीयता मे नैतिकता तथा आध्यात्मिकता की मात्रा अधिक थी।[2] उसमे कुटिलता, कूटनीतिज्ञता अथवा चालाकी का कोई स्थान नही था।[3] उनकी विचारधारा गीता से विशेष प्रभावित थी तथा टाल्सटाय और थूरो से भी उन्हे उसके निर्माण मे सहायता मिली थी।

सन १९२० ई० से सन १९२७ ई०

गाँधीजी के राजनीतिक क्षेत्र मे आगमन के साथ ही देश मे तीन महत्वपूर्ण घटनाए घटीं, जिन्होने सम्पूर्ण देश को एक स्वर तथा एकमत से उनके साथ कर दिया वे तीन महत्वपूर्ण घटनाए थी १९१९ मे जनता की इच्छा के विरुद्ध रालेट ऐक्ट का पास होना[४] जलियावाला बाग की नृशस एव अमानुषिक घटना तथा खिलाफत का प्रश्न। महात्मा गाँधी ने यह स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि 'रालेट ऐक्ट' भारत वासियो के जन्मसिद्ध अधिकारो का बाधक है। ३० मार्च १९१९ को इस कानून के विरोध मे दिल्ली मे प्रदशन तथा हडताल की गई जो बहुत सफल रही, किन्तु सरकार की दमन नीति के कारण गोलिया चली। १३ अप्रैल को अमृतसर के जलियावाला बाग मे विराट सभा का आयोजन किया गया। अब विदेशी सरकार की क्रूरता सीमा का उल्लघन कर गई। निरस्त्र जनता पर तब तक गोलियो की वर्षा हुई जब तक कि सेना के पास उनका भडार अशेष न हो गया। जलियावाला बाग की दु खद घटना घटी, जिसमे निरी भारतीय जनता निरपराध मारी गई। पजाब मे मार्शल ला द्वारा शासन हुआ। इससे सम्पूर्ण देश मे एक तूफान सा आ गया और अपराधी शासको को दण्ड देने की माग चतुर्दिक उठी। देशवासियो की उत्तेजना को शात करने लिए और पजाब की घटनाओ की जाच के लिए हटर कमेटी की स्थापना हुई किंतु वह अपनी निष्पक्ष राय न दे सकी। भारतवासी असन्तोष तथा विक्षोभ की अग्नि मे जल उठे। उन्होने विदेशी सरकार से न्याय की आशा त्याग दी। जनता ने विद्रोह के उन्माद मे

1 It is only when politics becomes our religion and religion becomes our politics that we in India can solve all our problems"

Dr M A Buch Rise and Growth of Indian Nationalism Page 5

2 ibid Page 17

3 ibid, Page 15

४ 'कांग्रेस मे रालेट ऐक्ट की धज्जिया उडा दी गई, परन्तु सरकार ने इसकी कतई परवाह नहीं की। भारत सन् ५७ के बाद—प० शकरलाल तिवारी 'बेढब' : पृ० ७५

कुछ स्थानों पर हिंसात्मक क्रान्ति का आभास भी दिया तथा अहमदाबाद में जोरों का संघर्ष हुआ। गाँधी जी को इन सब घटनाओं से अत्यधिक मानसिक क्लेश पहुँचा। उन्होंने देश की राजनीतिक परिस्थिति को सुधारने के लिए जनता को अनुशासन का पाठ पढ़ाना चाहा। सत्य, अहिंसा तथा आत्म बलिदान द्वारा लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर करने के लिए असहयोग आन्दोलन का प्रचार किया। अब तक वे विदेशी सरकार से सहयोग द्वारा भारत को स्वतन्त्रता की ओर ले जाना चाहते थे किंतु अब वे असहयोग के दृढ़ समर्थक हो गये थे।[१] खिलाफत के प्रश्न पर भारत की मुस्लिम जनता अंग्रेजों के प्रति विक्षुब्ध हो उठी, क्योंकि उससे उनकी धार्मिक भावना को ठेस पहुँची थी।[२] देश का यह सौभाग्य था कि पुनः हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में समान रूप से भाग लिया। गाँधी जी ने सम्पूर्ण देश की जनता का नेतृत्व किया। उन्हें अली भाइयों का सहयोग प्राप्त हुआ तथा सन १९२० ई० में बहुमत से असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इस हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के अनुकूल वातावरण में भी राजनैतिक दलबन्दियों का हो जाना एक अप्रिय तथा खेदपूर्ण घटना थी। यह दलबन्दी पंजाब के अत्याचार तथा खिलाफत के प्रश्न के सम्बन्ध में हुई थी। कुछ नेतागण गाधी जी के असहयोग से असहमत होने के कारण कांग्रेस से पृथक हो गये थे। कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न पर भी सभी नेता एकमत नहीं थे। असहयोग से सहमत होने पर भी जो नेता कांग्रेस के नेतृत्व में कौंसिल प्रवेश द्वारा विदेशी साम्राज्यवाद को मिटा डालना चाहते थे, उन्होंने असहयोग आन्दोलन का जोश धीमा पड़ने ही सन १९२२ में, 'स्वराज्य पार्टी' के नाम से कांग्रेस के कार्यक्रम का पालन करते हुए, एक नई पार्टी या दल की रचना कर ली थी। इसके समर्थक देशबन्धु चित्तरंजनदास, पण्डित मोतीलाल नेहरू आदि थे।

गाधी जी के नेतृत्व में अब कांग्रेस का लक्ष्य औपनिवेशिक स्वतन्त्रता न रह कर पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन बन गया था। कांग्रेस में एक निश्चित कार्यक्रम

१. "The dramatic shift of Gandhi from Co operation to non co operation changed the whole face of Indian Politics"
Dr M A Buch -The Rise and Growth of Indian Nationalism, Page 30

२. 'Gandhi soon took the leadership of the Indian Muslims He felt that grave injustice had been done to the Mohammedans in India Their religious susceptibilities had been deeply wounded Here was an opportunity to the Hindus to stand by the side of their Muslim brethren and thus advance the cause of Hindu Muslim Unity'
Dr. Buch—The Rise and Growth of Indian Nationalism, Page 27.

निर्धारित किया गया जिसके आधार पर राष्ट्रीय आन्दोलन का सचालन हुआ। इस रचनात्मक कार्यक्रम को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक करोड रुपये के एकत्रीकरण का तथा बीस लाख घरो में चर्खा चलवाने का निश्चय किया गया।[1] गाधी जी ने असहयोग आन्दोलन की सफलता के लिए जनता को त्याग, सहनशीलता तथा अहिंसा का पाठ पढाना प्रारम्भ किया। उनके असहयोग का तात्पर्य था, आत्मबल द्वारा विदेशी सत्ता से असहयोग। सरकारी उपाधियो तथा सम्मानो का त्याग इस आन्दोलन की विशेषता थी।[2] हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, स्वदेशी, हिन्दुस्तानी को राष्ट्र भाषा बना कर राष्ट्रीय एकीकरण का प्रयास इस आन्दोलन के लक्ष्य थे। उनका मूल अस्त्र था अहिंसा। इसी कारण गाधी जी ने राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार तथा राजनैतिक मताधिकार पर विशेष बल दिया। राष्ट्रीय विद्यापीठ खोले गये, तथा भारतीय विद्यार्थियों को नवीन ढग की राष्ट्रीय शिक्षा दी जाने लगी, यद्यपि इस दिशा मे अधिक सफलता न मिल सकी।[3]

असहयोग आदोलन

गाधी जी के असहयोग आन्दोलन का ध्येय था सत्य तथा अहिंसात्मक प्रणाली द्वारा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना मे सम्पूर्ण राष्ट्र की समस्त शक्ति का प्रयोग करके भारत को विदेशी शासनाधिकार से मुक्त करना। गाधी जी के शब्दो मे—'वास्तव मे मेरा विश्वास तो यह है कि इगलैंड और भारत जिस अप्राकृतिक रूप से रह रहे हैं, मैंने असहयोग के द्वारा उससे उद्धार पाने का मार्ग बता कर दोनो की सेवा की है। मेरी विनम्र सम्मति मे जिस प्रकार अच्छाई से सहयोग करना कर्तव्य है उसी प्रकार बुराई से असहयोग करना भी कर्तव्य है। इससे पहले बुराई करने वाले को क्षति पहुचाने के लिए असहयोग को हिंसात्मक ढग से प्रकट किया जाता रहा है। पर मैं अपने देशवासियो को यह बताने की चेष्टा कर रहा हू कि हिंसा बुराई को कायम रखती है, इसलिए बुराई की जड काटने के लिए यह आवश्यक है कि हिंसा से बिल्कुल अलग रहें। अहिंसा का मतलब यह है कि बुराई से असहयोग करने के लिए जो कुछ भी दण्ड मिले उसे स्वीकार कर लें।'[4] वह राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए सुधारो की अपेक्षा सत्य तथा अहिंसा को प्रमुखता देते थे। उनका विश्वास था कि इस साधन को अपना कर स्वशासन सुलभ हो सकता है जिससे अन्य सुधार-कार्य स्वत पूर्ण हो

१ पं० शकरलाल तिवारी 'बेडब' . भारत सन् ४७ के बाद . पृ० ८३

२ पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास . पृ० १५१
'हमे धीरे-धीरे बढना होगा, जिससे बड़े से बड़े उत्तेजन पर भी हम अपना आत्म-संयम बनाये रख सकें।'

३. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ३७

४. पट्टाभि सीतारम्मैया . कांग्रेस का इतिहास : पृ० १६७

जायेंगे।[1] कांग्रेस में प्रेषित असहयोग प्रस्ताव निम्नलिखित थे।[2]

(१) सरकारी उपाधियो, अवैतनिक पदो और म्युनिसिपल बोर्ड व अन्य संस्थाओं को लोग छोड दें।

(२) सरकारी दरबारो, स्वागत समारोहों तथा अन्य सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी उत्सवो मे भाग लेने से इन्कार कर दिया जाये।

(३) सरकारी तथा सरकार से सहायता पाने वाले स्कूल व कालेजो का बहिष्कार और राष्ट्रीय विद्यालयो की स्थापना की जाये।

(४) वकील और मुवक्किलो द्वारा ब्रिटिश अदालतो का बहिष्कार और पंचायती अदालतो की स्थापना की जाये।

(५) फौजी, क्लर्की व मजदूरी करने वाले लोग मेसोपोटामिया में भर्ती होने से इन्कार कर दें।

(६) नई कौंसिलो के चुनाव के लिए खडे उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें।

(७) विदेशी माल का बहिष्कार। हाथ कताई व भारतीय उद्योग धंधों को प्रोत्साहन।

यह प्रस्ताव कांग्रेस द्वारा अनुमोदित हो जाने के पश्चात् गाधी जी ने असहयोग आन्दोलन के लिए रचनात्मक कार्यक्रम की एक विस्तृत सूची बनाई थी। इस रचनात्मक कार्यक्रम के अनुसार राष्ट्रीय जीवन के नवनिर्माण का उन्होंने सफल प्रयत्न किया। इसके विशेष केन्द्र ग्राम थे। इसकी सफलता के लिए गाधी जी ने स्वयंसेवकों का एक विशाल दल संगठित किया था, जिसने नगरो के साथ ग्रामों मे भी रचनात्मक कार्य प्रणाली की सफलता का उद्योग किया। 'आदर्श भारत की रूपरेखा' मे गाधी जी ने रचनात्मक कार्यों की सूची इस प्रकार दी है।[3]

(१) हिन्दू मुस्लिम या साम्प्रदायिक एकता
(२) अस्पृश्यता निवारण
(३) मादक द्रव्य निषेध
(४) खादी
(५) दूसरे ग्राम उद्योग
(६) गावो की सफाई
(७) नई अथवा बुनियादी शिक्षा

---

१. पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ० १५१
२ वही, पृ० १५१
३ मोहनदास करमचंद गांधी आदर्श भारत की रूपरेखा पृ० २१ अनुवादक—देवराज उपाध्याय

(८) प्रौढ शिक्षा
(९) नारियो की उन्नति
(१०) स्वास्थ्य और सफाई सम्बन्धी शिक्षा
(११) राष्ट्रभाषा का प्रचार
(१२) स्वभाषा प्रेम की शिक्षा
(१३) धार्मिक समानता की चेष्टा

उन्होने असहयोगी के कर्तव्य भी निश्चित कर दिये थे—

(१) चर्खा चलाना जानता हो।
(२) विदेशी कपडा त्याग चुका हो।
(३) खद्दर पहनता हो।
(४) हिन्दू मुस्लिम एकता मे विश्वास रखता हो।
(५) अहिंसा मे विश्वास रखता हो।
(६) हिन्दू हो तो अस्पृश्यता को राष्ट्रीयता के लिये कलक समझता हो।

सन् १९२०-२१ मे असहयोग आन्दोलन का उत्साह सम्पूर्ण देश पर छा गया। श्री पट्टाभि सीतारम्मैया के शब्दो मे '१९२१ मे सरकार का मुकाबला करने की प्रवृत्ति देश के सार्वजनिक जीवन मे मुख्य बात थी, और जनता इस प्रवृत्ति का परिचय भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे अपने आसपास की स्थिति को देखकर तथा वहा की स्थानिक और नागरिक समस्याओ के अनुसार दे रही थी।'[1] सत्य तथा अहिंसा का पूर्णरूपेण पालन न हो सकने पर भी देश हित के लिए स्वेच्छया तथा सहर्ष प्राणोत्सर्ग करने वालो की सख्या कम न थी। 'जेल जाना एक खेल हो गया था और सजा काटना मेहमानदारी। असहयोगियो के लिए ब्रिटिश सरकार की जेलो मे जगह बाकी न रह गई थी।'[2] गाधी जी ने अपने कार्य को प्रचार, आन्दोलन और सगठन द्वारा गतिशील बनाया। उन्होने इस आन्दोलन के समुचित प्रचार के लिए भारत के विभिन्न स्थानो का भ्रमण किया और असहयोग का सदेश भारत के ग्राम-ग्राम म पहुचा दिया। स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के इतिहास मे प्रथम बार ऐसी उत्तेजनादायक घटना घटी थी कि किसी राष्ट्रीय नेता के उपदेश को सुनने के लिए सहस्रो की सख्या मे साम्प्रदायिक भेदभाव त्याग कर जनता एकत्रित हो।[3] भारतीय जनता ने गाधीजी को उस अवतार

१ पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० १७६

२ ठाकुर राजबहादुरसिंह कांग्रेस का सरल इतिहास पृ० ३६

3 'The call to open rebellion was an entirely new one in the history of India and the people were swept off their feet by his whirlwind propaganda The march of Hindus and Muslims under one common political leader was also equally new and since the great days of Akbar and the days of the Indian Mutiny, India had never seen such a spectacle'

Dr. Buch : The Rise and Growth of Indian Nationalism, Page 31

या पैगम्बर के रूप मे देखा, जो भारत की स्वतत्रता तथा उसके उत्थान के लिए प्रकट हुआ था। गाधी जी ने जनता को यह विश्वास दिलाया कि विदेशी सरकार भारतीय जीवन घातक है। उससे मुक्ति प्राप्ति का एक मात्र ईश्वर-सम्मत साधन 'अहिंसात्मक असहयोग' है। उनका यह दृढ विश्वास था कि इस साधन के उपयोग से शीघ्र ही स्वराज्य प्राप्त होगा। जनता ने भी उनके इस विश्वास की पुष्टि अपने सहयोग द्वारा की।[१] गाधी जी का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, लाला लाजपतराय, विट्ठल भाई पटेल, वल्लभभाई पटेल, एन०सी० केलकर, डा० मु जे, राजेन्द्रप्रसाद, राजगोपालाचारी, रग स्वामी, सत्यमूर्ति, प्रकाशम्, मुहम्मद अली, शौकतअली अबुल कलाम आजाद अन्सारी सभी ने उनका नेतृत्व ग्रहण किया। अत भारतीय जागृति आशिक नही, सामूहिक थी।[२] विदेशी कपडो के बहिष्कार तथा मद्य निषेध के क्षेत्र मे अतीव सफलता मिली। नारियो की जागृति एव असहयोग आन्दोलन म सक्रिय सहयोग इस युग की सबसे बडी विशेषता थी।

इस नव जागृति का परिणाम यह हुआ कि सन् १९२० ई० मे ड्यूक आफ कनाट का भारतागमन स्वागत की दृष्टि से अत्यन्त विरस रहा। इसके पश्चात् युवराज प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन का पूर्ण बहिष्कार हडताल द्वारा किया गया। उनका बहिष्कार भारतीयो की निर्भीकता तथा विदेशी सत्ता के प्रति उग्र विरोध भावना का प्रतीक था। राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास मे इस प्रकार की घटना अपूर्व थी जिसने विदेशी शासन सत्ता की जड हिला दी।[३] देश मे कुछ मान्य व्यक्तियो ने अपनी पदवी तथा उपाधि त्याग दी थी। सैकडो की सख्या मे विद्यार्थी सरकारी स्कूलो और कालेजो का परित्याग कर राष्ट्रीय विद्यालयो में प्रविष्ट हो रहे थे, तथा राष्ट्रीय स्वय सेवक बन रहे थे।

सरकार देश मे इस नवीन तथा उग्र राष्ट्रीयता की लहर को देख आतकित हो गई। इसके दमन के लिए उसने 'सेडिशस मीटिंग', 'क्रिमिनल ला', 'अमेंडमेंट

१ 'A new spirit of political self consciousness and political self-reliance was born, and people under the matchless leadership of Gandhi, boldly began to take their destiny into their own hands'

Dr Buch The Rise and Growth of Indian Nationalism, Page 31

२ पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास, पृ० १६६

३ 'The non co operation movement was meant to weaken the prestige of the Government and put a new spirit of self reliance into the people !'

Dr Buch The Rise and Growth of Indian Nationalism, Page 31

एक्ट', '१४४ धारा', का कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया। राष्ट्रीय नेता तथा स्वय सेवक राजद्रोह के अपराध म दडित किये गये तथा जेलखानो मे ठू स दिये गये, जहा 'उन्ह मारना, पीटना, नगा करके छोड देना आदि सभी पुलिस के साधारण खेल थे।'[1] जेलखाना अब पवित्र स्थान तथा दण्ड वरदान बन गया था। जनता ने विदेशी सरकार के अत्याचारो को बडी शान्ति के साथ सहन किया।[2] दमन चक्र बडे भयावह और विस्तृत रूप म जारी था। विशेष रूप से युक्तप्रान्त मे उसका बहुत जोरशोर था। कई जगह तो गोली-काण्ड भी हुए। बहुत से लोग, बिना मुकदमा लडे जेलो मे पडे हुए थे। उन सबको बधाई देते हुए काग्रेस महासमिति ने घोषणा की कि स्वेच्छापूर्वक कष्ट-सहन और सफाई या जमानत दिये बगैर जेल जाने से ही हम स्वतन्त्रता के मार्ग पर अग्रसर होग।' देश की इस नवीन जागृति तथा नव आन्दोलन का प्रभाव केवल देश तक सीमित न रहा, विदेशो मे भी गाधी जी को सदभावना के सदेश मिले, अमरीका आदि देशो मे महात्मा जी के प्रति सहानुभूति के सदेश आये। भारत के उस महान आन्दोलन पर ससार की आखें खुल गई। विदेशो मे रहने वाले भारतीयो ने अपनी पूरी शक्ति भारत को प्रदान कर दी।[3]

इस आन्दोलन को नष्ट करने की जितनी ही योजनाओ का आयोजन हुआ, उतना ही यह आन्दोलन उग्र रूप धारण करता गया—

गाधी टोपी खद्दर और वदेमातरम् सरकार के लिए हौआ-सा हा गया। ये तीन बातें सख्त राजद्रोह समझी जाने लगी। सैकडो नही बल्कि हजारो आदमी इसी अपराध म पकडे गए।[4] पडित मोतीलाल नेहरू श्री सी० आर० दास लाला लाजपतराय को भी इसी आन्दोलन मे कारावास दण्ड मिला था।

गाधी जी न देश मे हिन्दू मुस्लिम ऐक्य तथा अहिंसात्मक असहयोग का वातावरण देख, बारडोली म सामूहिक सविनय आज्ञा भग आन्दोलन की तैयारी प्रारम्भ की, किन्तु दुर्भाग्यवश इसी समय उत्तरप्रदेश के चौरीचौरा स्थान मे हिंसात्मक घटना घटी जिसस वे दु खित हो गय तथा तत्क्षण आन्दोलन स्थगित कर दिया।[5] जनता की उत्तेजना को गाधी जी के इस निर्णय से ठेस पहुची और उसकी आग पर ठडा पानी पड गया जिससे आग बुझ तो गई पर धुए का गुबार छोडती गई। सरकार

१ भारत सन् ५७ के बाद पृ० ८६

२ पट्टाभि सीतारम्मैया काग्रेस का इतिहास पृ० १७५

३ प० शकरलाल तिवारी बेढब भारत सन् ५७ के बाद पृ० ८६

४ प० शकरलाल तिवारी बेढब भारत सन ५७ के बाद . पृ० ८५

५ At Chauri Chaura 21 constables and a Sub Inspector perished in the flames as a result of a fire set to the Police Station by a mob'

Dr Buch—The Rise and Growth of Indian Natio alism, Page33.

ने इस अवसर का लाभ उठाया और गांधीजी को कैद कर लिया गया। १६२२ के पश्चात् सन् १६२७ ई० तक देश मे स्वराज्य पार्टी की धूम रही, ये लोग साम्राज्यशाही के गढ मे प्रविष्ट होकर आक्रमण करना चाहते थे। गाधी जी को अस्वस्थता के कारण, जेल से मुक्त कर दिया गया किंतु उन्होने स्वराज्य पार्टी के कार्य मे विरोध नही डाला। वह स्वय काग्रेस के लिए रचनात्मक कार्यक्रम बनाने में सलग्न रहे। इस प्रकार देश का राजनीतिक वातावरण असहयोग आन्दोलन के पश्चात् १६२७ ई० तक शान्त बना रहा अर्थात उत्तेजना के चिह्न देश के बाह्य वातावरण मे दृष्टिगत नही होते थे, किन्तु राष्ट्रीय भावना अन्दर ही अन्दर पुष्ट हो रही थी। इसका एक अन्य कारण भी था कि सरकार ने काग्रेसियो के लिए यह असभव कर दिया था कि वे स्थानिक सस्थाओं द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम आगे बढा सकते। 'वे जेल हो आने वालो को नौकरी नही दिला सकते थे, खादी नही खरीद सकते थे, हिन्दी की शिक्षा नही दे सकते थे, शालाओ मे चर्खा नही चला सकते थे, राष्ट्रीय नेताओ को मानपत्र नहीं दे सकते थे, और न म्युनिसिपैलिटी के स्कूलो पर राष्ट्रीय झडा फहरा सकते थे।'[1]

असहयोग आन्दोलन के उत्साह की समाप्ति के साथ ही साम्प्रदायिक विद्वेष प्रबल हो गया। हिन्दू मुस्लिम दगे प्रारम्भ हो गये। सन् १६२५ तथा '२६ मे ये दगे प्रमुखतया दिल्ली, कलकत्ता और इलाहाबाद मे हुए। मुस्लिम लीग काग्रेस से पृथक् हो गई जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दू महासभा द्वारा सकीर्ण हिन्दू राष्ट्रवाद का प्रचार किया जाने लगा।[2]

१६२५ मे सिक्खो ने पजाब-कौंसिल मे गुरुद्वारा बिल प्रस्तुत किया। सरकार गुरुद्वारा आन्दोलन के कैदियो को इस शर्त पर मुक्त करने पर प्रस्तुत हुई कि वे नये कानून मानें। गुरुद्वारा कमेटी मे इस बात को लेकर फूट पड़ गई और अधिकाश कैदी सरकारी कानून को मानने की शर्त पर मुक्त किये गये। अत: अकाली दल का राष्ट्रीय उत्साह भी क्षीण पड गया।[3]

इस अवधि मे, देश मे क्रान्तिकारी आतंकवादियो का हिंसात्मक कार्यक्रम भी पुन सगठित हुआ। सम्पूर्ण देश मे उनके गुप्त दलो का जाल फैल गया। शस्त्र के बल पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के आकाक्षी वीरो के साहसपूर्ण कृत्यो द्वारा भी देश के जीवन मे अधिक उत्साह आया, और राष्ट्रीय भावना को विकास का मार्ग मिला। सन् १६२७ मे कुछ घटनाए घटी जो राष्ट्रीयता के इतिहास मे महत्वपूर्ण हैं। इनमें प्रमुख हैं: प्रथम, सर्व दल सम्मेलन द्वारा नेहरू कमेटी की नियुक्ति जो देश के लिए सविधान बनाने के लिए थी, द्वितीय, मद्रास काग्रेस मे पूर्ण स्वतत्रता पर विचार और भगतसिंह द्वारा केन्द्रीय असेम्बली मे बम फेंकना। तृतीय, भारतीय जीवन मे श्रासको की राज-

१. पट्टाभि सीतारम्मैया काग्रेस का इतिहास : पृ० २३४
२ पट्टाभि सीतारम्मैया काग्रेस का इतिहास . पृ० २३६
३. Palme Dutt : India Today. Page 329.

नीतिक तथा आर्थिक नीति के प्रति बढते हुए विक्षोभ को दृष्टिगत कर ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन की स्थापना की घोषणा की, जिसका प्रयोजन था ब्रिटिश भारत का भ्रमण कर शासन कार्य, शिक्षा वृद्धि, प्रतिनिधि सस्थाओ के विकास तथा तत्सबधी विषयों की जाच करके यह निर्णय देना कि भारत उत्तरदायी शासन के योग्य है या नही। इस कमीशन मे भारतीयो को कोई स्थान नही दिया गया था। अत काग्रेस तथा अन्य सभी राजनीतिक दल इसके बहिष्कार के लिए कटिबद्ध हो गये।[1]

अखिल भारतीय नरमदली नेताओ ने भी इसके विरोध मे एक घोषणा पत्र प्रकाशित किया। 'मिल विल्किन्सन ने तो यहा तक कह डाला कि अमृतसर-काड के पश्चात् ब्रिटिश सरकार के किसी भी कार्य की भारत मे इतनी भारी निन्दा नही हुई जितनी कि साइमन-कमीशन की नियुक्ति की। काग्रेस के सभापति ने भी कमीशन की निन्दा की और कर्नल वेजवुड के विचारो का हवाला दिया कि कमीशन के बहिष्कार से भारत के पक्ष को कोई नुकसान नहीं पहुचेगा।'[2]

कमीशन बहिष्कार सम्बन्धी निश्चय के साथ काग्रेस मे कुछ अन्य विषयो पर भी प्रस्ताव अनुमोदित हुए, वे विषय थे—नजरबन्द, भारत व एशिया, राष्ट्र का स्वास्थ्य, साम्राज्यवाद विरोधी सघ, चीन, पासपोर्ट, हिन्दू मुस्लिम एकता, ब्रिटिश माल बहिष्कार आदि। काग्रेस ने साम्राज्यवाद के विरोध मे अन्तर्राष्ट्रीय सघ से सबध जोड कर काग्रेस के इतिहास तथा राष्ट्रीय सग्राम को एक निश्चित मोड दिया।[3]

सन् १९२८ से ३७ तक की राजनीतिक परिस्थितियां

सन् १९२७ मे ही देश के राष्ट्रीय जीवन मे विकास के चिह्न दृष्टिगत होने लगे थे। सन् १९२८-१९२९ मे पुन देश के विद्यार्थी वर्ग तथा युवक समूह मे राष्ट्रीय भावना प्रबल हुई। जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे अखिल भारतीय स्वतन्त्रता समिति की स्थापना हुई, जिससे भारतीय स्वातन्त्र्य सग्राम को सहायता मिली। श्रमिक तथा कृषक भी सगठित हुए और उन्होने सग्राम मे प्रमुख रूप से भाग लिया। श्रमिक

---

१. 'पर बात यह थी कि साइमन कमीशन की घोषणा भारत मे ८ नवम्बर सन् १९२७ को की गई। वाइसराय इसके प्रति सद्भावना पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के प्रयत्न मे थे। कांग्रेस के सिवा भी भारत की सब पार्टियां साइमन कमीशन की नियुक्ति से इसीलिए नाराज हुईं कि उसमे एक भी भारतीय नहीं रखा गया और कांग्रेस का यह मत स्वाभाविक भी था कि साइमन कमीशन तो उसकी अध-कचरी मांग के निकट भी नहीं पहुंचता। डा० बेसेण्ट ने कहा कि यह जले पर नमक छिडकना नहीं है तो क्या है ?'

—पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास : पृ० २५३

२. पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास . पृ० २५४

३ A. R. Desai : Social Background of Indian Nationalism, Page 317.

वर्ग की समठित शक्ति मे भारतीय राष्ट्रवाद को एक महत्वपूर्ण, शक्तिशाली, गतिवर्द्धक तत्व की प्राप्ति हुई। भारत के इतिहास मे प्रथम बार एक नई लहर ने जन्म लिया।

३ फरवरी १९२८ ई० को साईमन कमीशन भारत मे आया जिसका स्वागत अखिल भारतीय हडताल द्वारा किया गया।[1] उसके विरोध मे दिल्ली, मद्रास, पटना, कलकत्ता, लखनऊ आदि नगरो मे प्रदर्शन सभाए तथा स्ट्राइक हुए। 'गो बैक साइमन। (साइमन वापस लौट जाओ) के नारे लगाए गये। लाहौर म लाला लाजपतराय के नेतृत्व म एक विशाल जनसमूह एकत्रित हुआ। ब्रिटिश सरकार ने पुलिस तथा अन्य साधनों द्वारा जनता को आतंकित कर दबाना चाहा। अन्य प्रतिष्ठित नेतागणो के साथ लाला लाजपतराय को भी लाठी से पीटा गया। उन्हे वीरगति प्राप्त हुई। उनकी मृत्यु के सबंध म निष्पक्ष जाच करने की माग की गई जो ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकृत नही की गई।[2] हिन्दी प्रदेश म यह बहिष्कार विशेषतया प्रबल था। कांग्रेस के इतिहास मे पट्टाभि सीतारम्मैया ने लिखा है —

"लखनऊ म भी कमीशन के आने के दिन नि शस्त्र व शान्त भीड पर पुलिस ने कई बार जानबूझ कर अकारण डण्डे बरसाये। युक्तप्रान्त की पुलिस न तो जवाहरलाल जी तक को न छोडा। सब दलो के प्रमुख प्रमुख कार्यकर्ताओ पर डडे व लाठिया बरसान म तो माना घुडसवार व पैदल पुलिस ने अपनी सारी चतुराई ही खतम कर दी और बीसियो आदमियो को घायल कर डाला।[3] भारतवासी सरकार के नृशंस एव बर्बरतापूर्ण कृत्यो से तनिक भी विचलित नही हुए। इन अवरोधो से जनता को उत्साह और बलिदान के लिए प्रेरणा मिली। इस कमीशन का बहिष्कार केवल नगर निवासियों ने ही नही वरन् ग्रामवासियो ने भी किया था। 'सरकार न आसपास के गावो से लारियो म भर-भर कर किसान बुलवाये लेकिन स्वागत कैम्पो म घुमने के बजाय वे बहिष्कार कैम्पो मे जा डटे। और स्टेशन पर विराट जन-समूह न कमीशन के विरोध मे जो अहिंसापूर्ण प्रदर्शन किया उसे और स्वागत तथा बहिष्कार पार्टियो के बल को देखकर तो सरकार की आखें ही खुल गई।[4] श्रमिक वर्ग न भी जलूसो म सम्मिलित होकर इस बहिष्कार को सफल बनाया था।

साइमन कमीशन के बहिष्कार के अतिरिक्त इस वर्ष की एक अन्य घटना है बारडोली का आन्दोलन। बारडोली मे सरकार द्वारा २५ प्रतिशत भूमि कर बढा दिया गया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि वहा सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व मे करबन्दी आदोलन का सगठन किया गया। सरकार ने इस आदोलन के दमन के लिए कुर्कियां करायी[5] और पठानो को बुलाकर कृषको की जायदाद छीनी।

---

1 A R Desai Social Background of Indian Nationalism P 317.
२ पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ० २५७
३ पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास पृ० २५८
४ वही, पृ० २५८
५ वही, पृ० २६१

इसी वर्ष सर्व दल सम्मेलन बुलाया गया जिसमे काग्रेस, उदार दल तथा मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। विभिन्न दलो के सम्मिलन द्वारा राष्ट्रीय एकता का यह प्रयास मात्र था। मोतीलाल नेहरू ने देश के स्वायत्त शासन के लिए सविधान की योजना बनाई। वर्ष के अन्त मे काग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर ५०,००० कलकत्ता मिल के श्रमिको ने जलूस के रूप मे आकर राष्ट्रीय स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया था। सन् १९२९ मे मिल हडताल अपने चरम पर पहुँच गये। कलकत्ता काग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को एक वर्ष का समय दिया जिसमे वह पूर्ण 'डोमीनियन स्टेटस का अधिकार भारत को दे दे, अन्यथा भारत का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता होगा। १९२९ मे वाइसराय ने यह घोषणा की कि डोमिनियन स्टेटस ही भारतीय राजनीतिक प्रगति का ध्येय है और यह १९१९ के विधान नियम मे समाहित है। यह भी कहा कि शीघ्र ही भारतीय सविधान के सबध मे विचार करने के लिए भारतीय और ब्रिटिश राजनीतिज्ञो का एक गोलमेज सम्मेलन होगा। इसका उद्देश्य था विविध विचार धाराओ का जानना और उनके अनुसार ब्रिटिश सरकार को सलाह देना जिससे वह सविधान का मसौदा ब्रिटिश ससद के सम्मुख रख सके। गाधी जी ने यह निश्चित करना चाहा कि इस सम्मेलन का तात्पर्य होगा डोमीनियन सविधान बनाना, परन्तु वाइसराय इस प्रकार का कोई आश्वासन न दे सके। परिणामस्वरूप लाहौर काग्रेस मे पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव अपनाया गया और उसकी प्राप्ति के लिए सत्याग्रह, जिसमे करबदी भी सम्मिलित थी, आन्दोलन चलाने का निश्चय किया गया।

मेरठ षड्यन्त्र केस राष्ट्रीय इतिहास मे प्रसिद्ध है। इस मे ट्रेड यूनियन, कृषक सभा, राष्ट्रीय महासभा के तीन सदस्यो तथा ब्रिटिश साम्यवादी दल के ब्रैडले, स्प्रैट, हचिंस्टन पर मुकदमा चलाया गया था।[1] ब्रिटिश सरकार की दमन नीति ने उग्र रूप धारण किया। जवाहरलाल नेहरू जी अन्य राष्ट्रवादी नेतागण तथा काग्रेस के वामपक्षी नेता सुभाषचद्र बोस पकडे गये। आतकवादी नेता भगतसिंह और दत्त को भी कठोर दण्ड मिला। भारत को साम्यवादी प्रभावो से अछूता रखने के लिए सार्वजनिक सुरक्षा बिल पास किया गया।[2] राजनीतिक समस्याए, परिस्थितिया और उलझ गई।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे काग्रेस के सबध बढते जा रहे थे। उसे विदेशो से विशिष्ट व्यक्तियो तथा सस्थाओ के सहानुभूति सूचक सदेशो की प्राप्ति भी हुई थी। देशी राज्यो से भी काग्रेस ने उत्तरदायी शासन स्थापित करने का अनुरोध किया। इन सबके सगठन के परिणामस्वरूप विदेशी सत्ता भयभीत हुई। दमन की कठोर विभीषिका मे भारतवासियो ने जिस आत्म-बलिदान, सहन-शक्ति, धैर्य, दृढ निश्चय का प्रमाण दिया था उससे साम्राज्यवाद आतकित हुआ।

1. Palm Dutt—Indian Today. P 335
2. A. R. Desai—Social Background of Indian Nationalism. P. 319,

अस्पृश्यता निवारण, सामाजिक कुरीतियों के निराकरण, साम्प्रदायिकता को मिटाने तथा मजदूरों और किसानों के संगठन का प्रयास किया गया। कांग्रेस को भिन्न वर्गों का सहयोग प्राप्त कराने के लिए वैध उपायों का सहारा लिया गया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन

असहयोग आन्दोलन के पश्चात सन् १९३० में पुन स्वतन्त्रता प्राप्ति का सक्रिय उत्साह छा गया। गाधी जी द्वारा प्रचारित रचनात्मक कार्यक्रम ने देश के वातावरण को राष्ट्रीय आन्दोलन के उपयुक्त बना दिया था। स्वराज्य पार्टी की कौंसिल प्रवेश अथवा अडगा नीति द्वारा सफलता प्राप्ति का साधन असफल सिद्ध हो चुका था अत कांग्रेस ने कौंसिल बहिष्कारका पूर्ण स्वराज्यके लिए सत्याग्रह आदोलन सचालित करने का व्रत ठान लिया। इस महाव्रत का द्योतक सकेत स्वरूप २६ जनवरी देश के पूर्ण स्वराज्य मनाने का दिवस निश्चित हुआ। देशवासियो ने सम्पूर्ण उत्साह के साथ इस दिवस का समारोह सपन्न किया। इस पुण्य दिवस पर जनता के असीम भावना, स्वार्थ-त्याग तथा उत्साह का भाव प्रदर्शित किया जिससे देश पर छाई शिथिलता तथा निराशा की बदली छट गई। स्वतन्त्रता भारतीयों का जन्मसिद्ध अधिकार है तथा इसकी प्राप्ति करके ही राष्ट्र का विकास सम्भव है—यह स्वर पुन निनादित हुआ। आन्दोलन प्रारम्भ करने के पूर्व एक घोषणा-पत्र द्वारा महात्मा गाँधी ने भारतीय जनता की दृष्टि, विदेशी शासन द्वारा भारत के आर्थिक राजनीतिक, सास्कृतिक, आध्यात्मिक शोषण की ओर आकृष्ट की थी।[1] उन्होने आकडो द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि जनता की आमदनी के अनुपात मे कर अधिक लिया जाता है उसके हस्त-उद्योग को विनष्ट कर ग्रामीण जीवन को अधिक दयनीय बनाया गया है एव भारत-वासियो की शासन सबधी सम्पूर्ण प्रतिभा को मिटा डालने मे तनिक भी कोर कसर नहीं रखी गई है। शिक्षा प्रणाली दासता की अभिवृद्धि मे सहायक थी तथा नि शस्त्रीकरण भारत के आध्यात्मिक पतन मे सहयोगी। भारतीय दुर्दशा के अनेकागो की ओर लक्षित करते हुए घोषणा-पत्र मे कहा गया था—

"जिस शासन ने हमारे देशका इस प्रकार सर्वनाश किया है उसके अधीन रहना हमारी राय में मनुष्य और भगवान दोनो के प्रति अपराध है। किन्तु हम यह भी मानते हैं कि हम हिंसा के द्वारा स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी। इसलिए हम ब्रिटिश सरकार से यथा सम्भव स्वेच्छापूर्वक किसी भी प्रकार का सहयोग कराने की तैयारी करेंगे और सविनय अवज्ञा एव करबन्दी तक के साज सजायेंगे। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम राजी-राजी सहायता देना और उत्तेजना मिलने पर भी हिंसा किये बगैर कर देना बन्द कर सके तो अमानुषी राज्य का नाश निश्चित है। अत हम शपथपूर्वक सकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के हेतु कांग्रेस समय समय पर जो

१ पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ० २

ग्राज्ञायें देगी उनका हम पालन करते रहेंगे।"[1] घोषणा पत्र मे विदेशी शासको की भारत हित विरोधी नीति का जितने स्पष्ट शब्दो मे वर्णन किया गया था वह अपूर्व थी और भारतीय राष्ट्रवादके विकास का सूचक था। भारतवासियो के सम्मुख विदशी शासन के राहु द्वारा भारतीय जीवन के चक्र का ग्रसित रुप रखा गया था। अतः गाधीजी ने भारत के दुर्भाग्य रूपी विदेशी शासन व्यवस्था को मिटाने के लिए आदोलन का नेतृत्व किया। इस आदोलन का उद्देश्य भारत के लिए 'पूर्ण स्वतन्त्रता' प्राप्त करना था। इसके पूर्व असहयोग आदोलन के अवसर पर राष्ट्रवादियो का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता न होकर औपनिवेशिक शासन मात्र था। कांग्रेस के आदेश पर १७२सदस्यो ने असेम्बली तथा राज्य-परिषद् की सदस्यता त्याग दी।

सन् १९२०-२१ के असहयोग आदोलन की भाति सविनय-अवज्ञा आदोलन मे भी सरकार के साथ स्वेच्छापूर्वक सहयोग करने वाले वकीलो विद्यार्थियो आदि को सरकार से असहयोग कर सग्राम मे भाग लेने के लिए प्रेरित किया गया था। गाँधीजी द्वारा यह द्वितीय राष्ट्रीय जन आदोलन का आयोजन था। प्रारम्भ करने के पूर्व उन्होंने भली प्रकार निरीक्षण कर लिया था कि यह आदोलन किसी प्रकार, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से हिसात्मक कार्यो की ओर निर्देश नही करेगा।[2] इसकी प्रारम्भिक स्थिति मे उन्होंने केवल ७९ चुने हुए सत्याग्रहियो के साथ स्वय नमक कानून के उल्लघन द्वारा सविनय अवज्ञा का बीजारोपण करने का निश्चय किया।

६ अप्रैल सन् १९३० को गाधीजी ने आदोलन के लिए जिस कार्यक्रम का रुपाकन किया था उसकी प्रमुख बातें थी (१) गाव गाव मे नमक कर मिटाने के लिए नमक का निर्माण (२) शराब बदी के लिए दुकानो पर जाकर धरना देना, यह कार्य विशेष रुप से देश की महिलाओ को सौंपा गया था। विदेशी वस्त्रो की दुकानो पर धरना देना। घर घर से विदेशी वस्त्रो का निराकरण कर उन्हें अग्नि में भस्म करना। (३) खादी का प्रचार, युवक तथा वृद्ध सभी के द्वारा चर्खे पर सूत कातना। (४) अस्पृश्यता को मिटाकर समाज के निम्न वर्ग का उत्थान, विद्यार्थियों सरकारी अफसरो द्वारा सरकारी स्कूल तथा पदो का परित्याग करना।

---

१ पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ० २८९

२ A R Desai Social Background of Indian Nationalism P. 321.

३ The Boycott of foreign cloth and liquor enforced by methods of picketing and propaganda met with success, students in considerable numbers left educational institutions The Congress Committees organised meetings in defiance of police ban and firings and lathi charges were resorted by the police to break the banned rallies.'

A. R Desai—Social Background of Indian Nationalism, P. 322.

नमक कानून भंग आन्दोलन

अंग्रेजो की व्यापारिक नीति ने अपने लाभ के लिए देशी नमक कर सविधान बनाया था जिससे विदेशी चेशायर नमक की भारत मे खपत हो सके। वस्तुत उनकी वणिक नीति अत्यधिक प्रबुद्ध एव स्वार्थपूर्ण थी। भारत से कच्चा माल ले जाने वाले जहाजो को इगलैंड से खाली लौटना पडता था। जहाज के इस व्यय की पूर्ति कूटनीति द्वारा की गई। यदि भारतीय नमक पर कर लगा कर उसके मूल्य मे अभिवृद्धि न की जाती तो विदेशी नमक को सस्ते दामो पर बेचकर उसकी खपत की सुविधा न रहती। गाधीजी ने नमक जैसी साधारण, किन्तु दैनिक जीवन के लिए अति आवश्यक वस्तु पर लगे कर को भग करने का निश्चय किया। साबरमती की बैठक के बाद यह विषय अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया। यह कानून भग करने का सग्राम भौतिक न होकर नैतिक था। भारत की दरिद्रता की दृष्टि से यह नमक कानून अन्याय तथा स्वार्थ पर आधारित था। नमक सत्याग्रह की योजना थी—किसी नमक के क्षेत्र मे जाकर नमक बनाया जाये, नमक उठाया जाये और इस प्रकार कानून भग किया जाये। इस सत्याग्रह को प्रारम्भ करने के पूर्व गाधीजी ने वाइसराय लार्ड इरविन के नाम पत्र लिखा था जिसमे सरकार की नीति, स्वतन्त्रता तथा उसके हेतु और आदोलन के कारण आदि विषय स्पष्ट कर दिये थे।

१२ मार्च सन् १९३० को फौलादी अनुशासन मे सधे ७९ आश्रमवासियो को साथ लेकर गाधीजी ने समुद्र तट पर अवस्थित दण्डी ग्राम की ओर प्रस्थान किया। यह शुद्ध नैतिक ढग का आक्रमण था। उनकी यात्रा प्रारम्भ होने के पूर्व ही सरदार वल्लभ भाई पटेल मार्गवासियो को जागृत करने के लिए पहुच गये थे किन्तु सरकार ने उन्हे गिरफ्तार कर अपनी दमन नीति का परिचय दिया, जिसके फलस्वरूप गुजरात का बच्चा बच्चा अग्रेजी सरकार का विरोधी हो गया। गाधीजी की इस नैतिकतापूर्ण दण्डी यात्रा का भारतीय जन-जीवन पर गहरा प्रभाव पडा। अनेक ग्राम कर्मचारियो ने त्याग पत्र दिये। नगर उरते रहे परन्तु ग्राम आदोलन के पीछे चल दिये। यह अग्रेजी सत्ता के खिलाफ ३२ करोड भारतीयो के विद्रोह का परिचायक मात्र था।[1] गाधीजी ने देशवासियो को चेतावनी दे दी थी कि उनके दण्डी पहुचने से पूर्व देश मे कही भी सविनय अवज्ञा प्रारम्भ न की जाये। सत्याग्रहियो के लिए प्रतिज्ञापत्र बना। सरकारी नौकरी छोडने वालो को बधाई दी गई। इसके अतिरिक्त गाधीजी ने देश को यह आदेश भी दे दिया था कि उनके गिरफ्तार होने पर अत्यन्त सक्रिय अहिंसा को कार्यक्रम दिया जाये। अहिंसा म धार्मिक विश्वास रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति स्त्री अथवा पुरुष, इस पराधीनता को मिटाने के उद्योग मे या तो मर मिटे या कारावास मे बन्द रहे। श्री मोतीलाल नेहरू ने इसी समय के आसपास अपना शाही भवन का दान दिया। गाधीजी ने सूत्र रूप से विचार दिया था। उनके शिष्यो ने आप्यकार

१ पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास : पृ० ३०२

बन कर उसे जनता को समझाया। अनेक कार्यकर्ता राष्ट्रदूत बनकर उसका प्रचार करने दूर दूर निकल पडे।[1]

६ अप्रैल, १९३० को गांधीजी ने नमक कानून तोडा। इस अवसर पर गांधी जी ने कहा था—

"अंग्रेजी राज्य ने भारत का नैतिक, भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी तरह का नाश कर दिया है। मैं इस राज्य को अभिशाप समझता हू और इसे नष्ट करने का प्रण कर चुका हू। मैंने स्वय 'गोड सेव दी किंग' के गीत गाये हैं। दूसरो से गवाये हैं। मुझे भिक्षा देहि' की राजनीति मे विश्वास था। पर वह सब व्यर्थ हुआ। मैं जान गया कि इस सरकार को सीधा करने का यह उपाय नही है। अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है। पर हमारी लडाई अहिंसा की लडाई है। हम किसी को मारना नही चाहते, किन्तु इस सत्यानाशी शासन को खतम कर देना हमारा परम कर्त्तव्य है।"[2]

इस आदोलन का आश्चर्यकारी प्रभाव हुआ। विदेशी सरकार इस सीधे सादे आदोलन से आशक्ति हो गई। अब सरकार का पूरा ध्यान असहयोगियो पर था। उसकी नैतिक प्रतिष्ठा तो मिट्टी मे मिल चुकी थी, राजनीतिक दृष्टि से भी उसकी सत्ता मिटाई जा रही थी। जमींदारो, मकानमालिको, साहूकारो, व्यापारियो आदि को बुलाकर यह धमकी दी गई कि यदि वे सत्याग्रहियो की सहायता करेंगे तो वे सरकार के कोपभाजन बन जायेंगे। लेकिन देशप्रेम की प्रबल धारा इन धमकियो का उल्लघन करती अबाध रूप से बहती जा रही थी। पट्टाभि सीतारम्मया के शब्दो मे 'स्वाधीनता पथ के इन यात्रियो के साथ कई विदेशी सवाददाता, चित्रकार और आस पास के सैंकडो लोग तथा भिन्न-भिन्न प्रातो से आए हुए प्रमुख व्यक्ति भी गये।[3]

इस आदोलन की चर्चा विदेशो मे भी हुई। पेशावर में यह आदोलन अधिक भयकर रूप मे फूटा। वहाँ जन-समूह ने प्रदर्शन के साथ पुलिस से सघर्ष भी किया। इस राष्ट्रीय चेतना की चरम परिणति थी एक गढवाली दस्तेके सैनिको द्वारा जन समूह पर गोली चलाने की आज्ञा स्वीकार करना।[4]

५ मई को गांधी जी कैद किये गये सरकार के इस कृत्य के विरोध मे हडतालें की गई। जिन पत्रो तथा प्रेसो ने इस आदोलन को सहयोग दिया था, उन्हे बन्द कर दिया गया और पत्रकारो को कारावास दण्ड दिया गया।[5] सन् १९३१ मे गांधी जी

---

१. पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० ३०४
२. वही, पृ० ३०६
३ वही, पृ० ३०५
४. Desai · Social Background of Indian Nationalism. 323.
५. 'Under the press ordinance, 67 news papers and 55 printing presses had been closed down before the end of July.'
Desai : Social Background of Indian Nationalism P. 3.3.

बिना किसी शर्त के मुक्त कर दिए गए। सरकार ने कांग्रेस से समझौते के लिए वार्ता प्रारम्भ की।

गाधी-इरविन पैक्ट

५ मार्च १९३१ को गाधी इरविन पैक्ट पर हस्ताक्षर हुए और राष्ट्रीय सघर्ष स्थगित किया गया।[१] इस पैक्ट के अनुसार कांग्रेस को गोलमेज परिषद् मे आमन्त्रित किया गया, जिसमे सघीय उत्तरदायी शासन के आधार पर भारत के भावी सविधान के स्वरूप पर विचार होना निश्चित हुआ था। सरकार द्वारा अहिंसात्मक राजनीतिक कैदियो को मुक्त करने तथा प्रजा पर लगाये गये कठोर प्रतिबधों को मिटाने का भी निश्चय किया गया। काग्रेस के वाममार्गी सदस्य—सुभाषचद्र बोस, जवाहरलालनेहरू आदि इस पैक्ट के विरुद्ध थे, केवल राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से ही वे हस्ताक्षर के पक्ष मे सहमत हुए थे। इसके पश्चात् गांधीजी गोलमेज परिषद् मे सम्मिलित होने के लिए इगलैंड गए। वहाँ उन्होंने अल्पसख्यको की समस्या पर अपने विचार व्यक्त किए, भारतीयो द्वारा सेना के उत्तरदायित्व लिए जाने के प्रस्ताव को प्रस्तुत किया, कांग्रेस की स्थिति स्पष्ट की तथा साम्प्रदायिकता के आधार पर चुनाव का विरोध किया। परिषद् मध्य मे ही बिना किसी निश्चय के समाप्त हो गई। गाधी जी तथा अन्य भारतीय प्रतिनिधि देश वापिस लौट आये।

इस बीच भारतीय ग्रामो की अवस्था अधिक शोचनीय हो गई थी। नित्य प्रति उपज के मूल्य घटने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति कठिन होती जा रही थी। १९३१ के अन्तिम भाग मे सयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश), गुजरात तथा बर्मा के कुछ भागो मे कृषको ने भूमि कर देना अस्वीकार कर दिया।[२] पैक्ट द्वारा सन्धि करने पर भी सरकार की नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन नही हुआ था।

गाधी जी ने भारत लौट कर फिर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। ४ जनवरी १९३२ को उन्हें पुन कारावास का दण्ड दिया गया। काग्रेस पर प्रतिबन्ध लगाये गये। सरकार ने तत्काल ही कुछ विशेष धारायें लागू कर दीं, जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रसार एव विकास न हो सके। प्रेसो पर प्रतिबन्ध अधिक कठोर हुआ। काग्रेस के अनुमान के आधार पर अप्रैल १९३३ मे राजनीतिक कैदियो की सख्या लगभग १,२०,००० थी।[३] सविनय अवज्ञा आन्दोलन के विकास के फलस्वरूप काश्मीर तथा अलवर जैसी रियासतो मे भी सघर्ष हुआ। देशी रियासतों की प्रजा ने भी देश का साथ दिया। आन्दोलन भग करने के लिए सरकार को ब्रिटिश सेना की सहायता लेनी पड़ी।

ब्रिटिश शासको ने राष्ट्रीय भावना को कुचलने के लिए तथा आन्दोलन को समाप्त करने के लिए पुन भेद नीति के अस्त्र का प्रयोग किया। हिन्दू मुसलमानों के

१. Palme Dutt India Today P 347
२. A R Desai—Social Background of Indian Nationalism P. 324
३. Ibid P 324

विभेद से ही उसकी तृप्ति न हुई थी, अत पिछडी जातियो एव अन्य अल्पसख्यको के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र का आयोजन करना चाहा। गाधी जी ने इसका विरोध आमरण अनशन द्वारा किया। उनके प्राणो की रक्षा के लिए पूना मे हिन्दुओ का एक सम्मेलन हुआ, जिसमे अस्पृश्यता निवारण का व्रत लिया गया और परिगणित जातियो के राजनीतिक अधिकारो के लिए 'पूना पैक्ट' पर हस्ताक्षर किये गये। इसके अनुसार सम्मिलित निर्वाचन क्षेत्र रखा गया परन्तु पिछडी जातियों क लिए कुछ अधिक स्थान विधानसभाओं मे निर्धारित हुए। हरिजनो के उद्धार के गाधी जी ने १६३२ मे एक और व्रत किया। इन प्रश्नो मे उलझ जाने के कारण और सरकार की दमननीति तथा नये सविधान के कारण जनता सत्याग्रह मे पूरा योग न दे सकी। कारावास से मुक्त होने के पश्चात् गाधी जी हरिजनो के उद्धार कार्य म सलग्न हो गये। सन १६३४ मई के लगभग सविनय अवज्ञा आन्दोलन पूर्णतया समाप्त हो गया।[१]

स्वतन्त्रता प्राप्ति क लक्ष्य मे यह आन्दोलन सफल न हो सका। किन्तु राष्ट्रवाद के प्रसार तथा विकास की दृष्टि से यह अत्यधिक उपयोगी रहा। असहयोग आन्दोलन की अपेक्षा, इस आन्दोलन मे असहयोगी जनता की सख्या कही अधिक थी। कृषकवर्ग ने इसमे सर्वाधिक योग दिया था। श्रमिक वग भी इससे प्रभावित हुआ था और उसने भी सहयोग दिया था। श्रमिक वर्ग की हडतालो से तथा कृषक वर्ग के भूमि-कर-बन्दी से आन्दोलन मे अधिक स्फूर्ति तथा प्रभावोत्पादकता आ गई थी। इस वर्ग के प्रवेश से भारतीय राष्ट्रवाद के विकास म समाजवादी तथा साम्यवादी विचारधारा का मेल हुआ। सन् १६३५ ई० के पश्चात् भारतीय राष्ट्रवाद समाजवाद के प्रगतिशील तत्वो से अनुप्रेरित हुआ।[२] वामपक्षी राष्ट्रवादी युवकवर्ग ने मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण १६३४ ई० मे काग्रेस समाजवादी दल का निर्माण किया। यह दल काग्रेस से पृथक् न था। इसने विदेशी शासन से भारत की स्वतन्त्रता के साथ ही वर्गसघर्ष को मिटाने के लिए, पूजीवाद से श्रमिक वर्ग की मुक्ति का ध्येय भी अपनाया था। श्रमिक तथा कृषकवर्ग इनके राष्ट्रीय सग्राम की सबसे बडी शक्ति थे। काग्रेस के इस वर्ग का गाधी जी के राष्ट्रवाद—उसके आदश, कार्यक्रम तथा साधन में विश्वास नही रह गया था।[३] सुभाषचन्द्र बोस ने फारवर्ड

१ It was not until May 1934, that the final end came to the struggle which had opened with such magnificent power in 1930 Palme Dutta—India Today P 353

२ 'New accessions of strength were won after the close of the national civil disobedience struggle of 1930-34 as the younger national elements proceeded to draw the lessons of that struggle' Palme Dutta—India today P 394

३. A R Desai—Social Background of Indian Nationalism p 388

ब्लाक की स्थापना की। सरकार द्वारा मजदूर सगठन तथा साम्यवादी दल को अवैध घोषित किया गया। मजदूर-आन्दोलन को दबाने के लिए गोलियां तक चलवाई गई।[१]

कृषक आन्दोलन ने अधिक ध्यान आकृष्ट किया था। उनमे राष्ट्रीय चेतना तथा वर्गचेतना अधिक मात्रा मे आई। अखिल भारतीय कृषकसभा ने भी समाजवादी भारत का ध्येय निर्धारित किया।[२] कृषकसभा स्वतन्त्र सघर्षों का सगठन कर राष्ट्रीय आन्दोलन म मिल गई। नवीन विचारधाराओं से प्रभावित होने के कारण कांग्रेस के कार्यक्रम म श्रमिक तथा कृषक वर्ग की स्वतन्त्रता तथा आर्थिक अवस्था से सबधित कुछ बातो का समावेश हो गया था। इस प्रकार राष्ट्रवादियो ने दलित वर्ग के उत्थान के लिए विशेष रूप से आन्दोलन किया।

देशी राज्यो म प्रजातन्त्रात्मक राज्य विधान के लिए सघर्ष हुआ। यह आन्दोलन व्यापारी-वर्ग द्वारा राजाओं की निरकुश प्रवृत्ति के विरुद्ध किया गया था। इसी समय मुस्लिम लीग भी अधिक व्यवस्थित हुई। अत देश मे विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के उद्गम तथा विविध प्रकार के आन्दोलन से राष्ट्रवाद को अधिक पुष्टता प्राप्त हुई। राष्ट्रीय आन्दोलन को शक्ति मिली, जिसम उसके सभी पक्ष सुदृढ हुए।

१९१९ ई० के पश्चात् पुन १९३५ मे ब्रिटिश शासको ने भारतीय सावैधानिक परिवर्तन के लिए अधिनियम बनाया। इन अधिनियम के दो प्रमुख भाग थे—प्रथम केन्द्र म सघ शासन अर्थात् अग्रेजी भारत के प्रान्तो के साथ देशी राज्यो को मिलाकर भारतीय सघ का निर्माण और द्वितीय प्रान्तीय स्वायत्तता। सघ शासन का राष्ट्रीय नेताओ द्वारा एक स्वर मे विरोध किया गया, क्योकि इसके द्वारा पूर्ण उत्तरदायी शासन के स्थान पर द्वैध शासन का ही विधान किया गया था। गवर्नर जनरल के विशेषाधिकारो और व्यक्तिगत शक्तियों के विस्तृत क्षेत्र के सम्मुख सघीय शासन व्यवस्था एक भ्रममात्र थी।[३] इस अधिनियम को १९३७ मे कार्य रूप म परिणत किया गया लेकिन सघ योजना लागू न हो सकी, केवल प्रान्तीय स्वायत्तता क्रियान्वित हुई।[४] भारतीयों की यह बहुत बड़ी विजय थी। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक प्रगति के लिये भारत को एकता की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति इसके द्वारा सभव हो सकती थी। प्रान्तीय स्वायत्तता द्वारा प्रान्तो की प्राचीन शासन प्रणाली का अत हुआ और प्रान्तीय शासन की एकता स्थापित हुई।[५] लेकिन गवर्नर के विशेषाधिकारों के सम्मुख प्रान्तीय स्वायत्तता नाममात्र की ही थी। जवाहरलाल नेहरू ने इस

१. *Palme Dutt—India Today, p 393*

२ A R Desai, Social Background of Indian Nationalism p 289

३ Ibid, p 464

४ Palme Dutt—India Today, p 464

५ डा० रघुवशी भारतीय सावैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास, पृ० १८४

अधिनियम के अन्तर्गत पदग्रहण करने का स्पष्ट शब्दो मे विरोध किया। लेकिन कांग्रेस ने १६३७ मे चुनाव मे भाग लिया तथा ग्यारह प्रान्तो मे से छ मे अर्थात् सयुक्तप्रान्त, बम्बई, मद्रास, बिहार, मध्यप्रान्त और उडीसा मे बहुमत से उसकी विजय हुई।[1] राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ द्वारा चुनाव में भाग लेने का कारण मनोवैज्ञानिक था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन समाप्त होने के पश्चात् पुन राष्ट्रीय नेताओ के अन्दर व्यवस्थापिका सभाओ मे प्रवेश कर राजनीतिक गतिरोध, दमनकारी कानूनो को रद्द कराने तथा नये सुधारो को क्रियान्वित कराने की भावना सुदृढ होने लगी थी। इसके अतिरिक्त गाधी जी भी सहमत हो गये थे।[2] स्वय गाधी जी ने अपने को इससे पृथक् रखा तथा रचनात्मक कार्यक्रम के कुछ भक्तो को साथ लेकर चर्खा, खादी प्रचार, जातीय एकता, छुआछूत मिटाने तथा मद्यपान निषेध आदि कार्यों मे लगे रहे। अतः कांग्रेस ने *प्रान्तीय प्रशासन मे पदग्रहण कर प्रान्तीय स्वराज्य की योजना को मूर्त किया।*

सन् १६२०-१६३७ के काल के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास से यह स्पष्ट है कि प्रमुख रूप से कांग्रेस ने भारत मे राष्ट्रीय भावना का सचार एव प्रसार किया। कांग्रेस ने यह कार्य गाधी जी के नेतृत्व मे किया था। गाधी जी ने वस्तुतः *सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्त को अपनाया था।* कुछ वर्षों तक स्वराज्य पार्टी की धूम रही थी, जिनके सिद्धान्त गाधी जी से कुछ भिन्न थे। मुस्लिम लीग असहयोग आन्दोलन के पश्चात् साम्प्रदायिकता के आधार पर कांग्रेस से अलग हो गई थी। हिन्दू महासभा की स्थापना हिन्दू धर्म तथा जनता की सुरक्षा के लिये की गई थी। अत इन सब दलोके सिद्धान्तों तथा व्यावहारिक जीवन मे उनके प्रयोगो के स्वरूप का विस्तृत विवेचन उपयुक्त होगा। साधन के आधार पर इन राष्ट्रीय दलो को दो वर्गों मे विभाजित कर सकते हैं —

(१) अहिंसात्मक साधन द्वारा स्वन्त्रता-प्राप्ति के लिये सक्रिय दल। इसम गाधी जी के राष्ट्रीय सिद्धान्त तथा राष्ट्रवाद प्रमुख है। स्वराज्य पार्टी इसी के अन्तर्गत रखी जायेगी। हिन्दू महासभा की राष्ट्रीयता सकीर्ण है, तथा मुस्लिम लीग का राष्ट्रवाद साम्प्रदायिक।

(२) हिंसात्मक साधन द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सक्रिय दल अर्थात् क्रान्तिकारी दल। इसने शस्त्र-प्रयोग, हिंसा, षड्यन्त्र द्वारा स्वाधीनता प्राप्ति का सफल उद्योग किया। इसके सिद्धान्त अहिंसावादियों के प्रतिकूल थे। अत इनका विवेचन पृथक् किया गया है। राजनीतिक परिस्थितियो के अतिरिक्त सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियो का विश्लेषण भी आवश्यक है। विदेशी साम्राज्यवाद ने भारत को सामाजिक तथा आर्थिक दुरावस्था के गर्त मे डाल दिया था।[3]

---

१. डा० रघुवंशी . भारतीय सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० २०५
२ वही, पृ० १७६
३. Desai—Social Background of Indian Nationalism. p. 23

सामाजिक एव आर्थिक परिस्थितिया (सन् १६२०-१६३७)

अग्रेजी राज्य मे पूजीवादी व्यवस्था की स्थापना हुई तथा ग्रामीण आत्मनिर्भर अर्थ व्यवस्था का अन्त हुआ। कृपको का भूमि पर अधिकार समाप्त हुआ तथा कृषि सम्बन्धी भूमि जमीदारों की व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गई। पचायतों के हाथ से न्याय का अधिकार सूत्र निकल कर जमीदार, तथा सरकारी न्यायालयो के हाथ मे चला गया। उनसे सरकारी दलाल मनमाना धन वसूल करने लगे। कृपक जमीदार और सरकारी नौकरशाही की दुहरी चक्की मे पिसने लगे। लगान के साथ साथ बेगारी डाड मुचलका आदि अन्य दासता के अभिशाप से ग्रसित हो किसानो का जीवन नरक तुल्य हो गया। आर्थिक दुर्व्यवस्था के कारण लगान न चुका पाने पर भूमि से भी उन्हे वचित होना पडता था। ऋण की व्यवस्था न होने के कारण साहूकारो के शोषण का भी उन्हे पात्र बनना पडा। इस नवीन भूमि व्यवस्था ने ग्रामो के सामाजिक जीवन पर अपना विषाक्त प्रभाव डाला। पचायत अथवा ग्राम के वृद्ध जनो का भय न रह जाने पर तथा जमीन का सीधा सम्बन्ध जमीदार से होने के कारण व्यक्तिगत स्वार्थों ने विकराल रूप धारण किया। भूमि के लिए झगडे, मनमुटाव और अन्य अनेक प्रकार के सघर्षों ने ग्रामीण जीवन की शान्ति भग कर दी। न्यायालयो के चक्कर लगाते तथा जमीदार और साहूकारो के तलुवे सहलाते हुए कृपक साधारण मजदूर बन जाते थे।

जैसा कि पिछले अध्यायो मे स्पष्ट किया जा चुका है ग्रामो की अर्थ व्यवस्था की दुर्दशा का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण था भारतीय ग्रामोद्योगो का छिन्न भिन्न होना। यातायात की सुविधाओ के कारण ग्रामो मे भी विदेशी वस्त्र आदि जीवन के आवश्यक उपकरणो की खपत होने लगी तथा कुटीर-उद्योग विनष्ट होने लगा। कृपक के पास कृषि के अतिरिक्त जीवन का अन्य साधन शेष न बचा। अत प्राकृतिक साधनो तथा कलाकौशल के होते हुए भी भारत दिन पर दिन निर्धन होता जा रहा था, क्योकि राजनीतिक पराधीनता के अभिशाप ने उसकी प्रगति तथा विकास के प्रत्येक मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था।[1] भारत की दुर्दशा का यह रूप अत्यन्त करुण था। इसने भारतीय जीवन का सगठन, व्यवस्था तथा एकता की भावना को विनष्ट कर दिया।[2] भूमि के छोटे छोटे टुकडे होते जा रहे थे। अर्थाभाव, अशिक्षा, अज्ञान

१ Palme Dutt-Indian Today p 29

२ Historically speaking the destruction of the self sufficient village was a progressive event thoug it involved much tragic distruction such as that of collective life among the village population of tender human relations between them and of economic security among its members unless a war or a famine intervened,

Desai—social Background of Indian Nationalism, p. 37

तथा नवीन साधनो के अभाव में कृषकवर्ग पुरानी रीति पर ही आधा पेट भोजन कर किसी प्रकार जीवन चला रहा था। उसके पास दैवी प्रकोपों को सहन करने के लिए कुछ भी शेष नही बचता था। अकाल, अतिवृष्टि, बाढ़ आदि के समय उसकी दुर्दशा की कोई सीमा नही रह जाती थी।

अंग्रेजी शासन के पूर्व ग्रामवासियों को जगल की लकडी के उपयोग का पूरा अधिकार था। जमीदारी व्यवस्था के पश्चात् उसका यह अधिकार भी छिन गया। ग्रामवासियो का अर्थाभाव बढता गया। नमक जैसी अति आवश्यक, किन्तु अत्यन्त क्षुद्र वस्तु पर कर तो असह्य हो गया।

ग्रामवासियो की आय तथा व्यय के बीच का अन्तर निरन्तर बढता गया। सामाजिक मर्यादा के पालन के लिये तथा दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये वे ऋण के अथाह सागर मे डूबते गये। इससे उद्धार न होने पर उनके बैल बिकने लगे, उनकी पैतृक भूमि छिनने लगी, तथा भोजन के अभाव मे या तो उन्हे अपना परिवार मृत्यु के मुख मे भेजना पडता, अथवा नगर मे आकर मजदूरी करनी पडती अथवा अन्य अनेक दुष्कृत्यो का सहारा लेकर देश के नैतिक पतन का कारण बनना पडता।

ग्रामो मे भी दहेजप्रथा, बाल विवाह तथा अन्य अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियों ने अपनी जडें गहराई से जमा ली थी। शिक्षा के अभाव मे अन्धविश्वास, रूढियो तथा कुरीतियो मे जकड कर भारत की अधिकांश ग्रामवासिनी जनता का जीवन अभिशाप बन गया। इसके अतिरिक्त भारत की निरन्तर बढती हुई जनसख्या ने इस अग्नि मे घृत का योग दिया।

ग्रामीण जीवन की भाति नागरिक जीवन भी अस्तव्यस्त हो गया। नगरो की हस्त उद्योगकला को विदेशी पूजीवादी मशीनी उद्योग से अत्यधिक आघात पहुचा। विदेशी वस्तुओ का भारतीय बाजारो मे अधिक विक्रय हुआ, क्योकि इनका मूल्य कम था। इसके अतिरिक्त भारत म मशीन उद्योग की अभिवृद्धि भी सीमित थी, जहाजी विद्या, तथा अन्य बडे उद्योगो को विदेशी शासको ने अभिवृद्ध नही होने दिया था।[1] पूजीवादी शासन व्यवस्था मे उद्योगीकरण भी व्यक्तिगत सम्पत्ति था अत नवीन वर्गों का जन्म हुआ जैसे जमीदार कृषक, उद्योगपति मजदूर आदि। इन वर्गों के बीच आर्थिक सतुलन नही था, सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक ढाचा अव्यवस्थित हो गया।[2]

विदेशी शासन के अन्तर्गत दी जाने वाली शिक्षा अत्यन्त दूषित थी। उसका भारतीय सामाजिक जीवन पर अस्वस्थ प्रभाव पडा। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति ने भारत

1. Desai—Social Background of Indian Nationalism, p 94
2. Industrialization made the Indian economy more unified, cohesive and organic It raised the tone of the economic life of India Desai—Social Background of Indian Nationalism p 105

के शिक्षित वर्ग में प्राचीन सामाजिक जीवन के विरुद्ध पश्चिमीकरण के सिद्धान्त का आरोपण किया। उसकी मन स्थिति में अहितकर परिवर्तन हुआ क्योंकि वह अपनी सभ्यता संस्कृति, धर्म, रहन सहन के प्रति एक हीन भावना से भर गया। अंग्रेजी भाषा तथा रहन सहन पर अधिक बल देने के कारण शिक्षित वर्ग तथा साधारण जनता के बीच अन्तर बढ गया और सामाजिक सतुलन विनष्ट हो गया।[1] शिक्षा इतनी व्यय-साध्य थी कि १९३१ तक ९२ प्रतिशत भारतीय जनता अशिक्षित बनी रही।[3] भारतीय राष्ट्रवादियो ने विभिन्न दृष्टिकोणो से इस शिक्षा-पद्धति की आलोचना की थी। ए० आर० देसाई के अनुसार यह मत अधिक सत्य नही है कि तत्कालीन शिक्षा पद्धति ने राष्ट्रवाद को जन्म दिया था वरन् राष्ट्रवाद के प्रारम्भ तथा विकास का प्रमुख कारण था भारत की तत्कालीन आर्थिक एव सामाजिक दुर्दशा ग्रस्त परिस्थितिया।[2] इसमे कोई सन्देह नही कि इस शिक्षा-पद्धति के कुछ लाभ भी थे।

ग्रामीण जीवन की भाति नागरिक जीवन म भी आर्थिक सतुलन, सामाजिक पतन तथा राजकीय असरक्षण ने वेश्यावृत्ति, विधवाओ की समस्या दहेजप्रथा आदि को भयकर रूप प्रदान किया। जातिभेद, सम्प्रदायभेद तथा धर्मभेद बढता जा रहा था, जिसे विदेशी शासको से प्रोत्साहन मिल रहा था। नवीन वर्गों के बीच बढती निर्धनता ने सघर्ष को जन्म दिया। भारतीय सामाजिक जीवन की सबसे बडी समस्या थी अछूतो की, जिन्हें सामाजिक अथवा धार्मिक मान्यता दिए बिना राष्ट्रीय प्रगति असम्भव थी। हिन्दू-मुस्लिम सघर्ष भी विकराल रूप धारण कर रहा था। गाधीजी ने सामाजिक तथा धार्मिक सुधार को राष्ट्रीय आन्दोलन का महत्वपूर्ण अग बनाया था। ब्रिटिश शासकों ने इसके लिए कोई प्रयत्न नही किया था। गाधीजी के राष्ट्र-वाद के स्वरूप विश्लेषण में इसका विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। अत ब्रिटिश शासन काल की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, परिस्थितिया के परिचय स राष्ट्रवाद के विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप के ज्ञान मे सहायता मिलेगी।

---

१ A R Desai—Social Background of Indian Nationalism, P. 125

२ A. R Desai Social Background of Indian Nationalism. P 132

३ "All Higher education, because of its cost, had been inaccessible to the great majority of the Indian people."—

A R Desai—Social Background of Indian Nationalism P. 137.

राष्ट्रवाद का दार्शनिक पक्ष

गाधीजी के असहयोग तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का दर्शन :

गाधीजी का असहयोग आन्दोलन मात्र सैद्धान्तिक ही नही था । वह मानव जीवन के लिए अति व्यवहारोपयोगी भी था । उसके सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनो ही पक्ष अत्यधिक स्पष्ट तथा पुष्ट थे । भारतीय राष्ट्रीय जीवन में उन्होने इस असहयोग का सफल प्रयोग किया था ।

असहयोग अथवा सत्याग्रह आन्दोलन का सैद्धान्तिक पक्ष ·

गाधीजी का सत्याग्रह आन्दोलन लोकमान्य के राष्ट्रीय आन्दोलन की भाति ठोस आध्यात्मिकता पर आधारित था । सत्य तथा अहिंसा उसके दो सबल पक्ष थे ।

सत्य —असहयोग आन्दोलन का प्रमुख सत्य' था । अहिंसात्मक साधन द्वारा वे इस 'सत्य' को प्राप्त करना चाहते थे । उनके मत मे 'सत्य' ही 'ब्रह्म था।'[1] उन्होंने सत्य की व्याख्या करते हुए लिखा था— सत्य अर्थात् परमेश्वर—यह सत्य का पर अथवा उच्च अर्थ है । अपर अथवा साधारण अर्थ मे सत्य के मानी हैं सत्य आग्रह, सत्य विचार, सत्यवाणी और सत्य कर्म ।[2] मनुष्य जीवन का परम ध्येय इसी सत्य अथवा ब्रह्म की प्राप्ति है ।[3] यह सत्य अथवा ब्रह्म जातिवर्ग तथा भेदाभेद से परे है । सत्य का साधक सत्य की अविश्रात खोज करता है । यम, व्रत, उपासना आदि विविध विधान हैं जिनके द्वारा चित्त की शुद्धि की जाती है । इस प्रकार, सत्य के पूर्ण ज्ञान द्वारा मनुष्य अज्ञान तथा अह को विनष्ट कर पूर्ण मानव म परिणत हो जाता है । आत्मा परमात्मा अभिन्न हैं ।[4]

---

१ Gopinath Dhawan—The political philosophy of Mahatma Gandhi P 45

२—किशोरीलाल मशरूवाला . गाधी विचार दोहन . पृ० १५

३—There is an indefinite mysterious power that pervades every-thing I feel it, though I do not see it. It is this unseen power that makes itself felt and yet defies proof, because it is so unlike all that I perceive through my senses It transcends reason. But it is possible to reason and the existence of God to a limited extent'
Nirmal kumar Bose—Selections from Mahatma Gandhi P. 3.

४—Gopinath Dhawan—The Political philosophy of Mahatma Gandhi, P. 49

धर्म तो उच्च और उज्ज्वल प्रकाश-स्तम्भ का नाम है जो मनुष्य के अन्तर के चारो ओर व्याप्त अन्धकार को छिन्न भिन्न करके उस पथ को आलोकित करता है जिस पर अग्रसर होकर वह अपने स्वरूप का दर्शन कर लेता है।[1] गाधीजी ने नियता एव नियम्य के बीच सच्चे सम्बन्ध का उद्घाटन किया था। उनका यह दृढ विश्वास था कि उसी सत्य से समस्त प्राणिमात्र अनुप्राणित हैं। सत्य के अभाव मे जीवन अपूर्ण है।[2] उन्होने आत्मज्ञान के लिए आत्मशुद्धि को आवश्यक माना था एव आत्मशुद्धि के लिए *नैतिकतापूर्ण आचरण को।*[3] *गाधीजी के नैतिक सिद्धान्त हैं—सत्य, अहिंसा,* अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य।[4] सत्य का आग्रही अर्थात् सत्याग्रही सत्य की प्राप्ति कर सकता है। गाधी जी का असहयोगदर्शन आस्तिकदर्शन है। ब्रह्म मे पूर्ण आस्था और विश्वास इसके आवश्यक अ ग हैं। तर्क एव बुद्धि का स्थान गौण है।[5]

गाधी जी ने सत्य का अनुभव किया था। अपने जीवन तथा राष्ट्रीय जीवन मे इसका प्रयोग किया था—'*जो कुछ मुझे आज ऐसा धर्म, न्याय और योग्य प्रतीत होता है कि उसे करते, स्वीकार करते या प्रकट करते मुझे शर्म नही लगती जो कुछ मुझे करना चाहिये और जिसे न करू तो इज्जत के साथ जी ही न सकू वह मेरे लिये* सत्य है। वही मेरे लिये परमेश्वर का सगुण रूप है।[6]

गाधीजी के मतानुसार सत्य की अनुभूति का अधिकारी प्रत्येक व्यक्ति है। उनकी इस सत्यानुभुति की सर्वप्रमुख व्यावहारिक विशेषता थी कि अपने आस पास प्रवर्तित असत्य, अन्याय या अधम के प्रति उदासीन भाव रखने वाला व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार नही कर सकता है —

'*अपने आस पास प्रवर्तित असत्य, अन्याय या अधर्म के प्रति उदासीन भावना*

१—कमलापति त्रिपाठी। बापू और भारत। पृ० ८

२—Gopinath Dhawan—The political philosophy of Mahatma Gandhi P 43

३—'To me God is truth and love, God is ethics and morality, God is fearlessness God is the source of Light and yet He is above and beyond all these
M K Gandhi—Truth is God—P 10

४ 'This ethical outlook is the backbone of Gandhiji s political philosophy even as his ethics has for its foundation in metaphysical principles'
Gopinath Dhawan—The political philsophy of Mahatma Gandhi P 61

५ 'You can realize the wider consciousness unless you subordinate complete reason and intellect, and the body'
Nirmal Kumar Bose—Selections from Gandhi P 7

६—किशोरीलाल मशरुवाला . गांधी विचार दोहन पृ० १४

रखने वाला व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता। सत्य के शोधक को इस असत्य, अन्याय, और अधर्म के उच्छेद के लिए तीव्र पुरुषार्थ करना होता है और जब तक इसका सत्यादि साधनो से उच्छेद करने मे वह सफल नही होता तब तक अपनी सत्य की साधना को अपूर्ण ही समझता है। अत असत्य, अन्याय, और अधर्म का प्रतिकार भी सत्याग्रह का आवश्यक अ ग है।'[1]

अहिंसा—गाधी जी के अनुसार सत्य साध्य और अहिंसा साधन है, लेकिन असहयोग दर्शन म साध्य तथा साधन में अन्तर नही था।[2] अत उनका ईश्वर सत्य तथा अहिंसा से पृथक् नही था। अहिंसा आचरण का स्थूल नियम मात्र नही है, बल्कि मन की वृत्ति है। जिस वृत्ति म कही द्वेष की गध तक न हो वह अहिंसा है।'

ऐसी अहिंसा सत्य के बनावर ही व्यापक है। इस अहिंसा की सिद्धि हुए बिना सत्य की सिद्धि होना अशक्य है। इसलिये सत्य को भिन्न रीति से देखे तो वह अहिंसा की पराकष्ठा ही है। पूर्ण सत्य और पूर्ण अहिंसा मे भेद नही है, फिर भी समझाने के सुभीते के लिए सत्य साध्य और अहिंसा साधन मान ली गई है।'[2]

गाधीजी अहिंसा को मानव का परम धर्म मानते थे।

अहिंसा परमो धर्म अहिंसा परम तप
अहिंसा परम सत्यम् ततो धर्म प्रवर्तते ॥

अहिंसा का मूल धर्म 'प्रेम' है। प्राणिमात्र से प्रेम वह आत्मिक शक्ति या बल है, जिसके लिए कठिन अभ्यास की आवश्यकता होती है। गाधीजी की अहिंसा दुर्बलो, असहायो या अशक्तो का अस्त्र नही थी। सिद्धान्त रूप मे हिंसा का परित्याग किया गया था। सहानुभूति, धैर्य तथा कष्ट-सहन द्वारा प्रतिहिंसक के मन पर विजय पाना ही इस अहिंसा का लक्ष्य था। सेवा, त्याग और बलिदान, अहिंसा के मूलमत्र थे। प्रेम इसका प्राण था।[3] गाधी जी की अहिंसा का सिद्धान्त भावात्मक है, अभावात्मक नही, सृजनात्मक है, ध्वसात्मक नही। अनुभव तथा विश्वास द्वारा इस अहिंसा का प्रयोग जीवन मे किया जा सकता है। मनुष्य प्रेम तथा अहिंसा द्वारा सचालित

१—किशोरीलाल मशरूवाला. गाधी दोहन पृ० १७ : खड १—धर्म

१. 'Means and end are convertible terms in my philosophy of life.'
Nirmal Kumar Bose – Selections from Gandhi P. 13.

२—किशोरीलाल मशरूवाला. गाधी विचार दोहन : पृ० १६ : खण्ड १—धर्म

३. 'Though there is enough repulsion in natures she lives by attraction Mutual love enables Nature to persist. Man does not live by destruction. Self love complete regard for others.'
M. K. Gandhi—Truth is God. P. 17.

कार्य व्यापार द्वारा जीवन के चरम लक्ष्य सत्य अथवा मुक्ति की प्राप्ति कर सकता है।[1]

गांधीजी की अहिंसा देश में पुरातन काल से चली आ रही 'अहिंसा परमो-धर्म:' के ही अन्तर्गत रखी जायेगी। अहिंसा का उपदेश तो प्राय: सभी देशों में दिया जाता रहा है, किन्तु भारत की यह प्रमुख विशेषता है कि यहां अहिंसा पर विशेष बल दिया गया है। विश्व को भारत की महान् देन 'अहिंसा' है भारत के प्राय: सभी धर्म अहिंसक रहे हैं। वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था का भी यही उद्देश्य था। ब्राह्मण का धर्म था प्रेम, इसी कारण चतुर्वर्ण में ब्राह्मणत्व को श्रेष्ठता प्रदान की गई थी। महाभारत तथा रामायण में युद्ध के वर्णन हैं किन्तु निष्कर्ष रूप में अहिंसा को ही श्रेष्ठ माना गया है। बौद्ध तथा जैन धर्म तो पूर्णतया अहिंसक हैं। गौतम बुद्ध ने घृणा के स्थान पर प्रेम का प्रचार किया था। अशोक जैसे महान् सम्राट् ने अहिंसक बौद्ध धर्म का न केवल भारत में वरन् अन्य देशों में भी प्रचार एवं प्रसार कर भारतीय इतिहास में एक विशेष स्थान बना लिया है। गांधीजी की अहिंसा भी उन्हीं की परम्परा में आती है।

गांधीजी ने अहिंसा में तीव्र कार्यसाधक शक्ति का अनुभव किया था। उनके मतानुसार 'अहिंसा केवल निवृत्ति रूप कर्म या अक्रिया नहीं है, बल्कि बलवान प्रवृत्ति या प्रक्रिया है।'[2] वे इसी कार्यसाधक शक्ति द्वारा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता या स्वराज्य की प्राप्ति अथवा तथा राष्ट्रीय जीवन का चरम लक्ष्य मानते थे। राष्ट्रीय एकता के लिये वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग करना चाहते थे। उनके विश्वबन्धुत्व या मानवतावाद का मूलाधार अहिंसा धर्म ही था।

गांधी जी की अहिंसात्मक नीति का पालन राष्ट्रीय नेताओं और साधारण जनता के साथ भारत की वीर जाति अकालियों ने भी 'गुरु-का-बाग' की घटना में किया था। पुलिस द्वारा पीटे जाने पर भी उन्होंने हाथ नहीं उठाया था। अकाली दल के आत्म नियन्त्रण की प्रशंसा सरकार ने भी मुक्तकण्ठ से की थी।[3] निःसन्देह अहिंसा में महान शक्ति अन्तर्भूत थी।

असहयोग का व्यावहारिक पक्ष

असहयोग का रचनात्मक अथवा व्यावहारिक रूप भी अत्यधिक सबल था। गांधीजी देश-जीवन में आत्मशक्ति तथा नैतिक श्रेष्ठता उत्पन्न कर देशवासियों को धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में उन्नत करना चाहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि सत्यानुभूति द्वारा देशवासियों को दासता से प्रत्येक रूप में मुक्ति मिल

---

१. 'Gandhiji's Truth and non violence or 'Ahimsa' were not abstract ideals or cloistered virtues They were to be realized in life.' Pyarelal—A Nation Builder At Work. P. 7.

२—किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन। पृ० १७

३—पट्टाभि सीतारम्मैया. कांग्रेस का इतिहास : पृ० २०६

सकती है। उनके रचनात्मक कार्यक्रम के केन्द्र मे यही आत्मशक्ति काय करती लक्षित होती है।

गांधी जी की धार्मिक विचार धारा

गाधी जी की धार्मिक विचारधारा केवल सिद्धान्त मात्र नही थी, वह जीवन दशन तथा जीवन माग के रूप मे विकसित हुई थी। उन्ह धम का सक्रिय रूप इष्ट था अर्थात वे धम को जीवन की गति बना देना चाहते थे। गाधी जी का सत्य प्राणिमात्र को अनुप्राणित कर एक निश्चित दिशा का दिग्दशन कराने वाला भी था। उनके अनुसार धम वह अस्त्र था, जिसके द्वारा प्राणिमात्र को एकता के सूत्र मे आबद्ध किया जा सकता था।

गाधी जी जन्म से हिन्दू थ उनके विचार, काय और वचन भी हिन्दूधम मे रंगे हुए थे। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है उन्हें स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द एव लोकमान्य तिलक की विचार परम्परा की ही एक कडी कहना चाहिये क्योंकि उन्हें भी अपने पुरातन धमग्रन्थों से जीवन के लिए प्रेरणा मिली थी। इसका यह अर्थ नही कि उनकी धार्मिक विचारधारा सकीर्ण थी। राजा राममोहनराय की भांति उनका धर्म अति विशाल एव उदार था, जिसमे सभी को आत्माभिव्यक्ति तथा आत्म विकास का पूर्ण अधिकार था।[1] गाधी जी के हिन्दू धम के विशेष तत्व हैं—(१) ईश्वर मे विश्वास (२) जीवन की एकता या अद्वैतता मे विश्वास (३) अवतारवाद में विश्वास (४) आत्मा के पुनजन्म मे विश्वास, (५) आध्यात्मिक मूल्यों, विशेषकर सत्य एव प्रेम की श्रेष्ठता मे विश्वास, (६) आत्म निग्रह मे विश्वास, (७) वर्णाश्रम व्यवस्था मे विश्वास, (८) गोरक्षा मे विश्वास (९) वेद उपनिषद पुराण में विश्वास (१०) अपनी चेतना की आवाज मे विश्वास। गाधी जी मूर्तिपूजा के विरोधी नही थे। उनकी धार्मिक विचारधारा नैतिकता से पूण तथा परम्परागत थी।[1] उन्होने 'गीता' और तुलसी कृत रामचरित मानस —हिन्दू धर्म के दो महान् धार्मिक ग्रन्थो को विशेष महत्व दिया था। यही कारण था कि गाधी जी की धार्मिक भावना ने धर्मप्राण

1 Dr Buch – The Rise and Growth of Indian Nationalism P 40

२—गाधीजी ने लिखा था —

'A man's own religion a man's own past a man s own culture ought to be a great extent sacred to him They have first claim upon his attention and regard because they have deep roots in the soil, in the consciousness of his people It is folly, it is madness to expect the country to shake off its past as so much bad legacy The past can not be absolutely isolated from its pre ent or future It is not only not possible, it is not desirable to do so India today suffers largely from the disintegration of her ancient culture and the consequent weakening of its hold over the Indian mind

Dr Buch – The Rise and Growth of Indian Nationalism P 42.

हिन्दुओं की आध्यात्मिक चेतना का स्पर्श कर उन्हें गाधी जी का सहयोगी बना दिया था। सास्कृतिक दासता अथवा भारतीय मस्तिष्क म गहरे होते हुए पश्चिमी सास्कृतिक प्रभाव को मिटाने के लिए हिन्दुत्व प्रेम ही एकमात्र साधन था। अत गाधी जी ने हिन्दुओं का ध्यान अतीत-कालीन भारती सास्कृतिक चेतना से आवृत्त धर्म की ओर आकृष्ट कर उसके प्रति विशेष आस्था उत्पन्न की। जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष वा मुक्ति मानते थे। यह मोक्ष की धारणा व्यक्तिवादी होते हुए भी कर्ममार्ग द्वारा नियन्त्रित थी। उनके मतानुसार सत्कार्य ही आध्यात्मिकता या नैतिकता की कसौटी थे। सत्कर्म मानव-सेवा के उच्च आदर्श से परिपूर्ण था।

गाधी जी की विचारधारा में हिन्दुत्व का पक्षपातपूर्ण अनुरोध नहीं था। वह ऐकान्तिकन होकर लोकसग्रह की भावना से पूर्ण थी। इसी कारण वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु थे। गाधी जी अन्य धर्मों का उतना ही सम्मान करते थे जितना हिन्दू धर्म का। उनके अनुसार विविध धर्म सत्यप्राप्ति के विविध मार्ग थे।[1] वे सिद्धान्त रूप मे एक धम तथा एक ईश्वर को सम्भव मानते थ लेकिन व्यवहार रूप में व्यक्ति का अपनी पृथक इकाई मे एक भिन्न धर्म था। वस्तुत गाधीजी ने समस्त धर्मों के मूल तत्व अथवा समान तत्व की खोजकर सहृयता तथा सहिष्णुता के आधार पर मानवता की भावना की पुष्टि की थी। वे किसी भी धर्म को पूर्ण नहीं मानते थे। उन्होंने यह स्पष्ट कह दिया था कि गीता के सदृश बाइबिल और कुरान भी आध्यात्मिकता मे पूर्ण ग्रन्थ हैं।[2] उनकी दृष्टि मे कृष्ण, ईसा और मुहम्मद साहब समान रूप से अपना आध्यात्मिक महत्व रखने थे। अपने धर्म के वास्तविक रूप से परिचित व्यक्ति अन्य धर्मों का सम्मान कर उनसे प्रेरणा ग्रहण करता है, ऐसा उनका दृढ विश्वास था। वे अपने गम्भीर एव गहन अध्ययन तथा अनुभव के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे —

(१) सभी धर्म सत्य हैं।
(२) सभी धर्मों मे कुछ न्यूनताए या भूल हैं।

---

1 'Religions are different roads converging to the same point what does it matter that we take different roads there are as many religious as there are individuals
Shri M K Gandhi – My Religion. P 19

2 'The scriptures of a nation represent the best religious national traditions All great religions are more or less true No religion is perfect God has inspired the Bibles of the faiths There is divine inspiration in not only the Gita, but also in Christ No religion has the monopoly of truth But each religion is the best for the people who have inherited it or evolved it There is only one God one truth one Law, and one reason but the divine truth appears different to different people'
Dr. Buch – The Rise & Growth of Indian Nationalism P 42

(३) सभी धर्म समान रूप से प्रिय हैं जितना हिन्दू धर्म।

इस प्रकार गाधीजी ने सभी धर्मों का मूल्य तत्त्व प्रेम माना था और लक्ष्य शान्ति।[1] प्रेम अहिंसात्मक होता है जिसमे त्याग अथवा बलिदान की भावना प्रमुख होती है। सहनशक्ति जीवन का आन्तरिक भाव है। अत त्याग, बलिदान तथा सहनशक्ति द्वारा आनन्दमय जीवन के रहस्य का उद्घाटन होता है। धर्म के इसी उदात्त एव कल्याणकारी रूप को ग्रहण कर गाधीजी ने धार्मिक विद्वेष के विष को मारने के लिए हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त अपनाया था।

'फूट डालो और राज्य करो।' विदेशी साम्राज्यवाद का मूल अस्त्र था। धार्मिक विद्वेषाग्नि को प्रज्वलित करने के सभी साधनो का प्रयोग किया जा रहा था। ऐसी परिस्थितिया मे गाधीजी ने धमप्रधान देश की विविध धर्मावलम्बी जनता की धार्मिक अन्तश्चेतना को नियन्त्रित तथा सयमित रखने के लिए और बाह्य विरोध मिटाने के लिए, सत्य तथा धम के इस रूप का अन्वेषण किया था। उनकी धार्मिक भावना अनुभूति पर आधारित थी, तर्क अथवा बुद्धि पर नही। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है–खिलाफत आन्दोलन का समर्थन तथा सहयोग आन्दोलन मे मुसलमानो का सहयोग। धर्म सहिष्णुता होने के कारण ही वे हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाइयो के समान रूप से प्रिय थे। उनकी धार्मिक नीति राष्ट्रीय एकता के अनुकूल थी। यह हमारे देश का अतीव दुर्भाग्य था कि गाधी जी अधिक काल तक हिन्दू मुस्लिम ऐक्य स्थापित करने मे समर्थ न हो सके।

गाँधीजी की धार्मिक नीति का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष था–अस्पृश्यता निवारण। ऊच-नीच, छुआ छूत की भावना को मिटा कर वे एक आदर्श समाज और आदर्श राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। वे अस्पृश्यता को धर्मसम्मत नही मानते थे।[2] गाधीजी को वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था मान्य थी, किन्तु उसका रूढ अथवा विकृत रूप मान्य नही था। उनकी दृष्टि मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जीवन के चार महत्वपूर्ण और आवश्यक अ ग थे। वर्णाश्रम-धर्म व्यवस्था को वे समता का धर्म मानते थे।[3] उनका विश्वास था कि हमे अपनी उच्चतम शक्तियो के विकास के लिए निकृष्टतम

1. 'I do regard Islam to be religion of peace in the sense as christianity, Budhism and Hinduism are. No doubt there are differences in degree, but the object of these religions is peace'
M K. Gandhi – My Religion P. 15

२. 'Untouchability is not a sanction of religion it is a device of satan The devil has always quoted scriptures but scriptures can not trascend reason and truth
M K Gandhi—My Religion P 15

३—'इस प्रकार वर्ण धर्म समता का धर्म है; केवल साम्यवाद नहीं। जगत मे विषमता फैली हुई है उसकी जगह समता का राज्य हो जाये। सब धधे प्रतिष्ठा और मूल्य मे समान माने जायें।'

—किशोरीलाल मशरूवाला : गाधी विचार दोहन : पृ० ३८

प्रवृत्तियों का निग्रह करना चाहिए, जिससे समाज का समुचित विकास हो सके । वे मनुष्य का मनुष्य पर शासन अथवा शूद्रत्व पर ब्राह्मणत्व का शासन मानवहित के लिए बाधक मानते थे ।

इस प्रकार गांधीजी ने जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान सत्य की अनुभूति द्वारा करना चाहा था । वस्तुत वे सत्य को मनुष्य के दैनिक जीवन की वस्तु बना देना चाहते थे ।[1] उनका 'सत्य धर्म, जाति, वर्ग से परे था । राष्ट्रीय जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी पक्षों को वे नैतिकता तथा सत्यानुभूति द्वारा नियन्त्रित रखना चाहते थे । गांधीजी के धर्म के महत्वपूर्ण साधन हैं—(१) अहिंसा (२) अस्वाद, (३) ब्रह्मचर्य, (४) अस्तेय, (५) अपरिग्रह, (६) शरीरश्रम (७) स्वदेशी, (८) नम्रता, (९) व्रतप्रतिज्ञा, (१०) उपासना-प्रार्थना आदि । उनका धार्मिक आदर्श ईशोपनिषद् का यह मन्त्र था—

ईशावास्यमिदं सर्वं । यत्कि च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा । मा गृध कस्यस्विद् धनम् ॥

भारतीय जीवन के आर्थिक क्षेत्र में असहयोग :

राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए गांधीजी ने भारत की आर्थिक नीति को सुनिश्चित एवं सुव्यवस्थित रूप प्रदान करना आवश्यक समझा था । उनकी आर्थिक नीति मानव जीवन के परम्परागत नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित थी । वह भी उनकी आध्यात्मिकता द्वारा नियन्त्रित थी । उन्होंने भारतीय संस्कृति की आत्मा में सत्य स्वरूप का दिग्दर्शन कर लिया था । इसी कारण वे इस तथ्य से भी परिचित हो गये थे कि पश्चिमी राष्ट्रों की भांति भारत धन का आराधक नहीं है । भारत का लक्ष्य अमेरिका की भाँति धनप्राप्ति नहीं है, अपितु आध्यात्मिक श्रेष्ठता की प्राप्ति है ।[2] अतीत-काल से भारतवासी आध्यात्मिक तथा नैतिक उत्कर्ष की प्राप्ति में इच्छुक रहे हैं, इसी कारण गांधीजी भी सत्य के अनुसंधान में समस्त आर्थिक समस्याओं का हल ढूंढते थे । उनका सत्य मानव प्रेम या सेवा का ही पर्यायवाची था । यही कारण था कि गांधीजी ने हस्तकला उद्योग के सम्मुख मशीन या लौह यन्त्रों का विरोध किया था इस विरोध का कारण यह था कि वे मानव श्रमशक्ति का मशीनों के उपयोग द्वारा अपव्यय नहीं चाहते थे । उनकी दृष्टि में बड़ी मशीनें या बस यन्त्र ही समाज के लिए अहितकर पूंजीवादी व्यवस्था का मूल कारण हैं, जिनमें वर्गभेद जैसी

---

1. "The realisation of God here and now is the supreme ambition ... of life can be solved, all ... n one sees God face to face ... It is the vision of God in our whole soul, in our daily lives."
Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism P. 49.

2. Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 200.

अस्वास्थ्यकर विचारधारा का जन्म होता है।[1] इसके अतिरिक्त गाधीजी विदेशी साम्राज्यवाद की स्वार्थपूर्ण वाणिज्य वृत्ति से उत्पन्न भारतीय आर्थिक पगुता के रोग का उपचार स्वदेशी, कला कौशल, हस्त उद्योग तथा कुटीर उद्योग द्वारा करना चाहते थे।

गाधीजी ने भारत के आर्थिक इतिहास का अध्ययन कर, उसके प्रकाश मे तत्कालीन आर्थिक दुरावस्था के कारणो को खोजा था। उनके मत मे आर्थिक विपन्नता का कारण भारतीयो की अकर्मण्यता या उद्योगहीनता मे नही था । बल्कि विदेशी सत्तावाद की स्वार्थपूर्ण व्यापार नीति मे था। गाधीजी के पूर्व स्वदेशी आन्दोलन अपनी पूर्ण गति से चल चुका था। उन्होने विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार तथा स्वदेशी के प्रचार का कार्य क्रियान्वित रक्खा। उन्होने स्वदेशी के मूल स्रोत ग्राम उद्योग के विकास की भी पूरी योजना बनाई। इस योजना द्वारा देश की बेकारी की समस्या तथा गरीबी की समस्या भी हल हो जाती थी। पडित कृष्णदत्त पालीवाल ने उनकी आर्थिक नीति के विषय मे लिखा है— परन्तु इससे कही अधिक युगान्तरकारी और सन्निहित सम्भावनाओ से भरा हुआ लाभ वह है जो महात्मा गान्धी ने चरखा-खादी तथा ग्रामोद्योगो, घरेलू उद्योग-धन्धो के रूप मे हमे दिया। उन्होने हमे यह बता दिया कि भारतीय अर्थशास्त्र पाश्चात्य शहरी अर्थशास्त्र नही—भारतीय ग्राम्य अर्थशास्त्र है जो धर्म द्वारा अर्थ उपार्जन करके ही अपनी कामनाओ की सिद्धि का प्रतिपादन करता है। वह न केवल भारत की गरीबी की समस्या को, हमारी आर्थिक समस्या को, जीवन की समस्त आधारभूत आवश्यकताओ को पूरा कर सकने वाले प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय विभाज्य की समस्या को ही सफलतापूर्वक हल करता है बल्कि शोषण, पूजीवाद, साम्राज्यवाद, फासिस्टवाद आदि की उन समस्त विभीषिकाओ से भी हमारी जान बचाता है जो आज तक पाश्चात्यो को पतन और विनाश की ओर लिये जा रही हैं। उनमे मानवी सास्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यो के लिए समुचित स्थान है वह धर्म, अर्थ काम, मोक्ष चारो पदार्थों का सुन्दरतम समुच्चय है। वह विश्व शाति, विश्व सघ, मानव-स्वाधीनता और लोकतन्त्र तथा सर्वोदय का सुन्दर साधन है।'[1]

इसका तात्पर्य यह कदापि नही है कि गाधीजी ने कल मशीनो तथा बडी बडी मिलो का विरोध इसलिए किया था कि वे नागरिक जीवन की अपेक्षा ग्रामो की ओर उन्मुख थे और अपने युग की विपरीत दिशा मे जा रहे थे। उनके इस विरोध का कारण था कि हमारा देश गावो का देश है, जिनकी आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए यह आवश्यक

---

1. 'Gandhi's reasoning is that if there had been no machines, no use of steam and electricity, no large-scale production, there would not have been the whole sale exploitation of labour by capital, of poorer countries like India by capitalist nations of the west, no unhealthy social life which disfigures the big cities of Europe and America'

Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism. P 209.

१—प० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल : हमारा स्वाधीनता सग्राम पृ० ५

था कि गावो मे बसने वाली भारतीय जनता मे, छोटे-छोटे उद्योग धधो के विकास द्वारा एक नई आर्थिक चेतना को जन्म दिया जाये।[१] हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि अ ग्रेजी साम्राज्य के पूर्व हमारे गाव स्वावलम्बी तथा सम्पन्न थे। गाधी जी की आर्थिक नीति भारतीय जीवन की समस्त आर्थिक समस्याओ को अपने मे आवृत्त किये थी।

गाधीजी ने स्वदेशी का प्रचार एव प्रसार किया। विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार का प्रबल आन्दोलन चलाया। स्थान-स्थान पर विदेशी कपडो की होलिया जली। विदेशी माल की दूकानो पर स्वय सेवको ने धरना दिया। असहयोग आन्दोलन को क्रियान्वित रूप प्रदान करने के लिए उन्होने व्यापारियो से अनुरोध किया था कि वे विदेशी व्यापारिक सम्बन्धो को छोड कर हाथ कताई बुनाई को प्रोत्साहन दें।[२] इस प्रकार देश की तत्कालीन अर्थ व्यवस्था को सुधारने तथा राष्ट्रीय आर्थिक सतुलन को बनाये रखने के लिए गाधीजी ने इस अन्यतम मार्ग को प्रश्रय दिया। यह स्वदेशी का प्रस्ताव तथा विदेशी का बहिष्कार केवल क्षणिक आवेश का परिणाम नही था। इसे नियमित रूप से सुगमतापूर्वक चलाया जा रहा था।[३] गाधीजी स्वदेशी को भारत-वासियो का स्वधर्म मानते थे जिसका समर्थन गीता द्वारा होता है।[४] इसी कारण गाधीजी ने स्वदेशी लीग की स्थापना की। उनकी राष्ट्रीयता के लिए चर्खा चलाना एव नियमित रूप से सूत कातना आवश्यक था। असहयोग आदोलन के काल मे उन्होंने बीस लाख घरो मे चर्खा चलवाने का प्रयत्न किया था।[५] चर्खा उनकी दृष्टि मे नैतिक अस्त्र था जिसके प्रयोग द्वारा वे सच्चा स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे।[६]

ग्रामीण समाज की कलात्मक प्रतिभा के पुनर्जीवन मे उनकी हरिजन समस्या भी हल होती थी। यही उनकी स्वतन्त्रता का मूलमत्र था, जिससे भारतीय स्वतन्त्रता चिरस्थायी हो सकती थी।

---

१. 'I have no doubt in my mind that we add to the national wealth if we help the small scale industries, I have no doubt also that true swadeshi consists in encouraging and revising these home industries It also provides an outlet for the creative faculties and resourcefulness of the people It can also usefully employ hundreds of youths in the country who are in need of employment'

M K Gandhi—Centpercent Swadeshi P. 5

२—पट्टाभि सीतारम्मैया काग्रेस का इतिहास पृ० १३२

३—वही पृ० १५४

४. 'What the Geeta says with regard to Swadharma equally applies to Swadeshi for Swadeshi is Swadharma applied to one's immediate invironment'

M K Gandhi—Centpercent Swadeshi P 7.

५—प० शकरलाल तिवारी बेढब भारत सन ५७ के बाद पृ० ८३

६ 'The spinning wheel means for Gandhi, above all a moral weapon Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 217.

राजनैतिक पक्ष मे सहयोग

गाधी जी जीवन के एकत्व मे विश्वास रखते थ । उनके विचार मे राजनीति, अर्थशास्त्र, कला, विज्ञान, धर्म आदि जीवन के विभिन्न विभाग आत्मा की विविधता की अभिव्यक्ति के साधन थ । वे राजनीति को जीवन के अन्य विभागो से पृथक् रखने मे विश्वास नही करते थे । उनकी राजनीनिक विचारधारा भी धर्म द्वारा नियन्त्रित थी ।[1] राजनीति को वे धर्म मानते थे क्योकि उसके द्वारा स्वतत्रता तथा न्याय की पूर्ति होती है । गाधी जी की राजनीतिक विचारधारा उदारवादी राष्ट्रीय नेताओ और उग्र राष्ट्रीय दल से कुछ भिन्न थी । सत्य, अन्याय तथा अहिंसा मे विश्वास रखने के कारण वे राजनीतिक क्षेत्र मे भी धर्म की शक्ति को सर्वोपरि मानते थे । गाधी जी मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को आध्यात्मिक शक्ति से पूण बना देना चाहते थे ।[2] इस आध्यात्मिकता मे कर्म की प्रधानता थी । उनकी राजनीति ही नही सम्पूण जीवन-दर्शन कर्म की श्रेष्ठता पर आधारित था । इस कर्म का श्रय था शाश्वत आनन्द अथवा मोक्ष की प्राप्ति । इसी कारण व देशभक्ति को शाश्वत आनन्द अथवा मोक्ष की एक विशेष अवस्था या स्थिति मानते थे ।[3] सत्य की प्राप्ति मे बाधक देशभक्ति उन्हें ग्राह्य नही थी । इसलिए गाधी जी ने सत्य तथा अहिंसा पर आधारित असहयोग आन्दोलन द्वारा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्ति का आह्वान किया था ।[4] वे साधन और साध्य को एक सिक्के के दो पक्षो के समान अभिन्न एव एक दूसरे का पूरक मानते थे । इसी सत्य तथा अहिंसा के अमूल्य आदर्श के कारण गाधी जी की देशभक्ति अन्त र्राष्ट्रीयता की परिधि तक विस्तृत थी । उनका यह स्पष्ट मत था कि एक राष्ट्र तभी नि शक रूप से अपनी उन्नति तथा समृद्धि मे समर्थ होता है जब वह अन्य राष्ट्रो का पूर्ण सहयोग प्राप्त कर लेता है । यह सहयोग केवल सत्य प्रेम तथा अहिंसा द्वारा

---

1 Gandhi does not believe in secularisation of politics Polictis will inevitably degenerate into a scramble for loave and fishes, it is divorced from higher idealism The libral tried to rationalise politics The militant Nationalist tried to emotionalise politics Gandhi tried to spiritualise it The driving force in Gandhi's life is the religious force This religious force does not mean the force of Hindu dogma or any dogma it is nothing but his faith in the ideal of truth and justice

Dr Buch—Rise & Growth of Indian Nationalism P 72

2 Ibid, P 73

३ Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism P. 75

४ This is the non violent approach to the question of freedom, democracy and equality which Gandhiji introduced

Pyarelal—A Nation Builder At Work P. 4

प्राप्त किया जा सकता है।[1]

गाधी जी राजनीतिक आन्दोलन द्वारा भारत में सच्चे अर्थों में प्रजातन्त्रात्मक स्वराज्य की स्थापना करना चाहते थे, जिसमे राजनीतिक शक्ति राष्ट्रीय जीवन को राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व द्वारा नियमित रखे। अहिंसा उनके आंदोलन का मेरुदण्ड थी क्योंकि अहिंसा द्वारा स्थापित प्रजातन्त्रवाद में ही राष्ट्र की प्रत्येक इकाई को सच्ची स्वतन्त्रता का आनन्द लाभ हो सकता है। उन्होंने राष्ट्र की उस आदर्श स्थिति की कल्पना की थी जिसमे राष्ट्रीय जीवन को प्राप्त होकर स्वनियन्त्रित हो जाता है, उसे किसी सस्था की आवश्यकता नही रहती।[2] सबका नैतिक आचरण राष्ट्रीय विकास के हित मे होता है और प्रत्येक स्वतन्त्र इकाई अपने सयत आचरण द्वारा राष्ट्रीय व्यवस्था की आरक्षा में सलग्न रहती है। गाधी जी का सम्पूर्ण जीवन इसी स्वप्न को वास्तविक रूप प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील रहा।

राजनीतिक क्षेत्र मे, गाधी जी, राष्ट्रीय हित के सम्मुख ब्राह्मण-अब्राह्मण हिन्दू-मुस्लिम ऊँच-नीच, वर्ण-भेद आदि विषयों को हेय समझते थे। वे हिन्दू मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध आदि विभिन्न धर्मावलम्बियों को भारतीय सांस्कृतिक एकता के विविध प्रतीक मानते थे। उन्होंने भारतवासियों की आपसी फूट का कारण विदेशी साम्राज्यवाद की राजनीति में खोजा था। इसी कारण वे साम्प्रदायिकता के आधार पर निर्वाचन-प्रणाली के विरुद्ध थे। साम्प्रदायिक एकता उनकी राजनीतिक विचार-धारा का महत्वपूर्ण अग था।

अत राजनीतिक क्षेत्र मे सर्वप्रथम गाधी जी ने स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्रात्मकता तथा समानता की स्थापना के लिये सत्य एव अहिंसा पर विशेष बल दिया।[3] जनता को धर्म-सयुक्त राजनीति मे दीक्षित कर विदेशी दासता के विरुद्ध जन-आन्दोलन किया। इस प्रकार गाधी जी ने देश के राजनीतिक क्षेत्र मे एक नवीन आत्मशक्ति एव जागृति का प्रसार किया जिससे सामान्य जनता मे भी वह साहस भर गया कि वह अधर्म, अन्याय और अत्याचार का विरोध करने में समर्थ हो सकी।[4]

---

१. 'My religion and my patriotism derived from my religion embraced all life I want to realize brotherhood or identity not merely with the beings called human, but I want to realize identity with all life, even with such things as crowl upon earth.'

M K Gandhi—My Religion P 132

२ 'Political power means capacity to regulate national life through national representation If national life becomes so perfect as to become self-regulated no representation [illegible]

3 [illegible] 10-

४. ibid, P. 29

असहयोग का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष

गाधी जी जनता की मनोवृत्ति से भली भाति परिचित थे, वे जानते थे कि समाज के मस्तिष्क पर अपने अतीत का रहस्यपूर्ण प्रभाव पडता है। अत इन्होने भारतीय मस्तिष्क के परिष्करण तथा सास्कृतिक आदर्शो एव नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए भारत के इतिहास तथा अतीत की गौरवपूर्णआत्मा से प्रेरणा ग्रहण की।[1] देश मे धर्म के आधार पर सगठित हिन्दू मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, पारसी, सिक्ख आदि सभी समाजो के परस्पर सहयोग एव सहिष्णुता के वे आकाक्षी थे। विविध धर्म *जाति तथा सम्प्रदाय समन्वित भारतीय समाज की मनोवृत्ति* में परिवर्तन कर, सामाजिक अधर्म, अन्याय, अत्याचार और रूढियो को मिटाना उनके सहयोग आन्दोलन का लक्ष्य था। वे मानव प्रेम तथा मानव-सेवा को सामाजिक प्राणी का 'स्वधर्म' मानते थे। उनकी दृष्टि मे धार्मिक विद्वेष महान पाप था। साम्प्रदायिक एकता उनके रचनात्मक कार्यक्रम का प्रमुख अग और असहयोगी का कर्तव्य था।

राजनीतिक दासता के साथ गाधी जी सामाजिक दुर्बलताओ को भी राष्ट्र की प्रगति मे बाधक मानते थे।[2] उनके मत मे भेदभावमय बुद्धि सामाजिक मस्तिष्क का सबसे बडा विकार था। इसी कारण वर्णाश्रम-धर्म व्यवस्था, जाति सगठन अर्थात् प्राचीन सामाजिक व्यवस्था, मे पूरी आस्था होने पर भी गाधी जी अस्पृश्यता को हिन्दू समाज का कलक मानते थे। उनके अनुसार वर्णाश्रम धर्म समता का धर्म था, सत्य रूप का पालन न होने के कारण भारत की सामाजिक अवस्था अति दयनीय हो गई थी।[3] स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द की भाति उनकी समाज सम्बन्धी विचारधारा पूर्णतया वैदिक थी। वे भारतीय समाज के चतुर्वर्णों को मानव जीवन का आवश्यक कर्म मानते थे। गाधी जी अछूत वर्ग को समाज के अन्य वर्णों के समान पद पर प्रतिष्ठित कर सामाजिक साम्य स्थापित करने के पक्ष में थे। गाँधी जी के शब्दो मे अछूतो की स्थिति सुधारने के लिए यह जरूरी नही है कि उनसे उनके परम्परागत पेशे छुडवायें अथवा उन पेशो के प्रति उनके मन मे अरुचि पैदा की जाय। ऐसा नतीजा पैदा करने के लिए की गई कोशिश उनकी सेवा नही, असेवा होगी। बुनकर बुनता रहे, चमार चमडा कमाता रहे और भगी पाखाना साफ करता रहे और तब भी वह अछूत न समझा जाय तभी कह सकते हैं कि अस्पृश्यता का निवारण हुआ।[4] गाधीजी ने धर्मानुसार निर्मित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण के अधिकार की अपेक्षा कर्तव्य-भावना को अधिक महत्व दिया था क्योंकि कर्तव्य अथवा समाज-सेवा ही इन वर्णो की एकता का मूल तत्व था। उन्हें मनुष्य पर शासन

१. Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 49.
२. Ibid, P 91.
३—किशोरीलाल मशरूवाला : गाधी विचार दोहन : पृ० ३८
४—किशोरीलाल मशरूवाला : गाधी विचार दोहन : पृ० ४५

अभीष्ट नही था। ब्राह्मण का अन्य वर्णों पर प्रभुत्व अथवा शूद्रो के सेवा-कर्म को हेय दृष्टि से देखना, उन्हें रुचिकर नही था। वे अपने वर्णाश्रमधर्म-व्यवस्था सम्बन्धी विचारो को पूर्णतया वेदानुकूल मानते थे और उसके वर्तमान रूप को विकृत।[१] समाज सुधारक गाधी वर्ण भेद, वर्ग-भेद मिटाकर आध्यात्मिक तथा नैतिक उच्चादर्शों पर अवलम्बित समाज की रचना का आदर्श रखते थे।[२]

वर्ण-व्यवस्था के सदृश ही गाधी जी को आश्रम व्यवस्था भी सामाजिक और राष्ट्रीय हित के लिए मान्य थी। ब्रह्मचर्य को उन्होंने विशेष महत्व दिया था, क्योंकि इसी की सुदृढ आधारशिला पर अन्य तीन आश्रमो—गृहस्थ, वाणप्रस्थ और सन्यास, की उज्ज्वलता पवित्रता तथा सयम पर निर्भर है।[३]

गाधी जी ने हिन्दू समाज के लिए हिन्दू-धर्म के एक सुन्दर तत्व गोरक्षा को आवश्यक माना था गोरक्षा के अभाव मे स्वराज्य अर्थहीन है क्योकि गौ राष्ट्र के निर्बलो तथा मूक प्राणियो का प्रतीक है। गोरक्षा द्वारा कृषि-प्रधान देश की उन्नति तथा समृद्धि सम्भव है। वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था की भाति गोरक्षा भी हिन्दू-धर्म की विश्व को एक महान देन है।

भारतीय नारी की स्थिति मे परिवर्तन द्वारा सामाजिक उन्नति हो सकती है। गाधी जी नारी का सम्मान करते थे। वे नारी की स्वतन्त्रता, शिक्षा तथा पुरातन आदर्शों के समर्थक थे। भारतीय नारी को वे सामाजिक अत्याचार, रूढ़ियो एव अन्ध-विश्वास की सीमा से मुक्त कर पुन 'सीता देवी' के उच्चासन पर विभूषित करना चाहते थे। उनका यह स्पष्ट मत था कि देश की स्वतन्त्रता तथा आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति मे नारी की अवरुद्ध गति बाधक है।[४] गाधी जी ने हिन्दू समाज की विकृति के सम्बन्ध मे कहा था—'स्त्री जाति के प्रति रखा गया तुच्छ भाव हिन्दू समाज मे घुसी हुई सडन है, धर्म का अ ग नही है। धार्मिक पुरुष भी इस प्रकार के तिरस्कार भाव से मुक्त नही है, यह बात बतलाती है कि यह सडन कितनी गहराई तक पहुच है।'[५] उनका

---

१. 'I believe in the Varnashrama Dharma in a sense, in my opinion, strictly vedic but not in its present popular and crude sense' M K Gandhi – Hindu Dharma P 4

२. Dr. Buch – Rise and Growth of Indian Nationalism P 55

३ – किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन पृ० ४६

४. 'Let us not live with one limb completely or partially paralysed Rama would be no where without sita, free and independent even as he himself was By seeking today to interfere with the free Growth of the womenhood of India, we are interfering with the growth of free and independent spiritual man' Dr Buch – Rise and Growth of Indian Nationalism P. 57.

५—किशोरीलाल मशरूवाला . गांधी विचार दोहन . पृ० ४२

नारी की सद्वृत्ति मे अटूट विश्वास था। वे नारी की दुर्वृत्ति का कारण पुरुष की सकीर्णता अथवा अनुदारता मे खोजते थे। उनके शब्दो मे 'स्त्री जाति मे छिपी हुई अपार शक्ति उसकी विद्वता अथवा शरीर-बल की बदौलत नही है, इसका कारण उसके भीतर भरी हुई उत्कट श्रद्धा, भावना का वेग और अत्यन्त त्याग-शक्ति है। वह स्वभाव से ही कोमल और धार्मिक वृत्ति वाली होती है, और पुरुष जहा श्रद्धा खोजकर ढीला पड जाता है, अथवा झूठे हिसाब लगाने मे उलझा रहता है वहा वह धीरज रखकर सीधे रास्ते पर स्थिर भाव से बढती है।'[1]

यही कारण था कि गाधी जी बाल विवाह, अनमेल विवाह तथा इच्छा के विरुद्ध विवाह के घोर विरोधी थे। वे हिन्दू विधवा को त्याग एव पवित्रता की प्रतिमूर्ति मानते थे किन्तु कठोर सामाजिक नियमों द्वारा बलपूर्वक कराया गया त्याग उनकी दृष्टि मे असगत एव अन्याय था। उन्होने स्वय कहा था—'किन्तु स्त्री-जाति के प्रति पोषित प्रचारित तुच्छ भाव ने विधवा के साथ अन्याय करने मे कोई कसर उठा नही रखी। इससे हिन्दू विधवा की स्थिति अछूतों के समान ही दयाजनक हो गई है।

विधवा त्याग की मूर्ति है, पर इस कारण वैधव्य जबरदस्ती पालन कराने की चीज नही है। बलात्कार से कराया हुआ त्याग उसमे रहने वाली दिव्यता का नाश करता है और उसे पूजनीय तथा आदर्श बनाने के बदले दया का पात्र बना डालता है।

इस कारण विधुर हुए पुरुष का पुर्नविवाह करने का जितना अधिकार माना गया है उतना ही, विधवा को भी है।'[2] इसके अतिरिक्त वर्णान्तर-विवाह भी गाधीजी को अप्रिय नही थे।

समाज की सर्वाधिक पतित मनोवृत्ति की द्योतक एव नारी जीवन से सम्बधित वेश्या की समस्या का निराकरण कर गाधी जी ने भारतीय समाज तथा राष्ट्र को आध्यात्म-भाव से पूरित करने का उद्योग किया था। उनकी दृष्टि मे वेश्यावत्ति महान पाप थी। उन्होने नारी की इस पतित अवस्था का समस्त दोष पुरुष जाति पर मढा था, जो असयम, असद तथा वासना के वशीभूत होकर समाज मे ऐसी नीच वृत्ति को प्रश्रय देता है। जब तक समाज नारी की दिव्यता मे विश्वास नही करेगा तब तक इस प्रकार की समस्याओ का समाधान असम्भव है।'

गाधी जी भारतीयो द्वारा पश्चिमी सभ्यता सस्कृति के अनुकरण के विरोधी थे। वे पश्चिम के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण को भारतीय समाज, राष्ट्र और परम्परागत जीवन के लिए घातक मानते थे। उन्हें पश्चिमी जगत् की भाति पदार्थ

१—गाँधी विचार दोहन : पृ० ४३

२—वही, पृ० ४६

1 Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism P. 62.

की साधना इष्ट नही थी । क्योंकि उसके द्वारा आध्यात्मिक उत्कर्ष, त्याग, बलिदान आदि भारतीय आदर्शो की प्राप्ति नही हो सकती । उनके विचार मे पश्चिमी उद्योगीकरण का सिद्धान्त और पूँजीवादी व्यवस्था, भारतीय नागरिक तथा ग्रामीण के लिए अशिव थी। इसका कारण यह था कि आधुनिक सभ्यता कुछ देशो को अन्य देशो के पतन पर सभ्य बनाती है धनिक वर्ग निर्धनो के बल पर सस्कृत कहलाता है। गाधीजी की सभ्यता का अर्थ आत्मा का परिष्कार मानते थे, न कि बाह्य प्रसाधनो का।[1] अत उन्हें भारतीय समाज के लिए प्राचीन सभ्यता और सस्कृति के आदर्श ही मान्य थे । इसके अतिरिक्त वे शिक्षित नागरिको द्वारा ग्रामीण समाज की अशिक्षा अन्धविश्वास, रूढिवादिता, अस्वस्थता, निर्धनता आदि समस्याओ का निराकरण करवाना चाहते थे । राष्ट्रीय जीवन को एकत्व तथा घनत्व प्रदान करने के लिए गाधीजी ने स्वय सेवको के दलो को ग्राम-ग्राम भेजकर ग्राम-सुधार कार्य को क्रियान्वित किया था। सरकारी न्यायालयों की अपेक्षा ग्राम पचायतो मे उनका विश्वास था।

अत मे यह कहा जा सकता है कि गाधीजी की सामाजिक विचारधारा भी आध्यात्मिकता नैतिकता त्याग, बलिदान तथा एकता के गुरुतर आदर्शों पर आधारित थी।

गांधीजी के राष्ट्रवाद का स्वरूप

गाधीजी महान राष्ट्रवादी थे। उनका राष्ट्रवाद ठोस आध्यात्मिकता पर आधारित था। उन्होंने देश के नित्य प्रति के जीवन म सत्य तथा अहिसा का प्रयोग कर मनुष्य को उसके उच्चतम स्वरूप तक ले जाने का प्रयत्न किया था।[2] उनका आध्यात्म अथवा जीवन-दर्शन पूणतया भारतीय था। अत उनके राष्ट्रवाद का विकास भी जीवन दर्शन अथवा जीवन मार्ग के रूप मे हुआ था। भारतीय जीवन-दर्शन का लक्ष्य मोक्ष अथवा मुक्ति है। गाधीजी को यह मोक्ष की धारणा पूणतया मान्य थी लेकिन यह व्यक्तिवादी होते हुए भी कर्म-मार्ग द्वारा नियन्त्रित थी। उनके अनुसार सत्कार्य ही आध्यात्मिकता अथवा नैतिकता की कसौटी थे, जो मानवता अथवा मानव सेवा के उच्चादर्शों से मडित थे। इसके अतिरिक्त उनकी आध्यात्मिक विचारधारा एकान्तिक नही थी, प्रत्युत लोक सग्रह की भावना स पूर्ण थी। व राजनीति, राष्ट्रीय हित तथा धम म अन्तर नहीं मानते थे। इस कारण उनके मतानुसार पराधीनता, अन्याय एव अत्याचार स राष्ट्र की मुक्ति भारतीय जीवन का सवप्रमुख ध्येय था। इसके लिए

---

1 Exploitation of them any by the few, in the interest of the earthly greed for money and power of the few, is the essence of modern civilisation Gandhi askes India not to copy this western civilisation blindly That way lies ruin, moral and material The genius of India will do well to built on her ancient foundations'

Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism P 67.

2 M K Gandhi—Satyagrah P 14

एकमात्र उपयुक्त साधन अहिंसा थी। सत्य तथा अहिंसा की रक्षा के लिए आत्म-त्याग अथवा बलिदान की आवश्यकता थी। देश-सेवा मे इस त्याग अथवा बलिदान को मूर्त रूप मिलता था।

गाधीजी का राष्ट्रवाद भारत की प्राचीन सास्कृतिक परम्परा से अनुप्रेरित था। उनका यह पुष्ट मत था कि अपने सास्कृतिक मूल्यो एव नैतिक आदर्शों के पालन द्वारा ही कोई राष्ट्र उन्नत हो सकता है। इसी कारण वे भारत की प्राचीन सस्कृति मे विश्वास रखते थे।[1] असहयोग आन्दोलन अथवा सत्याग्रह द्वारा वे भारत की प्राचीन सास्कृतिक आत्मा की पुन प्रतिष्ठा करना चाहते थे। अतीत गौरव की स्मृति तथा प्राचीन सास्कृतिक, आध्यात्मिक, नैतिक सिद्धान्तो की स्थापना द्वारा गाँधीजी देशवासियो मे पराधीनता के कारण उत्पन्न हीन भावना को मिटाना चाहते थे। वस्तुत गाधीजी वैदिक साहित्य वर्णाश्रम-धर्म व्यवस्था, गोरक्षा, मूर्तिपूजा आदि मे विश्वास रखते थे।[2] इसका तात्पर्य यह नही है कि वे पुरातनवादी अथवा रूढिवादी थे, अन्य धर्मों तथा धर्म-ग्रन्थो म भी उनकी पूरी श्रद्धा थी। अत गाधी जी का राष्ट्रवाद अति पुरातन हिन्दू धर्म समन्वित राष्ट्रवाद था, लेकिन उनका हिन्दूत्व इतना विस्तृत एव उदार था कि उसमे विश्व के सभी धर्मों को समाहित कर लेने का विशेष गुण था।[3] गाधी जी ने देश मे व्याप्त पश्चिमी सभ्यता एव सस्कृति के विष को मारने के लिए भी यह आवश्यक समझा था कि भारतीय सास्कृतिक चेतना से आवृत्त धर्म का सबल ग्रहण किया जाये, जिसम अन्य धर्मावलम्बी अल्पसख्यक जनता की धार्मिक भावना की उपेक्षा न हो।

गाधीजी के राष्ट्रवाद का मूल तत्व 'प्रेम' है। उनका यह विश्वास था कि सभी धर्मों के मूल म प्रेम तत्व विद्यमान है, अत प्रेम सम्पूर्ण मानवता की कल्याण-

---

१. 'It is self evident to Gandhi that Indians are one Nation that [illegible] of Indians is [illegible]
P. 76

२. 'I believe in the Vedas, the upnishdas the puranas and all that goes by the name of Hindu scriptures and therefore in Avtaras and rebirth'
M K. Gandhi—Hindu Dharma

३ 'Hindu is not an exclusive religion In it there is room for the worship of all the prophets of the world It is not a missionary religion in the ordinary sense of the term. It has no doubt absorbed many tribes in its fold, but this absorption has been of an evolutionary imperceptible character. Hinduism tells everyone of worship God according to his own faith or dharma, and so it lives at peace with all the religious.'

M. K. Gandhi—Hindu Dharma—P. 8, 9.

परिधि तक विस्तृत हो गया था। राष्ट्र की सीमारेखा मे रहकर मानव मात्र के प्रति दया एव सेवा-भाव के गुरुतर आदर्श से उनकी राष्ट्रीय भावना अभिभूत थी।[१] *गाधी जी एक राष्ट्र का यह प्रमुख कर्तव्य मानते थे कि वह दूसरे राष्ट्र के लिए त्याग* अथवा बलिदान करे। उनकी दृष्टि मे एक राष्ट्र की सच्ची स्वतन्त्रता का अर्थ था विश्व-कल्याण के लिए सर्वस्व समर्पण करना। जातिगत घृणा का उसमे कोई स्थान न था। राष्ट्र की इसी उच्च स्थिति मे व्यक्ति को मोक्ष सत्य अथवा ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। सकीर्णता, स्वार्थपरता आदि राष्ट्रवाद की विकृतियाँ थी, जिनसे गाधी जी मानवमात्र को दूर रखना चाहते थे। राष्ट्रवाद का इतना उच्च एव त्यागमय रूप इसके पूर्व दुर्लभ था।[२]

महात्मा गाधी का राष्ट्रवाद भारतीय जीवन की शिव भावना से प्रेरित था। उन्होने स्वतन्त्रता की साधना को भारतीय जीवन का महान् लक्ष्य निर्धारित किया था। वे देश को विदेशी शासन की दासता से मुक्त कर, आध्यात्मिक नैतिक आदर्शों से उन्नत, उदार सामाजिक विचारो से पूरित तथा सहिष्णु धार्मिक भावना से मडित करना चाहते थे। अत उन्होंने भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शिक्षा सम्बन्धी दशा का सूक्ष्म निरीक्षण किया। वे राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष की ओर से सजग एव सचेष्ट हो गए। भारतीय जीवन के लिए अहितकर सामाजिक कुरीतियाँ जैसे वेश्यावृत्ति, अनमेल विवाह, विधवाओ पर घोर नियत्रण, छुआछूत आदि उन्हें अप्रिय थी। धर्म-सम्बन्धी मतभेद, विद्वेष, अन्ध विश्वास, रूढ़िवादिता, सकीर्णता आदि का उन्होने विरोध किया। *भारत की आर्थिक विपन्नता का एकमात्र कारण वे पूजीवादी व्यवस्था को मानते थे।* राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए उन्होने राष्ट्रव्यापी आन्दोलन किये थे। रचनात्मक कार्यक्रम की विस्तृत योजना को क्रियान्वित कर देश मे स्वराज्य के लिए अनुकूल वातावरण बनाया।[३] गाधी जी के

---

१. Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism P 77

२. 'Just as the cult of patriotism teaches us today that the individual has to die for the family, the family has to die for the village, the village for the district, the district, for the province and province for the country, even so, as couutry has to be free in order that it may die, it is necessary for the benefit of the world There is not room for race—hatered there.'
M K. Gandhi—My Religion—P. 132

३—'जब तक अनुकूल परिस्थिति न हो, तब तक चतुर्विध रचनात्मक कार्यक्रम तथा दूसरी लोकोपयोगी सेवा करते रहना ही स्वराज्य की साधना है। बहुत वर्षों तक ऐसा करना पड़े तो भी इसमें हानि नहीं है। इसे प्रगति ही कहेंगे पीछे हटना नहीं।'

—किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन : पृ०७५

राष्ट्रवाद मे देश के वर्तमान जीवन को पूर्ण अभिव्यक्ति मिली थी। वह देश जीवन के सभी पक्षो के सुधार, विकास एव उन्नति के लिए क्रियाशील थे।

अतीत एव वर्तमान की सीमा पर गाधी जी ने अपने राष्ट्रवाद को भविष्य के सुन्दर स्वप्नो से भी सुसज्जित किया था। उन्होंने देश के सम्मुख स्वराज्य की रूप-रेखा रख दी थी। उनके स्वराज्य का अर्थ था सत्य, न्याय तथा प्रेम पर आधारित प्रजातन्त्रात्मक राज्य। विश्व शान्ति सहयोग और विश्व बधुत्व स्वराज्य की आवश्यक मान्यताए थी जिसमे जीवन के प्रत्येक कर्त्तव्य को नैतिक आधार प्रदान किया गया था।[1]

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि गाधी जी ने अपने राष्ट्रवाद मे भारतीय जीवन के प्रत्येक पक्ष को सन्निहित कर, उसे धर्म, नीति न्याय, प्रेम, एकता, मैत्री आदि उच्चादर्शों पर प्रतिष्ठित किया था।[2] देश की अधिकाश जनता को गाधी जी का राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीय विचारधारा मान्य थी। भारतीय जनता के क्रियात्मक सहयोग द्वारा उनके आन्दोलन को सफल बनाया था। इसका कारण यह था कि गाधी जी ने राष्ट्रवादी सिद्धान्तो के निर्धारण मे मनोविज्ञान का सहारा लिया था।

स्वराज पार्टी तथा उसकी राष्ट्रवादी नीति

राष्ट्रवादियो का एक दल गाधीजी के असहयोग आन्दोलन की नीति से पूर्णतया सहमत नही था और लोकमान्य तिलक को भी असहयोग नीति की सफलता के सबन्ध मे सदेह था। ये राष्ट्रवादी, अंग्रेजी सरकार द्वारा निर्मित अन्याय तथा अत्याचारो पर आधारित कानूनो का विरोध कर, उनके अस्तित्व को मिटा डालना चाहते थे। वे कौसिल प्रवेश द्वारा नौकरशाही के गढ पर आक्रमण करना चाहते थे। सन् १९२०-२२ के दो वर्षों मे, देश के राजनीतिक प्रभाव के कारण कौंसिल बहिष्कार की नीति सफल हुई। किन्तु शीघ्र ही चौरीचौरा की घटना के कारण गाधीजी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित किया और इस दल की नीति के प्रसार का उपयुक्त वातावरण उपस्थित हुआ। देश सत्य और अहिंसा की शिक्षा मे पारगत नही हो सका। आन्दोलन की सफलता मे विदेशी शासको के दमनकारी कानूनो की बाढ

---

१ 'Free India, therefore, is nationalised India. All interests, internal or external, will have to bow down to the national idea All the classes may be required to bow down their necks to national interests A new democractic state is in the process *of being born* "

Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism—P. 113.

२—'गाधीजी की राष्ट्रीयता की परिधि किसी एक धर्म, सस्कृति अथवा समाज-विशेष तक सीमित नहीं थी, उसमे तो हिन्दुस्थान मे रहने वाले सभी धर्मों, सस्कृतियों और समाजो का मुक्त समावेश था।'

—शान्ति प्रसाद वर्मा : स्वाधीनता की चुनौती : पृ० १४८

सी आ गई। अत देशबन्धुदास, विट्ठलभाई पटेल, मोतीलाल नेहरू जैसे मान्य नेता गणो ने आन्दोलन के सिद्धान्तो तथा व्यावहारिक मूल्यो मे परिवर्तन करने का निश्चय किया। चितरजनदास के मस्तिष्क मे अग्रेजी शासन विधान के विरोध का विचार प्रबल रूप धारण कर बैठा था। उन्होने कौंसिल प्रवेश का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रतिमूर्ति हकीम अजमलखा ने भी सम्पूर्ण देश का भ्रमण कर असहयोग आन्दोलन की असफलता की घोषणा की। इस प्रकार चितरजनदास को हकीम अजमलखा, मोतीलाल नेहरू, विट्ठलभाई पटेल का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। इन लोगो ने यह निश्चय किया कि कौंसिल प्रवेश द्वारा सरकार की स्वार्थपूर्ण नीति का विरोध किया जाये। इसी समय स्वराज पार्टी के निर्माण का समस्त कार्यक्रम बना।[1] ये काग्रेस से पृथक् नहीं थे। अहिंसात्मक सत्याग्रह के अन्य सभी सिद्धान्त इनको मान्य थे केवल कौंसिल बहिष्कार के प्रश्न पर ही इन्होने नवीन दल की स्थापना की थी।

काग्रेस दो दलो मे बट गई, प्रथम—अपरिवर्तनवादी अर्थात जिन्हे गाधीजी के असहयोग सम्बन्धी सिद्धान्तो मे किसी प्रकार का परिवर्तन ग्राह्य नहा था, द्वितीय परिवर्तनवादी अर्थात स्वराज पार्टी, जो कौंसिल प्रवेश की समर्थक थी। श्री पट्टाभि सीतारम्मैया ने काग्रेस के इतिहास मे लिखा है—'इस पर यह स्पष्ट है कि असहयोग के पुराने और नवीन दल समान-रूप से डटे हुए थे। पर दोनो ये असहयोग के ही दल, और सरकार से सहयोग करने को दोनो मे से कोई दल तैयार न था। अन्तर केवल इतना ही था कि नवीन दल असहयोग की कमान मे एक दूसरी डोरी चढाकर उससे नौकरशाही के गढ कौंसिलो के भीतर से ही तीर छोडने का समर्थक था।'[2]

स्वराज पार्टी ने कौंसिल प्रवेश के सम्बन्ध मे निम्नलिखित उपायो से काम लेने की योजना बनाई—

(१) असहयोगियो को उम्मीदवारी के लिए पजाब और खिलाफत की नीति और तत्काल स्वराज प्राप्ति के उद्देश्य से खडा होना चाहिये और अधिक से अधिक सख्या मे पहुचने की कोशिश करनी चाहिए।

(२) यदि असहयोगी इतनी अधिक सख्या मे पहुच जायें कि उनके बगैर कोरम पूरा न हो सके तो उन्हें कौंसिल भवन मे जाकर बैठने के बजाय एक साथ वहा से चले आना चाहिये और फिर किसी बैठक मे शरीक न होना चाहिये। बीच-बीच मे वे कौंसिल मे इसलिये जायें कि उनके रिक्त स्थान पूरे न हो सकें।

(३) यदि असहयोगी इतनी सख्या मे पहुचें कि अधिक होते हुए भी उनके बिना कोरम पूरा हो सकता हो, तो उन्हें हर एक सरकारी कार्रवाई का जिसमें बजट

१. Dr. Raghuvanshi—Indian Nationalist Movement and Thought. —P. 177.

२—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २०१

भी शामिल हो, विरोध करना चाहिये और केवल पंजाब, खिलाफत और स्वराज सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करने चाहिये।

(४) यदि असहयोगी कम संख्या मे पहुंच तो उन्हें वही करना चाहिये जो न० २ मे बताया गया है, और इस प्रकार कौंसिल के बल को घटाना चाहिये।"[1]

इस प्रकार वे चुनाव द्वारा सभी प्राप्त पदो को अधिकृत करने के पक्ष मे थे। काग्रेसियो और असहयोगियो ने कौंसिलो, म्युनिसिपैलिटियो तथा स्थानिक बोर्डों के लिए खडा होना प्रारम्भ कर दिया।

गांधीजी स्वराजियो के कौंसिल प्रवेश की अडगा नीति की अपेक्षा रचनात्मक कार्यक्रम की सफलता के आकांक्षी थे। वे तभी कौंसिल प्रवेश को उचित ठहराते थे जबकि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार (१) हाथ कते-बुने खद्दर के व्यवहार, (२) विदेशी कपडो पर भारी चुगी, (३) सेना विभाग और शराब के अपव्यय मे कमी आदि राष्ट्रीय हितकारक कार्यों का समर्थन करें। देशबन्धु चित्तरजनदास तथा पडित मोतीलाल नेहरू ने अपने वक्तव्य मे यह स्पष्ट कर दिया था कि वे कौंसिल प्रवेश द्वारा विदेशी सत्ता की नौकरशाही को पूर्णतया पराजित कर स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं चाहे इसके लिए उन्हें असहयोग का भी बलिदान क्यो न करना पडे।

हमे अफसोस है कि हम गाधीजी को कौंसिल प्रवेश के सम्बन्ध मे स्वराजियो की स्थिति के औचित्य का कायल न कर सके। हमारी समझ मे यह नही आता कि कौंसिल प्रवेश नागपुर काग्रेस के असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुकूल क्यो नही है। परन्तु यदि असहयोग मनोवृत्ति से ही सम्बन्ध रखता हो और हमारे राष्ट्रीय जीवन की गति विधि नौकरशाही के हमेशा बदलते रहने वाले रग-ढग पर निर्भर रहती है, तो हम देश के वास्तविक हित के लिए असहयोग तक का बलिदान करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। हमारी राय मे इस सिद्धान्त मे उन सभी कामो मे, जिनके द्वारा राष्ट्रीय जीवन की समुचित वृद्धि हो और स्वराज्य के मार्ग मे बाधा डालने वाली नौकरशाही का सामना किया जा सके, आत्मनिर्भरता की आवश्यकता है।"[2]

स्वराज पार्टी ने 'अडगा नीति' का पालन किया था। 'अडगा' शब्द का भी स्पष्टीकरण श्री दास तथा पडित नेहरू ने इन शब्दो मे कर दिया—

'हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमने अपने कार्यक्रम मे 'अडगा' शब्द का जो व्यवहार किया है सो ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट के इतिहास के वैधानिक अर्थ में नही। मातहत और सीमित अधिकारो वाली कौंसिल में अडगा डालना असम्भव है क्योंकि सुधार कानून के अन्तर्गत असेम्बली और कौंसिल के अधिकार गिने-चुने हैं। पर हम यह कह सकते हैं कि हमारा विचार अडगा डालने की अपेक्षा स्वराज्य के मार्ग में नौकरशाही द्वारा डाली गई रुकावटो का मुकाबला करने का अधिक है। 'अडगा' शब्द का व्यवहार करते समय हमारा मतलब इसी मुकाबले से

१—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास · पृ० २०२
२—वही पृ० २१६

है। हमने स्वराज पार्टी के विधि-विधान की भूमिका में सहयोग की परिभाषा करते हुए इस बात को अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है।"[1]

स्वराज्यवादियों की नीति कौंसिल के भीतर भिन्न थी तथा कौंसिल के बाहर भिन्न।

कौंसिल अन्तर्गत स्वराज्य पार्टी का कार्यक्रम

(१) बजट रद्द करना—वर्तमान भारत के विधान में परिवर्तन तथा भारतीयों के अधिकारों की मान्यता के लिए बजट रद्द करना। क्योंकि जनता का न बजट बनाने में हाथ है न कर बढ़ाने के सम्बन्ध में या खर्च के मामले में अधिकार। इस कारण वे क्यों बजट पास करें ?

(२) कानून सम्बन्धी प्रस्तावों को रद्द करना—क्योंकि कानूनों द्वारा नौकरशाही की जड़ मजबूत होती है।

(३) रचनात्मक कार्यक्रम—जो प्रस्ताव योजनायें और बिल हमारे राष्ट्रीय जीवन की वृद्धि करने के लिये और फिर नौकरशाही की जड़ उखाड़ने के लिए आवश्यक हों, उन सबको पेश करना।

(४) आर्थिक नीति—एक ऐसी निश्चित आर्थिक नीति का अवलम्बन जो पूर्वोक्त सिद्धान्तों पर तय की गई हो जिसका उद्देश्य भारत से बाहर जाते हुये धन-प्रवाह को रोकना हो। इसके लिये धन-शोषण करने वाले सारे कामों में रुकावट करना आवश्यक है।[2]

इस प्रकार स्वराज्यवादी, सरकार द्वारा खादी के व्यवहार पर विशेष बल देने, राष्ट्रीय पताका फहराने का आग्रह करने और स्थानिक और म्युनिसिपल स्कूलों में चर्खा तथा हिन्दी के प्रचार की सिफारिश करने पर बल देते थे।[3]

कौंसिल के बाहर स्वराज्यवादियों की नीति

स्वराज्यवादी कौंसिल के बाहर महात्मा गांधी के कार्यक्रम का हृदय से स्वागत तथा समर्थन करते थे। कांग्रेस से पृथक् अपनी संस्था स्थापित करने के विरुद्ध थे क्योंकि वे राष्ट्रीय महासमिति (नेशनल कांग्रेस) की शक्ति से पूर्णतया परिचित थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि कौंसिल के भीतर उनकी सफलता कांग्रेस के समर्थन पर निर्भर करती है। स्वराज पार्टी के प्रमुख नेताओं ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि यदि उन्हें इस साधन द्वारा स्वराज्य प्राप्ति में सफलता प्राप्त न हुई तो वे इस नीति का परित्याग कर देंगे और सत्याग्रह के ठोस कार्यक्रम की सफलता का उद्योग करेंगे।[4] ये लोग देश भर के मजदूरों तथा किसानों का संगठन

१—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २१९

२—वही : पृ० २२०

३—वही : पृ० २०४

४—वही : पृ० २२१

कर कांग्रेस के काम की पूर्ति के आकांक्षी थे जिससे सरकार, पूंजीपति तथा जमींदार इस वर्ग का शोषण न कर सकें।

प्रस्ताव—स्वराजियो के दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव थे—(१) सम्राट् की सरकार को पालियामेंट मे तत्काल ही यह घोषणा करने का प्रबन्ध करना चाहिए कि भारत की शासन व्यवस्था और शासन प्रणाली मे ऐसे परिवर्तन किये जायेंगे कि देश की सरकार पूर्णतया उत्तरदायी हो जायेगी।

(२) एक गोलमेज परिषद् या इसी प्रकार कोई उपयुक्त साधन पैदा किया जाय जिसमे भारतीय, यूरोपीय और अधगोरो के हितो का पूरा प्रतिनिधित्व रहे।

यद्यपि स्वराज पार्टी कौंसिलो मे किसी ठोस राष्ट्रीय कार्य की पूर्ति न कर सकी, लेकिन नौकरशाही की नीव हिला देने की सफलता का अधिकांश श्रेय इन्ही को मिलना चाहिये। अब देश मे विदेशी शासको का आतंक जड से उखड गया था। सरकार भी इनसे डरने लगी थी। पण्डित श्री कृष्णदत्त पालीवाल, जो सन् १६२४ ई० म कौंसिल के स्वराजी मेम्बर थे, ने लिखा है कि उन्होने अपने कानो से वहा के उच्चतम हुक्काम के चपरासियो को यह कहते सुना कि अब तो जमाना बिल्कुल ही उलटा हो गया है। इससे पहले जब सिर्फ राजा और नवाब मेम्बर बीस रुपये बर्ख्शीश देते थे तब मिल पाते थे लेकिन अब ये स्वराजी लोग चिक उठा कर सीधे बडे से बडे हुक्काम के दफतर मे दनदनाते हुए घुस जाते हैं और कोई हुक्काम भी चू नही करता।[१] अब कौंसिल के यूरोपीय मेम्बरों को डर यह रहता था कि कही कोई ऐसी बात मुंह से न निकल जाय कि ये स्वराजी सदस्य उनके पीछे चैंथ डालें।[२] निःसन्देह कौंसिल प्रवेश की नीति द्वारा स्वाभिमान, निर्भयता तथा आत्मनिर्भरता की भावना प्रबल हुई। स्वराज्यवादियों को कई प्रस्तावो की स्वीकृति मे सफलता मिली जैसे भारत मे सैनिक विद्यालय खोलने का प्रस्ताव। कुछ प्रस्ताव स्वीकृत कराने मे अथवा कुछ कानून रद्द करने मे ये असफल भी रहे। आपसी मतभेद के कारण भी कभी कभी इनकी हार हुई। पट्टाभि सीतारम्मैया के शब्दो मे—'बडी कौंसिल मे स्वराज पार्टी १६२४ और १६२५ मे विरोधी दल का काम करती रही। स्वराजियो ने 'सिलेक्ट कमेटी' मे भाग लिया और लाभदायक कानून पास करने मे सहयोग दिया। कभी किसी पार्टी का साथ दिया, कभी किसी का और यदाकदा सरकार का भी।'[३]

गांधी जी ने जेल से छूटने के पश्चात् विभिन्न राष्ट्रीय दलो मे समझौता

१—पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल : हमारा स्वाधीनता संग्राम पृ० १
२—वही पृ०५
३—पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास : पृ० २२७

कराना चाहा । उन्हें साम्प्रदायिक दगो से अत्यधिक दुख हुआ । स्वराज पार्टी की कौंसिल प्रवेश नीति म उन्होने किसी प्रकार की बाधा नही डाली । १६२५ तक तो स्वराज पार्टी कांग्रेस का अ ग मात्र थी किन्तु १६२५ मे स्वय कांग्रेस बन गई थी । अब वे पुन स्वराजी से कांग्रेसी बन गये थे, क्योकि गाधीजी ने बचा खुचा सहयोग भी समेट लिया था और अपनी सम्पूर्ण शक्ति रचनात्मक कार्यक्रम मे लगा दी थी । 'उन्होने राजनैतिक अवस्था का सामना करने के लिये स्वराज्य-पार्टी को कांग्रेस का अधिकार दे दिया ।'

स्वराज्यवादियो ने गाधी जी की सूत कातने की बात को भी हटा दिया । इस बात को लेकर पुन कांग्रेस दो विभागो म बट गई—प्रथम खद्दर के समर्थक, द्वितीय कौंसिल के समर्थक । अपरिवर्तनवादियो मे आन्तरिक मतभेद तथा यद्यपि ऊपर से देखने मे यह स्पष्ट दिखाई नही देता था । स्वराज पार्टी या परिवर्तनवादी आपस मे भी एकमत नही थे, उनके विरुद्ध मध्यप्रान्त तथा महाराष्ट्र मे झडा गाडा गया । सन् १६२६ कौंसिल के कार्य के लिए अधिक शुभ वर्ष नही था । स्वराजी सदस्य कौंसिल प्रवेश द्वारा स्वराज्य प्राप्ति के कार्य म सफलता प्राप्त होने न देख, इस साधन मे थकावट का अनुभव करने लगे ।

'वास्तव म १६२५ क अन्त म ही प्रतियोग सहयोग की आवाज निश्चयात्मक रूप मे सुनाई देने लगी थी ।

अन्त मे कौंसिल भवन म बजट की चर्चा के समय पडित मोतीलाल नेहरू और उनके सहयोगियों द्वारा वाक आउट हुआ ।

कांग्रेस ने १६२६ ई० मे अपनी सम्पूर्ण शक्ति कौंसिल के मोर्चे पर लगा दी थी । इस प्रकार अ ग्रेज सरकार से असहयोग सहयोग में परिणत हो गया था । विदेशी सरकार ने इसका लाभ 'फूट डालो' की नीति द्वारा उठाया । उन्होंने साम्प्रदायिक वैषम्य की बढती हुई अग्नि में घृताहुति दी, जिसका परिणाम था हिन्दू मुस्लिम दगो का भीषण रूप । स्वामी श्रद्धानन्द की बलि लेकर भी यह अग्नि शान्त नही हुई ।

सन् १६२५-२७ के बीच स्वराजियों की भडगा नीति भी असफल होती दिखाई दी । अब उनमें दृढ़ता, एकता और तीव्रता की कमी हो गई थी । सन् १६२६ मे प० मोतीलाल नेहरू ने साबरमती में स्वराजियों की सभा बुलाई जिसमें लाला लाजपत-राय, केलकर, जयकर डा० मु ज श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा महात्मा गाधी

१—पट्टाभि सीता रम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ० २३६

२—वही : पृ० २४०

भी उपस्थित थे । इसमे कुछ विशेष प्रस्ताव रखे गये ।[1] काग्रेस कमेटी ने भी ये प्रस्ताव स्वीकृत कर लिए । इन प्रस्तावो से स्वराज पार्टी मे एकता नही रही । गाधीजी के अनुयायी इस समय अखिल भारतीय चर्खा सघ बनाने मे व्यस्त थे । श्री मदनमोहन मालवीय तथा उनके सहयोगी हिन्दू जाति की आकाक्षा से प्रेरित होकर हिन्दू महासभा का सगठन कर रह थे । जिन्ना तथा अन्य कट्टर मुस्लिम नेता मुस्लिम लीग या मुस्लिम कान्फ्रेंस बनाकर मुसलमानो के विशेष अधिकारो के सरक्षण मे व्यस्त होकर साम्प्रदायिकता की अग्नि धधका रहे थे । स्वराज पार्टी का राष्ट्रवाद गाधीजी के राष्ट्रवाद से भिन्न न था । केवल राजनीतिक क्षेत्र मे स्वराज्यवादी कौंसिल प्रवेश द्वारा राष्ट्र हित विरोधी कानूनो का प्रतिकार करना चाहते थे और तत्कालीन सविधान को नष्ट करना चाहते थे । इनका साधन गाधीजी से कुछ भिन्न था । रचनात्मक कार्यक्रम और सत्य तथा अहिंसा का साधन भी मान्य था । वस्तुत ये काग्रेस से भिन्न न थे ।

हिन्दू महासभा का राष्ट्रीय सिद्धान्त

गाधीजी के असहयोग आन्दोलन की असफलता ने धार्मिक विद्वेष तथा जातीयता की भावना को अधिक उत्तेजित किया । विदेशी सरकार की विभाजक नीति ने हिन्दू और मुसलमानो की साम्प्रदायिक भावना को अभिवृद्ध किया । लार्ड कर्जन तथा लार्ड मिंटो की 'फूट डालो' नीति के परिणाम स्वरूप 'मुस्लिम लीग' की स्थापना हो चुकी थी । हिन्दू राष्ट्रीय नेताओ—लाला लाजपतराय, मदनमोहन मालवीय ने उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप और साम्प्रदायिक दगो से प्रभावित होकर हिन्दू धर्म, जाति एव समाज के पुनस्सगठन की ओर विशेष ध्यान दिया । हिन्दू जाति की कल्याण-कामना से अभिप्रेरित होकर, उन्होंने ऐसी सस्था के निर्माण की आवश्यकता का अनुभव किया, जिसके द्वारा हिन्दू धर्म तथा जाति को सरक्षता प्राप्त हो । अत सन् १९२५ मे इनके उद्योग से कलकत्ते मे हिन्दू महासभा की स्थापना की गई । लाला लाजपत राय ने हिन्दू जाति से यह आवेदन किया था कि वे सुसगठित होकर ऐसी सस्थाओ की स्थापना करें जो हिन्दू-समाज सेवा, हिन्दू नारी के उद्धार का कार्य सफलतापूर्वक कर सकें । इसके अतिरिक्त इन्होंने विधर्मियो द्वारा बलात हिन्दुओ को विधर्मी बनाने का भी तीव्र विरोध किया था ।[2]

१—(1) 'That the Ministers should be made fully responsible to the Legislative, free from all control of control

(2) *'That an adequate proportion of the revenue be allotted for the development of nation building departments*

(3) 'That Ministers be given full control of the services in transferred Department
Dr. V P.S Raghuvanshi—Indian Nationalist Movement and Thought—P 189

२. Dr Raghuvanshi—Indian Notionalist Movement and Thought P. 171.

हिन्दू महासभा की राष्ट्रीय भावना केवल हिन्दू-धर्म, हिन्दू समाज तथा हिन्दी भाषा की उन्नति तक सीमित थी। धार्मिकता के रंग मे राष्ट्रीय एकता का विचार धूमिल पड गया था। राष्ट्रवाद का उदात्त, सर्वांगीण, विकसित रूप नहीं मिलता। इनकी राष्ट्रीय भावना, संकुचित, संकीर्ण एव एकांगी थी। राष्ट्रीयता मे अन्य पक्षो के सम्बन्ध मे ये गांधीजी के साथ थे।

मुस्लिम लीग

हिन्दू समाज की अपेक्षा मुस्लिम समाज मे राष्ट्रीयता की लहर बहुत बाद मे पहुंची थी।[१] कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् देश के राष्ट्रीय जागृति के चिह्न आने लगे थे लेकिन इस मनोवांछित वातावरण में भी सर सैयद अहमद ने भारतीय मुसलमानो को कांग्रेस से पृथक् रखने का प्रयत्न किया, यद्यपि इसमे उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली।[२] उनके जीवन काल मे ही कुछ प्रगतिशील, विवेकवान् एव राष्ट्रीय प्रवृत्ति के मुसलमान नेतागण राष्ट्रवादी बन गये थे, लेकिन शीघ्र ही कालान्तर मे लार्ड कर्जन की हिन्दू मुस्लिम विभेदक नीति ने क्रियान्वित होकर मुसलमानो को साम्प्रदायिक आधार पर संगठित होने के लिए प्रेरित किया। मुस्लिम लीग की स्थापना द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ। प्रथम महायुद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन (१६२०-२२) के समय कांग्रेस के साथ खिलाफत सभा के अनुयायियो को एक कर दिया था, लेकिन यह आदर्श परिस्थिति अधिक काल तक न रह सकी। आन्दोलन शिथिल होते ही साम्प्रदायिकता के आधार पर चुनावो ने दोनो को ऐसा विरोधी बना दिया कि उसका अन्तिम परिणाम देश के दो टुकडो के रूप में आया। गांधीजी ने दोनो को मिलाने का उद्योग किया किन्तु असफल रहे।

मुस्लिम लीग को सच्चे अर्थो मे राष्ट्रीय संस्था कहना असगत होगा। इसमे अल्पसंख्यक मुसलमान जाति एव धर्म के संरक्षण का भाव ही प्रमुख था। यह साम्प्रदायिक संस्था थी। राष्ट्रीय हित की अपेक्षा जाति तथा धर्मगत वैषम्य को इससे बढावा मिला। हिन्दी साहित्य मे इसका विशेष सम्बन्ध नहीं है। हिन्दी और उर्दू, साम्प्रदायिकता के आधार पर पृथक्-पृथक् हिन्दुओ और मुसलमानो की भाषाएं हो गई थी।[३] अत इसका विस्तृत विवेचन अपेक्षणीय नहीं है।

समाजवाद और उसकी राष्ट्रीय विचारधारा

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् श्रमिक वर्ग ने स्वतन्त्र रूप से, एक आदर्श को लेकर संगठित होना आरम्भ कर दिया था। '१९१८ से १९२१' ई० की कई स्ट्राइकें

१—शान्तिप्रसाद वर्मा हमारी राजनैतिक समस्यायें पृ० २६
२—शान्तिप्रसाद वर्मा हमारी राजनैतिक समस्यायें पृ० २७
३—शान्तिप्रसाद वर्मा हमारी राजनैतिक समस्यायें पृ० २४७

उसी का परिणाम थी, जिनसे असहयोग आन्दोलन को भी बल मिला।[1] १९२४ ई० मे बम्बई से 'सोशलिस्ट' पत्रिका निकलने लगी थी। १९२४ ई० मे पुन अखिल भारतीय स्ट्राइक हुई, जिससे राष्ट्रवाद को नवीन गति मिली।[2] भारतीय श्रमिक आन्दोलन से समाजवादी विचारधारा का विशेष रूप से पोषण हुआ। १९२९ मे कृषक एव श्रमिक सम्मेलनो से समाजवाद के सिद्धान्तो पर बल दिया गया। मेरठ-षड्यन्त्र केस मे श्रमिक वर्ग के नेताओं को दड दिया गया था। इससे अप्रत्यक्ष रूप मे समाजवादी एव साम्यवादी विचारधारा का प्रचार हुआ था। यद्यपि मेरठ केस के उपरान्त समाजवादी दल को अवैध घोषित कर दिया गया था, लेकिन मार्क्सवादी विचारधारा साम्यवाद और समाजवाद को रोका न जा सका था। १९३३ ई० मे १४६ स्ट्राइकें हुई थी। १९३४ म वामपक्षी राष्ट्रवादी युवक दल ने काग्रेस के अन्तर्गत मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर काग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की। इसकी सदस्यता के लिए कांग्रेस का सदस्य होना आवश्यक था।[3] अत राष्ट्रवाद मे समाजवाद के प्रगतिशील तत्वो का आरोपण हुआ।

भारत मे श्रमिक आन्दोलन, साम्यवादी एव समाजवादी विचारधारा के आगमन का प्रमुख कारण था पूजीवादी व्यवस्था मे श्रमिकों की दयनीय, अभावग्रस्त, नारकीय स्थिति। समाजवाद मे श्रमिक एव कृषक वर्ग की स्थिति के सुधार की आशा थी।

समाजवाद के विषय मे डा० भारतन् कुमारप्पा ने लिखा है, 'खेतों और उत्पादन के साधनो पर समाज का अधिकार हो और उत्पादन से जो कुछ प्राप्त हो उसे समाज के विभिन्न अगो म कम बेश बराबर बाँट दिया जाय। इस उपाय से आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारो का पूरा लाभ समाज को प्राप्त होगा और अरक्षित असमान विभाजन, गरीबी, बेकारी, वर्गद्वेष आदि बुराइयो से समाज की रक्षा होगी। उत्पादन व्यक्तिगत लाभ के लिए न होकर समाज के कल्याण के लिये होगा। प्रतिस्पर्द्धा के कारण जो बरबादी उत्पादन की होती है वह रुक जायेगी। मजदूरी का दुरुपयोग नही होगा और कमजोर राष्ट्र पर बलवान राष्ट्र की गृद्ध दृष्टि नहीं पडेगी। युद्ध के लिये प्रेरणा का अन्त हो जायगा। पूँजीवादी व्यवस्था मे लाभ के लिये पागल समाज के हृदय से मानवीय विचारो का जो सर्वथा लोप हो गया था, उसका पुन उदय होगा और आर्थिक व्यवस्था का एकमात्र उद्देश्य आवश्यकता के अनुसार उत्पादन रह जायगा। सघर्ष, कलह और मारपीट का स्थान सहयोग, सद्भाव और शान्ति ग्रहण करेंगे और परस्पर मेल के भाव का उदय होगा। समाजवाद का यही

1. Palme Dutt—India Today—P. 357.
2. 'B ... ed fifty seven affiliated
u. ... 150, 155,'
P
3. P

आधार-स्तम्भ है। अर्थात उत्पादन और विभाजन का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ न होकर समुदाय का लाभ होगा। इसलिए इस व्यवस्था का नाम समाजवाद है जो पूंजीवाद अथवा व्यक्तिवाद का विरोधी है।[१] मानव जगत को मनुष्य समाज बनाना, उत्पीडन और शोषण के स्थान पर ममता और शान्ति की स्थापना कर वर्गभेद मिटाना इसका लक्ष्य है। अत समाजवाद का जीवन-दर्शन भौतिकवादी है। मार्क्स एंगिल्स तथा उनके शिष्यों ने समाजवाद के विषय में बहुत कुछ लिखा है। डा० सम्पूर्णानन्द (जिनका १९३५ में कांग्रेस संगठन के अन्तर्गत समाजवादी दल की स्थापना में प्रमुख स्थान था) ने अपनी पुस्तक 'समाजवाद' में मार्क्स सम्मत वैज्ञानिक समाजवाद के विषय में लिखा है— वह मनुष्य समाज की हजारों खराबियों को देखता है, पर इनमें से एक के पीछे नहीं दौडता क्योंकि वह समझता है कि इनमें से अधिकांश गौण और उपलक्षण मात्र हैं। वह मूल रोग को पकडने का प्रयत्न करता है कि समुदाय के भीतर वह कौन सी शक्तियाँ हैं जो स्वत इस रोग के उच्छेद का प्रयत्न कर रही हैं।'[२] 'समाजवाद न्याय और मनुष्यता के नाते पीडितों की अवस्था में सुधार नहीं करना चाहता। वह धनिकों और अधिकार वालों से दया की भिक्षा नहीं माँगता और न उनके हृदयों के परिवर्तन की चेष्टा करता है। वह संसार के लिये क्या उचित और न्याय है इसका आदर्श बनाने भी नहीं बैठता और न किसी को अपना लक्ष्य मानता है। उसकी परिपाटी वही है जो कुशल वैद्य की होती है। वैद्य रोगी की परीक्षा करते समय अपने मस्तिष्क के किसी सिद्धान्त से काम नहीं लेता, वह देखता है कि रोगी का शरीर क्या बतलाता है।'

वस्तुत समाजवाद एक विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति की अपेक्षा समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को महत्व दिया जाता है। राष्ट्रवाद सम्पूर्ण राष्ट्र की एकता, गौरव और स्वतन्त्रता का विचार है। निःसन्देह दोनों व्यक्तिवाद के विरोधी हैं। समाजवाद राष्ट्रवाद का एक पोषक तत्व बन सकता है। राष्ट्रवाद की भावना की पुष्टि में भी इससे सहायता मिल सकती है। इसका कारण यह है कि समाजवाद में राष्ट्र का अधिक से अधिक हित अन्तर्हित है। इसे राष्ट्रवाद का कल्याणकारी उपाय भी कह सकते हैं।

गाँधीजी के राष्ट्रवाद का मूल दर्शन आध्यात्मिक है जिसमें उचित अनुचित और न्याय अन्याय का पूरा ध्यान रखा गया था। इसकी अपेक्षा समाजवाद का मूलाधार भौतिकतावादी है, वह पीडित वर्ग की दशा सुधारने के लिए कोई भी साधन अपनाने में हिचकता नहीं है। समाजवाद गाँधीजी की राष्ट्रीय विचारधारा से बहुत भिन्न है।

१—डा० भारतन् कुमारप्पा पूंजीवाद-समाजवाद ग्रामोद्योग पृ० ६४

२—डा० सम्पूर्णानन्द समाजवाद पृ० ८८

निष्कर्ष

भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के इतिहास पर दृष्टि डालने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय चेतना उच्च वर्ग से प्रारम्भ होकर निम्न वर्ग तक फैल गई थी तथा सम्पूर्ण भारत उसमे समाहित हो गया था। राष्ट्रवाद के प्रमुख तत्व भौगोलिक एकता, इतिहास, सभ्यता संस्कृति की एकता, वर्तमान दुर्दशा पर क्षोभ, उसके निराकरण के प्रयत्न, तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्य की एकता आदि थे। हस कोन्ह ने राष्ट्रवाद की उत्पत्ति मस्तिष्क की एक विशेष दशा मानी है। निःसन्देह गांधीजी तथा अन्य राष्ट्रीय शक्तियो से सम्पूर्ण भारतवासियो को एक विशेष मन-स्थिति मे पहुचा दिया था जिसमे स्वतन्त्रता के लिए उत्साह था और भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान तथा राजनीतिक क्रांति के लिए आह्वान था। वर्न के मत मे राष्ट्रीयता के लिए रक्त की एकता से अधिक महत्वपूर्ण तत्व ध्येय की एकता और ऐतिहासिक समानता है। भारत जैसे विशाल देश मे अनेक जातियो तथा धर्मों का सम्मिलन हुआ है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध आदि विभिन्न धर्मावलम्बी जातियाँ बसी हुई हैं किन्तु इनकी राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद के संबंध मे किसी प्रकार का विवाद नहीं उठ सकता, क्योंकि इस सबमे ध्येय की एकता थी, एक देशवासी होने के कारण इतिहास मे समानता थी। भारतीय राष्ट्रवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसका अन्तर्राष्ट्रीयतावाद से विरोध नही था। वह मानवतावाद के महान आदर्श पर आधारित था। अन्य राष्ट्रों के प्रति उसमे उपेक्षा की भावना नही थी। अतः राष्ट्रवाद की सभी मान्य परिभाषाओ की कसौटी पर कस कर भारतीय राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद खरा उतरता है। पराधीनता के अभिशाप से त्रस्त भारतीय जनता ने सामूहिक रूप मे अभ्युदय के लिए उद्योग किया था। राष्ट्रवाद के अवरोधक तत्वो की ओर से राष्ट्रीय चेतना पूर्णतया सजग थी। इस युग मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए दो भिन्न साधनो का प्रयोग किया गया—(१) अहिंसात्मक—जिसका नेतृत्व गांधीजी ने किया। (२) हिंसात्मक—इसके दल सम्पूर्ण भारत मे फैले थे। अहिंसात्मक साधन प्रमुख साधन था, जिसमे भारत की सामान्य जनता का विश्वास था। इस प्रकार राष्ट्रवाद के प्रमुख अंग निम्नलिखित थे—

१ अतीत गौरव गान—

(क) आध्यात्मिक उत्कर्ष (ख) नैतिक उत्कर्ष (ग) भौतिक उत्कर्ष

इसके चित्रण द्वारा जन-जीवन मे आत्म-गौरव, वीरता तथा उत्साह की भावना भरी गई। देशवासियो को अपने इतिहास का सच्चा परिचय दिया गया, जिससे वे अपनी अति प्राचीन ऐतिहासिक परम्परा को सुरक्षित रख सकें।

२—अतीत गौरव तथा वर्तमान अवस्था की तुलना—इसके द्वारा वर्तमान के प्रति असन्तोष, क्षोभ, ग्लानि, घृणा की भावना को तीव्र किया गया, जिससे राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-युद्ध को बल मिला।

३—**राष्ट्रवाद का रागात्मक पक्ष**—देशभक्ति अर्थात् देश के प्रति अनन्य अनुराग, मातृभूमि का स्तवन, देश की भौगोलिक एकता की पुष्टि।

४—**राष्ट्रवाद का अभावात्मक पक्ष**—देशवासियो का ध्यान राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष, जैसे – राजनीतिक अन्याय एव अत्याचार, सामाजिक कुरीतिया, आर्थिक दुर्दशा, सास्कृतिक हीनता आदि की ओर आकृष्ट किया गया, जिससे वे राष्ट्रीयता मे अवरोधक तत्वो के घातक परिणामो का ज्ञान प्राप्त कर उनके निराकरण का प्रयत्न करे।

५—**राष्ट्रवाद का भावात्मक पक्ष**—राष्ट्रीयता-उद्बोधक विविध साधनो का उपयोग किया गया, जिससे भारतीय जीवन मे राष्ट्रवाद के पूर्ण विकास म सहायता मिली। प्रमुख साधन गाधीजी की सत्य अहिंसा नीति थी, जिसके फलस्वरूप सत्याग्रह आन्दोलन हुए और रचनात्मक कार्यक्रम को क्रियान्वित किया गया। काग्रेस के अन्तर्गत स्वराज पार्टी ने कौसिल प्रवेश द्वारा साम्राज्यवाद के गढ को जीतने का प्रयास किया। हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग साम्प्रदायिकता से पूर्ण एकागी साधन थे। इनका राष्ट्रवाद पूर्ण नही था क्योकि उसम राष्ट्र की अपेक्षा जाति एव धर्म हित का लक्ष्य प्रमुख था। क्रान्तिकारी अथवा आतकवादियो को हिंसात्मक साधन इष्ट था। वैसे सभी दलो का समान रूप से एक ही लक्ष्य था 'स्वराज्य'।

६—**यह राष्ट्रवाद अतीत और वतमान पर ही आधारित नही था**, इसने भविष्य के भी सुन्दर स्वप्न देखे थे। गाधीजी ने स्वराज्य के पश्चात् 'रामराज्य' के स्वप्न को सत्य करने की आकाक्षा की थी।

राष्ट्रवाद के इन तत्वो को दृष्टि मे रखकर हिन्दी साहित्य मे उनकी अभिव्यक्ति का अध्ययन एव विश्लेषण किया गया है।

—०—

· ५

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति
(१६२०—१६३७ ई०)

भारत मे राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक काल से ही दो प्रकार की विचार-धारायें कार्य करती दृष्टिगत होती हैं। प्रथम दल के समर्थक पश्चिमी सास्कृतिक मूल्यो और आदर्शों को राष्ट्रीय उत्थान के लिए आवश्यक मानते थे किन्तु इनकी सख्या अति अल्प थी। और दूसरे दल की दृष्टि भारत की प्राचीन सस्कृति, सभ्यता दर्शन, साहित्य की ओर थी। पहला वर्ग अ ग्रेजी शक्ति मे विश्वास रखता था और अ ग्रेजी राज्य को उन्नति का सुअवर मानता था, लेकिन दूसरे वर्ग ने भारत की शक्ति मे विश्वास रख कर देश को अपने बल पर स्वतन्त्रता सग्राम के लिए अभिप्रेरित किया था। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है। इस द्वितीय वर्ग के राष्ट्रवादियो की विचारधारा पर आर्य समाज, रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द के विचारो का प्रभाव पडा था। इन्होने भारत की अति प्राचीन सभ्यता, सस्कृति, नैतिक आदर्शों के द्योतक धर्मग्रन्थो, साहित्य एव ऐतिहासिक खोजो द्वारा उपलब्ध जीवन-दर्शन का आधार ग्रहण किया और उसे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रमुख प्रेरक तत्व बना दिया। इस वर्ग के राष्ट्रीय नेताओं, लोकमान्य तिलक आदि ने, केवल विचार स्वातन्त्र्य के लिए स्वायत्त शासन की आकाक्षा नही की थी प्रत्युत भारतीय सास्कृतिक जीवन-दर्शन का स्वाभाविक विकास उनका लक्ष्य था।[1]

---

1 'Freedom is made beneficial and lawful because the individual can order his life by his Swadharma Thus it is that the classcial ideal was not lawless freedom but rather lawful freedom–selfrule, 'Swaraj' Lawfull freedom, 'Swaraj', meant living in accordance with Swadharma

Theodore L Shay The Legacy of the Lokamanya : The Political Philosophy of Bal Gangadhar Tilak—P 10

गाधी जी ने इसी भारतीय जीवन-दर्शन तथा अध्यात्मिकता को राष्ट्रीय आन्दोलन का सम्बल बनाकर जन आन्दोलन का रूप दिया था। इसका कारण यह था कि मनुष्य की सहज प्रवृत्ति सामाजिक होने के साथ ही अध्यात्मिक भी है। सोद्देश्य जीवन-यापन के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य का आचरण धर्मानुकूल हो। स्वतन्त्रता को नियमित तथा न्यायपूर्ण बनाने के लिए धर्म की आवश्यकता होती है। इसी कारण गाधीजी ने युग-युग से चले आ रहे भारतीय सास्कृतिक जीवन-दर्शन के प्रमुख तत्व सत्य और अहिंसा को देश के लिए हितकारी माना था। श्री राधाकृष्णन् ने लिखा है—'गाधी जी ने हमे सभ्यता के इतिहास मे एक नवीन मार्ग का प्रदर्शन कराया है, जो हमारे देश की गौरवमयी सास्कृतिक परम्पराओ के अनुकूल है। हमारे आधुनिक युग को यदि बर्बरता से मुक्त होना है तो उसे अहिंसा के मार्ग का आश्रय लेना होगा।'[३] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उस युग के प्राय सभी राष्ट्रवादियो का भारत की प्राचीन सस्कृति, सभ्यता, धर्म, दर्शन इतिहास मे विश्वास था। वे उन्हें पुनरुज्जीवित कर, आधुनिक युग के प्रकाश म, कुछ परिवर्तन तथा परिशोधन के साथ स्थापित करना चाहते थे।

आधुनिक हिन्दी साहित्य ने स्वतन्त्रता-सग्राम और राष्ट्रीय विचारधारा को अपना पूर्ण सहयोग दिया है। सरस्वती के वरदान से हमारी राष्ट्रीय भावना की गति मे तीव्रता आई है। अतीत-गौरव राष्ट्रवाद का प्रमुख प्रेरक तत्व है। अत सर्व-प्रथम हिन्दी साहित्य म राष्ट्रवाद के इस अंग का विवेचन द्रष्टव्य है।

अतीत-गौरव-गान

भारत का स्वर्णिम अतीत, अथवा अध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक उत्कर्ष का इतिहास देशवासियो म राष्ट्रीय चेतना तथा स्वाभिमान का स्रोत रहा है। गाधीजी तथा सभी राष्ट्रीय दलो का, भारत के प्राचीन गौरव के प्रतिपादन मे विश्वास था। अत अपने युग की राष्ट्रीय विचारधारा के अनुकूल हिन्दी साहित्यकारो ने अपनी लेखन शक्ति द्वारा भारत के विगत गौरव, अध्यात्मिक और दर्शन, नैतिक आदर्शो, शारीरिक बल तथा भौतिक ऐश्वर्य का चित्रण ऐतिहासिक अनुसधान तथा प्रामाणिक धर्मग्रन्थो के आधार पर किया है। धर्मग्रन्थो से उन विषयो को चुना, जो कि सम्पूर्ण राष्ट्र के एकीकरण के मुख्य तन्तु हैं। इतिहास के उस चेतन-स्वरूप को अपनाया, जो पुन राष्ट्र की रग-रग मे नवीन जीवन का सचार करने वाला था। प्राचीन उन्नति के दर्पण मे, वर्तमान अवनति का प्रतिबिम्ब अवलोक कर भविष्य के लिए प्रोत्साहन प्राप्त हो सके ऐसी अनेक रचनाए साहित्य-भडार मे भरी पडी हैं। जैसा कि भूमिका खड मे स्पष्ट किया जा चुका है। श्री मैथिलीशरण गुप्त न सर्वप्रथम इस प्रकार की पुस्तक

३—प्रो० इन्द्र, गाधी गीता अथवा अहिंसा योग पृ० ३

'भारत-भारती' (१९१२ ई) लिखी थी।[1] इसके पश्चात् अतीत-स्तवन की परम्परा सी चल पडी। काव्य, नाटक, उपन्यास और कहानी मे, अनेक रूपो तथा शैलियो मे, अतीत की गौरव गाथा का वर्णन मिलता है।

भारत का अतीत आध्यात्मिक, नैतिक भौतिक सभी दृष्टियो मे उज्ज्वल रहा है। सर्वप्रथम हिन्दी कविता, नाटक और कथा साहित्य मे अतीत गौरव के इन पक्षो की अभिव्यक्ति का स्वरूप-विश्लेषण किया गया है।

काव्य मे अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष

भारत धर्म-प्रधान देश है, जिसकी रग-रग मे उसका अध्यात्म तथा दर्शन व्याप्त है। भारतीय जीवन-दर्शन भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को अधिक महत्व देता है। धर्म अर्थ, काम, मोक्ष भारतीय जीवन के चार पुरुषार्थ हैं, लेकिन अर्थ तथा काम को धर्म द्वारा नियंत्रित किया गया है और मोक्ष अन्तिम लक्ष्य है। अन्य शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि भौतिक पदार्थों तथा सुखो को नियमित रखने के लिए धर्म का मेरुदड आवश्यक माना गया है। सत्य-धर्म के पालन से सच्ची स्वतन्त्रता अथवा मुक्ति प्राप्त हो सकती है। गाधी जी ने अपने राष्ट्रवाद को भारत की चिर-पुरातन आध्यात्मिक एव दार्शनिक विचारधारा पर आश्रित किया था। जैसा कि गाधी जी की राष्ट्रीय-विचारधारा के प्रकरण मे स्पष्ट किया जा चुका है वेद-ग्रन्थ तथा भारत की अति पुरातन धर्म-व्यवस्था मे उनका पूर्ण विश्वास और श्रद्धा थी। उदारवादी नेताओ की भी इसमें विशेष आस्था थी और आतकवादी अथवा क्रान्तिकारी तो गीता के अध्यात्म एव दर्शन मे विश्वास रखते ही थे। अत हिन्दी-साहित्यकारो की भी दृष्टि ऋषियो, मुनियो द्वारा प्रसारित धर्म तथा दर्शन के उत्कृष्ट सिद्धान्तो की ओर गई, जिसकी साहित्य मे सुन्दर ढग से अभिव्यजना की गई है।

सन् १९१२ मे रचित 'भारत भारती' मे मैथिलीशरण गुप्त ने यह स्पष्ट शब्दो मे कह दिया था कि विश्व को आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करने वाला प्रथम देश भारत ही है। अपनी उसी मान्यता की पुनरुक्ति उन्होने १९२० ई० के बाद भी की है। उनके अनुसार निःसन्देह हमारे पूर्वज अन्तर्जगत के सभी रहस्यो से परिचित थे। 'हिन्दू' मे गुप्तजी ने लिखा है —

करके जगती का आह्वान
गाया अनुपम वैदिक गान

१—*बड़े खेद की बात है कि हम लोगों के लिए हिन्दी मे अभी तक इस ढग की* कोई कविता-पुस्तक नहीं लिखी गई जिसमे हमारी प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का वर्णन भी हो और भविष्यत् के लिए प्रोत्साहन भी।
मैथिलीशरण गुप्त : प्रस्तावना : भारत-भारती

2 Theodore L Shay : The Legacy of Lokmanya—P. 11.

देकर सबको प्रथम प्रकाश
किया सभ्यता का सुविकास ।[1]

यूरोप जिसका भविष्य अति उज्ज्वल है, वह तो भारत के शिष्यों का शिष्य है। आर्यों की धूम समस्त भूमण्डल में फैली थी। तिब्बत, स्याम, चीन, जापान, लंका, ब्रह्मद्वीप, ईरान, काबुल, रूस, रोम, यूनान सभी जगह आर्यों की आन थी।[2] आज का शक्तिशाली देश अमरीका हर्षपूर्वक सीता रामोत्सव मनाता था।[3]

अतीत काल में भारत की आध्यात्मिक उन्नति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुकी थी, इसी कारण हमारे पूर्वज सरलता से जगत् जाल तोड़ दिया करते थे।[4] आज भी आध्यात्मिक उत्कर्ष के प्रतीक वेद ग्रन्थ न केवल भारतीय जीवन को, वरन् सम्पूर्ण विश्व को स्वधर्म की शिक्षा देकर आध्यात्मिक शक्ति से अनुप्राणित करते हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने वेदों की धार्मिक सहिष्णुता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा है कि अन्य सभी धर्म वैदिक विचारधारा से प्रभावित हैं।[5] 'हरिऔध' के सदृश पं० रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि राष्ट्रीय कवियों को वेदों की महानता पर पूर्ण विश्वास था। पंडित रामचरित उपाध्याय ने लिखा है —

ब्रह्म विनिर्मित वेद मुखों से मिलता है उपदेश तुझे,
इसलिए तू ज्ञान गेह है किन्ता कैसी देश तुझे ?[6]

ठाकुर गोपालशरण सिंह ने भी भारत की भूतकालीन आध्यात्मिक उच्चता का वर्णन करते हुए कहा है —

जिसने जग को था मुक्ति-मार्ग दिखलाया,
जिसने उसको था कर्मयोग सिखलाया,
था जिसका दिव्यालोक लोक में छाया,
जिसका गुण सबने मुक्त कंठ से गाया,
था जिसका सारा विश्व सदैव पुजारी,
वह भारत भूमि है यही, हमारी प्यारी।[7]

धर्म ग्रन्थों के साथ आध्यात्मिक महापुरुष, ऋषि मुनियों के जीवनचरित्र भी अनुकरणीय हैं, जिन्होंने भारत भूमि पर जन्म ग्रहण कर इसका मान बढ़ाया है। इस

१—मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ३३
२—वही, पृ० ४१
३—वही, पृ० ३२
४—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' चुभते चौपदे पृ० २१
५—वही, पृ० १६
६—पं० रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती पृ० ४ प्रथम संस्करण, राष्ट्रीय शिक्षा ग्रन्थमाला, ग्रन्थ २
७—ठाकुर गोपालशरणसिंह सचिता पृ० ६३

काल के कवियों की दृष्टि भी गौतम, कणाद, पतजलि, व्यास आदि ऋषियों, राम, कृष्ण जैसे दिव्य पात्रों तथा महापुरुषों के चरित्र की आध्यात्मिक विशेषताओं पर भी गई। रामनरेश त्रिपाठी ने भारत देश के अतीत गौरव का वर्णन करते हुए लिखा है कि यही वह देश है जिसने सबसे पहले सभ्य होकर विश्व को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया और यही अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी गौतम, पतजलि हुए हैं।[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'खडहर के प्रति' कविता में देशवासियों को विस्मृति की निद्रा से जगाने के लिए जैमिनी, पतजलि, व्यास आदि ऋषि मुनियों का स्मरण किया है —

> भारत भारत ! जनक हूँ मैं
> जैमिनी पतजलि-व्यास ऋषियों का,
> मेरी ही गोद पर, शैशव विनोद कर—
> तेरा है बढाया मान
> राम कृष्ण भीमार्जुन भीष्म नरदेवों ने।
> तुमने मुख फेर लिया,
> सुख की तृष्णा से अपनाया है गरल,
> हो बसे नव छाया मे
> नव स्वप्न से जगे
> भूले वह मुक्त प्रान साम गान, सुधा-पान
> तव चरणों में प्रणाम।[2]

पण्डित रामचरित उपाध्याय ने 'रामचरितचिन्तामणि' महाकाव्य की रचना कर राम के दिव्य चरित्र की कथा कही थी। इसमें राम के चरित्र की वे विशेषताएँ नही उभर सकी हैं, जिनसे राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण हो सकता। फिर भी इस पुस्तक द्वारा अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष के चित्रण मे कुछ योग तो मिला ही है।

'द्वापर' में मैथिलीशरण गुप्त ने कृष्ण बलराम आदि के दिव्य चरित्रों का आलेखन किया है। 'साकेत' महाकाव्य मे राम लक्ष्मण आदि का आध्यात्मिक चरित्र सम्मुख आता है। गुप्त जी ने राम के चरित्र को देवत्व की अपेक्षा आदर्श मानव के रूप मे चित्रित किया है किंतु उनकी आध्यात्मिक श्रेष्ठता अक्षुण्णता का सकेत करते हुए कह दिया है कि राज्याभिषेक के समारोह की तैयारी के बीच राम के हृदय मे सघर्ष चल रहा था। वह अपार अधिकार उन्हें भार-सा दिखाई दे रहा था।[3]

१—रामनरेश त्रिपाठी मानसी पृ० ३८ दूसरा परिवर्द्धित सस्करण अक्तूबर, १९३४

२—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' अनामिका : पृ० ३०

३—मैथिलीशरण गुप्त साकेत : पृ० ५६ : सवत् २०१२, साहित्य प्रेस, चिरगांव, झाँसी

सत्य धर्म पालन के लिए राजा दशरथ प्राण-सम प्रिय पुत्र राम को वनवास का दण्ड देते हैं।[1] भारतीय इतिहास के मध्यकाल में तुलसीदास ने आध्यात्मिकता की पुण्यधारा प्रवाहित की थी। अतः उनके वन्दनीय चरित्र को लेकर सियारामशरण गुप्त ने 'तुलसीदास' कविता लिखी थी —

अन्तर्बाह्य प्रकाशक तुमने दिव्य-दीप दिखलाया,
तुमने हमें मुक्त होने का, राम मन्त्र सिखलाया ।।[2]

इसी प्रकार सन् १९३७ में राम की कथा लेकर रामनाथ ज्योतिषी ने 'रामचन्द्रोदय' नामक प्रबन्ध-काव्य लिखा था।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने सन् १९३७ के लगभग 'तुलसीदास'[3] नामक पद्य-प्रबन्ध में तुलसी की जीवन-गाथा को नवीन सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की दृष्टि से लिखा था।[4] अनूप शर्मा ने सन् १९३७ में 'सिद्धार्थ' नामक महाकाव्य में गौतम बुद्ध के आध्यात्मिक चरित्र पर प्रकाश डाला था।

उदयशंकर भट्ट द्वारा रचित 'तक्षशिला' में भारत के विगत अशोककालीन इतिहास के प्रतिपादन में अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कृष्टता का भी वर्णन मिलता है —

अधर सुधारस भासित मुखछवि, ऋषि जन जिस पल करते गान
वैदिक गीतों का अतीत में, जहां सभ्यता का उत्थान ।।[5]

ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् रचे गये थे और सत्याग्रह तथा सत्य ज्ञान की शुद्ध नीतिमय मूर्तियां हुई थीं।[6] भट्टजी ने इतिहास द्वारा भारत की गत आध्यात्मिक श्रेष्ठता की पुष्टि की है।

भारत का अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष ज्ञान-कर्म-भक्ति समन्वित था। कृष्ण द्वारा प्रसारित गीता कर्मण्यता, प्रवृत्यात्मकता एवं मानव-हित का संदेश देती है। पंडित रामचरित उपाध्याय ने 'गीता' की आध्यात्मिक विचारधारा और जीवन-दर्शन का प्रकाशन 'मुक्ति-मन्दिर' नामक कथा-काव्य में किया है। महाभारत में कृष्ण ने अर्जुन को धर्म के सत्य स्वरूप से परिचित करा कर संघर्ष के लिये प्रेरित किया था। उसी कथा का आधार ग्रहण कर कवि ने इस पुस्तक में दासता से मुक्ति के लिए संघर्ष

१—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ० ६४

२—सियारामशरण गुप्त : दूर्वा दल पृ० ५० भाद्र पूर्णिमा १९८६, साहित्य सदन, चिरगांव (झांसी)

३—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तुलसीदास तृतीय संस्करण भारती भंडार

४—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : तुलसीदास पृ० ५१

५—उदयशंकर भट्ट तक्षशिला : पृ० ४ : द्वितीय संस्करण १९३५, इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद

६—वही, पृ० ९

को धर्म-सम्मत एव देशवासियो का स्वधर्म माना है।[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी राष्ट्रीय उत्थान के लिए गीता की कर्ममय आध्यात्मिकता का आश्रय लेते हुए कहा है —

क्या यह वही देश है—
भीमार्जुन आदि का कीर्ति-क्षेत्र,
चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य-दीप्त
उडतीहै आज भी जहां के वायुमण्डल मे
उज्ज्वल, अधीर और चिरनवीन ?
श्रीमुख से सुना था जहा भारत ने
गीता-गीत—सिंहनाद
मर्मवाणी जीवन-सग्राम की
सार्थक समन्वय ज्ञान-कर्म-भक्ति योग का ?[2]

मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' मे राम कथा के माध्यम से और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास मे कृष्ण-कथा के माध्यम से इसी क्रियाशील आध्यात्मिकता का उत्कृष्ट रूप मिलता है।

श्रीधर पाठक (जिनका रचना-काल भारतेन्दु-युग से छायावाद-युग के प्रारम्भिक वर्षों तक चलता रहा) ने भी मातृभूमि की वन्दना के साथ अतीतकालीन आध्यात्मिक गौरव की स्मृति मे अपना योग दिया था।[3] श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने 'विजया दशमी' कविता में धर्मभीरु, सात्विक तथा निश्छल राम की कथा लिखी है। 'विजया दशमी का महान् पर्व आज भी भारतवासियो को भारत के धार्मिक महा पुरुषो की विजय का रहस्य बताता है।

भारत के धर्म-ग्रन्थ तथा इतिहास इस बात की पुष्टि करते हैं कि देश के आध्यात्मिक गौरव की अभिवृद्धि मे नारियो ने भी पूर्ण सहयोग दिया था। सावित्री, सुकन्या, अशुमती जैसी सती एव सेवार्थ जीवन व्यतीत करने वाली देवियो मे पुरुषो के समान दिव्य-शक्ति थी। उन्होने पुरुषो के समान स्वधर्मों का पालन किया था। रामनरेश त्रिपाठी ने 'सीता'[5] काव्य मे सीता देवी के पातिव्रत-धर्म-सवेष्टित आध्यात्मिक चरित्र का दिव्य चित्रण किया है।' देवी पतिव्रता श्रीसीता जहा हुई थी'[6] वह देश आज भी सम्मान के योग्य है। 'पचवटी' खण्डकाव्य मे मैथिलीशरण गुप्त ने सीता के

१—प० रामचरित उपाध्याय : मुक्ति-मन्दिर . पृ० ६० : पहली बार, सन् १९३४
२—सर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' . जागो फिर एक बार (१९२१) : परिमल : पृ० १०
३—श्रीधर पाठक : भारत-गीत पृ० ९१
४—सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल : पृ० ९२ षष्ठ संस्करण
५—रामनरेश त्रिपाठी . मानसी . पृ० १२३
६— ,, : ,, : पृ० ३६

से पार उतरने के लिए विश्व का कोई भी देश भारत से आचार विचार, त्याग-भाव तथा शक्ति भावना की शिक्षा ले सकता है।[1] इस आध्यात्मिक श्रेष्ठता की प्राप्ति का प्रमुख कारण था पूर्वजो द्वारा कठिन ब्रह्मचर्याश्रम का पालन।[2] गाधी जी ने विशेष रूप मे राष्ट्रीय प्रगति के लिए ब्रह्मचर्य धर्म के पालन पर बल दिया था जैसा कि उनकी आध्यात्मिक विचारधारा के सम्बन्ध मे स्पष्ट किया जा चुका है। श्री मैथिलीशरण गुप्त की आध्यात्मिकता कर्मण्यता का सदेश देती है। उदाहरणार्थ —

गाव द्विजनेता वह गान –
जिससे हो जावे उत्थान,
गूँजे आत्म-तत्व की तान
सत्यालोक सुमार्ग दिखाव ॥[3]

वह पूर्णतया भारतीय सस्कृति के रग मे रँगी है। गीता द्वारा प्रचारित ज्ञान भक्ति एव कर्म से समन्वित है। उनके अतीत का आध्यात्मिक उत्कर्ष भारत के वर्तमान और भविष्य का मानदड है। उन्होने अपने पूर्वजो के दिव्य-चरित्र का गान करते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी साम्राज्यवाद की पाशविकता एव स्वार्थपरता की ओर भी इगित किया है। इसके अतिरिक्त पराधीनता के अभिशाप से उत्पन्न हीन भावना को मिटाने के लिए, युग युग से चले आ रहे आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर देशवासियो को उन्मुख किया है .—

कर्मयोगी किस लिए तू दुखभोगी ?
लक्ष्य तेरा मुक्ति है, स्वाधीनता है ॥[4]

गुप्त जी की दृष्टि मे सिकन्दर, नेपोलियन आदि महान विजेताओ का वह आदर नही है, जो बौद्ध धर्म प्रचारक गौतम बुद्ध का है।[5] इसका कारण यह है कि आज भी गौतम बुद्ध चीन, जापान, श्याम आदि मे आध्यात्मिक दृष्टि से राज्य कर रहे हैं। भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का इससे अधिक ज्वलत उदाहरण नही मिल सकता। गुप्तजी ने आध्यात्मिक उत्कर्ष का वर्णन नवीन युग की विचारधारा के प्रकाश मे कुछ परिशोधित रूप मे प्रस्तुत किया है। इसके द्वारा उन्होंने अपने युग की गाधीवादी विचारधारा सत्य-अहिंसा का प्रतिपादन भी किया है। इनका काव्य पराधीन भारत को पुन गौरव तथा स्वाभिमान के उच्चासन पर आरूढ करने मे समर्थ है।

१—मैथिलीशरण गुप्त · स्वदेशी सगीत · पृ० २९
२—वही, पृ० ३०
३—वही, पृ० ५
४—वही, पृ० ६३
५—मैथिलीशरण गुप्त · हिन्दू : पृ० ३८
६—वही, पृ० ३३, ३४

पंडित रामचरित उपाध्याय का अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्रण भी नवीन प्रेरणा देने वाला है। उन्होंने देशवासियों को गीता का उपदेश देकर स्वतन्त्रता-संग्राम में रत हो जाने का आह्वान किया है। उनकी विचारधारा पर आर्य समाज, स्वामी विवेकानन्द और लोकमान्य तिलक का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वे वैदिक युग और ऋषि मुनियों के आदर्शों की पुनः स्थापना करना चाहते हैं।[1]

मैथिलीशरण गुप्त तथा पंडित रामचरित उपाध्याय के सदृश अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का भव्य चित्र खींचा है। इनकी विचारधारा पर भी आर्यसमाज का विशेष प्रभाव दृष्टिगत होता है क्योंकि स्वामी दयानन्द सरस्वती का यह दृढ़ विश्वास था कि वेद संसार की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है।[2] इन्होंने मैथिलीशरण गुप्त तथा पंडित रामचरित उपाध्याय की अपेक्षा भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का वर्णन एक विशेष उद्देश्य से किया है। अपनी धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता के कारण केवल मात्र वेदों या ऋषि मुनियों की दिव्यता का प्रचार नहीं किया है अपितु उनके उदात्त रूप को प्रस्तुत कर, विश्व-बन्धुत्व की भावना की अभिवृद्धि कर, धार्मिक संकीर्णता और विद्वेष भावना को मिटाना चाहा है। वेदों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है —

सभी जाति से प्यार वे हैं जताते।
सभी देश से नेह वे हैं निभाते॥[3]

'हरिऔध' ने समय के परिवर्तन को दृष्टि में रख कर अध्यात्म के सक्रिय एवं चेतन रूप को ग्रहण किया है। आध्यात्मिक प्रगति के लिये, वे लोकसेवा के मार्ग को आवश्यक मानते हैं। उनकी आध्यात्मिकता का सर्वोत्कृष्ट ध्येय है —व्यक्तिगत जीवन के राग द्वेष को लोकहित में समाहित कर देना। राष्ट्रीय हित को ध्यान में रख कर भारत की परम्परागत आध्यात्मिकता का स्वरूप, बौद्धिक व्याख्या एवं विश्लेषण द्वारा परिवर्तित कर, हरिऔध जी ने लोक सेवा लोक रक्षा आदि नये आदर्श तथा मूल्य, समाज और देश को प्रदान किये हैं। उनका 'प्रियप्रवास' इसका प्रमाण है। अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का यह नवीन रूप राष्ट्र की उन्नति को दृष्टिगत कर किया गया था।[4]

ठाकुर गोपालशरण सिंह अपेक्षाकृत भावुक कवि थे। उनके वर्णन में करुणा और मार्मिकता का अधिक समावेश हुआ है। भारत की भूतकालीन उन्नति को उन्होंने

१—पं० रामचरित उपाध्याय : राष्ट्र भारती पृ० ७
२—डा० केसरीनारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत पृ० १३५
३—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' पद्य प्रसून पृ० १६
४—'उन्नति की भावना से प्रेरित होने के कारण ही कवि अपनी प्राचीन संस्कृति के भक्ति अंश से तत्त्व का भी देशहित में प्रयोग कर रहा है।'
—डा० केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत : पृ० १४८

स्वप्नवत् मान लिया है, अब जिसका सत्य होना कठिन ही नहीं असम्भव है। अतीतोत्कर्ष की तुलना मे वर्तमान का पतन असह्य होने के कारण ही वे 'सिर कूटने' या 'विष घूटने' की बात कह कर अपने को अभिशप्त करते हैं।[1] वस्तुतः इनका अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्रण सृजनात्मक नही है। उसमे निराशा की मात्रा अधिक है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का वर्णन अधिक सबल तथा चेतन शब्दो मे किया है। वह पूर्णतया भारतीय सस्कृति के अनुकूल होते हुए भी ओज से परिपूर्ण है। उनकी राष्ट्रीयता का आध्यात्मिक और दार्शनिक रूप भी प्रबल है।[2]

जयशकर प्रसाद ने गाधीजी से प्रभावित होकर, भारत के विगत आध्यात्मिक उत्कर्ष के चित्रण मे, सत्य, अहिसा तथा त्याग पर विशेष बल दिया है —

धर्म का ले लेकर जो नाम, हुआ करती बलि कर दी बन्द।
हमीं ने दिया शान्तिसदेश, सुखी होते देकर आनन्द॥
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट् दया दिखलाते घर-घर घूम॥[3]

श्री माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओ मे भी कही कही भारत के अतीतोत्कर्ष के वर्णन मिलते हैं। वैसे प्राय चतुर्वेदीजी का आध्यात्मिक उत्कर्ष का स्वरूप वर्तमान विषमता के साथ तुलनात्मक ढग का है—

कहाँ देश मे हैं वशिष्ठ, जो तुझको ज्ञान बतायें ?
किये गये नि.शस्त्र, किसे कौशिक रणकला सिखायें ?[4]

रामधारीसिह 'दिनकर' ने 'पाटलीपुत्र की गगा से' कविता मे यह अभिव्यजित किया है कि आज भी गगा के तट पर गौतम के उपदेश और उसकी लहरो मे अहिंसा के संदेश ध्वनित हो रहे हैं।[5]

इस युग की हिन्दी कविता मे भारत की अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कृष्टता का चित्रण करने वाले अनेक महाकाव्य, खडकाव्य, कथा-काव्य, गीत आदि लिखे गये जैसे 'साकेत', 'तक्षशिला', 'सिद्धार्थ', 'पचवटी', 'तुलसीदास' आदि।

हिन्दी-कविता में अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष

नैतिक आचरण द्वारा ही धर्म-प्रधान भारत देश अतीतयुगीन आध्यात्मिक

१—ठाकुर गोपालशरण सिंह : सचिता : पृ० ६२
२—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' . अनामिका पृ० ५८
३—श्रीचन्द्र . सम्पादक : जयहिन्दकाव्य पृ० ६६
४—माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० २३
५—रामधारीसिह दिनकर : पाटलिपुत्र की गगा से इतिहास के आँसू पृ० ३७

उत्कर्ष प्राप्त कर सका था । नैतिकता मनुष्य के आध्यात्मिक विकास का प्रथम आवश्यक सोपान है जिसके अभाव मे किसी प्रकार की श्रेष्ठता अथवा उच्चता की प्राप्ति असभव है । नैतिकता की कठोर शृंखला मे कस कर ही भारतीय-जीवन विश्व में अपना मस्तक ऊचा कर सका था। देश के राष्ट्रीय जीवन को अधिक सबल बनाने के लिए गाधी जी, आर्यसमाज तथा सभी प्रमुख नेताओं की दृष्टि भारत के सुदूर अतीत को भेद अपने पूर्व पुरुषो के सयमित तथा नियमित जीवनादर्शों तथा नैतिक मूल्यो को खोज लाई । गाधीजी के मन मे नैतिकता मनुष्य मे सबसे बडा धर्म थी । हिन्दी साहित्य मे, विशेषतया काव्य मे भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ ही नैतिक उत्कर्ष की भी सुन्दर अभिव्यजना हुई है ।

गत काल मे हमारे पूर्वजो का आचरण नैतिक आदर्शों से प्रेरित था। वे सत्यासत्य, न्याय-अन्याय धर्माधर्म, उचित-अनुचित का पूर्णतया ध्यान रखते थे । उनका चरित्र पवित्रता तथा अध्यवसाय से पूर्ण था, इसी कारण उनको सम्मान और महत्व प्राप्त हुआ था। इसी भाव को गुप्त जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है —

> वह गौरव वह मान महत्व, वह अमरत्व, तत्वमय सत्व
> सबके ऊपर चारु चरित्र, पवित्रता का जीवन चित्र
> वह साधन वह अध्यवसाय, नहीं रहा हम मे अब हाय ।
> इसीलिये यह अपना हास, चारों ओर त्रास ही त्रास ।[1]

नैतिकता के दो पक्ष हैं । प्रथम बाह्याचरण का शुद्ध रूप अर्थात् मन के अन्दर छिपी हुई शक्तियो का प्रकाश । आलस्य, प्रमाद, तन्द्रा, असत्य आदि दुर्वृत्तियो का दमन और सत्य, धृति, अभय, ज्ञान, मैत्री आदि सद्वृतियो का उन्नयन, मानसिक प्रकाश के उदाहरण हैं। नैतिकता के आवश्यक आधार स्तम्भ हैं, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि का व्यावहारिक जीवन मे प्रयोग । श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दो मे—

> वस्तुत ये और इसी प्रकार के और दूसरे गुण मनुष्य जीवन और सामाजिक जीवन के टिकाऊ खम्भे हैं, जीवन इनके दृढ ठाठ पर सब देश और सब कालो मे पनपता हुआ चलता रहता है।"[2]

सत्य और धर्म के उच्चादर्शों को कर्म के मार्ग से अपने जीवन मे प्रत्यक्ष कर दिखाना ही नैतिकता है ।

'चरित्र के आदर्श मे शरीर और मन मे दोनो का विकास सम्मिलित है ।"[3] हमारे ऋषि मुनियों का जीवन धर्म और सत्यता के उच्चासन पर स्थित था । उन्होंने

१—मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० २५
२—वासुदेवशरण अग्रवाल माता भूमि पृ० २१०
३—वही, पृ० २१२

नैतिकता के महत्व को भली भांति समझ लिया था।

'प्रियप्रवास' महाकाव्य की रचना द्वारा श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने सन् १६२० के पूर्व ही लोकसेवा तथा लोकरक्षा के लिये जीवनोत्सर्ग का एक नवीन आदर्श रखा था। कृष्ण और राधा का चरित्र मनुष्योचित शिष्टता, व्यवहार-शुद्धि, न्याय तथा प्रेमपूर्ण है। देशहित के लिए व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग वर्तमान काल में भी अनुकरणीय एवं वंदनीय है। राम का जीवन तो अतीतकाल नैतिक उत्कृष्टता का उदाहरण ही है। रामनवमी महान पर्व आज भी हमें नैतिकता का संदेश देता है। इस काल के कवियों की विशेष दृष्टि रामचरित पर थी। अत: राम-जीवन से सम्बन्धित अनेक काव्य रचनायें उपलब्ध हैं। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत', महाकाव्य तथा 'पंचवटी' खंडकाव्य की सर्जना कर मर्यादा पुरुषोत्तम राम, लक्ष्मण, सीता, उर्मिला आदि के नैतिक जीवनादर्शों की स्थापना की है। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने 'विजयादशमी'[1] कविता लिखी, मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य के अतिरिक्त 'रामनवमी'[2] काव्य की रचना भी की 'कि स्वदेशस्य हिताय सहर्ष करें सभी कुछ हम प्रति वर्ष, जिससे राम के अमृतोपम चरित्र के ज्ञान द्वारा भारत वर्तमान दुरवस्था का विनाश कर विजय प्राप्त करे और ठाकुर गोपालशरण सिंह ने भी 'विजयदशमी' कविता लिखी है।

केवल अतीतकालीन महान् पुरुषों के जीवन में ही नैतिकता चरितार्थ नहीं हुई थी, साधारण जनता का जीवन भी नैतिकादर्शों से पूर्ण था। 'साकेत' में गुप्त जी ने साधारण पुरवासियों के नैतिकतापूर्ण चरित्र के सम्बन्ध में लिखा है :—

> एक तरु के विविध सुमनों से खिले,
> पौर जन रहते परस्पर हैं मिले।
> स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट उद्योगी सभी,
> बाह्यभोगी आन्तरिक योगी सभी ॥[3]

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत के पूर्व पुरुषों के सद्गुणों का वर्णन वर्तमान-कालीन जीवन के अभावों के उल्लेख द्वारा भी किया है। आज हमारे जीवन में उन सद्गुणों का अभाव है जो हमारे पूर्वजों के रक्त के साथ घुले हुए थे। अब हमारा जीवन उस प्राचीन सत्य-सरल शिक्षा से हीन, आत्म विश्वास, साहस-शौर्य, अविचल उद्योग और उत्साह से विहीन है।[4] इसके अतिरिक्त 'सिद्धराज' नामक ऐतिहासिक खण्ड-काव्य में उन्होंने मध्यकालीन वीरों की भांकी प्रस्तुत करते हुए भौतिकता की अपेक्षा नैतिकता को अधिक महत्व दिया है। मातृभक्त राजा जयसिंह ने कर के उस

१—सुभद्राकुमारी चौहान . मुकुल पृ० ६२
२—मैथिलीशरण गुप्त · हिन्दू : पृ० ७१
३—मैथिलीशरणगुप्त : साकेत : पृ० २२
४—मैथिलीशरणगुप्त : हिन्दू : पृ० २४, २५

निदेशपत्र को फाड फेंका था, जिससे प्रति वर्ष लाखों का लाभ होता था। उस काल का आदर्श था :—

राजकोष रिक्त हो, तो चिन्ता नहीं मुझको,
राज्य में प्रजा की सुख-सिद्धि, निधि-वृद्धि हो,
पुष्ट प्रजा-जन ही हैं सच्चे धन राजा के।[1]

यह नैतिकता आत्म-सम्मान की भावना से शून्य नहीं थी। गाँधी जी ने राजनीति को आध्यात्मिकता एवं नैतिकता के सिद्धान्तों पर प्रतिपादित कर नियन्त्रित करना चाहा था। उनकी उसी भावना को गुप्त जी ने काव्य मे मुखर रूप प्रदान किया है। भारत वह देश है जहा पूर्वकाल से नैतिकता का राज्य था। राजा और प्रजा का सम्बन्ध नैतिकता की आधारशिला पर स्थित था। मैथिलीशरण गुप्त के शब्दो मे—

यहां पूर्व से ही सविवेक,
राजा-प्रजा प्रकृति थी एक
तब तो राम-राज्य सुख भोग
करते थे तुम हिन्दू लोग।।[2]

राजनीति नैतिकता से शून्य नही थी। इसी कारण मानव मात्र की स्वतन्त्रता अधिकार-पर्व पर विशेष बल दिया गया था। 'साकेत' महाकाव्य मे गुप्तजी ने राजा दशरथ के समय की, राजा-प्रजा के नैतिकतापूर्ण प्रीति सम्बन्ध के विषय मे लिखा है। 'तक्षशिला' महाकाव्य मे उदयशंकर भट्ट ने भी राजा-प्रजा सम्बन्ध मे मान्य नैतिकादर्शों के सम्बन्ध मे लिखा है—

थी अनुरक्त प्रजा राजा मे नृपति प्रजा साधन मे
था सार्थक अद्वैतवाद अविकल गति से जीवन में।।[3]

भट्टजी ने अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष के वर्णन मे, अप्रत्यक्ष रूप मे अपने युग की अनैतिकतापूर्ण साम्राज्यवादी नीति की ओर इंगित किया है।

'सिद्धराज' खण्ड-काव्य में गुप्त जी ने ऐतिहासिक कथा के माध्यम से नैतिकतापूर्ण आचरण पर बल दिया है। रानक्दे के उज्ज्वल चरित्र द्वारा भारतीय नारी के सम्मुख पतिव्रत-धर्म, शील, शक्ति आदि का उज्ज्वल आदर्श रखा है।[4] 'प्रिय प्रवास' में 'हरिऔध' जी राधा के प्रेम को नैतिकता के बंधन मे बाध कर प्रस्तुत कर चुके थे। अतः मैथिलीशरण गुप्त ने ऐतिहासिक कथा के आधार पर 'यशोधरा' में यशोधरा के

१—मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराजः पृ० २३ :
२—मैथिलीशरण गुप्त : पृ० ३६-४०
३—उदयशंकर भट्ट . तक्षशिला : पृ० ३१
४—मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज : पृ० ७२

सत्याचरण का महान् आदर्श रखा है। भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहा की वीर राजपूत नारियो ने अपने धर्म तथा सतीत्व की रक्षा के लिए अग्नि में भस्म होकर आत्म बलिदान का अपूर्व उदाहरण रखा है। 'निराला' जी की 'दिल्ली' कविता मे देश की वीर-नारियो के आत्म-बलिदान का महान नैतिक आदर्श मिलता है —

क्या यह वही देश है—
यमुना—पुलिन से चल
'पृथ्वी' की चिता पर
नारियों की महिमा उस सती सयोगिता ने
किया आहूत जहा विजित स्वजातियों को
आत्म बलिदान से :—
पढ़ो रे पढ़ो रे पाठ,
भारत के अविश्वस्त अवनत ललाट पर
निज चिताभस्म का टीका लगाते हुए—
सुनते ही रहे खड़े भय से विवर्ण जहां
अविश्वस्त सज्जाहीन पतित आत्म विस्मृत नर ?[1]

भारतीय नारी की नैतिक उच्चता का आदर्श प्रस्तुत किया गया। श्री रूप-नारायण पाडे ने लिखा है—

सावित्री, सीता आर्या
ऐसी हैं कहां सुभार्या
जिनसे यम भी हो हारा।।[2]

रामधारीसिंह 'दिनकर' ने काव्य-क्षेत्र में उदित होकर भारतीय इतिहास तथा सस्कृति के नैतिक पक्ष का चित्रण अधिक गौरवमय शब्दो मे किया है। १६३३ ई० मे लिखित 'मिथिला' काव्य मे कहा है—

मैं जनक—कपिल की पुण्य जननि, मेरे पुत्रों का महा ज्ञान,
मेरी सीता ने दिया विश्व को रमणी को आदर्श दान।।[3]

पडित रामकरण द्विवेदी 'अज्ञात' रचित 'राखी' नामक ऐतिहासिक खण्ड-काव्य की कथा इतिहास के मुगल काल से ली गई है। इसमे भी कवि ने वीर राजपूत नारियो के उच्चतम नैतिक आदर्श, वीरता, सेवा, त्याग की प्रतिष्ठा की है, जिन भावनाओ से प्रेरित होकर राणा सागा की विधवा रानी राजमाता करुणावती, अन्य

१—निराला : दिल्ली : अनामिका : पृ० ६०
२—रूपनारायण पांडेय : पराग : पृ० ४२
३—रामधारीसिंह दिनकर : इतिहास के आंसू : पृ० ४१

वीर रानियाँ तथा १३००० राजपूत बालाएं आत्मरक्षा के लिए बारूद में आग लगा कर भस्म हो गई थी।[1] इसके अतिरिक्त इस कथा-काव्य मे मुगल बादशाह हुमायू के चरित्र की नैतिक उत्कृष्टता पर प्रमुख रूप से प्रकाश डाला गया है। असहाय रानी करुणावती ने दिल्लीश्वर मुगल शासक हुमायू को अपनी रक्षा के लिये 'रक्षा-बन्धन' का उपहार भेजा था, यह इतिहास विदित है। हुमायू अपनी हिन्दू बहन की पुकार सुन जाति धर्म-भेद भूलकर अपनी अन्तश्चेतना की नैतिकता से प्रेरित होकर तत्काल चल पड़ा था। उसके चित्तौड़ पहुंचने के पूर्व ही वीर राजपूत नारियां आत्माहुति कर चुकी थी लेकिन उसने नैतिक धर्म के निर्वाह के लिए करुणावती के बालक उदयसिंह को, उसके चाचा के सरक्षण मे सिंहासन पर बिठाया और आक्रमणकारी बहादुरशाह को चित्तौड़ से ही नहीं गुजरात से भी निकाल भगाया। हुमायूं के नैतिकतापूर्ण चरित्र के उल्लेख द्वारा[2] कवि ने भारत के दोनो वर्गों, हिन्दुओ तथा मुसलमानो को समान रूप से राष्ट्रीय भावना से भरना चाहा है :—

> है श्रेष्ठ धर्म से मनुष्यता
> पूर्वज इसको हैं रहे बता।
> अथवा यदि तुममें शक्ति नहीं—
> अपनी बहनों में भक्ति नहीं॥[3]

अतीत गौरव की यह गाथा हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष मिटाने मे सहायक हो सकती है। गांधी जी ने राष्ट्रीय चेतना के उद्बोधन के लिये हिन्दू-मुस्लिम एकता को आवश्यक माना था।

गांधी जी ने राष्ट्रवाद के लिये अतीत के जिस नैतिक आधार को अपनाया था उसकी पूर्ति इन कवियो की वाणी द्वारा हुई।

हिन्दी कविता में अतीतकालीन भौतिक उत्कर्ष

भारत वह देश है जहाँ तत्व चिंतन ने जीवन-विकास के भौतिक उपकरणो की अवहेलना नही की थी। अतीतकाल मे जब भारतवासी पूर्णतया स्वतन्त्र थे, देश मे धन-धान्य का अभाव नहीं था। भारत देश स्वर्ण प्रतिमा के नाम से विख्यात था। समृद्ध भौतिक ऐश्वर्य के कारण ही वह विदेशियो द्वारा आक्रान्त हुआ। अति प्राचीन युग से धर्म अर्थ, काम मोक्ष अर्थात् चतुर्वर्ग की साधना को चरम पुरुषार्थ माना गया है। अर्थ और काम की धर्म द्वारा सिद्धि भारतवासियो का कर्म पक्ष था और मोक्ष अन्तिम ध्येय।

हिन्दी साहित्यकारो ने भौतिक उत्कर्ष के भी सुन्दर चित्र खींचे हैं। अन्य विधाओ के साथ कला कौशल के प्रथम आचार्य भी भारत मे ही हुए थे। पुरातत्व

१—प० रामचरण द्विवेदी 'अज्ञात' . राखी : पृ० १३६, १४०
२—प० रामचरण द्विवेदी 'अज्ञात' राखी पृ० १०३
३—वही : पृ० १२४

विभाग द्वारा जो खुदाई का कार्य हुआ है उससे अतीतकालीन शिल्पकला की समृद्धि के चिह्न आज भी मिले हैं। सिन्धु-सेतु, दक्षिण के मन्दिर प्राचीन भारत की कला-कौशल के निदर्शन हैं। चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, अभिनय आदि विविध कलायें अपने चरम विकास को प्राप्त हुई थी। केवल पुरुष ही नही, नारियां भी निपुण थी इतिहास इसका साक्षी है। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत की सभ्यता की प्राचीनता के सम्बन्ध मे लिखा है —

तुम हो सबसे पहले सभ्य, जिन्हें न कुछ भी रहा अलभ्य।
तुम हो उनके ही कुलशील, जो थे सर्व समर्थ सलील॥

'साकेत' महाकाव्य मे गुप्त जी ने राजा दशरथ के समय की साकेत नगरी का जो भव्य चित्र अंकित किया है वह सहस्रो वर्ष पूर्व भारत के भौतिक उत्कर्ष का प्रमाण है :—

देख लो साकेत नगरी है यही,
स्वर्ग से मिलने गगन मे जा रही।
केतु—पट अचल—सदृश हैं उड रहे,
कनक-कलशो पर अमर-हग जुड रहे।
सोहती हैं विविध शालायें बडी,
छत उठाये भित्तियां चित्रित खडी॥[१]

शिल्प कला अपने पूर्ण विकास को प्राप्त हो चुकी थी, इसी कारण देव-दम्पति भी वहा विश्राम करना चाहते थे। उस युग के शिल्प-कौशल के आदर्श के सम्बन्ध मे गुप्त जी ने लिखा है .—

कामरूपी वारिदों के चित्र मे,
इन्द्र की अमरावती के मित्र—से,
कर रहे नृप-शोध गगन स्पर्श हैं—
शिल्प-कौशल के परम आदर्श हैं॥[२]

सभी घरो मे सुख समृद्धि की प्रतीक गोशालाए थी और अश्व थे।[३] 'सिद्धराज' खण्ड-काव्य के प्रथम सर्ग मे ही भौतिक ऐश्वर्य का चित्र मिल जाता है। इसकी कथा द्वादश शताब्दी की है। अतः इतिहास के मध्यकाल मे जब देश स्वतन्त्र था और राजा अपना था, देशवासी सुखी और सम्पन्न थे। महोबे के प्राकृतिक सौन्दर्य, भूमि की उर्वरता, प्रजा की सुख-वृद्धि, राजा का धन कुबेर और सुकर्मी होना तथा ललित कला आदि के वर्णन में अतीत गौरव की अनुभूति मे देशभक्ति का स्वर प्रमुख है। भारत के प्राचीन ऐश्वर्य के वर्णन से कवि ने आदर्श राष्ट्र का स्वप्न देखा है।[४]

१—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० १६
२—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ २०
३—वही, पृ० २१
४—मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज : पृ०

पंडित रामचरित उपाध्याय और ठाकुर गोपालशरणसिंह ने भौतिक उत्कर्ष की दृष्टि से भी अतीतकालीन भारत को अन्य देशों की अपेक्षा श्रेष्ठ ठहराया है। उपाध्यायजी के मतानुसार सर्वप्रथम भारत देश में ही विद्या, बल, बुद्धि का आगमन हुआ था।[१] गोपालशरण सिंह के अनुसार भारत की सुख-सम्पदा सुरलोक सदृश थी।[२]

धर्म तथा नीति द्वारा भौतिक उत्कर्ष की सिद्धि भारतवासियों का स्वधर्म था। इसी कारण पूर्व पुरुष भौतिक प्रसाधनों की अवहेलना कर सरल जीवन यापन करते थे। मैथिलीशरण गुप्त गोपालशरण सिंह प्रभृति विद्वानों ने अतीतकालीन भौतिक उत्कर्ष के वर्णन में आध्यात्मिकता तथा नैतिकता का प्राधान्य दिखाया है। मैथिलीशरण गुप्त के साकेत महाकाव्य से यह स्पष्ट है कि पूर्वजों की शिल्प कला का विकास, धार्मिक एवं नैतिक रुचि के अनुकूल हुआ था —

गेहियों के चारु चरितों की लड़ी छोड़ती है छाप, जो उन पर पड़ी।
स्वच्छ, सुन्दर और विस्तृत घर बनें, इन्द्र धनुषाकार तोरण हैं तनें॥[३]

ठाकुर गोपालशरण सिंह ने भी पूर्व-पुरुषों के आदर्श चरित्र का वर्णन इस प्रकार किया है —

अपने वश में ही जहां सभी का मन था,
तन हृष्ट-पुष्ट था और विमल आनन था,
धन के रहते भी जहां सरल जीवन था,
सब जन थे जहां स्वतन्त्र न कुछ बन्धन था,
रक्षक थे जिसके देव-वृन्द सुखकारी
वह भरत-भूमि है यही हमारी प्यारी॥[४]

भौतिक-उत्कर्ष के मद में राजा या प्रजा अपना विवेक नहीं खोते थे।[५] 'निराला' जी ने 'यमुना के प्रति' कविता में यमुना की कल-कल ध्वनि में देश के विगत सौभाग्य की गाथा सुनी है। इसमें भारतीय संस्कृति के भौतिक पक्ष की प्रेम-प्रधान प्रवृत्ति का चित्रण किया गया है। यमुना को देखकर कवि अतीत काल की शत शत प्रणय कथाओं, ऐन्द्रिय सुख और मादक राग की स्मृति में डूब जाता है। विगत काल में भौतिक क्षेत्र में भी जीवन और जगत् के अनेक रहस्यमय द्वार खुले थे।[६] रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भी भारत की पूर्व उच्च संस्कृति के सम्बन्ध में अत्यन्त कलात्मक भाषा में लिखा है —

१—पं० रामचरित उपाध्याय हिन्द हमारा राष्ट्रभारती : पृ० ५
२—ठाकुर गोपालशरण सिंह सचिता पृ० ६४
३—मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृ० १२
४-५—ठाकुर गोपालशरण सिंह सचिता पृ० ६५
६—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला परिमल पृ० ५३

नीरव निशि की गहकी विमल कर देती मेरे विकल प्राण,
मैं खडी तीर पर सुनती हू, विद्यापति-कवि के मधुर गान ।।[१]

डा० रामकुमार वर्मा ने प्रमुख रूप से छायावादी कविता लिखी है लेकिन १६३३ ई० मे प्रकाशित दो कविताग्रो—'नूरजहा' और 'शुजा' मे उन्होंने मुस्लिम इतिहास के दो प्रसिद्ध पात्रो को चुना है और मुगल शासको के भौतिक ऐश्वर्य तथा सौन्दर्य का वर्णन किया है।'नूरजहा' का सौन्दर्य, अभिमान और वैभव इतिहास-प्रसिद्ध है। उनके सौन्दर्य के सम्बन्ध मे कवि ने कहा है :—

कहता है भारत तेरे गौरव की एक कहानी
वैभव भी बलिहार हुआ था तेरे मुख का पानी
नूरजहा! तेरा सिंहासन था कितना अभिमानी
तेरी इच्छा ही बनती थी जहांगीर की रानी ।।[२]

'शुजा' कविता मे कवि ने शाहजहा द्वारा अतीत वैभव का स्मरण कराया है।[३] इतिहास का हिन्दू काल ही नही मुस्लिम-काल भी हमारे लिए गौरव का विषय है। गाधीजी की उदारवादी राष्ट्रीयता के फलस्वरूप हिन्दी कवियो ने हिन्दू-मुस्लिम समन्वित जनता के लिए समान रूप से हिन्दू तथा मुसलमान शासको के उज्ज्वल चरित्रों का चयन करना प्रारम्भ कर दिया था। गुरुभक्तसिंह का 'नूरजहा' महाकाव्य इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है।

हिन्दी साहित्य मे अतीतकालीन भौतिक उत्कर्ष के अन्तर्गत सबसे अधिक वर्णन वीर-भावना का हुआ है। पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाग्रो से वीर-चरित्रो को चुना गया, जिनसे देशवासियो को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सघर्ष-रत होने के लिये प्रोत्साहन मिल सकता था। नाटक अथवा उपन्यास की अपेक्षा काव्य मे शौर्य भावना का अकन कम हुआ है क्योकि कवि हृदय का अधिक सामजस्य आध्यात्मिकता तथा नैतिकता के उच्च आदर्शों से हुआ था। वैसे ओजपूर्ण वीर-रस प्रधान कविताओ के साथ ही कुछ वीर-रस पूर्ण काव्य भी लिखे गये हैं।

'मुक्ति-मदिर' मे पडित रामचरित उपाध्याय ने स्वत्वापहारी दुर्जनो के युद्ध करना धर्म माना है।[४] कृष्ण ने महाभारत मे अर्जुन को यही उपदेश दिया था। उपाध्याय जी ने 'रामचरित चिन्तामणि' महाकाव्य मे भी राम-कथा के वर्णन मे

१—रामधारीसिंह दिनकर . इतिहास के आसू : पृ०
२—डा० रामकुमार वर्मा : रूपराशि : पृ० ६३
३—डा० रामकुमार वर्मा : रूपराशि : पृ० ६३
४—रामचरित उपाध्याय : मुक्ति-मन्दिर : पृ० ६

वीर-रस का प्रदर्शन किया है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'सिद्धराज' खण्ड-काव्य की रचना वीर-पूजा के हेतु की थी। स्वयं लेखक ने निवेदन में लिख दिया है कि मध्य-कालीन वीरों की झलक देने वाला यह काव्य है। उस समय वीर क्षत्राणी नारी स्वदेश और स्वतन्त्रता के रक्षार्थ ही पुत्र को जन्म देती थी —

देवि, मैं हूँ, एक क्षत्राणी,
जनती हैं जूझने के अर्थ ही जो पुत्र को ॥[२]

गुप्त जी ने जयसिंह की उदारता, वीरता, उच्चता एवं शारीरिक पुष्टता का भी उल्लेख किया है। रामनरेश त्रिपाठी ने भारत के पूर्व पुरुषों के विषय में कहा है 'विजयी, बली जहां के बेजोड़ शूरमा थे।'[३] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'जागो फिर एक बार' कविता में गुरुगोविन्द सिंह की वीरता का घोर स्वर निनादित कर उनकी वीर-प्रतिभा का स्मरण कराया है —

सवा सवा लाख पर एक को चढ़ाऊंगा,
गोविन्दसिंह निज नाम जब कहाऊंगा ॥[४]

इस काव्य की रचना १९२१ में हुई थी जैसा कि कविता द्वारा नीचे दिये गये रचना काल से स्पष्ट है। यह गांधी जी के असहयोग आन्दोलन का काल था। अतः जनता को जागृत कर स्वतन्त्रता संग्राम की ओर उन्मुख करने के लिए भारतीय इतिहास के वीर चरित्रों का काव्य में वर्णन आवश्यक था।

जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में जिस वीर-भावना का विशद् चित्र अंकित किया है, उसे काव्य में भी स्थान दिया है। 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।[१] सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'झांसी की रानी'[२] कविता में वीर रानी लक्ष्मीबाई के शौर्य का ओजस्वी वर्णन किया है, जिसने १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में पुरुषोचित वीरता का प्रदर्शन कर अंग्रेजों से युद्ध किया था। —

इनकी गाथा छोड़ चलें हम झांसी के मैदानों में,
जहां खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेंट वोकर आ पहुँचा, आगे बढ़ा जवानों में
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वन्द्व असमानों में ॥[३]

२—मैथिलीशरण गुप्त　सिद्धराज　पृ० ७
३—रामनरेश त्रिपाठी　मानसी, पृ० ३६
४—निराला　अपरा : पृ० ६
१—जयशंकर प्रसाद · लहर　पृ० ५१
२—सुभद्राकुमारी चौहान · मुकुल　पृ० ६४ :
३—सुभद्रा कुमारी चौहान : मुकुल, पृ० ७१

आज भी झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की समाधि भारत की नारियों को वीरता का पाठ पढाती है। इसके अतिरिक्त इस प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम मे भाग लेकर वीर गति पाने वाले नाना धुन्धू पन्त, तातिया, चतुर अली मुल्ला, अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुवरसिंह आदि भारतीय इतिहास के अमर सैनिको को भी कवयित्री की श्रद्धाजलि मिली है।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द न भी झासी वाली रानी की समाधि पर' कविता म वीर रानी के बलिदान की अमर-गाथा गाई है। ओजपूर्ण शब्दो मे कवि ने झासी की रानी की वीर-मूर्ति का स्मरण करते हुये लिखा है —

> आज भी स्मरण तुम्हारा, देवि, मचा देता हडकप प्रचड
> विजय के कोहनूर कर म्लान, झुका देता मस्तक उद्दण्ड।
> स्वप्न में सहसा तुमको देख डगमगाते रक्षित भू-खड;
> अस्त होते विस्तृत साम्राज्य, डोलते सिहासन दुर्दंड।
> काँप उठते मिथ्या इतिहास, धसकते युग-युग के पाखंड;
> थरथराते हाथों से छूट भूमि पर गिरते शासन-दड।
> प्रकपित कर महलो की नींव, दर्प दुर्गो का शत शत खड
> जाग उठता स्मृतियो के साथ तुम्हारा भय, आतक अखड॥[1]

वियोगी हरि ने 'वीर सतसई' मे ब्रज-भाषा मे पौराणिक तथा प्राचीन और निकट इतिहास से वीर-चरित्रो को लेकर, उनके द्वारा युद्ध के समय की गई प्रतिज्ञाओ का ओजपूर्ण शब्दो मे वर्णन किया है। सौमित्र प्रतिज्ञा, भीष्म-प्रतिज्ञा, प्रताप प्रतिज्ञा आदि मे देश के वीरों की प्रतिज्ञाए हैं जो देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिये की गई थी।[2] इसके अतिरिक्त वियोगी जी ने उन स्थानों का भी उल्लेख किया है जो अतीतकालीन भारत की वीरता के रूप मे आज भी विद्यमान हैं जैसे चित्तौड, मारवाड, हल्दीघाटी, माडवगढ, भरतपुर दुर्ग, बुन्देलखण्ड आदि।[3]

छायावाद युग के उत्तरार्द्ध मे रामधारीसिह 'दिनकर' ने भारत की अतीत कालीन वीर-भावना का चित्रण कर अपनी प्रखर-प्रतिभा का परिचय देना आरम्भ कर दिया था। इतिहास, काव्य-कला और ओज का जितना सुन्दर सम्मिलन 'दिनकर' के काव्य मे मिलता है वह अपूर्व है —

> मैं वैशाली के आसपास खडहर की धूल में अजान,
> सुनती हू साश्रु नयन अपने लिच्छवि-वीरों के कीर्तिगान॥[4]

१—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द . जीवनज्योति पृ० १००
२—वीर सतसई वियोगी हरि . पृ० :
३—वियोगी हरि · वीर सतसई : पृ० ३२ .
४—रामधारीसिह दिनकर : इतिहास के आंसू : पृ० ४३

काव्य में छायावादी प्रवृत्ति की प्रमुखता के कारण कवि ने चेतन एवं बुद्धि-शील मानव को ही नहीं, भारत की जड प्रवृत्ति को भी अतीत की स्मृति में डूबे देखा है। इसी कारण वह पाटलीपुत्र की गंगा से पूछता है कि हे गंगे क्या तुम्हारी पलकों के भीतर गत विगत स्वप्न-सा घूम रहा है। क्या मगध का महान् सम्राट अशोक याद आता है, या सन्यासिनी के सदृश विजन में अतीत गौरव का ध्यान धर रो रोकर हे देवि गुप्तवंश की गरिमा का गान गा रही हो —

> तुझे याद है चढे पदों पर कितने जय—सुमनों के हार ?
> कितनी बार समुद्रगुप्त ने धोयी है तुझमें तलवार ?[1]

'चन्द्रगुप्त' नाटक की रचना द्वारा जयशंकर प्रसाद ने अतीतकालीन भारतीय वीर भावना के जिस उत्कृष्ट रूप को रखा था, जिसमें भारतीयों ने असीम शक्तिशाली विदेशी शक्ति सिकन्दर पर विजय पाई थी, उसी की अभिव्यक्ति 'दिनकर' ने भी काव्य में की है —

> विजयी चन्द्रगुप्त के पद पर सेल्यूकस की वह मनुहार,
> तुझे याद है, देवि ! मगध का वह विराट् उज्ज्वल शृंगार ?
> जगती पर छाया करती थी कभी हमारी भुजा विशाल,
> बार बार झुकते थे पद पर ग्रीक, यवन के उन्नत भाल ॥[2]

राष्ट्रवाद और काव्यात्मक छायावाद का सम्मिलन 'दिनकर' की अनुपम देन है। इसके अतिरिक्त 'दिनकर' की राष्ट्रीय चेतना ने मुस्लिम संस्कृति को भी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग बना दिया है। बढ़ते हुए हिन्दू-मुस्लिम विद्वेषाग्नि को शान्त करने के लिए दोनों का अतीतकालीन सांस्कृतिक एकीकरण आवश्यक था। गांधीजी ने इस बात पर विशेष बल दिया था। अतः 'दिनकर' ने भी 'नई दिल्ली के प्रति' (दिल्ली—१९२९ ई०) कविता में मुस्लिम शासन काल की दिल्ली के वैभव एवं शृंगार का अत्यधिक आत्मीय भाव के साथ सुन्दर एवं उत्कृष्ट चित्रण किया है।[3] काव्य में वर्णित भौतिक उत्कर्ष के संबंध में यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि इस काल के कवियों ने इतिहास के सभी कालों से भौतिक समृद्धि अर्थात् ऐश्वर्य वैभव, वीर भावना आदि के सुन्दर चित्र अंकित किये हैं।

नाटकों में वर्णित अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष

हिन्दी-साहित्य के नाटककारों ने भी अतीत भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष के विशद चित्र प्रस्तुत किये हैं। बेचन शर्मा उग्र का 'महात्मा ईसा' नामक नाटक एक सुन्दर प्रयोग है। उन्होंने प्राचीन भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष को महात्मा ईसा की

१—रामधारीसिंह दिनकर । इतिहास के आँसू । पृ० ३७
२—वही, पृ० ३८
३—रामधारीसिंह दिनकर दिल्ली · पृ० ५

आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्ति-हेतु भारत भेजते हैं।[1] भारत वह महान् देश है, जहा ईसा को भगवद्गीता और बुद्ध-चरित का ज्ञान प्राप्त हुआ था। उनसे विवेकाचार्य ने कहा था—'स्वदेश का उद्धार करने के लिए तुम्हें कर्मयोग का अभ्यास करना पडेगा। आओ शुभस्य शीघ्रम्।'[2] नि सन्देह भारत अपने आध्यात्मिक उत्कर्ष, दार्शनिक विचारधारा और शिक्षा-पद्धति के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। इस नाटक मे उग्र जी ने भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष का चरम रूप प्रस्तुत किया है। स्वयं ईसा से कहलाया है—क्या पृथ्वी के अन्य किसी भाग मे ऐसे मनुष्य मिल सकते है? कदापि नही। यहा का एक-एक प्राणी देवता है—हर एक स्थान स्वर्ग।"[3] विवेकाचार्य की पाठशाला मे ईसा को त्याग, सेवा-मार्ग और मुक्ति का पथ स्पष्ट हुआ था। भारत की आध्यात्मिकता सकीर्ण नही थी। ईसा ने जब सफलता का उपाय पूछा तो विवेकाचार्य ने उत्तर दिया है—'अपने और पराये का भेद भूल जाने से, छोटे और बडे का विचार छोड देने से और ससार भर को अपना कुटुम्ब मान लेने से। ईसा! सेवा मुक्ति की बडी बहन है। सेवको की मुक्ति वैसे ही निश्चित है जैसे जन्म लेने वालो की मृत्यु। वे मनुष्य धन्य हैं जो दूसरो की सेवा करने मे अपना अहोभाग्य समझते हैं।"[4]

नाटकों मे अतीतकालीन—आध्यात्मिक—उत्कर्ष के उज्ज्वल एव समुन्नत रूप प्रस्तुत करने वालो मे जयशकर प्रसाद का स्थान अद्वितीय है। उन्होंने प्रायः अपने सभी नाटकों की सामग्री भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग से चुनी है। सत्य तथा अहिंसा को मानव जीवन का आवश्यक तत्व माना है। 'अजात शत्रु' के मूल मे गौतम बुद्ध की 'अहिंसा परमोधर्मः' की महान् भावना कार्य करती है। बुद्धदेव ने अपने उपदेशो द्वारा सत्यमार्ग का प्रदर्शन किया था —

'राजन्, शुद्ध बुद्धि तो सदैव निर्लिप्त रहती है। केवल साक्षीरूप से वह सब दृश्य देखती है। तब भी, इन सांसारिक झगडो मे उसका उद्देश्य होता है कि न्याय का पक्ष विजयी हो—यही न्याय का समर्थन है। तटस्थ की यही शुभेच्छा सत्व से प्रेरित होकर समस्त सदाचारो की नीव विश्व मे स्थापित करती है। यदि वह ऐसा न करे तो अप्रत्यक्ष रूप से अन्याय का समर्थन हो जाता है हम विरलो को भी राज-दर्शन की आवश्यकता हो जाती है।'[5]

क्षणिक सुख प्रदान करने वाले सासारिक ऐश्वर्य तथा उसके नश्वर चमकीले

१—पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० ३५

२—वही, पृ० २८

३—पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र' . महात्मा ईसा : पृ० २०

४—वही, पृ० ४८

५—जयशकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृ० ३२-३३

प्रदर्शन हमारे पूर्वजों को आकर्षित नहीं कर सके थे। भारतीय जीवन ने सदैव से भौतिकता को तुच्छ तथा आध्यात्मिकता को श्रेष्ठ माना है। प्रसाद जी के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में दाण्ड्यायन के शब्दों में इसकी पुष्टि मिलती है—

'दाण्ड्यायन—भूमा के सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास मात्र हो जाता है, उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते, दूत ! वह किसी बलवान् की इच्छा का क्रीडा कन्दुक नहीं बन सकता। तुम्हारा राजा अभी झेलम भी नहीं पार कर सका फिर भी जगद्विजेता की उपाधि लेकर जगत् को वंचित करता है। मैं लोभ से, सम्मान से किसी के पास नहीं जा सकता।"[1]

चन्द्रगुप्त नाटक में जगत् विजय की महत्वाकांक्षा से पूर्ण वीर सिकन्दर को भी भारतीय आध्यात्मवाद से प्रभावित दिखाया गया है। ऐतिहासिक कथानकों के आकलन द्वारा प्रसाद जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि अध्यात्म या सत्य धर्म भारतीय जीवन दर्शन का मेरुदंड था। प्रायः उनके सभी नाटकों—अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, राज्यश्री आदि में सत् असत्, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, नीति अनीति का संघर्ष दिखाया गया है और अन्त में सत्य, धर्म, न्याय-नीति की विजय होती है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में धर्मराज्य अथवा सत्य की स्थापना के लिए कौटिल्य सम महान् ब्राह्मण और चन्द्रगुप्त जैसे वीर क्षत्रिय ने मिलकर विदेशियों तथा नंद सम स्वदेशी अधार्मिक शक्तियों से संघर्ष किया था।

भारतीय जीवन का लक्ष्य 'मुक्ति' है। अतः राज्याधिकार की आकांक्षा भी इस मुक्ति के सम्मुख हेय है। 'अजातशत्रु' नाटक में गौतम बुद्ध महाराजा बिम्बसार को आध्यात्मिक जीवन के हेतु राज्य परित्याग का उपदेश देते हैं, जिसका वे पालन करते हैं।[2]

'विशाख' नाटक में आध्यात्मिक एवं नैतिक उच्चादर्शों के प्रतीक प्रेमानन्द जी हैं, जो प्रेम, दया, सत्य का पालन करते हैं। प्रेमानन्द जी कहते हैं—'सत्कर्म हृदय को विमल बनाता है और हृदय में उच्च वृत्तियां स्थान पाने लगती हैं, इसलिये सत्कर्म कर्मयोग का आदर्श बनाना आत्मा की उन्नति का मार्ग स्वच्छ और प्रशस्त करना है।"[3]

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र लिखित 'अशोक' नाटक में कलिंग के महाराज सत्यदत्त, कलिंगविजय के उपरान्त युद्ध की विभीषिका से व्यथित एवं पश्चाताप की अग्नि से दग्ध अशोक को सत्य-प्रेम के प्रचार का उपदेश देते हैं, जिसका पालन अशोक

१—जयशंकर प्रसाद : चन्द्रगुप्त : पृ० ५२ : तृतीय संस्करण

२—वही, अजातशत्रु : पृ० ३४

३—जयशंकर प्रसाद : विशाख : पृ० ३७

ने अपने जीवनकाल मे किया था।"[1]

सियारामशरण गुप्त ने भगवान गौतम बुद्ध के पूर्व की कथा लेकर इन्द्रप्रस्थ के राजा बोधिसत्व सुतसोम के आचरण द्वारा आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्र खीचा है। सुतसोम की आध्यात्मिकता मनुष्यमात्र की सद्भावना के विश्वास पर आश्रित है।[2]

अंग्रेजी शासक वर्ग ने, भारतीय जनता पर अपनी श्रेष्ठता और प्रभुत्व का ऐसा कुप्रभाव जमा रखा था कि वह भौतिक दृष्टि से ही नही आध्यात्मिक दृष्टि से भी अपने को हीन समझने लगी थी। देशवासियो को अपने अतीत गौरव की आध्यात्मिक श्रेष्ठता के प्रति गौरवान्वित करने के लिये उग्र जी का 'महात्मा ईसा' नाटक अचूक मन्त्र है। पश्चिमी जगत् की श्रेष्ठता की भ्रान्त धारणा का उन्मूलन करने मे भी यह नाटक अति सहायक था। उग्र जी ने इस नाटक द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि ईसाई-धर्मानुगामी अंग्रेज, जिस भारत को हीन दृष्टि से देखते हैं, उसी भारत देश मे उनके धर्म-प्रवर्तक, उनके ईश्वर के पुत्र ईसा को सत्य-अहिंसा, सेवा त्याग आदि की शिक्षा मिली थी। नि सन्देह उग्र जी का यह प्रयत्न हिन्दी-साहित्य को शाश्वत देन है, जो युग युग तक पश्चिमी देशो की तुलना मे भारत के गौरव को अक्षुण्ण रखेगा।

हिन्दी-नाट्य-क्षेत्र मे जयशकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भारतीय इतिहास की महान् आत्माओ द्वारा, भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष का जो रूप प्रस्तुत किया है, वह भारत की आत्मा के अमृत मन का निचोड है। हमारे पूर्वजो ने जिस सत्य-ज्ञान, यज्ञ तप, अहिंसा, सर्वभूतहित-न्याय, धर्म आदि दिव्य भावो को अपने आचरण द्वारा मूर्त किया था, उनकी अभिव्यक्ति भी प्रसाद जी के नाटको मे मिलती है जैसे विशाख मे प्रेमानन्द, अजातशत्रु मे गौतम बुद्ध और चन्द्रगुप्त मे दाण्ड्यायन आदि के चरित्र। भारत की प्राचीन सस्कृति और धर्म के इस महत्वपूर्ण अग का दृश्य काव्य द्वारा दिग्दर्शन कराकर, प्रसाद जी और मिश्र जी ने अपने युग के ह्रासोन्मुख जीवन को आध्यात्मिकता के उच्चादर्श पर प्रतिष्ठित किया है। प्रसाद जी की आध्यात्मिक अनुभूति देश-जीवन मे नव-चेतना का सचार करने वाली है और प्राणि-मात्र के कल्याण की कामना से परिपूर्ण है।

हिन्दी नाटकों में अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष के चित्र

नाट्य साहित्य मे चित्रित भारतीय आध्यात्मिक उत्कर्ष के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस देश मे आध्यात्मिकता के मूलाधार नैतिक आदर्श भी

१—लक्ष्मीनारायण मिश्र अशोक : पृ० १६५
२—सियारामशरणगुप्त पुण्य-पर्व : पृ० १०८

श्रेष्ठ थे। बेचन शर्मा 'उग्र' के महात्मा ईसा नाटक मे नाटककार ने इस ओर विशेष रूप से पाठको का ध्यान आकृष्ट किया है कि महात्मा ईसा की नैतिकादर्शों की शिक्षा भारत मे विवेकाचार्य के आश्रम मे मिली थी।[1] उन्होने इस नाटक में स्वय ईसा के मुख से भारतवासियो की सभ्यता, उदारता, सहृदयता आदि विशेषताओ का उल्लेख एव प्रशसा कराई है।[2] महात्मा ईसा ने जिस नैतिकता तथा आत्मिक श्रेष्ठता का आदर्श रखकर समस्त पश्चिमी जगत् को अपना अनुयायी बना लिया था उसकी शिक्षा उन्हे इसी देश मे मिली थी। लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'अशोक' नाटक मे विदेशी नारी डायना भारतवासियो की अतिथि सत्कार भावना सरलता आदि विशिष्ट गुणो की प्रशसा करती है। आज जो भारत हीन समझा जाता है, उसकी नैतिकतापूर्ण आदर्शवादिता युग-युग से अभिनन्दनीय रही है।

जयशंकर प्रसाद ने अपने सभी नाटको मे ऐसे कथानको की योजना की है, जिनसे भारतवासियो को अतीत के आदर्श और इतिहास की तुष्टि पर नैतिक एव चारित्रिक उत्कर्ष की शिक्षा मिलती है। 'अजातशत्रु' नाटक मे प्रसाद जी न मल्लिका के प्रसग को इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये इतना विस्तार दिया है। उसके नैतिक आदर्शों तथा चारित्रिक दृढता से युक्त व्यक्तित्व मे प्रसेनजित्, विरुद्धक, दीर्घकारायण जैसे मानवीय दुर्बलताओ मे युक्त पात्रो का हृदय परिवर्तन हो जाता है। गौतम बुद्ध तो नैतिक आदर्शों के मूर्त रूप हैं। ऐतिहासिक घटनाओ, सघर्ष तथा द्वन्द्व के बीच प्रसाद जी ने नैतिकता और आदर्श की रक्षा की है।[1] 'विशाख' नाटक मे प्रेमानन्द के सद्-उद्योग और विशाख के चारित्रिक आदर्श से पिघल कर नरदेव के चरित्र का उत्थान होता है। राज्यश्री तथा हर्ष 'राज्यश्री नाटक म नैतिकता के प्रतीक हैं। चन्द्रगुप्त, स्कदगुप्त, भारतीय इतिहास के वीर राजा ही नही हैं, प्रत्युत् नैतिकता के आदर्श भी हैं। गाधी जी ने जन जीवन के कल्याण के लिए नैतिकता के जिस आदर्श को राष्ट्रवाद के लिए आवश्यक माना था, प्रसाद जी ने उसको ऐतिहासिक कथाओ द्वारा मुखर-रूप प्रदान किया है।

मुस्लिम-काल मे महाराणा प्रतापसिह तथा अन्य राजपूतो ने आदर्श का जो ज्वलत रूप प्रस्तुत किया था, उसका ओजपूर्ण वर्णन 'महाराणा प्रताप सिंह व देशोद्धार'

१—बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा पृ ४८

२—वही : पृ २०

१—'प्रसाद के नाटकों में आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों शक्तियों के सामञ्जस्य से मानव की गहनतम नैतिकता विकासोन्मुख बनती है। प्रसाद ने एक सिद्धहस्त कलाकार के समान इसी नैतिकता के बल से मानवत्व और देवत्व को एकाकार कर दिया है। यह प्रसाद के नाटकों की बहुत बड़ी विशेषता है।'

दशरथ ओझा हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास : पृ ५०९

नामक नाटक मे मिलता है। पद्मावती अकबर से कहती है :—

सीता की आह से दशानन जला था।
द्रौपदी के तेज से दुर्योधन बला था॥
सावित्री के सत्य से यमराज फसा था।
नर्मदा के तेज से दिनराज नसा था।
यदि मेरा कहा न मान कर पाप करोगे।
तो शीघ्र ही इस कर्म से बिन मौत मरोगे॥[1]

गोविन्दवल्लभ पत ने राजपूताने की एक प्राचीन गौरव-गाथा लेकर 'राजमुकुट' नाटक की रचना की है। इस नाटक मे वीरागना पन्ना धाय स्वामिभक्ति की वेदी पर अपने दुधमुहे बच्चे का बलिदान देकर मेवाड की वश-बेलि को विनष्ट होने से बचा लेती है। क्षत्राणी पन्ना का अनुपम त्याग, अपूर्व देश-भक्ति, नैतिकतापूर्ण चारित्रिक उत्कर्ष आज भी राजस्थान की महिलाओ के आदर्श का जीवित रूप है।[2]

श्री हरिकृष्ण प्रेमी ने हिन्दी नाट्य क्षेत्र मे अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष के चित्रण मे हिन्दू और मुसलमान दोनो जातियो और धर्मों का समान एवं उदार भाव से ध्यान रखा है। भारत मे सच्चे अर्थों मे राष्ट्रीय जागृति के लिए उन्होंने पक्षपात-विहीन दृष्टि से भारतीय इतिहास की उच्चतम मुसलमान आत्माओ के नैतिकतापूर्ण आदर्श जीवन का भी चित्रण किया है। 'रक्षा-बन्धन' नाटक इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है। राणा सागा की विधवा रानी कर्मवती ने जातीयता अथवा धार्मिकता का विचार छोड कर अपनी रक्षा के लिए मुगल बादशाह हुमायूँ को राखी भेजी, तो नैतिक धर्म के नाते ही वह तत्काल उनकी रक्षा के लिए चल दिये थे। *सच्चे मुसलमान का काम सच्चाई का साथ देना है।"*[3] हुमायू के यह शब्द उसके नैतिकतापूर्ण आदर्श चरित्र का उद्घाटन करते हैं। नैतिक सिद्धान्तो के समक्ष उसने 'सल्तनत' को भी नगण्य समझा था—'सल्तनत जाय, पर मैं दुनिया को यह कहते नही सुनना चाहता कि मुसलमान बहन की इज्जत करना नही जानते। तख्त से उतर कर अगर किसी सच्ची बहन के दिल मे जगह पा सकू, तो अपने आपको दुनिया का सबसे बडा खुशकिस्मत इन्सान समझूँगा। बहन कर्मवती तुम्हारी राखी मुझे वही ताकत दे, जो वह राजपूतो को देती आई है......'[4] इसी प्रकार मेवाड के महाराणा विक्रमादित्य

१—महाराणा प्रतापसिंह व देशोद्धार नाटक : पृ० २७,
२—गोविंदवल्लभ पत : राजमुकुट : पृ० ६३,
३—हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन : पृ० ४६,
४—हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन : पृ ४६,

ने मुसलमान अतिथि चादखा की अतिथि-सेवा के लिये बहादुरशाह के रण का निमन्त्रण स्वीकार किया था।[1] महारानी कर्मवती तथा अन्य वीर राजपूत क्षत्राणियो ने सतीत्व-धर्म की रक्षा के लिए जौहर की ज्वाला मे भस्म होकर नैतिकता का जो उत्कृष्ट उदाहरण विश्व की नारी के सम्मुख रखा था, उसका भी ओजपूर्ण चित्र नाटक मे मिलता है।

'शिवा साधना नाटक मे 'प्रेमी जी' ने शिवाजी के चरित्र को अन्य साहित्यकारो की अपेक्षा भिन्न रूप मे चित्रित किया है। शिवाजी की नैतिकता मे धार्मिक विद्वेष की तनिक भी गध नही थी। कट्टर हिन्दू होते हुए भी वे इस्लाम धर्म का आदर करते थे। कोकण के सूबेदार मौलाना अहमद की रूपवती पुत्रवधू को जब शिवाजी के अनुचर आबाजी सोनदेव ने प्रस्तुत कर उपपत्नी के रूप मे ग्रहण करने का आग्रह किया तो उन्होने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर उसे दडित किया। मौलाना की पुत्रवधू को सादर सम्मान सहित मौलाना को लौटा कर शिवाजी ने अपनी चारित्रिक दृढता एव महानता का उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।[2]

गाधी जी ने राष्ट्रवाद का जो उदात्त एव महान रूप देश के सम्मुख रखा था, उसमे भारत मे बसने वाली सभी जातियो तथा धर्मों का समाहार हो जाता था। उसी की सुन्दर अभिव्यक्ति प्रेमी जी के ऐतिहासिक नाटको, 'रक्षा बन्धन, 'शिवा-साधना' आदि मे हुई है। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिये प्रयत्नशील गाधी जी के प्रयासो को 'प्रेमी जी' ने मुस्लिम काल से ली गई ऐतिहासिक कथाओ मे मूर्त किया है। 'रक्षा-बन्धन' जैसे नाटको मे समान रूप से हिन्दुओ तथा मुसलमानो की अतीत-कालीन नैतिक उत्कर्ष की भावना परितुष्ट हो सकती है। दोनों ही जीवन के लिए धार्मिक एव जातीय सकीर्णता से मुक्त पूर्व पुरुषो के नैतिक आदर्शों को अपना सकते हैं।

सेठ गोविन्ददास ने इतिहास के अनुरूप हर्ष का चित्रण करते हुए, वीरता और सच्चरित्रता का अद्भुत सम्मिश्रण दिखाया है। इतिहास साक्षी है कि हर्ष की वीरता सच्चरित्रता एव नैतिकता से नियन्त्रित थी।[3]

अन्त मे यह नि सन्देह कहा जा सकता है कि नाटकों मे भी अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष का उज्ज्वल चित्र मिलता है।

भौतिक उत्कर्ष :

हिन्दी नाटकों मे भी भारत की प्राचीन समृद्धि और वीर-भावना का उल्लेख मिलता है। यह देश अपने भौतिक वैभव तथा वीर-भावना के लिये विश्व विख्यात था। हिमालय, ब्रह्मपुत्र, गगा आदि प्राकृतिक गौरव से युक्त देश की विभूति असीम

१—हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन, पृ० २३

२—हरिकृष्ण प्रेमी शिवा-साधना : पृ० ३९,

३—गोविन्ददास ग्रथावली खण्ड—१ पृ० ३१२,

थी।[1] महात्मा ईसा नाटक के प्रथम दृश्य मे ही उग्र जी ने भारत की धन-सम्पत्ति के उत्कर्ष का उल्लेख कर दिया है।[2]

यद्यपि भारतीय जीवन ने 'लौकिक-सम्पत्ति' की अपेक्षा आध्यात्मिकता और नैतिकता को जीवन का लक्ष्य माना था, लेकिन भारत भौतिक ऐश्वर्य की दृष्टि से समृद्ध था। जयशकर प्रसाद के नाटको मे आध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही मूलाधार है किन्तु उनके प्राय सभी नाटको से भारत की विभूति, समृद्धि, सम्पत्ति की ध्वनि अप्रत्यक्ष रूप से गु जित होती है। 'राज्यश्री' नाटक मे हर्षवर्द्धन अपनी समस्त सम्पत्ति दान दे देते हैं। भौतिक धन-सम्पत्ति के साथ प्राण-दान देने मे भी उन्हें सकोच नही है। चीनी यात्री हुएनच्वाग द्वारा भारत के इस आदर्श की प्रशसा मे कहलाया गया है—'यह भारत का देव दुर्लभ दृश्य देखकर सम्राट्! मुझे विश्वास हो गया कि यही अमिताभ की प्रसव भूमि हो सकती है।'[3] चतुरसेन शास्त्री के 'राजसिंह' नाटक म तुलादान के अभूतपूर्व दृश्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुस्लिम काल तक भारत अत्यन्त समृद्ध था।[4]

भौतिक उत्कर्ष के अन्तर्गत सर्वाधिक चित्रण भारत की वीर भावना का हुआ है। बदरीनाथ भट्ट के 'दुर्गावती' नाटक मे इतिहास प्रसिद्ध वीर नारी दुर्गावती का अकबर से युद्ध करने का प्रशस्त वर्णन मिलता है।[5]

झुक सकता है सूरज, लेकिन दुर्गावती नहीं झुक सकती,
रुक सकती है जमना, पर रानी की तेग नहीं रुक सकती।
बिजली है वह, बाज बहादुर तक को झुलसाया है जिसने,
अनगिनती रजवाड़ों को पामाल किया—खाया है जिसने॥[5]

हमारे इतिहास ने वीर पुरुष ही नही, वीर-नारियो को भी जन्म दिया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'उत्सर्ग' नाटक मे राजपूती वीरता का वर्णन और देश पर बलिदान हो जाने की प्रचड भावना मिलती है।[6] इस नाटक मे राजपूत वीर

१—'हमारे हिमालय के मस्तक-सा और किसी भी भूधर का मस्तक ऊँचा नहीं है। हमारे ब्रह्मपुत्र से बड़ा और कोई भी नद नहीं है। हमारी गगा से अधिक स्वास्थ्यकर सुस्वादु और पवित्र पानी वाली और कोई भी नदी नहीं है।'

—बेचन शर्मा 'उग्र' महात्मा ईसा पृ० ६०

२—बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा पृ० १६

३—जयशकर प्रसाद राज्यश्री : पृ० ७२

४—आचार्य चतुरसेन शास्त्री . राजसिंह : पृ० १

५—बदरीनाथ भट्ट दुर्गावती पृ० २१

६—आचार्य चतुरसेन शास्त्री : उत्सर्ग . पृ० १६

नारियों की वीरता एवं त्याग का भी प्रदर्शन किया गया है। गोविन्दवल्लभ पन्त के 'वरमाला' नाटक में वीरता का सुन्दर प्रदर्शन मिलता है। जयशंकरप्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध वीर पुरुषों के शौर्य का ओजस्वी वर्णन मिलता है, जिन्होंने विदेशी शक्तियों से टक्कर लेकर उन्हें पददस्थ किया था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने विश्व-विजय के आकांक्षी सिकन्दर को पराजित कर इतिहास में अपना विशेष स्थान बनाया है, जिसका विस्तृत उल्लेख प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त नाटक में मिलता है। चन्द्रगुप्त, हर्षवर्धन, स्कंदगुप्त आदि उनके नाटकों के इतिहास-प्रसिद्ध वीर पुरुष हैं और 'ध्रुवस्वामिनी', 'राज्यश्री' वीर नारियाँ। चाणक्य की नीति भारत के राजनीतिक उत्कर्ष का उदाहरण है जिसका सफल प्रतिपादन प्रसाद जी के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में हुआ है। प्रसाद जी के नाटकों को भारतीय इतिहास के हिन्दू काल की सांस्कृतिक उत्कृष्टता का आलेख कहा जा सकता है, जिसमें उनकी कलात्मक प्रतिभा के संयोग से मणिकांचन योग उपस्थित हुआ है।

जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' ने 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए, महाराणा प्रताप द्वारा किये युद्ध, कष्ट सहन, त्याग आदि का ओजपूर्ण चित्र अंकित किया है। 'महाराणा प्रतापसिंह व देशोद्धार' नाटक में भी देश के लिए प्रताप द्वारा किये उत्सर्ग का वर्णन मिलता है। उदयशंकर भट्ट के 'दाहर अथवा सिंध पतन' में भारतीय जनता के वीरत्व का प्रदर्शन हुआ है। इस नाटक में लेखक ने इस तथ्य की ओर विशेष रूप से पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है कि केवल क्षत्रिय जाति ही वीर नहीं थी अन्य जातियों में भी वीरता की कमी नहीं थी। सिंध के राजा दाहर की वीरता की प्रसिद्धि अरब तक फैली हुई थी। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'अशोक' नाटक में देश के लिए प्रियजनों का उत्सर्ग भारतीय नारी की विशेषता मानी है। हमारा इतिहास इसका साक्षी है कि एकमात्र पुत्र को सेना में भर्ती कर देना मातृत्व की सबसे बड़ी आकांक्षा थी।[1] वीरत्व क्षत्रिय बालकों का सौभाग्य था—'राजकुमारी मैं क्षत्रिय बालक हूं, सैनिक बनना सौभाग्य समझता हूं। माता का बन्धन था सो वह भी नहीं चाहती हैं। कैसा सुयोग है।'[2] उदयशंकर भट्ट के नाटक 'दाहर अथवा सिन्ध पतन' में भारतीयों की वीरता का उद्घाटन हुआ है।

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक मुस्लिम-कालीन भारतीय इतिहास के वीरों का मूर्त रूप हैं। उन्होंने निष्पक्ष भाव से इतिहास के हिन्दू और मुसलमान वीर राजाओं और बादशाहों का सजीव चित्र खींचा है। 'रक्षा-बन्धन', 'शिवा-साधना', 'प्रतिशोध' आदि इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। 'रक्षा-बन्धन' नाटक में एक ओर राजपूत वीर पुरुषों और नारियों की वीरता का प्रदर्शन है तो दूसरी ओर मुगल बादशाह हुमायूं के शौर्य का

१—लक्ष्मीनारायण मिश्र : अशोक पृ० ११३

२—वही, पृ० ११३

उल्लेख । यदि राजपूतो ने 'कर्तव्य पथ पर प्रेम का उत्सर्ग करना सीखा था ।'[1] तो *मुगल बादशाह हुमायू ने भी कर्तव्य-पालन के लिए जातीयता और धार्मिकता को ठुकरा कर वीरत्व का प्रदर्शन किया था, सच्चा वीर वही है, खरा राजपूत वही है, जो न हिन्दुओ के अन्याय का हिमायती है और न मुसलमानो के । वह न्याय का साथी है और आजादी का दीवना ।*[2] मेवाड के महाराणा विक्रमादित्य के यह शब्द हुमायू के चरित्र पर पूर्णतया घटित हो जाते हैं, क्योकि उसने अन्यायी मुसलमान बहादुरशाह की अपेक्षा हिन्दू रानी कर्मवती के धर्म का बन्धन स्वीकार किया था। हुमायू की वीर-भावना एक सच्चे मुसलमान और एक सच्चे इन्सान की वीर-भावना थी । नि सन्देह 'प्रेमी' जी ने इसके द्वारा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का उच्चतम उदाहरण रखा है । भारतीय राजपूतो की वीर भावना का प्रदर्शन करने वाले कुछ एकाकी नाटक भी मिलते हैं जैसे सुदर्शन कृत 'राजपूत की हार', 'प्रबला' आदि ।[3]

इस काल मे रचित प्राय सभी नाटको मे देश, जाति, वश के सम्मान के लिए प्राणोत्सर्ग का आदर्श मिलता है । देशवासियो को इन नाटको द्वारा, साम्राज्यवाद के उन्मूलन के लिए साहस, ओज तथा सगठन की शक्ति का सदेश दिया गया है । नाटककारो ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत युग युग से एक राष्ट्र है, उसे राष्ट्र बनना नही है । 'महात्मा ईसा' नामक नाटक मे 'उग्र' जी द्वारा अकित यह शब्द यथार्थ एव सत्य है—'हमने ससार के इतिहास का यथासाध्य मथन किया है । परन्तु हमे *दधीचि के टक्कर के दान वीर, हरिश्चन्द्र के टक्कर के सत्य-वीर, रामचन्द्र के टक्कर के आदर्श-पुरुष तथा युद्धवीर और भगवान कृष्ण के टक्कर के धर्मवीर कही भी नही मिले । हनुमान और अर्जुन की चरण धूलि भी कही नही नजर आई ।*"[4]

कथा-साहित्य मे अतीतकालीन उत्कर्ष का चित्रण

हिन्दी साहित्य के इस युग मे अतीतकालीन भारतीय उत्कर्ष का दिग्दर्शक कथा-साहित्य अधिक मात्रा मे नही मिलता । ऐतिहासिक एव पौराणिक उपन्यासो तथा कहानियो द्वारा यह कार्य सभव हो सकता था । भारत के प्राचीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्रण जिन एकाध उपन्यासो में हुआ है वे साहित्य तथा कला-दृष्टि से अधिक उच्चकोटि के नही हैं। पडित रामगोविन्द त्रिवेदी लिखित 'महर्षि प्रह्लाद' (ज्येष्ठ सवत् १६८० विक्रमी), उपन्यास मे प्रह्लाद के उच्च आध्यात्मिक नैतिक गुणो का अनुलेखन हुआ है । इस उपन्यास मे वर्तमान को दृष्टि मे रख कर सत्य तथा अहिंसा के महत्व का प्रकाशन किया गया है ।

१—हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा-बन्धन . पृ० १७
२—वही, पृ० २१
३—सुदर्शन : तीर्थ यात्रा : पृ० २००
४—बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा . पृ० ६०

ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम मिलते हैं। इस काल के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा है।[1] इनके उपन्यासों का क्षेत्र प्राय बुन्देलखंड रहा है। 'गढ़-कुण्डार' इस समय का प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें क्षत्रियों की वीरता उनके आत्मसम्मान तथा स्वाभिमान का वर्णन किया गया है। खगार एवं बुन्देले अपनी आन पर मर मिटे। इस उपन्यास मे अग्निदत्त नारी की मर्यादा और घायल शत्रु की रक्षा मे प्राण देता है।[2]

गढ़ कुण्डार म वर्माजी ने अपने युग की कतिपय देश दुर्दशा से सम्बन्धित समस्याओ को भी प्रच्छन्न रूप म लेकर उनमे देशवासियो को सावधान रहने का सदेश दिया है। वर्मा जी न प्रसाद जी के नाटकों की भांति संघर्ष एव राजनीतिक उथल पुथल का शान्ति म पर्यवसान कर सगठित राष्ट्र, एक राष्ट्र तथा राष्ट्रीय सास्कृतिक गौरव का उत्कृष्ट रूप नहीं रखा है।

जयशकर प्रसाद की 'सालवती' कहानी म अतीतकालीन भारत की गणतन्त्रात्मक शक्ति का वर्णन मिलता है। 'ममता' कहानी म भारतीय विधवा नारी का उत्कृष्ट नैतिक चरित्र चित्रित किया है।[3] प्रेमचन्द न भी राजपूतों की वीर भावना के प्रदर्शन के हेतु कुछ सुन्दर ऐतिहासिक कहानियां लिखी हैं। जैसे 'राजा हरदौल',[4] 'रानी सारन्धा',[5] 'राज्य भक्त'।[6] राज्यभक्त कहानी म राजा बख्तावरसिंह की वीरता व साथ देशभक्ति भी प्रशसनीय है।

सुदर्शन ने भारतीय इतिहास के अति निकट युग स, सिक्ख महाराजा रणजीत सिंह स सबधित कहानी 'पथ की प्रतिष्ठा' लिखी है। इस कहानी द्वारा उन्होंने महाराज रणजीतसिंह तथा सिक्ख पथ की न्यायप्रियता का उत्कर्ष दिखाया है। महाराजा रणजीतसिंह 'न्याय के सम्मुख व्यक्तित्व की परवा करना शासन के लिए घातक समझते थे।[7] अत पथ की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल तथा प्रजा की इच्छा के विरुद्ध

१—'वर्तमान काल में ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र मे केवल डा० वृन्दावनलाल वर्मा दिखाई दे रहे हैं। उन्होंने भारतीय इतिहास के मध्ययुग के प्रारम्भ में बुन्देलखंड की स्थिति लेकर 'गढ़कुण्डार' और 'विराटा की पद्मिनी' नामक दो बड़े सुन्दर उपन्यास लिखे हैं। 'विराटा की पद्मिनी' की कल्पना तो अत्यन्त रमणीय है।'
—रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ० ४६४

२—वृन्दावनलाल वर्मा गढ़कुडार पृ० २१७
३—जयशकरप्रसाद आकाश-दीप पृ० १६
४—प्रेमचन्द मानसरोवर भाग ६ : पृ० १२
५—वही, पृ० ४५
६—वही, पृ० २५१
७—सुदर्शन : प्रभात : पृ० ३८

नर्तकी मोरा से विवाह कर लेने पर उन्होंने साधारण प्रजा की भाति सगन मे आकर क्षमा प्रार्थना की और दण्ड स्वीकार किया। भारतीय राजनीति दर्शन मे सत्य के सम्मुख राजा तथा प्रजा, शासक तथा शासित समान रूप से दण्डित थे। अकाली फूर्लासह की सच्चरित्रता, न्यायनिष्ठा तथा सत्यता अद्‌भुत है।[1] यह नैतिक उत्कर्ष का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त महाराणा रणजीतसिंह की वीरता का भी उल्लेख मिलता है।[2]

निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य मे अकित अतीतकालीन भारत के आध्यात्मिक नैतिक, भौतिक उत्कर्ष के चित्र देश जीवन मे आत्मगौरव और स्वाभिमान की भावना का सचरण करने म समर्थ हुए। साहित्य-मनीषियो ने अपनी लेखनी द्वारा पौराणिक कथाओ तथा इतिहास की महान् आत्माओ, वीर-पात्रो और आदर्श नारियो की जीवन गाथाओ को सजीव रूप प्रदान किया है। पतनोन्मुख देशवासियो के लिए अतीत गौरव का चित्रण शक्तिदायक, होता है जिससे अभिमान से भर कर वे पुन पूर्व उत्कर्ष की प्राप्ति के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। अपनी प्राचीन सभ्यता तथा सस्कृति के प्रति अभिमान की भावना राष्ट्रवाद का आवश्यक तत्व है। गाधीजी ने देशवासियो मे राष्ट्रीय जागृति के लिए अपने प्राचीन धर्म, इतिहास तथा गौरव को आवश्य माना था।[3] अतीत की गहरी जडो पर ही वर्तमान और भविष्य अवस्थित है।

भारतेन्दुयुगीन साहित्य मे अतीत-गौरव-गान की परम्परा का बीजारोपण हुआ था। परन्तु उस युग के साहित्यकारो की दृष्टि अतीत की अपेक्षा वर्तमान पर अधिक थी। उनकी कृतियो मे पूर्व-पुरुषो के उत्कर्ष पूर्ण जीवन के चित्रण मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का रग अधिक गहरा था। इसमे निराशा की मात्रा अधिक थी। अत अतीत-गौरव-गान का उत्साहवर्द्धक विशुद्ध रूप नही मिलता। इसके अतिरिक्त इतिहास के दुर्बल पक्ष की ओर भी इनका ध्यान अधिक आकृष्ट हुआ था। भारत के पतन के कारणो का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है, जिसमे अतीत-गौरव कुछ धूमिल पड जाता है। भारतेन्दुयुगीन हिन्दी साहित्यकार मध्ययुगीन शासको के अत्याचारो को नही भूले थे। उनमे मुसलमानो के प्रति सहिष्णुता नही मिलती। अत इस सकुचित मनोवृत्ति के कारण भारतीय इतिहास के मुस्लिमकाल के मुसलमान पात्रो की विशेषताओ का वर्णन अछूता रह गया। केवल हिन्दू इतिहास का ही उत्कृष्ट रूप मिलता है। द्विवेदी युग मे आर्य समाज, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक जैसे भारतीयता के समर्थक राष्ट्रीय नेताओ के उपदेशो तथा राजेन्द्रलाल मित्र और भडारकर की ऐतिहासिक खोजो के फलस्वरूप वैदिक-धर्म, सस्कृति, प्राचीनादर्श तथा इतिहास

१—सुदर्शन : सुप्रभात पृ० ३५

२—वही, पृ० ४६

3—Dr Buch . The Rise and Growth of Indian Nationalism—P 42

का अधिक उज्ज्वल रूप सम्मुख आया। हिन्दी साहित्य में भी पूर्व पुरुषों की भूलों अथवा न्यूनताओं की अपेक्षा अतीत के उज्ज्वल पक्ष का विशुद्ध रूप में प्रतिपादन किया गया। अतीतकालीन आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक उत्कर्ष का प्राजल रूप प्रस्तुत किया। इसमें सर्वाधिक बल वीर-पुरुषों के ओजस्वी चरित्र के वर्णन पर दिया गया। अब देश में स्वाभिमान की भावना आ गई थी। लेकिन द्विवेदी युग के अतीत-गौरव का सम्बन्ध हिन्दुओं के धर्म, इतिहास, दर्शन एवं साहित्य की उज्ज्वलता में ही निहित रहा।

आलोच्य-काल के अतीत-गौरव को गाधीवादी विचारधारा से प्रेरणा मिली। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, गाधीजी की धार्मिक विचारधारा भारत के पुरातन धर्म-ग्रन्थों से अभिप्रेरित थी और नैतिकता से पूर्ण तथा परम्परागत थी। अत हिन्दी साहित्यकारों ने वेद-ग्रन्थों के महत्व का प्रतिपादन किया, हिन्दू धर्म तथा संस्कृति का उत्कृष्ट चित्र खीचा और ऐतिहासिक व्यक्तियों की आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक विशेषताओं का वर्णन किया। इस काल के अतीत गौरव गान में आध्यात्मिकता तथा नैतिकता की प्रधानता मिलती है। हिन्दी काव्य क्षेत्र में पंडित रामचरित उपाध्याय, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, आदि ने ऋषियों मुनियों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक युग-पुरुषों एवं नारियों के चारित्रिक उत्कर्ष का भावात्मक चित्रण किया है। इस दिशा में राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त का नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय है, जिन्होंने 'साकेत', 'पंचवटी', 'यशोधरा', 'सिद्धराज' आदि महाकाव्य और खण्ड काव्य के साथ अनेक स्फुट कविताओं द्वारा भारत के अतीत-गौरव का उत्कृष्ट चित्र रखकर देश को सास्कृतिक जागरण का सदेश दिया है। वैष्णव कवि गुप्त जी की विचारधारा में हिन्दुत्व का पक्षपातपूर्ण अनुरोध नहीं है। 'गुरुकुल' की रचना द्वारा सिक्खों के धर्म गुरुओं के महान् चरित्रों का उद्घाटन कर और 'यशोधरा' की रचना द्वारा बौद्धों को साथ लेकर गुप्त जी ने अतीत के आधार पर हिन्दू, बौद्ध और सिक्खों के एकीकरण का प्रयास किया है। मुसलमान तथा ईसाई धर्म के प्रति इनमें विद्वेष भाव नहीं था। गाधीजी के प्रभाव के कारण गुप्त जी ने हिन्दू-धर्म का विकसित रूप लिया है जिसमें अन्य धर्मों के समाहित होने के लिए स्थान है।

हिन्दी नाट्यकारों ने भी पौराणिक एव ऐतिहासिक आख्यानों में अपने कथा वृत्त चुने हैं। ऋषि मुनियों के जीवन-चरित्र की अपेक्षा भारतीय ऐतिहासिक परपरा के उन्मूलन में इनकी वृत्ति अधिक रमी है। वीर-पुरुषों के सघर्षमय जीवन के चित्रण में नाट्य कला की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। नाटकों में चर्चित ऐतिहासिक महा-पुरुषों की वीरता आध्यात्मिकता तथा नैतिकता द्वारा नियन्त्रित है। इसी कारण डा० दशरथ ओझा ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी नाटक उद्भव और विकास' के ऐतिहासिक नाटकों को दो वर्गों में विभाजित किया है—आध्यात्मिक शक्ति प्रधान तथा आधिभौतिक

शक्ति प्रधान। अधिभौतिक शक्ति प्रधान नाटकों के मूल में भी नैतिकता का सुदृढ आधार है जिसमे स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष को देशवासियो का जन्मसिद्ध अधिकार एव स्वधर्म उद्घोषित किया गया है। इसका यह कारण है कि प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय महासभा द्वारा सचालित स्वातन्त्र्य-सग्राम मे नैतिकता का आधार ग्रहण किया गया था और गाधीजी ने सम्पूर्ण राष्ट्र-जीवन को ही आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक शक्तियो के सामजस्य मे भारतीय सस्कृति की नैतिकता विकासोन्मुख लक्षित होती है। उग्र जी का 'महात्मा ईसा' नाटक भी इसी वर्ग में रखा जायगा। अन्य नाट्यकारो ने मुस्लिम काल के वीर हिन्दू राजाओ और रानियों के चरित्र लेकर नैतिक एव भौतिक आदर्शपूर्ण उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत किए हैं। *यद्यपि अधिकाश नाटककारों* ने इतिहास के हिन्दूकाल से (जबकि भारत किसी विदेशी सत्ता के अधीन नही हुआ था) अथवा मुस्लिम काल से हिन्दू वीर-चरित्रो को ही चुना है, तथापि इनमे मुसलमान शासको के प्रति अधिक कटु भावना नही मिलती। सन् १६३० के लगभग हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने हिन्दू मुस्लिम सास्कृतिक एकता को दृष्टि मे रख कर, दोनो जातियो के सम्मिलित इतिहास से उत्कृष्ट व्यक्तित्व लेकर नाटक लिखने की परम्परा का प्रारम्भ किया। राष्ट्रवाद के विकास की दृष्टि से इनका प्रयास प्रशसनीय है। इस समय हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य बढ गया था, और गाधीजी तथा अन्य राष्ट्रीय नेतागण दोनो जातियो की एकता के लिए प्रयत्नशील थे। अब तक हिन्दी साहित्य के अतीत गौरव-गान की परम्परा मे जो नाटक लिखे गये थे वे हिन्दुओ की जातीय भावना की ही परितुष्टि कर सकते थे। 'प्रेमी' जी ने राष्ट्रवादी साहित्य को नवीन दिशा मे मोडा।

उपन्यास अथवा कहानियो में आध्यात्मिकता की अपेक्षा आधिभौतिक गुणो का ही वर्णन हुआ है। वृन्दावनलाल वर्मा ने बुन्देलखण्ड की कथाओ एव विशिष्ट व्यक्तित्व को लेकर उपन्यास लिखे हैं। राष्ट्रीय भावना के उद्बोधन की दृष्टि से इनके ऐतिहासिक नाटक अधिक उपयोगी नही हैं। शौर्य प्रदर्शन मे जातीयता, झूठे-सम्मान और मर्यादा का स्वर मिल जाने से इनके 'गढ-कुण्डार' उपन्यास को राष्ट्रीय उपन्यास की सज्ञा नही दी जा सकती। इनके द्वारा भारतीय इतिहास के अन्य पक्षो का स्पर्श नही किया गया है। इस काल मे रचित ऐतिहासिक उपन्यासो की सख्या भी अति अल्प है। जयशकर प्रसाद, प्रेमचद, सुदर्शन आदि ने अवश्य कुछ सुन्दर ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं। प्रसाद जी की कहानियो मे कल्पना, भावुकता और *आध्यात्मिकता का प्राधान्य है। राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से लिखा कथा-साहित्य* नही मिलता।

अतीत-गौरव के वर्णन मे हिन्दी साहित्यकारो ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत के पास केवल भौगोलिक एकता ही नही है प्रत्युत् उनके धर्म के मूल रूप मे भी एकता है। रामायण, महाभारत, गीता आदि आदर्श-राष्ट्रीय ग्रन्थ हैं और राम, कृष्ण, अर्जुन, महाराणा प्रताप, शिवाजी आदि आदर्श पुरुष। अतीत-गौरव की

भावना ने आत्मविश्वास को जन्म दिया और जैसे आत्मविश्वास राष्ट्रीयता का रूप लेता गया हमारी इस भावना ने भारतीयता को सर्वश्रेष्ठ तथा अन्य संस्कृतियों को अपने सम्मुख हीन समझा। हिन्दीसाहित्य में भी अन्य संस्कृतियों की तुलना में भारतीय अध्यात्म दर्शन, संस्कृति, इतिहास आदि की श्रेष्ठता का निरूपण किया है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'उग्रजी' का 'महात्मा ईसा' नाटक है।

इस युग के अधिकांश हिन्दीसाहित्य में अतीत चित्रण हिन्दू भावना, हिन्दू-धर्म और हिन्दू इतिहास को लेकर किया गया है। इसके कई कारण स्पष्ट लक्षित होते हैं। हिन्दीसाहित्य का सम्बन्ध हिन्दू जाति से है। प्रायः सभी साहित्य प्रणेता हिन्दू थे और उन्होंने अपने धर्म, संस्कृति, जातीयता की भावना से आवृत्त होकर अतीत को देखा था। इसके अतिरिक्त गांधी जी के अथक प्रयत्न के उपरान्त भी साम्प्रदायिक भेदभाव न मिट सका था। अल्पसंख्यक मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि ने राष्ट्रीय संग्राम को अपना पूरा सहयोग भी प्रदान न किया था। इस कारण इनसे सम्बन्धित इतिहास अथवा अतीत-गौरव की ओर हिन्दी साहित्यकारों का अधिक ध्यान नहीं गया। हिन्दी साहित्य में अतीत गौरव का जो रूप मिलता है उसकी मुसलमानों पर अथवा भिन्न धर्मावलम्बी अल्प-संख्यक जनता पर क्या प्रतिक्रिया होगी, इस पर साहित्य सेवियों ने अधिक विचार नहीं किया था। रचयिता के लिए इस प्रश्न पर विचार करना अनिवार्य भी नहीं था, क्योंकि यह राजनीति का विषय था।

अतीत गौरव-गान एक विशेष उद्देश्य से किया गया था कि देशवासी अतीत के उज्ज्वल प्रकाश में अपनी वर्तमान दुर्दशा के प्रत्येक प्रकार की सघनता से भली भांति परिचित हो सकें। अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का मार्मिक चित्र हिन्दीसाहित्य में मिलता है।

अतीत की तुलना में वर्तमान की दुर्दशा की अनुभूति

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलन के रूप में हुआ था। देशवासियों ने इस आन्दोलन के फलस्वरूप अपनी हीनावस्था की ओर दृष्टिपात किया, और स्वभावतया उसके कारणों की खोज की। स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द घोष जैसे धार्मिक तथा श्री लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय जैसे राजनैतिक महापुरुषों की वक्तृताओं तथा रचनाओं से यह स्पष्ट हो गया था कि भारतवासियों का अतीत, विशेषतया वह हिन्दूकाल जबकि भारतवासी किसी भी विदेशी शासन के अधीनस्थ नहीं हुए थे, आध्यात्मिक, नैतिक तथा भौतिक अर्थात् जीवन की सभी दृष्टियों से अत्यधिक सम्पन्न था। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मानव स्वभाव किन्हीं दो वस्तुओं की तुलना में अधिक आनन्द एवं सन्तुष्टि प्राप्त करता है। इसी कारण

भारत के समुन्नत अतीत की, उसकी वर्तमान विपन्न अवस्था से तुलना की गई। इस तुलना द्वारा जहा एक ओर भारतवासी अपने उज्ज्वल अतीत के उत्कर्ष पर स्वाभिमान से भर गए, वही दूसरी ओर अतीत के प्रकाश मे उनके वर्तमान विषमता की कालिमा अधिक सघन हो गई। भारतवासी अपने देश के अतीत और वर्तमान के दो विरोधी चित्र देख विक्षुब्ध हो उठे।

आधुनिक हिन्दीसाहित्य मे और प्रमुखतया काव्य मे, भारत के अतीतोत्कर्ष की तुलना मे वर्तमान विषमता का वर्णन विशेष रूप से हुआ है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, प डित रामचरित उपाध्याय, श्री अयोध्यासिह उपाध्याय, ठाकुर गोपालशरणसिंह, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, श्री माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियो ने, अतीत की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति को अत्यधिक विशद एव मार्मिक रूप मे अभिव्यक्त किया है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने १६१२ मे 'भारत भारती' ग्रन्थ की रचना इसी उद्देश्य से की थी। इस पुस्तक का विभाजन तीन खडो मे है। प्रथम खड का सम्बन्ध उसकी वर्तमान दुरवस्था तथा अवनति मे तथा तृतीय का आशामय भविष्य से है। अतीतोत्कर्ष की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति, कवि हृदय मे विभिन्न भावो को उद्बुद्ध करती है। कभी वे उज्ज्वल अतीत की तुलना मे वर्तमान हीनावस्था को देख ग्लानि से भर जाते हैं, कभी उनका भव्य अतीत उन्हें वर्तमात दुरवस्था को विनष्ट कर देने के लिए शक्ति एव ओज से भर देता है कभी वर्तमान की कठोर विभीषिका असह्य हो जाती है और वे दुखोदधि मे निमग्न हो जाते हैं और कभी अतीत गौरव गाथा उनका मस्तक गर्व से ऊँचा कर देती है। आज प्राचीन गौरव के चिह्नस्वरूप अवशिष्ट खडहर अपनी अतति के विनाश मे पुकार-पुकार कर कह रहे हैं —

> सोते रहो हे हिन्दुओं! हम मौज करते हैं यहां
> प्राचीन चिह्न विनष्ट यों किस जाति के होंगे कहां।[1]

भारतीय हृदय अपने इस पतन पर ग्लानि से भर जाता है। इस युग के कवियो ने यह स्पष्ट कर दिया था कि हमारी अवनति बहुमुखी है केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नही, सास्कृतिक तथा चारित्रिक दृष्टि से भी हमारा पतन हुआ है। प्राचीन काल म भारत स्वतन्त्र था, यहा के निवासी धनधान्य से पूर्ण, रोगशोक से मुक्त और कलाकौशल मे निपुण थे। सम्पूर्ण विश्व मे यह देश वन्दनीय था। आज भारत बन्दी, सदाचार से हीन, नित्य नवीन रोग से ग्रसित तथा दरिद्रता की मूर्ति है।[2] भारतवासियो मे उन चारित्रिक सद्गुणों का अभाव हो गया है। उनके पूर्वजो की उन्नति के विशेष कारण थे :—

१—मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० ८६
२—मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत : पृ०३६

वह गौरव, वह मान महत्व, वह अमरत्व, तत्वमय सत्व,
सबके ऊपर चारु चरित्र,—पवित्रता का जीवित चित्र,
वह साधन वह अध्यवसाय, नहीं रहा हम में अब हाय।
इसीलिये अपना यह ह्रास, चारों ओर त्रास ही त्रास।।[1]

भारतवासियों की ग्लानि का केवल यही कारण नहीं था कि पूर्वजों की तुलना में उनका चरित्र सद्गुण, आचार-विचार से शून्य हो गया है[2] बल्कि उसका सबसे बड़ा कारण यह था कि अंग्रेजों ने भारतीयों में, जो कि एक दिन गुणों की खान समझे जाते थे, चुन चुन कर अवगुण ढूंढे और उन्हें पशुवत् गिना।[3] हरिऔध जी ने अपनी ग्लानि इन शब्दों में अभिव्यक्ति की है —

हमको भले बुरे का
अब ज्ञान कुछ नहीं है
शिशु हो गये सभी हम
किस भांति हो भलाई ?[4]

श्री मैथिलीशरण गुप्त का कवि-हृदय तब ग्लानि और विक्षोभ से हाहाकार कर उठता है जब वे आध्यात्मिक भारत के निवासियों को प्रतिहिंसा और विद्वेष की भावना से भरा देखते हैं। ग्लानि का अतिरेक शोक और वेदना की अनुभूति में परिणत हो जाता है। उसकी पीड़ा का प्रमुख कारण है, विदेशी दासता या अधीनता—

जहाँ थे साम्यवाद के सिद्ध जहाँ का था स्वतंत्रता—मंत्र,
वहन कर पराधीनता-वृत्ति वहाँ का जन-जन है परतंत्र।।[5]

ठाकुर गोपालशरण सिंह की अन्तरात्मा अतीत की तुलना में भारत की वर्तमान अवनति के पतन से अत्यधिक विकल हो जाती है। उनकी वेदना की अनुभूति अत्यधिक तीव्र एवं मार्मिक है। उन्हें वर्तमान कष्टों से मुक्ति का मार्ग नहीं सूझता और उन पर एक ऐसा उन्माद-सा छा जाता है कि वे 'सिर कूटने' तथा विष घूंटने की बात कह बैठते हैं।[6] दुःख के अतिरेक में वे पूर्वोन्नति का वर्णन करते हुए भी उसे स्वप्नवत् मान लेते हैं और वर्तमान परिताप को जीवन का सत्य :

हमें बिलपना और सदा भय से कपना है;
तन मन के प्रति तीव्र ताप से तपना है।

१—मैथिलीशरणगुप्त हिन्दू पृ० २४, २५
२—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : चुभते चौपदे : १५
३—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : चुभते चौपदे : पृ० २३
४—वही, सचिता पृ० ११२
५—वही, कल्पलता : पृ० ३६
६—ठाकुर गोपालशरण सिंह सचिता : पृ० ६२

इस तममय दिन में क्या रहा, सन्ध्या हो जाती न क्यो
हे भारत जननी ! आज तू बन्ध्या हो जाती न क्यों ?[1]

अतीत की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का करुण पक्ष स्थायी नही था। अत साहित्यिको ने इस वेदना से मुक्ति का उपाय भी अपने गौरवमय अतीत मे ही पाया। उन्होने गर्व से भर कर आशामय भविष्य का आह्वान किया—

था अतीत निज गौरव-गेह फिर भविष्य का क्या सन्देह ?
प्राची का प्रकाश प्राचीन, लेगा, लेगा जन्म नवीन ।।[2]

अतीत का प्रताप वर्तमान को साथ लेकर उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने वाला है —

रहा अतीत तुम्हारा आप, जिसका अब भी प्रकट प्रताप ।
कर लो वर्तमान को साथ, है भविष्य तो अपने हाथ ।।[3]

हमारा भव्य अतीत आज भी भारतवासियों को उत्साह से भर कर नव-निर्माण तथा पुनरुत्थान का सन्देश देता है। इसी कारण श्री मैथिलीशरण गुप्त देश-वासियों को त्राण पाने के लिए उद्यत करने को प्रोत्साहित करते हैं—

हे अपार हिन्दू-ससार तेरा एक एक तिथि—वार
रखता है सौ सौ इतिहास उद्यत हो तू, न हो उदास ।।[4]

अतीत गौरव की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति भारतवासियो को सजग कर क्रान्ति मचाने के लिए आत्मिक बल प्रदान करने में भी समर्थ है। इसी कारण 'विजया दशमी' कविता मे श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने कहा है—

दो विजये ! वह आत्मिक बल दो, वह हु कार मचाने दो ।
अपनी निर्बल आवाजो से, दुनिया को दहलाने दो ।।[5]

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' भारतवासियो को उनके अतीत की स्मृति के भैरवनाद द्वारा उन्हें पुन एक बार जगाना चाहते हैं। 'जागो फिर एक बार' मे गुरु गोविन्दसिंह जी की प्रतिज्ञा का स्मरण कराके कहते हैं कि आज शेरो की माद मे स्यार आया है।[6]

तुम हो महान्
तुम सदा हो महान्

१—ठाकुर गोपालशरणसिंह : सचिता : पृ० १५५
२—मैथिलीशरण गुप्त · हिन्दू : पृ० ५८
३—वही : पृ० ४४
४—मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ७६
५—श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ६५
६—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अपरा : पृ० १

है नश्वर यह दीन भाव
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्व भार
जागो फिर एक बार ।।'

इस प्रकार ओजपूर्ण भाषा मे भारत के इतिहास मे से वीरता भरे स्थलो को उद्धृत कर भारतवासियो को पुन वीर रस मडित करना चाहा है। श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने वर्तमान काल में अतीत गौरव के चिन्हो के मिटने रूप का वर्णन 'विद्रोही' कविता मे किया है—

त्रिपुरी की नगरी जमीन मे
गडी नर्मदा तट पर
महलो के महराज खड़े
रोते देखे पनघट पर
माडवगढ़ गड़ता जाता है
नित्य धूल छाता है
जन समूह उसका शव—
दर्शन, हाय ! लूट जाता है,
आज बना इतिहास बिचारा
निठुर प्रकृति का हास ;
ले बैठो, स्वातन्त्र्य—भावना,
मिट्टी में सन्यास ।।'

चतुर्वेदी जी की, वर्तमान की तुलना मे अतीत गौरव की अनुभूति अत्यधिक भावात्मक है। उसका विषाद-पक्ष भी अधिक मूर्त है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त की, अतीत की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति तीव्र होने पर भी सयत तथा गभीर है। इसी कारण वे ठाकुर गोपालशरण सिंह जी की भाति 'सिर कूटने या 'सिर फूटने' की बात नही कहते। गुप्तजी की दृष्टि भारत के स्वर्णिम अतीत, उसके सास्कृतिक मूल्यादर्शों से अनुप्राणित होती हुई, भारत की वर्तमान दुरवस्था पर पहुचती है। अत वे अधिक सक्रिय तथा सचेतन वाणी मे यह तुलनात्मक विवेचना करते हैं। गुप्त जी भावावेश मे बह नही जाते, भावनाओं पर उनके सयम का नियत्रण है। इसी कारण वे अतीत की तुलना मे वर्तमान विभीषिका का जो वर्णन करते हैं वह उनकी विचारशक्ति द्वारा सतुलित होता है। उनके काव्य

१—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला · अपरा : पृ० १०
२—माखनलाल चतुर्वेदी · हिमकिरीटिनी : पृ० ५४

ग्रथो मे भारतीय इतिहास के अनुसधान के अनेक पृष्ठ अनावृत हुए हैं किन्तु इतिवृत्तात्मक रूप मे नही, काव्यात्मकता के आग्रह तथा मौलिक प्रतिभा के सयोग के साथ। इसके अतिरिक्त उनकी सवेदना, कल्पना अथवा प्रतिभा ने भारतीयो की राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने के लिए, वर्तमान अथवा अतीत के अतिरजिततापूर्ण चित्र नही खीचे हैं। अतीत की बढती हुई खोज के साथ भारत के गौरवमय इतिहास का जो रूप स्पष्ट होकर आया था उसी की पृष्ठभूमि मे उन्होने वर्तमान यथार्थ का चित्रण किया था।

गुप्तजी ने भारत के अतीतकालीन उत्कर्ष का अकन और वर्तमान विपमता की उससे तुलना करना ही अपना एकमात्र धर्म नही समझा था। उनकी सजग राष्ट्रीय चेतना ने पतन के कारणो की खोज कर उसे निश्चित रूप प्रदान किया है। उनके मतानुसार हमारी सास्कृतिक अवनति का प्रमुख कारण है—चारित्रिक पतन। उनके अनुसार आज हम आध्यात्मिकता, नैतिकता तथा अध्यवसाय के उन विशेष गुणो से शून्य हैं, जो हमारे पूर्वजो की बहुमुखी उन्नति का मूल कारण था, जिसके द्वारा उन्होंने समस्त विश्व में अपनी कीर्ति ध्वजा फहराई थी —

वह गौरव, वह मान महत्व, वह अमरत्व, तत्वमय सत्व,
सबके ऊपर चारु चरित्र, पवित्रता का जीवित चित्र;
वह साधन वह अध्यवसाय, नहीं रहा हम में अब हाय!
इसीलिये अपना यह ह्रास चारों ओर त्रास ही त्रास ॥[1]

गुप्त जी ने अतीतकालीन उत्कर्ष के प्रभावोत्पादक वर्णन द्वारा भारतवासियो को उनकी वास्तविक स्थिति से अवगत कराया है। इसके अतिरिक्त पूर्वजो के कीर्तिगान मे उन्होंने आशामय भविष्य की भी कल्पना की है।[2] भारतवासियो को हीन भावना से मुक्त कर स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग का प्रदर्शन भी किया है। काव्य द्वारा कर्मण्यता का सदेश दिया है :—

हे अपार हिन्दू ससार तेरा एक एक तिथि-वार
रखता है सौ सौ-इतिहास उद्यत हो तू, न हो उदास ॥[3]

ठाकुर गोपालशरणसिंह का तुलनात्मक विवेचन अधिक भावात्मक है। उनकी सवेदनशीलता मे पीडा अथवा वेदना की मात्रा अधिक है। इसी कारण उनकी विचारशक्ति थक जाती है। उनकी अतीतोत्कर्ष से वर्तमान अपकर्ष की तुलना कहीं-कहीं ध्वसात्मक होती है, उन्हें राष्ट्रीय कल्याण का उपाय नहीं सूझता।[4] ठाकुर गोपालशरण सिंह जी ने भारत के पतन अथवा अवनति का कारण उसके शोषण मे

१—मैथिलीशरण गुप्त · हिन्दू : पृ० २४-२५
२—वही, · पृ० ५८
३—वही, : पृ० ७६
४—ठाकुर गोपालशरणसिंह : सचिता : पृ० ६२

खोजा है।[1]

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय के हृदय में तत्कालीन पराधीनता का अभिशाप कटक-सा चुभता है। अतीत गौरव की स्मृति में वर्तमान की पीडा बढती जाती है। इनके अतीत गौरव के सुखद एव मनोहारी दृश्य आत्मसम्मान तथा स्वाभिमान की भावना को जिस तीव्रता से सर्वाद्धित करते हैं, उसी मात्रा में अतीत की तुलना में वर्तमान की विभीषिका, उसके करुण चित्र हृदय को असह्य पीडा अथवा वेदना से भर देते हैं। 'क्या रहे और हो गये अब क्या'[2] म कविहृदय की मार्मिक वेदना सजल तथा सजग हो उठी है। श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा ठाकुर गोपालशरणसिंह की भाति श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी भारतीयो की वर्तमान दुरवस्था के सम्बन्ध मे अपना मन्तव्य व्यक्त किया है। उनकी दृष्टि मे भारतीयो की क्षीण शक्ति, दीनता हीनता का कारण फूटबैर आदि मानव अहितकारी भाव हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अतीत की तुलना मे वर्तमान भारत की दुरवस्था का मूल कारण विदेशी साम्राज्य की अधीनता में ढूढा था—

जहा ये साम्यवाद के सिद्ध जहा का या स्वतन्त्रता-मन्त्र
वहन कर पराधीनता-वृत्ति वहा का जन जन है परतन्त्र॥[3]

अग्रेज भारतीयो की हीन भावना के मूल कारण है।[4] 'हरिऔध' जी की सी स्पष्टवादिता तथा निर्भीकता श्री मैथिलीशरण गुप्त अथवा ठाकुर गोपालशरण सिंह जी मे नही मिलती। इसका कदाचित् यह भी कारण था कि विदेशी साम्राज्यवाद के प्रति उनकी प्रतिहिंसात्मक भावना अत्यधिक तीव्र थी। गाधीवादी विचारधारा की सहिष्णुता, अहिंसा तथा हृदयपरिवर्तन के सिद्धान्तो से वे सहमत नही थे।

पडित रामचरित उपाध्याय ने अतीत से भारत के वर्तमान की तुलना ए[illegible] विशेष उद्देश्य से की थी। उनके ऊपर आर्यसमाजी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि वे हिन्दू जाति और धर्म के विशेष पोषक थे। इसी कारण इस तुलनात्मक विवेचन मे उपाध्याय जी को हिन्दुओ के धार्मिक पतन, जाति-पाति से विश्वास उठना, आचरण हीनता, तिलक आदि न धारण करना असह्य था।[5] [illegible] पुन वैदिक धर्म एव ऋषि मुनियो के आदर्शों की प्रतिष्ठा द्वारा भारत का पुनर्निर्माण करना चाहते थे। श्री उपाध्याय जी की राष्ट्रीयता मे हिन्दू जातीयता की भावना की प्रमुखता थी, इसी कारण उन्होंने कहा था —

१—ठाकुर गोपालशरण सिंह सचिता पृ० १११
२—अयोध्यासिंह उपाध्याय चुभते चौपदे · पृ० ३६
३—अयोध्यासिंह उपाध्याय कल्पलता : पृ० ३६
४—अयोध्यासिंह उपाध्याय · चुभते चौपदे : पृ० २३
५—पडित रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती पृ० ७

हिन्दू हो पर हिन्दूपन का कुछ भी तुम्हें न रहता ध्यान,
धन्य ! बनाते हो भारत को मानो काला इंगलिस्तान ॥[1]

श्री उपाध्याय जी ने भारत की अवनति का कारण पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति का दूषित प्रभाव माना था। इनके मत में प्राचीन वैदिक संस्कृति की स्थापना द्वारा ही भारत का उद्धार हो सकता है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने भी भारत की पतित अवस्था का प्रमुख कारण देश की विपन्न आर्थिक व्यवस्था अथवा शोषण में खोजा था। लक्ष्मी का अपहरण ही दुर्दशा का मूल कारण था—

हो असहाय भटकते फिरते वनवासी-से आज सखी।
सीता-लक्ष्मी हरी किसी ने गई हमारी लाज सखी ॥[2]

श्री निरालाजी की अतीत गौरव की अनुभूति का धरातल भी वर्तमान का खंडहर है। उनकी अनुभूति में मार्मिकता की अपेक्षा तीव्रता एवं खोज की मात्रा अधिक है, जिसमें व्यंग का भी कुछ पुट मिल गया है—

खंडहर खड़े हो तुम आज भी ?
अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज।
विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें—
करुणाकर, करुणामय गीत सदा गाते हुए ?
पवन-संचरण के साथ
परिमल-पराग-सम अतीत की विभूति-रज—
आशीर्वाद पुरुष पुरातन का
भेजते सब देशों में,
क्या है उद्देश तव ?
बन्धन-विहीन भव।
ढीले करते हो भव बन्धन नर-नारियों के ?
अथवा,
हो मलते कलेजा पड़े, जरा जीर्ण;
निर्निमेष नयनों से
बाट जोहते हो तुम मृत्यु की
अपनी सन्तानों से बूंद भर पानी को तरसते हुए ?[3]

अतीत गौरव के वर्णन में वर्तमान का अभाव ध्वनित है—

शाही दीवान-आज स्तब्ध है हो रहा,

१—पंडित रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती : पृ० ७
२—श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ६२
३—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अनामिका : खंडहर के प्रति : पृ० २६

दुपहर को, पार्श्व में
उठता है भिल्ली रव,
बोलते हैं स्यार रात यमुना कछार में,
लीन हो गया है रव
शाही अंगनाओं का,
निस्तब्ध मीनार,
मौन हैं मकबरे—
भय में आशा को जहा मिलते थे समाचार,
टपक पड़ता था जहा आंसुओं में सच्चा प्यार ।।[1]

निराला की राष्ट्रीय भावना जातीयता अथवा धार्मिकता से परे थी । इसी कारण मुस्लिम इतिहास के प्रतीक शाही दीवाने आम, मीनारें आदि भी राष्ट्रीय गौरव के चिह्न हैं जिनकी सुहाग गाथा आज भी यमुना की ध्वनि में गूंज रही है । 'निराला' द्वारा प्रदत्त यह तुलनात्मक विवेचन देश में बसने वाली हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही जातियों में, वर्तमान के प्रति तीव्र विक्षोभ की भावना के विकास में नितान्त समर्थ है ।

रामधारीसिंह दिनकर का तुलनात्मक विवेचन भी अधिक ऐतिहासिक, कलात्मक एवं मार्मिक भावुकता से संयुक्त है । अपने इतिहास से विशेष मोह होने के कारण कवि ने वर्तमान विभीषिका की चित्रपटी पर अतीत के वैभव का काव्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है । दिनकर' में इतिहास अपनी सम्पूर्ण वेदनाओं को लेकर बोलता है ।'[2] इस वेदना का कारण है—कवि का अपना वर्तमान, जब कि देश अनेक प्रकार की दुर्दशाओं से ग्रस्त था । इतिहास के बल पर वर्तमान की पीड़ा को अधिक प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत किया है —

तूने सुख सुहाग देखा है उदय और फिर अस्त, सखी ।
देख, आज निज युवराजों को भिक्षाटन में व्यस्त सखी ।
एक एक कर गिरे मुकुट, विकसित तन भस्मीभूत हुआ,
तेरे सम्मुख महासिन्धु सूखा संकट उद्भूत हुआ—'[3]

कवि को वर्तमान की असीम पीड़ा सहना अत्यधिक दुष्कर था, इसलिए उसने अतीत की सुखद संस्मृति में रत रहना श्रेयस्कर समझा था ।[4] प्रियदर्शन इतिहास को काव्य के रूप में ध्वनित कर पुन अतीत-गौरव को वर्तमान में प्रत्यक्ष करने की

१ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अनामिका दिल्ली पृ० १
२. प्रो० कामेश्वर वर्मा दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि पृ० २१
३. रामधारीसिंह दिनकर इतिहास के आंसू पृ० ३६
४. वही - पृ०

कवि ने आकांक्षा की थी।[1] कवि को पूर्ण आशा थी कि अतीत गौरव की वर्तमान दुर्दशा की तुलना का चित्र रखने से देश मे नव जागृति आएगी—

अंकित हैं इतिहास पत्थरो पर जिनके अभियानो का,
चरण चरण पर चिह्न यहाँ मिलता जिनके बलिदानो का,
गुंजित जिनके विजय-नाद से हवा आज भी बोल रही,
जिनके पदाघात से कम्पित धरा अभी तक डोल रही।
कह दो उनसे जगा, कि उनकी ध्वजा धूल मे सोती है,
सिंहासन है शून्य सिद्धि उनकी विधवा सी रोती है।[2]

अंग्रेजी सभ्यता ने दिल्लीवासियों पर ऐसा जादू फेरा था कि वे अपना स्वत्व खो बैठे थे। अत दिनकर ने दिल्ली के पूर्व-गौरव मुस्लिम, संस्कृति के उत्कर्ष, वीर पात्रों और ऐतिहासिक स्थानो की स्मृति दिला कर देशवासियों को उनके पतन की ओर से सचेत किया है।[3] दिनकर के काव्य की सबसे बडी विशेषता है उनकी अभिव्यंजना शैली। भाषा का एक एक वर्ण, एक एक शब्द जन मानस का स्पर्श करने वाला है। उनकी राष्ट्रीय भावना ने इतिहास के अतीत-गौरव को आकारमात्र ही नही दिया है वरन सच्चे अर्थों में मूर्त एवं मुखर किया है। विगत वैभव की चित्रपटी पर वर्तमान के फीके रंग कष्टकर प्रतीत होते हैं। 'दिनकर' ने सम्पूर्ण इतिहास का स्पर्श किया है अर्थात् हिन्दू-काल एवं मुस्लिम काल दोनो को समान रूप से अपनाया है।

अतीत की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का सर्वाधिक उपयुक्त साधन काव्य था। नाटक अथवा कथा-साहित्य की अपेक्षा काव्य में अधिक सरलता के साथ तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। राष्ट्रवाद के इस अंग विशेष के निरूपण मे भी कवियो ने अपनी प्रतिभा एवं कौशल का परिचय दिया है।

हिन्दी नाट्य-साहित्य मे अतीत की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति

हिन्दी-नाट्य-साहित्य में भी ऐतिहासिक नाटको के माध्यम से यह कार्य सम्पन्न किया गया है। वर्तमान की विभीषिका से ऊबकर नाटककारों ने अतीत के उज्ज्वल पक्ष अर्थात भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के उत्कृष्ट रूप का गौरवयुक्त शब्दो मे वर्णन किया था। उनकी दृष्टि अतीत में खो नही गई थी, प्रत्युत अतीत गौरव का अनुभव करती हुई वर्तमान पर आकर टिक गई थी। अतीत के सुन्दर स्वप्नो मे वे वर्तमान को भूले नही थे। उग्र जी के 'महात्मा ईसा' नाटक मे वर्तमान ध्वनित है।
बदरीनाथ भट्ट, चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क के ऐतिहासिक नाटकों का भी यही लक्ष्य रहा है कि अतीत के उत्कृष्ट

१—रामधारीसिंह दिनकर : इतिहास के आंसू पृ० ३
२—वही : पृ० ३०
३— रामधारीसिंह दिनकर : दिल्ली पृ० ७

चित्रो द्वारा वर्तमान जीवन का कुंठा तथा हीन-भावना को मिटा कर देश का सास्कृतिक उत्थान किया जाये, प्राचीन सस्कृति के उच्चादर्शो के ज्ञान द्वारा देशवासियो को अपने युग की दुर्दशा ग्रस्त राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियो के प्रति विक्षुब्ध करें।

हिन्दी के कतिपय नाटको मे प्रतीकात्मक शैली मे भी अतीत गौरव एव वर्तमान दुर्दशा के चित्रो को प्रस्तुत किया गया है। उग्र जी के 'महात्मा ईसा' नाटक मे भारत के आध्यात्मिक नैतिक उत्कर्ष का वर्णन अतीतकालीन है लेकिन ईसा के अपने देश की दुर्दशाग्रस्त स्थिति वस्तुत लेखक के अपने युग की स्थिति है। एव ही नाटक मे, एक कथा के माध्यम से, एक ही काल की कथा लेकर उग्र जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर पाठको के सम्मुख अतीत एव वर्तमान के दो विरोधी चित्र रख दिए हैं।

कुछ नाटको मे स्पष्ट एव प्रत्यक्ष रूप से अतीत के साथ वर्तमान की तुलना पात्रो द्वारा करवाई गई है, उदाहरणतया 'महाराणा प्रतापसिंह व देशोद्धार नाटक' मे अतीत-गौरव से वर्तमान की तुलना करते हुए लेखक ने कहलाया है।—

> एक दिन वह था कि भारत विश्व में बलवान था।
> सारे देशो का यही सिरताज हिन्दोस्तान था॥
> आज निर्बल हो गई उनकी सभी सतान हैं।
> न वह शक्ति गौरव है न उनमें अब जान है॥

तुलना के साथ ही लेखक ने वर्तमान दुर्दशा के कारणो पर भी प्रकाश डाला है। देशवासियो के पतन का मूल कारण है कि वे अपने अतीत गौरव को भूल गए हैं—'हमारा क्या कर्तव्य है, इसका ज्ञान जब जाता रहा, सगठन का मूलमन्त्र जब विस्मृत हुआ, तो देश भी दूसरो के हाथ मे जाता रहा।' साहित्यिक दृष्टि से इस नाटक का अधिक मूल्य नही है, लेकिन राष्ट्रीय भावना के उद्देश्य की दृष्टि से इसकी उपेक्षा नही की जा सकती।

अधिकाश नाटको मे अतीत एव वर्तमान की तुलना ध्वनित मिलती है, लेकिन प्रत्यक्ष तुलनात्मक वर्णनो की न्यूनता है।

कथा-साहित्य मे अतीत की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति

काव्य एव नाटको की भांति कथा साहित्य मे अतीत की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का प्रत्यक्ष वर्णन केवल कुछ स्थलो पर कथोपकथन द्वारा अथवा स्वयं कथाकार के शब्दो मे सम्भव होता है। प्राय अतीतकालीन उत्कृष्ट चित्रो को सम्मुख रखकर ही उपन्यासकार अथवा कहानीकार अप्रत्यक्ष रूप से पाठक को अतीत के सुखद जीवन मे वर्तमान परिस्थिति की तुलना करने के लिये बाध्य करता है। अतीतोक्तियं के प्रत्येक वर्णन से उनके इस लक्ष्य की ध्वनि मुखरित होती रहती है। कभी-कभी उपन्यास अथवा कहानियो मे ऐतिहासिक कथानको द्वारा वर्तमान सम-

स्याओ तथा दुर्व्यवस्था के अनेक रूपो को भी प्रतिध्वनित किया जाता है। हिन्दी मे ऐतिहासिक उपन्यासो की सख्या अति सीमित होने पर भी श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास जैसे 'गढ कुण्डार', प्रेमचन्द, प्रसाद, सुदर्शन तथा अन्य ऐतिहासिक कहानीकारो की रचनाओ मे अतीत की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति ध्वनित हुई है।

प्रेमचन्द जी के 'कर्मभूमि' उपन्यास मे कुछ स्थलो पर अतीत से तत्कालीन भारत की दुर्दशा का उल्लेख मिलता है जैसे अमर वर्तमान शिक्षा पद्धति से अतीत के आदर्श की तुलना करता है—'तब अमर को उस अतीत की याद आती, जब हमारे गुरुजन झोपडो मे रहते थे, स्वार्थ से अलग, लोभ से दूर, सात्विक जीवन के आदर्श, निष्काम सेवा के उपासक। वह राष्ट्र से कम से कम लेकर अधिक से अधिक देते थे। वह वास्तव मे देवता थे। और एक यह अध्यापक हैं, जो किसी अ श मे भी एक मामूली व्यापारी या राज्य कर्मचारी से पीछे नही। इनमे भी वही दभ है, वही धनमद, वही अधिकार-मद। हमारे विद्यालय क्या हैं राज्य के विभाग है और हमारे अध्यापक उसी राज्य के अ ग है। ये खुद अन्धकार मे पडे हैं, प्रकाश क्या फैलायेंगे।'[1] इसी प्रकार अमर वर्तमान युग के बुद्धिवाद से अतीत नारियो के वीरत्व की तुलना भी करता है।[2] भारत की वीर नारियो का वर्णन करते हुए यूरोप के आदर्श से भी भी उनकी तुलनात्मक समीक्षा करता है।[3]

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की एकाध कहानियो मे वर्तमान मे अतीत गौरव का वर्णन मिलता है। 'तागेवाला' कहानी मे तागे वाला कहता है—'हा, 'हुजूर तात्या टोपे नदी के पार जाना चाहता था। फिरगियो की सेना ने उसे चारो तरफ से घेर लिया था। फिर भी हुजूर वह इतना तेज, इतना फुर्तीला था कि चार पाच वडे-वडे फिरगी अफसरो के सामने से निकल गया। अपने सेना समेत और उसका कोई कुछ भी न कर सका।'[4] आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'स्वदेश' नामक गद्य काव्य सी स्वदेश की कहानी मे अतीत गौरव की पृष्ठभूमि मे दुर्दशा का चित्र खीचा है। अतीत की स्मृति मे लेखक की व्यथा स्पष्ट है—'क्या कहा ? 'पूर्व स्मृति' सर्प की तरह डसती है, बिच्छू की तरह डक मारती है, बिजली की तरह नाशकारी है और मृत्यु की तरह भयानक है। हाय! कहा गया वह भूत, कहा गया वह अतीत।

जिन्होंने तुम्हारा यौवन देखा है, वे कहते हैं कि तुम अगाध समुद्र के फेनो की उज्ज्वल करधनी पहन कर खडे होते थे तो ससार की जातिया तुम्हारे बाकपन

१—प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १०४
२—वही, पृ० १७३
३—वही, पृ० १७४
४—सुभद्राकुमारी चौहान : सीधे-सादे चित्र : पृ० ३०

पर लट्टू हो जाती थी।"[1] इसी प्रकार भारत की प्राचीन शक्ति और वैभव से भी अपने युग की पतित अवस्था का अत्यन्त करुण शब्दो मे लेखक ने वर्णन किया है।[2]

कथा-साहित्य मे भी तुलनात्मक विवरण यत्र-तत्र अनेक रूपो म बिखरे मिल जाते हैं।

अतीत की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति की साहित्य मे अभिव्यक्ति से राष्ट्रीय जागरण को उत्तेजना मिली थी। देशवासियो के सम्मुख अतीत एव वर्तमान के दो विरोधी चित्र प्रस्तुत कर साहित्यकारो ने वर्तमान दुर्दशा-ग्रस्त परिस्थिति के प्रति विद्रोह को तीव्र करने मे सहायता पहुचाई। निम्न गति देशवासियो को जाग्रत करने का यह अत्यधिक मनोवैज्ञानिक उपचार था। जो कार्य राष्ट्रीय नेता अपने उपदेशो द्वारा कर रहे थे वही साहित्यकारो ने कलात्मकता के आग्रह के साथ लेखनी द्वारा किया। राष्ट्रवाद के विकास मे उनका यह सहयोग महत्व रखता है।

१—चतुरसेन शास्त्री : मरी खाल की हाय पृ ६
२—वही, पृ० ७

: ६ :

राष्ट्रवाद का रागात्मक पक्ष--देशभक्ति

देशभक्ति राष्ट्रवाद का आवश्यक तत्व है क्योंकि एक देश अथवा राष्ट्र की निश्चित सीमारेखा मे ही राष्ट्रवाद का पोषण होता है। राष्ट्रवाद की मान्य परिभाषाओ के विवेचन एव स्वरूप मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि भौगोलिक एकता राष्ट्रवाद का मूल बिन्दु है। डा० आबिद हुसैन ने इस विषय मे लिखा है—'अत हम उन परिस्थितियो का अध्ययन करें, जिनमे गुजर कर राष्ट्रो का निर्माण हुआ है और होता है तो अधिक यही कहा जा सकता है कि भौगोलिक एकता और सामान्य सास्कृतिक दृष्टिकोण की एकता ही राष्ट्रीयता की आवश्यकता और पूर्व-शर्तें हैं। जाति, धर्म और भाषा की एकता या समान इतिहास महत्वपूर्ण जरूर है पर अनिवार्य नही।'[1]

भारत देश को 'माता भूमि' के रूप म देखा गया है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक 'माता भूमि' म लिखा है—'माता भूमि नए युग की देवता है। सुन्दर सकल्प, सशक्त कर्म और त्याग भाव, जिसके लिए समर्पित हो वही देवता है।'[2] मातृभूमि के दो रूप हैं, एक उसका भौतिक रूप और दूसरा दूसरा उसका आन्तरिक रूप या मानस जो वास्तव मे उसकी सास्कृतिक मूर्ति है। हिन्दी साहित्य मे मातृभूमि भारत देश के दोनो ही पक्षो का सबल चित्रण किया गया है। अतीत-गौरव—अर्थात् देश का सास्कृतिक पक्ष मन है जिस पर विचार किया जा चुका है। इस प्रकरण मे देश के भौतिक पक्ष अर्थात् भौगोलिक-पक्ष के प्रति साहित्य की भक्ति भावना का अनुशीलन अपेक्षित है।

हिन्दी-कविता में देशभक्ति की भावना

मातृभूमि के प्रति भक्ति मे उसके पर्वतो, नदियो, पशु-पक्षी, ऋतुओ सभी को एक विशेष गौरव की दृष्टि से देखा जाता है। वासुदेवशरण जी ने लिखा है—

---

१. डा० आबिद हुसैन राष्ट्रीय सस्कृति पृ० ८
२ वासुदेवशरण अग्रवाल · माता भूमि · पृ० १

'जिनके हृदय मे मातृ-भूमि के प्रति भक्ति नही उनके लिये पृथ्वी मिट्टी का ढेला है।'[१] देशभक्ति के उन्मेष मे देश की प्राकृतिक विभूति अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित कर देश की महानता का प्रतीक हो जाती है। भारत की भौगोलिक एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए उत्तर मे उन्नत हिमश्रृंग हिमालय है और तीन ओर समुद्र। वस्तुत हिमालय देवभूमि है, भारत-माता का हिम-नग-जटित मुकुट है, भारत का उन्नत ललाट है और देश का सशक्त प्रहरी है।

द्विवेदी युग से देश भक्ति-काव्य की अजस्र-धारा प्रवाहित करते हुए श्रीधर पाठक ने इस युग मे भी देश के प्रकृति सौन्दर्य की महत्ता और भौगोलिक एकता प्रदान करने वाले तत्वो का उल्लेख करते हुए लिखा है —

> हिमनगविभूषितभाला, सुरधुनिजलधौतजातपदजालाम्
> प्रकृति-विभूतिविशाला वदे त्वा त्रिदशकोटिजनपालाम्
> अभिनवजीवनपूर्णां परहितपूर्णां परार्थपरिकीर्णाम्
> साधितदीनोद्धरणा बाधितसर्वाधि सघ—ससरणाम्।[२]

पाठक जी ने भारतभूमि को त्रैलोक्य वदनीय माना है। 'पुन्य मातृ धरे', 'भारत वसुन्धरा' आदि उनकी प्रसिद्ध देशभक्ति पूर्ण कविता है। हिन्दुस्तान के जगल, नदिया, आसमान, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, मदिर, मूरत, तीरथ, मस्जिद, मक्का, प्रयाग, हज्ज, हरद्वार सबसे वे दिल से प्यार करते थे। उनकी देशभक्ति साम्प्रदायिकता से मुक्त नरमदली राष्ट्रीय नेताओ की भक्ति थी, जिसमे ब्रिटेन से किसी प्रकार का विद्वेष नही था, जो विश्व-प्रेम तथा सेवा-भावना से पूर्ण थी।[३]

मैथिलीशरण गुप्त ने भी देश-प्रेम, देश की भौगोलिक एकता की अभिव्यजक कविताओ की रचना की है। 'भारतवर्ष'[५] कविता मे भारत-भूमि के उज्ज्वल भाग्य सम-उन्नत-मस्तक हिमालय, सरयू-तट, ब्रज वशीवट आदि का उल्लेख मिलता है। देवताओ की पवित्र भूमि भारत की सभ्यता, शुचिता, धार्मिकता आदि का उल्लेख करते हुए कवि ने इस देश को कर्म भूमि एव धर्म-भूमि माना है। 'मेरा देश'[६] 'मातृ-भूमि'[७] कविताओ मे भी भारत भूमि की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा आध्यात्मिक शक्ति का वर्णन मिलता है—

---

१. वासुदेवशरण अग्रवाल माता भूमि, पृ० १८
२ श्रीधर पाठक भारत-गीत पृ० ६३
३. वही, पृ० ६६
४ श्रीधर पाठक भारत-गीत पृ० १२३
५. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश सगीत पृ० ११, १२
६ वही, पृ० १२
७ वही, पृ० १३२

मस्तक में रखता हूँ ज्ञान,
भक्तिपूर्ण मानस मे ध्यान।
करके तू प्रभु कर्म विधान
हे सत् चित्—आनन्द निधान ॥
मेटे तूने तीनों क्लेश,
मेरे भारत! तेरे देश![1]

गुप्त जी की देशभक्ति पूर्णतया धार्मिकता के रग मे रगी हुई है। वे भारत माता के सुन्दर स्वरूप का वर्णन करते हुए उसे 'स्वर्ग-सहोदर' मानते हैं। 'पर भारत के सम भारत है।[2] अन्य देश उसकी समता के अधिकारी नही हैं। आध्यात्मिकता के अतिरेक मे कवि ने जन्मभूमि भारत को सर्वेश की मूर्ति और ब्रह्मरूप भी कहा है।[3] मातृभूमि के गुणो का विशद् रूप अ कित करते हुए गुप्त जी ने लिखा है—

क्षमामयी, विश्वपालिनी, तू प्रेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है,
विभवशालिनी, विश्वपालिनी दुखहर्त्री है
भयनिवारिणी शान्तिकारिणी, सुखकर्त्री है।
हे शरणदायिनी देवि, तू करती सबका त्राण है।
हे मातृभूमि, सन्तान हम, तू जननी, तू प्राण है ॥[4]

मातृभूमि के प्रति कवि की अनन्य प्रेम भावना सास्कृतिक आवरण मे आवेष्ठित है—

जिस पृथ्वी मे मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान! कभी हम रहें न न्यारे ॥[5]

'साकेत' महाकाव्य मे मैथिलीशरण गुप्त ने वनगमन के अवसर पर राम द्वारा जन्मभूमि प्रेम के महान् भाव का प्रदर्शन किया है। राम कहते हैं—

जन्मभूमि, ले प्रणति और प्रस्थान दे,
हमको गौरव, गर्व तथा निज मान दे।
तेरे कीर्ति-स्तम्भ, सौध, मन्दिर यथा—
रहें हमारे शीर्ष समुन्नत सर्वथा ॥[6]

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश सगीत : पृ० १३
२. वही, पृ० १६
३. वही, पृ० २४
४. वही, पृ० २६
५. वही, पृ० २८
६. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० १३३

प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अपने देश की विशेषताओं को सूक्ष्म रूप से संवेष्ठित किये रहता है। राम द्वारा गुप्त जी ने कहलाया है—

हम मे तेरे व्याप्त विमल जो तत्व हैं,
दया, प्रेम, नय, विनय, शील शुभ सत्व हैं,
उन सबका उपयोग हमारे साथ है,—
सूक्ष्म रूप मे सभी कहीं तू साथ है।
तेरा स्वच्छ समीर हमारे श्वास मे
मानस मे जल और अनल उच्छ्वास मे।[1]

कवि के अपने युग की देशभक्ति का प्रबल उच्छ्वास राम के माध्यम से अभिव्यक्ति हुआ है।

माखनलाल चतुर्वेदी, जयशंकरप्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, रामधारी सिंह दिनकर, मोहनलाल द्विवेदी ने भारत की भौगोलिक एकता के सुन्दर एवं भावात्मक चित्र खींचे हैं, जिनमे देश का मानवीकरण भी किया गया है। माखनलाल चतुर्वेदी ने उत्तर मे हिमालय एवं तीन ओर मे सागर द्वारा रक्षित भारत देश, जिसमे हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख धर्मावलम्बी बसते हैं, की पराधीनता से क्षुब्ध होकर, विषादात्मक स्वरों मे कहा है—

हो मुकुट हिमालय पहनाता,
सागर, जिसके पद धुलवाता
यह बंधा बेड़ियों मे मन्दिर
मस्जिद गुरुद्वारा मेरा है।
क्या कहा कि यह घर मेरा है ?[2]

माखनलाल चतुर्वेदी ने भारत देश का मानवीकरण करते हुए 'मुझको कहते हैं।' 'माता' काव्य मे आलंकारिक भाषा म माता-भूमि की भावात्मक अभिव्यक्ति की है। देशभक्ति से वात्सल्यभाव की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।[3]

जयशंकर प्रसाद के नाटकों मे, देश की भौगोलिक एकता के परिचायक अनेक गीत मिलते हैं। कार्नेलिया द्वारा भारत देश की प्राकृतिक सुषमा एवं महानता का गीत गाया गया है—

अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहां पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर—नाच रही तरुशिखा मनोहर।

---

१. मैथिलीशरण गुप्त साकेत : १३३
२ माखनलाल चतुर्वेदी हिमकिरीटिनी पृ० १४४
३. माखनलाल चतुर्वेदी : माता पृ० ८६

छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा ॥
दे . . . .. ।[1]

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने 'भारती वन्दना' में देश की भौगोलिक सीमा प्राकृतिक सुषमा, सम्पन्नता आध्यात्मिकता आदि विशेषताओं का उल्लेख, देश को पवित्र मूर्ति के रूप में देखते हुए किया है—

भारति, जय, विजयकरे
कनक-शस्य—कमल धरे।
लंका पदतल—शतदल
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण—युगल
स्तव कर बहु अर्थ-भरे।
तरु-तृण-वन-लता-वसन
अंचल में खचित सुमन
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल धार हार गले।
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशायें उदार,
शतमुख-शतरव मुखरे।[2] (सन् १६२८ ई०)

सोहनलाल द्विवेदी की देशभक्ति का प्रमुख लक्ष्य है, वंदनी भारत माता को बंधन विमुक्त करने के लिये शीश दान देना—

वंदना के इन स्वरों में, एक स्वर मेरा मिला लो।
वंदिनी मा को न भूलो
राग में जब मत्त झूलो,
अर्चना के रत्नकण में, एक कण मेरा मिला लो।
जब हृदय का तार बोले,
शृंखला के बन्द खोले;
हो जहां बलि शीश अगणित, एक शिर मेरा मिला लो।[3]

हिन्दी कवियों ने हिमालय और 'गंगा', 'यमुना' नदियों का विशेष रूप से वर्णन किया है। निःसन्देह भारत में हिमालय का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। युग-युग से भारत के उत्तर में अपना मस्तष्क उन्नत किये इन हिममण्डित शृंग-श्रेणियों

१ जयशंकर प्रसाद चन्द्रगुप्त पृ० ५७
२ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अपरा पृ० १
३. सोहनलाल द्विवेदी . भैरवी : पृ० १

ने केवल भारत की सीमारेखा खींचकर भारत की रक्षा ही नहीं की है अपितु देश को निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित भी किया है। श्रीधर पाठक ने 'हिमनगविभूषित माला' और माखनलाल चतुर्वेदी ने 'हो मुकुट हिमालय पहनाता' कह कर हिमालय को भारत का गौरव माना था। जयशंकर प्रसाद के चन्द्रगुप्त नाटक मे अलका गाती है —

हिमाद्रि तुग शृग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वय प्रभा समुज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती
अमर्त्य वीरपुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पथ है–बढे चलो बढे चलो॥

प्रसाद जी ने हिमालय की उत्तु ग शृ ग मालाओ से स्वय प्रबुद्ध-शुद्ध भारती द्वारा स्वतत्रता का सन्देश दिलाया है। यह पराधीन देशवासियो के लिए जागरण गीत है। रामधारीसिंह दिनकर की प्रसिद्ध कविता 'हिमालय के प्रति' मे कवि ने पथरीले बर्फीले जड अचेतन हिमालय मे मानवीय भावना का आरोपण कर अनन्य आत्मीय सम्बन्ध जोडा है। सीमापति हिमालय की उदारता, महानता, वीरता का वर्णन कर कवि देश की वर्तमान स्थिति से विक्षुब्ध हो पूछता है कि विदेशी शासन से आक्रान्त भारत की दुर्दशा देखकर वह मौन क्यों है। इस हिमालय से सम्बन्धित कविता मे स्वतन्त्रता की पुकार और अतीत गौरव का स्वर अत्यधिक तीव्र है।[1]

गगा और यमुना देश की दो पवित्रतम नदिया हैं। हिन्दीप्रदेश मे बहने वाली इन दोनों ही नदियो ने हिन्दी कवियो की देशभक्ति की अभिव्यक्ति मे विशेष योग दिया है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य मे गगा के प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना समर्पित की है। यह भक्ति, धार्मिकता और राष्ट्रीयता का मिश्रित रूप है।

जय गगे, आनद तरगे, कलरवे,
अमल अचले, पुण्यजले, दिवसम्भवे!
सरस रहे यह भरत-भूमि तुमसे सदा,
हम सबकी तुम एक चलाचल सम्पदा![2]

रामधारीसिंह दिनकर ने 'पाटलिपुत्र की गगा' से अपने हृदय की पीडा भरे स्वर मे अतीत गौरव की स्मृति की है। जब देश की वर्तमान व्यवस्था असह्य हो जाती है तो अत्यधिक भावावेश म कवि गगा को सम्बोधित कर कहता है —

जिस दिन जली चिता गौरव की
जय—भेरी जब मूक हुई

१. रामधारीसिंह दिनकर . हुकार पृ० ५
२ मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० १४५

जमकर पत्थर हुई न क्यों
यदि टूट नहीं दो टूक हुई।

निराला जी की 'यमुना के प्रति' मे यमुना को देखकर कवि हृदय मे उमडी अनेक गौरव सयुक्त स्मृतियो की अभिव्यक्ति है।[1] इस प्रकार गगा, यमुना, हिमालय आदि को कवियो ने राष्ट्रीय जीवन का अभिन्न अग माना है।

हिन्दी-नाटको में देशभक्ति

जयशकरप्रसाद, जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द, हरिकृष्ण प्रेमी के नाटको मे भी देशभक्ति के महत्व का प्रकाशन किया गया है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे जयशकर प्रसाद ने सिंहरण से कहलाया है— 'जन्मभूमि के लिए ही यह जीवन है, फिर जब आप-सी सुकुमारिया इसकी सेवा मे कटिबद्ध हैं तब मैं पीछे कब रहूगा।'[2] इसी नाटक मे अलका ने देश के अणु परमाणुओ को राष्ट्रीय व्यक्तित्व के निर्माण मे सहयोगी ठहराया है— 'मेरा देश है, मेरे पहाड हैं, मेरी जातिया हैं और मेरे जगल है। इस भूमि के एक-एक परमाणुओ से बने हैं। फिर मैं और कहा जाऊगी यवन।'[3] विदेशी कन्या कार्नेलिया भी महान् भारतदेश की स्वर्गीय विभूति से प्रभावित होकर कहती है—'नही— चन्द्रगुप्त, मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहा के श्यामल कुज, घने जगल, सरिताओं की माला पहने हुए शैलश्रेणी, हरी-भरी वर्षा, गर्मी की चादनी, शीतकाल की धूप, और भोले कृषक तथा सरल कृषक-बालिकाये, बाल्यकाल की सुनी कहानियों की जीवित प्रतिमायें हैं। यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रगभूमि—भारत भूमि क्या भुलाई जा सकती है? कदापि नही। अन्य देश मनुष्यो की जन्मभूमि है, यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।'[4] कार्नेलिया का यह वचन प्रसाद जी की अनन्य देशभक्ति का उदाहरण है। 'राज्यश्री' नाटक मे गृहवर्मा और विदेशी यात्री सुएनच्वाग द्वारा भारत भूमि की श्रेष्ठता और महत्ता पर प्रकाश डाला गया है।[5] प्रसाद जी की लेखनी का प्रसाद पाकर 'देशभक्ति' ऐतिहासिक पात्रों के मुख से सजीव हो गई है। अन्य देशो की तुलना मे अपनी जन्मभूमि का स्थान अधिक श्रेष्ठ सिद्ध कर प्रसाद जी ने देशवासियो मे स्वाभिमान, गौरव की भावना भर कर राष्ट्रवाद के विकास मे अमिट सहयोग दिया है।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द के 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नामक ऐतिहासिक नाटक मे प्रच्छन्न रूप मे युग जागृति का वर्णन मिलता है। इस नाटक मे चन्द्रावत कहते

---

१. निराला : अपरा : पृ० १०१
२. जयशकर प्रसाद चन्द्रगुप्त पृ० ३२
३. वही, पृ०४७
४ वही, पृ० १४५
५ जयशकर प्रसाद : राज्यश्री : पृ० १७ और ७९

है—'......आज बरसों बाद, सोना मिट्टी से बाहर निकला है। देख, जननी जन्मभूमि, प्यारी मा, मेवाड देख! आज तेरे सपूतों मे उदारता है, न्याय है, सत्य है और है त्याग।'[1] इस नाटक मे मेवाड सम्पूर्ण भारत देश का प्रतीक है और महाराणा प्रताप देशभक्ति का मूर्त रूप। लेखक ने महाराणा प्रताप द्वारा देशभक्ति की सुन्दर एवं पूर्ण व्याख्या कराई है—'शक्ति और साधन तो देशभक्ति का शरीर मात्र है। उसकी अन्तरात्मा तो हृदय का वह उज्ज्वल भाव है, जो हम में उसके लिए पतंगे की तरह मर मिटने का साहस भर देता है।'[2] इस मातृभूमि के प्रेम मे अदम्य शक्ति छिपी हुई है। चन्द्रावत अपने अल्प वयस्क पुत्र की वीर भावना को देखकर कहते हैं—'*धन्य हो मा, धन्य हो मातृभूमि! आज तुम्हारे अन्न-जल में यह शक्ति है कि इस* अबोध शिशु के हृदय में भी उत्साह बनकर टपक रही है। वीरभूमि सचमुच तुम्हारे कण-कण मे तेज और बच्चे बच्चे म बलिदान का भाव भरा है। मा,तुम साक्षात् दुर्गा हो। संसार की रण देवता तुम्हें प्रणाम। विजय, आओ बेटा! तुम भी प्रणाम! करो। जिस देश मे हमने जन्म लिया है, वही हमारी मा है—ईश्वर से भी पूज्य और प्राणों से भी प्यारी।'[3] मिलिन्दजी ने महाराणा प्रताप के चरित्र चित्रण मे, देशभक्ति के लिए सर्वस्व समर्पण के उच्चादर्श को रखा है।

हरिकृष्ण प्रेमी की देशभक्ति साम्प्रदायिक अथवा जातीय एकता के धागे मे गुंथी हुई है। महारानी कर्मवती कहती हैं—'.... *जब तक हम अपने व्यक्तित्व* को सुख दुख और *मानापमान को, देश के मानापमान में निमग्न न कर देंगे, तब तक उसके गौरव की रक्षा असम्भव है तब तक हम मनुष्य कहलाने योग्य नहीं हो सकते।* जिस समय देश पर विपत्ति के बादल घिरे हुए हैं, बिजली कडक रही है, शत्रु पैशाचिक अट्टहास कर रहे हैं उस समय पृथक्-पृथक् व्यक्तियों, जातियों और वंशों के मानापमान और अधिकारों की चर्चा कैसी। यह घोर पाप है बाघसिंह जी! इस समय वीरों को केवल एक अधिकार याद रखना चाहिए, और वह है देश पर जान न्यौछावर करना। शेष सभी पर परदा डाल दो; शेष सभी को पाताल में गाड दो।'[4] इसी नाटक मे बादशा मेवाड के माध्यम से भारत देश की प्राकृतिक सुषमा के सम्बन्ध मे कहते हैं—'*कितना खुशनुमा है आपका देश महाराणा! आसमान से बातें करने* वाले हरे-भरे पहाड कल-कल करते हुए नाचने, कूदते जाने वाले झरने समुद्र से होड करने वाले तालाब बहिश्त के बगीचों को मात करने वाले बाग, घने जंगल। कुदरत ने गोया अपनी सारी दौलत यहीं बिखेर दी है। यहां के सुबह जिन्दगी

१ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द *प्रताप प्रतिज्ञा पृ० १००*
२. वही, पृ० ६
३. वही, पृ० ४१
४. हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन पृ० ११
५. वही, पृ० ११

के गीत गाते हुए आते हैं, यहां की शाम हमदर्दी की तान छेड़ती हुई जाती है, यहां की रात राहत की सेज बिछाती हुई आती है। तभी तो आये दिन इसे दूर दूर के शाहों लुटेरों का मुकाबला करना पड़ता है।[1]

इसी प्रकार 'प्रेमी' जी ने शिवा-साधना नाटक में भी स्वदेश प्रेम के महान् व्रत का पालन शिवाजी, उनकी माता जीजाबाई और गुरु रामदेव के चरित्र द्वारा कराया है। जीजाबाई स्वदेश प्रेम को मनुष्य का सबसे ऊंचा कर्तव्य मानती हैं जिसके सम्मुख पति और परलोक भी नगण्य हैं। वे स्पष्ट कहती है—'मैं अपनी हानि सह सकती हूं स्वदेश की नहीं।'[2] यह लेखक के अपने युग की राष्ट्रीय भावना थी। गांधीजी ने भारत के पुरुष और नारी दोनों ही अंगों में, स्वदेश की वेदी पर व्यक्ति-गत सुख अर्पित करने का महान त्याग जगा दिया था। युग की यह मांग थी कि नारी लोक परलोक से भी ऊपर स्वदेश को स्थान दे। उन्होंने भारत भूमि को वीर प्रसू भी माना है।[3]

हिन्दी नाटकों में भारत भूमि के प्रति अभिव्यक्त देशभक्ति के अनेक रूप मिलते हैं। देशभक्ति का प्रमुख लक्ष्य है, देश को विदेशी दासता से मुक्त करना।

कथा-साहित्य में देशभक्ति की भावना

हिंदी में अधिकांश कथा साहित्य सामाजिक अथवा राजनीतिक समस्याओं अथवा इतिहास को दृष्टि में रख कर रचा गया है। स्वदेश के प्रति रागात्मक उद्-गारों की अभिव्यक्ति के लिए इसमें अधिक सुयोग नहीं था। उपन्यासों में एकाध स्थलों पर अवश्य देश के प्राकृतिक सौन्दर्य का उल्लेख मिल जाता है। 'कर्मभूमि' उपन्यास में पर्वतीय प्रदेश के वर्णन अथवा गावों के चित्रण में प्रेमचन्द जी की देशभक्ति सजीव हो गई है।[4] इनके 'प्रेमाश्रम', कर्मभूमि', 'गोदान' आदि उपन्यासों में गावों में बसे भारत के यथार्थ एवं मार्मिक चित्र मिलते हैं।

प्रेमचन्द जी ने देशभक्ति अथवा मातृभूमि के प्रति अनुराग की भावना से अभिप्रेरित होकर '*यही मेरी मातृभूमि है*, कहानी रची थी।'[5] इस आत्म-कथा शैली में लिखी गई कहानी में लेखक ने स्पष्ट कह दिया है कि जननी जन्मभूमि का प्यार किसी भी व्यक्ति के हृदय से मिट नहीं पाता। इसमें उस व्यक्ति की कथा है जो उच्च अभिलाषा और ऊंचे विचारों को पूर्ण करने के लिए विदेश में जा बसता है लेकिन जीवन की अन्तिम अवस्था में जन्मभूमि का प्रेम उसे भारत खींच लाता है। वह कहता है—*मेरे धन था, पत्नी थी, लड़के थे और जायदाद थी; मगर न मालूम*

---

१. हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा बन्धन : पृ० १८
२ हरिकृष्ण प्रेमी : शिवा-साधना : पृ० २१
३. वही, पृ० १४६
४. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १४१
५ प्रेमचन्द : मानसरोवर भाग ३ : पृ० ५

क्यो मुझे रह-रह कर मातृभूमि के टूटे फूटे झोपडे, चार-छ: बीघे मौरुसी जमीन और बालपन के लगोटिया यारो की याद अक्सर सताया करती। प्राय अपार प्रसन्नता और आनन्दोत्सवो के अवसर पर भी यह विचार हृदय मे चुटकी लिया करता था यदि मैं अपने देश मे होता·· ··।[1] विदेशी शासन के कारण बिगडी हुई भारत की अवस्था देखकर क्षोभ होता है, वह सोचता है कि यह तो उसका पूर्व भारत नही है। अन्त मे ग्रामवासियो, नारियो के सगीत, हर हर गगे के शब्द, भारतीय धर्म और सस्कृति मे उसे अपनी मातृभूमि का सच्चा रूप मिलता है। आज भी प्यारे देश, गगा माता के तट और धर्म मे प्रबल आकर्षण है। इसी प्रकार 'शाप कहानी मे प्रेमचन्द जी ने 'बर्लिन निवासी' द्वारा भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य का उल्लेख किया है—'मैंने स्विटजरलैण्ड और अमेरिका के बहुप्रशसित दृश्य देखे हैं पर उनमे यह शातिप्रिय शोभा कहा। मानव बुद्धि ने उनके प्राकृतिक सौंदर्य को अपनी कृत्रिमता से कलकित कर दिया है।[2]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की गद्य-गीत सी 'स्वदेश' कहानी मे देश का मानवीकरण करते हुए स्वदेश भक्ति देश की भौगोलिक एकता का वर्णन मिलता है।[3] चडीप्रसाद 'हृदयेश' की 'योगिनी' कहानी मे देश प्रेम का अति उत्कर्षपूर्ण चित्रण मिलता है। इस कहानी मे लेखक ने नारी और पुरुष के लौकिक प्रेम का पर्यवसान देश-प्रेम मे किया है। शैवालिनी का पति देशभक्ति की साधना के लिए उसे छोड कर चला जाता है। शैवालिनी का विरह अति तीव्र है। अन्त मे पति मिलन के साथ ही उसके प्रणय की अवधि देश की सीमा तक विस्तृत हो जाती है।[4]

निष्कर्ष

हिन्दी कविता, नाटक, कथा-साहित्य मे भारतभूमि के प्रति भक्ति के अनेक रूपो का चित्रण मिलता है, जिससे राष्ट्रीय-भावना के विकास को समुचित विकास प्राप्त हुआ। देश की एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए उसके विभिन्न अगो को पुष्ट कर समुन्नत करने के लिए, साहित्य द्वारा इस प्रकार का रागात्मक वर्णन अनिवार्य था। यही एकमात्र साधन था जिससे राष्ट्रीय व्यक्तित्व को जातीयता, साम्प्रदायिकता आदि अनेक प्रकार की भेदात्मक भावनाओ से मुक्त कर, देश के लिए मर मिटने को प्रेरित किया जा सकता था। साहित्यकारो ने देशवासियो के सम्मुख भारत-माता की शुचि एव पवित्र मूर्ति उपस्थित कर उसकी उपासना की एक नवीन साधना प्रणाली का अन्वेषण किया था। यह अत्यन्त खेद का विषय है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही देश को हिन्दुस्तान पाकिस्तान मे विभाजित कर भारत माता की वन्दनीय मूर्ति को विकलाग कर दिया गया।

---

१ प्रेमचन्द मानसरोवर भाग ३ पृ० ६
२. वही, पृ० ६४
३ आचार्य चतुरसेन शास्त्री : मरी खाल की हाय पृ० ११
४. चण्डीप्रसाद हृदयेश : नन्दन निकुंज पृ० ६३

: ७ :

राष्ट्रवाद का अभावात्मक पक्ष

दुर्दशा के अनेक रूप

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में राष्ट्र के अभावात्मक पक्ष अथवा देश-दुर्दशा के विभिन्न रूपों के ज्ञान से भी सहायता मिलती है। हमारे राष्ट्रीय नेताओं की सतर्क एवं तीव्र दृष्टि ने देश की अवनति के मूल कारणों को अनावृत्त कर देशवासियों का विशेष ध्यान उनके उन्मूलन की ओर आकृष्ट किया था। देशवासियों को इस तथ्य से अवगत कराया कि जब तक राष्ट्र-संवर्द्धनात्मक अथवा विकासात्मक पुष्ट तत्वों के मार्ग से हमारी राजनीतिक पराधीनता सामाजिक रूढ़ियों, धार्मिक अन्धविश्वास एवं कट्टरता तथा अर्थाभाव सम्बन्धी बाधाओं का निराकरण नहीं किया जाएगा, तब तक सच्चे अर्थों में मुक्ति नहीं मिल सकती। हिन्दी साहित्यकारों ने अपने युग की राष्ट्रीय विचारधारा के इस अभावात्मक पक्ष की अभिव्यक्ति भी साहित्य के विविध रूपों तथा शैलियों में की है। अतः भारत की तत्कालीन समस्याओं, उसकी दुर्दशा के मर्मस्पर्शी चित्र एवं विभिन्न रूपों का चित्रण कुशल लेखनी द्वारा काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि में मिलता है।

दुर्दशा के विभिन्न रूपों का विश्लेषण करने के पूर्व उनके कारणों का अन्वेषण भी नितान्त आवश्यक है। यदि भारतीय इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन देश-दुर्दशा का प्रमुख कारण था—शताब्दियों की दासता। पराधीन रहने के कारण भारतीय जीवन की गति अवरुद्ध हो गई थी, उसका विकास रुक गया था। देशवासियों में अज्ञानता, रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास की जड़ें गहराई से जम गई थीं। देश का आध्यात्मिक—नैतिक पतन हुआ। भारत सम महान्, विशाल एवं सुसंस्कृत देश राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक-हीनता को प्राप्त हुआ। भारत की दुर्दशा सर्वांगीण थी। विधि ने पूरा विधान रच दिया था। आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक अयनापों से त्रस्त जनता को अपने निस्तार का मार्ग नहीं सूझ रहा था। राष्ट्र की अभावग्रस्त अवस्था का हिन्दी साहित्य में अत्यन्त सजीव भाषा में वर्णन मिलता है। दुर्दशा के विभिन्न रूप निम्न-

लिखित हैं—

(१) आध्यात्मिक नैतिक पतन
(२) राजनीतिक दासता
(३) आर्थिक संकट
(४) सामाजिक दुर्दशा
(५) धार्मिक मतभेद—साम्प्रदायिकता, प्रादेशिकता आदि
(६) सांस्कृतिक हीनता—शिक्षा सम्बन्धी दोष

काव्य मे दुर्दशा के अनेक रूपों की अभिव्यक्ति

आध्यात्मिक नैतिक पतन

'प्रत्येक राष्ट्र अपने धर्म शरीर से जीवित रहता है। धर्म राष्ट्र शरीर का मेरुदण्ड है। धर्म का अर्थ सम्प्रदाय नही है। धर्म उन नियमो और तत्वो की संज्ञा है, जिनसे समाज का शरीर खडा रहता है। समाज की बडी विस्तृत देह मे धर्म प्रकाश फैलाता है। धर्म के निर्बल पडने से सामाजिक देह मे अंधेरा छा जाता है। लोगो को अपना कर्तव्य सूझना बन्द हो जाता है। जब कभी जनता का बडा भाग अपने राष्ट्रीय कर्तव्य को ठीक पहचान खो बैठता है, उसी को धर्म की ग्लानि कहते है।"[1] आलोच्य काल मे भारत की यही दशा थी। उसने अपनी धर्म बुद्धि को खो दिया था। वह हतबुद्धि तथा ज्ञानशून्य हो गया था। गाधीजी ने देश के इस आध्यात्मिक नैतिक पतन को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा था। अत उनकी राष्ट्रीयता का प्रमुख तत्व था आध्यात्मिकता तथा नैतिकता की पुन प्रतिष्ठा।[2]

वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि "गाधीजी भारतीय राजनीति के मच पर इस शताब्दी के आरम्भ मे आए। उनकी पैनी आख ने राष्ट्र के शरीर को देखा। चतुर वैद्य की तरह उन्होंने राष्ट्र शरीर की नाडी को परखा और जन-जन की व्याधि को पहचाना। वह रोग क्या था—यही कि राष्ट्र का धर्म-शरीर एकदम निर्बल, निस्तेज और नि सत्व पडा था। उसमे न चेतना थी और न काम करने की शक्ति। उन्होंने अनुभव किया कि इस राष्ट्र को उठाने के लिए उसके धर्म-शरीर को फिर से बनाना होगा।'

इस युग के कवियो के क्षोभ तथा ग्लानियुक्त वाणी मे देश की आध्यात्मिकता अथवा धर्मशरीर से क्षय और नैतिक मूल्यो के ह्रास का वर्णन किया है। भारतीय आध्यात्मिकता ज्ञान, कर्म तथा भक्ति तीनो को समाहित कर चलती है, किन्तु इस काल मे देशवासी फूट, आलस्य आदि से ग्रसित हो निरुद्यमी हो गये थे। मैथिलीशरण गुप्त को भारतीयो के आध्यात्मिक पतन मे अत्यधिक विक्षोभ होता है।[3] गाधीजी के

---

१. वासुदेव शरण अग्रवाल माता भूमि · पृ २७०
२ वही, पृ० २७१
३. मैथिलीशरणगुप्त : स्वदेश सगीत : पृ० ४

सदृश उनका भी वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था मे विश्वास है। अत भारतीय धार्मिकता के संस्थापक ब्राह्मण वर्ग की दयनीय दशा देखकर तो वे ग्लानि से भर जाते हैं। चतुर्वर्ण शिरोमणि ब्राह्मण वर्ग की अवनत अवस्था का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि यह हमारा दुर्भाग्य है कि आज ब्राह्मणो मे भी पूर्व तेज, बल तथा ब्रह्मचर्य का अभाव हो गया है।[1] आज भारतवासी अपना आध्यात्मिक आदर्श 'सर्वखल्विद ब्रह्म' का सिद्धान्त भूल कर भाई के रक्त के प्यासे हो गए हैं—

सिद्धान्त 'सर्वखल्विद ब्रह्म' प्रसिद्ध रहा जहा
हा ! बन्धु शोणित से वहा अब बन्धु का कर लाल है।[2]

भारत का आध्यात्मिक आदर्श केवल पर्व त्यौहारो तक परिमित रह गया था। पाप के ताप मे पीडित भारत माता उन्ही के सहारे जीवित थी अन्यथा उसका अन्त होने मे कुछ भी नि शेष नही रह गया था। गुप्त जी ने 'विजयादशमी' कविता म भारत के आध्यात्मिक नैतिक पतन का मार्मिक चित्र अ कित करते हुए कहा है—

बस तुम्हारे ही भरोसे आज भी यह जी रही
पाप पीडित ताप से चुपचाप आसू पी रही।
ज्ञान, गौरव, मान, धन, गुण, शील सब कुछ खो गया,
अन्त होना शेष है बस और सब कुछ हो गया।[3]

भारतीय संस्कृति के साधक गुप्त जी को यह पतन अत्यधिक कष्टकर प्रतीत होता है। उन्होंने इसका कारण चचल मन का विक्षिप्त हो विषय विकारो मे लिप्त हो जाना माना है।[4]

आध्यात्मिकता के मूलाधार तत्व 'त्याग' से देशवासी शून्य हो गए थे। श्री अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' के शब्दो मे —

देश जिससे बनता है स्वर्ग, कहा है उर मे वह अनुराग ?
त्यागियों का सुनते हैं नाम, कहा है त्यागभूमि में त्याग ?[5]

'हरिऔध' जी की राष्ट्रीयता धार्मिक सहिष्णुता की समर्थक थी, इसी कारण उन्हें हिन्दुओ मे बढने हुए धार्मिक ढोग मे अरुचि थी। उनके मत मे आध्यात्मिक तथा नैतिक सत्यादर्शों से विमुख और अनभिज्ञ होने के कारण ही हमारे देश की यह दुर्दशा हुई है कि आज राष्ट्रीय एकता के रग मिटते जा रहे हैं।[6]

पडित रामचरित उपाध्याय की कवि आत्मा भी देश के धार्मिक पतन से

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ६१
२ मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश सगीत · पृ० ६२
३ वही, पृ० ६६
४. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ५०
५. अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' : कल्पलता : पृ० ४०
६ अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' : पद्मप्रसून : पृ० ५५

दुःखित हो गई थी।[1] उन्होने इसका कारण पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के बढते हुए प्रभाव में खोजा था। भारतवासी अपने देश जीवन का आध्यात्मिक लक्ष्य भूल कर दुर्व्यसनो को अपना रहे थे और चाय, चुरुट, मद्यपान के आदी हो रहे थे। उपाध्यायजी की राष्ट्रीय भावना 'हिन्दू राष्ट्रीय भावना थी। अतः जात पात से विश्वास उठना, तिलक-छापा आदि न धारण करना उनकी हिन्दू भावना की विरोधी बात थी। उन्हें परम्परागत रीति नीति तथा वेदो मे अटूट विश्वास था। आर्यसमाज के प्रभाव के कारण उन्होने देश के आध्यात्मिक नैतिक पतन मे उन सभी बातो को सम्मिलित कर लिया था जो परम्परागत अथवा वेदानुकूल नही थी। रूपनारायण पांडेय ने भी देश के धार्मिक पतन का इतिवृत्तात्मक रूप मे वर्णन किया है।[2]

रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' खण्ड काव्य मे देश के आध्यात्मिक नैतिक पतन का उल्लेख कर,[3] उसका कारण पराधीनता तथा शासक की कुटिल नीति मे खोजा है।[4]

नाथूराम शकर शर्मा ने भारतीय पतन के इस रूप का अधिक स्पष्ट शब्दो तथा इतिवृत्तात्मक शैली मे वर्णन किया है। समाज मे फैले अनाचार व्यभिचार एवं दुराचार को अधिक यथार्थ रूप मे अभिव्यक्त किया है।[5]

मैथिलीशरण गुप्त ने द्वापर में प्रच्छन्न रूप से कृष्ण कथा के आवरण मे अपने युग के पतन का भी सकेत 'विधृता' काव्य-खड मे दे दिया है—

> नारायण मेरे नर मे है,
> कौन नया यह प्राणी ?
> रौद्र नहीं, वीभत्स प्रवृत्ति यह,
> जाओ अरे, नहाओ![6]

इस युग के कवियो ने आध्यात्मिक नैतिक पतन पर विक्षोभ एव ग्लानि प्रकट की है, उसका विस्तृत वर्णन नहीं किया है।

राजनीतिक दासता

भारत की दुर्दशा का प्रमुख कारण राजनीतिक दासता था। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सास्कृतिक हीनता के मूलभूत कारण इसी में निहित थे। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण कर राष्ट्रीय जीवन के शरीर को ही नही, उसके मानसिक गठन को भी विकृत कर दिया गया था। इस युग की कविता मे, पराधीनता के

१. प० रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती · पृ० ७
२. रूपनारायण पांडेय : पराग : पृ० ६
३ रामनरेश त्रिपाठी पथिक पृ० ४६
४. वही, पृ० ४७
५ नाथूराम शकर शर्मा शकर सर्वस्व : पृ० ९२
६. मैथिलीशरण गुप्त · द्वापर पृ० २५

अभिशापवश उत्पन्न दुर्दशा के अनेक रूपों का प्रत्यक्ष एवं प्रच्छन्न रूप मे चित्रण मिलता है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामचरित उपाध्याय, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, पंडित रामनरेश त्रिपाठी, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, रामधारीसिंह दिनकर आदि कवियों ने अंग्रेजी शासकों की कठोर दमन नीति, अत्याचार, अन्याय आदि का वर्णन कर उसका विरोध किया है।

विदेशी शासक की कठोर दमन नीति ने भारतवासियों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण कर उनकी प्रगति के प्रत्येक मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। इससे देशवासी अत्यधिक विक्षुब्ध हो उठे थे। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने स्पष्ट कह दिया था कि 'देख मन मानी वहुत जी पक गया' है।[1] विदेशी शासकों की कुटिल नीति उन्हें असह्य हो गई थी।

हरिऔध जी का यह स्पष्ट मत था कि भारत स्वतन्त्रता के पश्चात् ही संसार के अन्य देशों के साथ दौड में जीत सकता है। पराधीनता का अभिशाप ही हमारी हीनावस्था का प्रमुख कारण था—

> हौंसले और दबदबे वाला। क्या नहीं है दबग बन पाता ॥
> हम किसी की न दाब मे आयें। दिल दबे कौन दब नहीं जाता ॥[2]

दासता के अभिशाप के कारण भारतवासी मान, प्रतिष्ठा, प्रताप, ज्ञान आदि सभी कुछ गवा कर क्षुधाक्षीण हो विदेशी शासकों के पदतल कुचले जा रहे थे। रामचरित उपाध्याय ने क्षुधित भारत की अज्ञानता का ग्लानिपूर्ण शब्दों मे वर्णन किया है—

> गेहूं को पैदा हम करते, खाते उसे विदेशी लोग,
> क्षुधाक्षीण हो हम मरते हैं, सहते विविध भांति के रोग।
> फिर भी हमको होश न होता, हा! मारे अज्ञान के ;
> हिन्दुस्तान हमारा ही है, हम हैं, हिन्दुस्तान के ॥[3]

राजनीतिक पराधीनता के कारण देशवासियों पर सबसे अधिक अत्याचार निरंकुश अराजकतापूर्ण नौकरशाही द्वारा किया गया। अन्याय, असत्य एवं अत्याचार पर आधारित शासन मे अधिकारीगण, पुलिस तथा न्यायालयों से न्याय की आशा दुराशा मात्र थी। पंडित रामचरित उपाध्याय ने नौकरशाही के अत्याचारों का वर्णन अधिक स्पष्ट एवं निर्भीक शब्दों मे किया है—

> स्वार्थहेतु परमार्थ गवाना, भला नहीं है नौकरशाही।
> अस्त्रहीन पर शस्त्र चलाना, कला नहीं है नौकरशाही ॥

× × ×

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध : चुभते चौपदे पृ० १४
२. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध : चुभते चौपदे : पृ० ३१
३. पंडित रामचरित उपाध्याय . राष्ट्रभारती : पृ० २२

सदा नहीं अन्याय चलेगा हम पर तेरा नौकरशाही।
फट जावेगी रात, मिलेगा कभी सवेरा नौकरशाही॥
हमने तुमको अब जाना है बहुत दिनों पर नौकरशाही।
कुटिल कपट क्या टिक सकता है ? विज्ञ जनों पर नौकरशाही॥[1]

नाथूराम शंकर शर्मा ने नौकरशाही की कुटिलता का वर्णन इतिवृत्तात्मक शैली किन्तु तीखे शब्दों में किया है। भारतीय इतिहास में नादिरशाह, तैमूर तथा चंगेज खां के नाम अत्याचारी आक्रमणकारियों में प्रसिद्ध, किन्तु इनकी नृशंसता जनरल डायर से कम थी। जनरल डायर ने जलियांवाला बाग में निरपराध भारतीयों की हत्या कराई थी—

हा, महमूद सगदिल डाकू उफ, नादिर, तैमूर, जलालू।
ये जालिम चंगेज सितम थे ओडायर डायर से कम थे॥[2]

वियोगी हरि ने 'अयोग्य नरेश' काव्य में भारत की राजनीतिक दुर्दशा पर ब्रज भाषा में प्रकाश डाला।[3] श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'जलियांवाले बाग में वसन्त' नामक कविता में अंग्रेजी शासकों के अत्याचार का वर्णन अत्यधिक मादक एवं भावनात्मक शब्दों में किया है। अपनी संवेदना के प्रवाह में वे वसंत ऋतु की वायु को मन्द गति से बाग में जाने का आग्रह करती हैं। एक-एक शब्द हृदय को वेधता-सा प्रतीत होता है—

कोमल बालक मरे यहां गोली खा-खाकर।
कलियां उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर॥
आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं।
अपने प्रिय परिवार-देश से भिन्न हुए हैं॥[4]

शासकगण स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उद्यत राष्ट्रीय वीरों के प्रयासों का तीव्रता से दमन करने में प्रवृत्त था। राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेने वाले बच्चों, अबलाओं पर जो नृशंस अत्याचार किये गये थे, उन्हें देखकर स्वयं हिंसा भी लज्जित हो जाती। सियारामशरण गुप्त ने राष्ट्रीय कथा काव्य 'आत्मोत्सर्ग' में इसका वर्णन किया है, जो शासकवर्ग बच्चों और अबलाओं के ऊपर भी घोड़े दौड़ा सकते थे उनकी पाशविकता का और अधिक क्या वर्णन किया जाय ?[5] राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के वीर सेनानी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगतसिंह को फांसी देकर विदेशी सरकार ने जनता के साथ-साथ कवि हृदय को भी आघात से भर दिया था—

---

१ पंडित रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती पृ० १६
२ हरिशंकर शर्मा सम्पादक शंकर सर्वस्व · पृ० २०७
३ वियोगी हरि . वीर सतसई पृ० ७५
४ सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल पृ० ८१
५ सियारामशरण गुप्त आत्मोत्सर्ग : पृ० ३१

ओ निष्ठुर नौकरशाही
भगतसिंह को फांसी देकर—[1]

राष्ट्रीय आन्दोलन मे सम्मिलित सत्याग्रही वीरो को कारावास का कठोर दण्ड दिया गया था। जेल म किये गये अत्याचारो का वर्णन भी कवियो ने मर्म-वेधी शब्दो मे किया है। रूपनारायण पाडय ने कारागार[2] कविता लिखी। माखनलाल चतुर्वेदी की अनेक कविताओ जैसे कैदी और कोकिला'[3] राष्ट्रीय झण्डे की भेंट',[4] 'राष्ट्रीय वीणा'[5] आदि मे भी यही मिलता है। राष्टीय वीणा मे कवि ने अत्यधिक कलात्मक एव भावात्मक शैली मे भारत माता रूपी वीणा के कसे हुए तारो का विदेशी शासको द्वारा पीटे जाने का रूपक बाधा है—

कसे हुए पीटे जाते हैं भारी शोर मचाते हैं।
हा! हा! हमें पीटने वाले जरा नहीं सकुचाते हैं।[6]

चतुर्वेदी जी ने अन्योक्ति पद्धति म भी विदेशी शासको के अत्याचार का वर्णन किया है। विदेशी शासक-कस, महात्मा गाधी-कृष्ण और जेल पवित्र कृष्ण जन्म के स्थान बन गये थे। चतुर्वेदी जी ने समस्त भारतवर्ष को कोमलतर बन्दीखाने के रूप मे देखा था—

'शकर' थी, अब काराग्रह है
हिमगिरि की दीवार
हाथ गले का तौक बना
गगा जमुना का हार,
धन्य! बग खभात प्रबंध—
की लहरों की हथकडिया,
रामेश्वर पर चढी तरगे
बनी पैर की कडिया।
कोमलतर बन्दीखाने के
तीस कोटि बन्दी हैं
हों गुलाम, जीवन की
बेहोशी में आनदी हैं।[7]

१ सियारामशरण गुप्त आत्मोत्सग पृ० १६
२ रूपनारायण पाडेय पराग पृ० ५६
३ माखनलाल चतुर्वेदी हिमकिरीटिनी पृ० १४
४ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ७७
५ वही, पृ० ४८
६ वही, पृ० ४८
७ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ७५

रूपनारायण पाडेय ने विदेशी शासको द्वारा भारत मे किये गये अत्याचार को अलकारिक भाषा म लिखा है—

दु शासन पकडे खडा भारत—माँ के केश;
इस अनीति के दृश्य से क्षुब्ध हो उठा देश ।।[1]

इस युग तक आते-आते विदेशी शासको के प्रति श्रद्धा का अभाव हो गया था और कवियो ने उसे तमोगुण, असुर, पशुबल समन्वित शासक के रूप मे चित्रित किया है।

पुलिस का कोई विश्वास नही रह गया था और अधिकारीगण भी साम्प्रदायिक दगो की आग लगते देख उसे बुझाने का प्रयत्न नही करते थे।[2] वास्तव मे साम्प्रदायिकता पराधीनता का सबसे बडा अभिशाप था, क्योकि इस 'फूट डालो शासन करो' की नीति पर ही उनका साम्राज्य स्थिर था। विदेशी शासको ने जिस शिक्षा का प्रचार देश मे किया था वह राष्ट्रीय उन्नति के लिए घातक थी। भारतवासी सस्कृति आदर्श व मूल्यो को छोड पश्चिमी सभ्यता और सस्कृति मे रगत जा रहे थे—

क्या ऐसी हो सुफलदायिनी है अब शिक्षा ?
क्या अब वह है बनी नहीं भिक्षुक की भिक्षा ?
क्या अब वह है नहीं दासता बेडी कसती ?
क्या न पतन के पाप पक मे है वह फसती ?
क्या वह सोने के सदन को नहीं मिलाती धूल में ?
क्या बन कर कीट नहीं बसी वह भारत-हिय हित फूल में ?

भारत की आर्थिक दुर्दशा तथा चारित्रिक हीनता[3] का मूल कारण भी पराधीनता ही था। रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' खडकाव्य मे प्रेम कथा के रूप मे तत्कालीन राजनीतिक तथा आर्थिक स्थितियो का निरूपण किया है—

समझ लिया तत्काल पथिक ने कारण इस दुर्गति का।
है सिद्धान्त प्रजा की उन्नति के प्रतिकूल नृपति का।
राजकार्य सचालनार्थ ही कुछ शिक्षा प्रचलित है।
कठिन व्याधि, विमुख प्रजा का अघ पतन निश्चय है।।
प्रजा नितान्त चरित्रहीन हो शक्ति जाय मिट जन की
शिक्षा का उद्देश्य यही है, नीति यही शासन की।
'चरित्रहीन डरपोक अशिक्षित प्रजा अधीन रहेगी।'
है यह भाव निरकुश नृप का, 'सदा अनीति सहेगी।'[4]

---

१. रूपनारायण पाडेय पराग २५
२ सियारामशरण गुप्त आत्मोत्सर्ग . पृ २६-२७
३ अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' . कल्पना पृ० ४०
४. रामनरेश त्रिपाठी . पथिक पृ० ४६

भारतवासियो को ऐसे-ऐसे कानूनो से जकड दिया गया था कि उनकी अन्त-रात्मा तक कराह उठी थी । मैथिलीशरण गुप्त के काव्य मे अस्त्र कानून के प्रति विद्रोह, अभिव्यक्त हुआ है कि जिनकी देवमूर्तिया भी निरस्त्र नही हैं, वे भारतवासी नि शस्त्र हो दीन-हीन अवस्था को प्राप्त हुए हैं।[1] अत कूट और कुनीति पर आधारित कुशासन की ध्वजा फहराने वाली नौकरशाही ने भारत को 'भुरता' बना दिया था । नौकरशाही से स्वराज्य की आशा करना व्यर्थ था । नाथूराम शकर शर्मा के शब्दो मे —

नौकरशाही दे चुकी भारत तुझे स्वराज्य ।
डाल न आशा-आग म, असहयोग का राज्य ॥
क्रूर कुशासन की ध्वजधारी, कट्टर कूट कुनीति पसारी ।
हा, न लोक-मत से डरती है, भारत का भुरता करती है ॥
अकड अडाती है चित चाही
अटकी कुटिला नौकरशाही॥[2]

देश का सबसे अधिक दुर्भाग्य तो यह था कि इस नौकरशाही की अधिकाश सख्या भारतीय थी । पराधीनता के कारण उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी । बडे बडे अधिकारीगण 'गद्दी पर के गधे' के समान थे जिन्हाने केवल बोझ ढोना ही सीखा था, कभी टैक्स का बोझ और कभी चदे का बोझ । इन्हें अपने देश, भेप और वेश का कुछ भी ध्यान नही रह गया था । पडित रामचरित उपाध्याय ने भारतीय पदाधिकारियो को धिक्कारते हुए कहा है—

बेशर्म ! धर्म से कर्म से विमुख हुआ क्यों ? भूल है ।
क्या पराधीनता से अधिक दूजा भी दुख-मूल है ॥[3]

भारतीय अधिकारी उपाधियो तथा पदवियो के लोभ मे राष्ट्र सघातक कार्य करते थे । उनके मानसिक पतन की सीमा नही रह गई थी । उपाध्याय जी ने इसका विरोध करते हुए लिखा है—

'रायबहादुर बना देश' से दुर-दुर होकर,
कृत्रिम राजा बना पिता के धन को खोकर ।
कुरसी तोडी व्यर्थ बेगारी करके तूने,
चौपट करके कामकाज सब घर के तूनें;
तू सी० आई० ई० क्या बना ईसाई के हाथ से ?
क्यों विच्युत हो वैरी बना निज समाज के साथ से ।[4]

---

१ मैथिलीशरण गुप्त · हिन्दू पृ० ५१
२ हरिशकर शर्मा · शकर सर्वस्व पृ० २०६
३ रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती : पृ० ४४
४ वही : पृ० ४४

कवि भारतवासियों के इस पतन से इतना विक्षुब्ध हो जाता है कि उसकी राष्ट्रीयता म जातीयता का भाव मिल जाता है। उसे पराधीनता इतनी असह्य हो गई थी कि वह विदेशी शासकों की उपमा 'गुडहर' के फूल से करता हुआ उनका अनादर भी करता है।[1]

दिनकर' ने भी, अपने को सभ्य एव सुसस्कृत समझने वाले अग्रेजी साम्राज्य वाद की शोषण नीति के सम्बन्ध म मार्मिक एव व्यग्यात्मक आक्षेप किया है—

दलित हुए निर्बल सबलो से
मिटे राष्ट्र, उजडे दरिद्र जन
आह ! सभ्यता आज कर रही
असहायो का शोणित शोषण ।[2]

दिनकर ने दलित वर्ग का नेतृत्व किया है, असहायों और निर्बलों की ओर से पुकार की है। आर्त्त भारतवासी खग मृग से भी हीन जीवन व्यतीत कर रहे थे। उसका उपचार और निदान कवि की हतबुद्धि को समझ में नही आ रहा था।[3] दिनकर न विदेशी शासन से अभिशप्त जनता की बवसी और दयनीय अवस्था का वर्णन अधिक लाक्षणिक व्यजनात्मक और कलात्मक रूप से किया है, जिसमे कवि हृदय की पीडा का स्वर व्याप्त है।[4] वर्तमान के चीत्कार को सुन कर उनकी अन्ध भावनाए जल गई थी, उसका हृदय विद्रोही बन गया था। विदेशी शाति के नाम पर भारतीय शोषण मे दानव मे जुटे थे। पराधीनता के अभिशाप को देख कवि की वाणी तर्क-शीला हो जाती है। वह कटुता, क्षोभ और व्यग्य मिश्रित भाषा मे प्रश्नो की झडी लगा देता है—

टाक रही हो सुई चर्म, पर, शान्त रहें हम, तनिक न डोलें,
यही शाति, गरदन कटती हो, पर, हम अपनी जीभ न खोलें।
बोलें कुछ मत क्षुधित, रोटियां श्वान छीन खायें यदि कर से;
यही शान्ति, जब वे आयें हम निकल जायें चुपके निज घर से ?
हव्वी पड़ें पाठ सस्कृति के खड़े गोलियों की छाया मे,
यही शान्ति वे मौन रहें जब आग लगे उनकी काया में ?

काव्य क्षेत्र म राजनीतिक दुर्दशा के अनेक चित्र, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष, इतिवृत्तात्मक अथवा भावात्मक, अभिधात्मक अथवा अन्योक्ति पद्धतियो म मिलते हैं। पडित रामचरित उपाध्याय, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शकर शर्मा ने पराधीनता के कारण उद्भूत दुर्दशा, विदेशी शासको द्वारा नियोजित अत्याचारो

---

१. रामचरित उपाध्याय, राष्ट्रभारती पृ० ३१
२ रामधारीसिंह दिनकर, रेणुका पृ० २१
३ वही, पृ० २६
५. रामधारीसिंह दिनकर - हुंकार पृ० १ [illegible]

का वर्णन इतिवृत्तात्मक शैली मे एव अधिक स्पष्ट शब्दो मे किया है। इनके काव्य मे विदेशी शासको की कुटिल नीति, नौकरशाही के प्रति घृणा, विरोध तथा आक्रोश का मिश्रित भाव तीखापन लिए हुए झलकता है। सियारामशरण गुप्त ने अमर शहीद गणेशशकर विद्यार्थी के आत्म बलिदान की कथा मे नौकरशाही के अत्याचारो का प्रबल शब्दो मे वर्णन किया है। माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, मैथिलीशरण गुप्त ने अधिक सयत वाणी मे दासता के अभिप्राय को अभिव्यक्त किया है। इनमे करुणा एव भावना की मात्रा अधिक है। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के काव्य मे विरोध नारी सुलभ कोमल भावनाओ मे लिपटा हुआ है। उनकी राष्ट्रीय चेतना अनुभूतिमूलक एव भावनात्मक है। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य मे राजनीतिक अत्याचार का वर्णन अधिक भावात्मकता तथा काव्यात्मकता के आग्रह के साथ किया गया है। भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति उनके कवि-हृदय मे दुर्वह व्यथा का महाज्वार उद्वेलित कर देती है। इन कवियो की कविताए काव्य-कला की दृष्टि से भी उच्चकोटि की हैं। इनका काव्य पाठको के सवेदनशील हृदय तल का स्पर्श करता है।

रामधारीसिह दिनकर ने छायावाद के उत्तरार्द्ध मे, काव्य क्षेत्र मे क्रान्ति की प्रबल भावना के साथ प्रवेश किया। इनकी राजनीतिक पराधीनता की अनुभूति अधिक क्रान्तिकारिणी है। इन्होने साहित्यिकता एवं काव्यकला का पूर्ण निर्वाह किया है।

इस युग मे लिखे गये महाकाव्यो मे भी प्रच्छन्न रूप मे राजनीतिक सघर्ष की झलक मिल जाती है। जयशकर प्रसाद की 'कामायनी' मे शासक और शासित का द्वन्द्व दिखाया गया है। स्वेच्छाचारी शासक के विरुद्ध विप्लव की भावना प्रसाद के अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा की देन है। गुरुभक्तसिंह की 'नूरजहा मे शेरअफगन की निर्दयता, प्रजा पर अत्याचार अप्रत्यक्ष रूप से अग्रेजी शासको का अत्याचार है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के उस युग मे, जबकि विदेशी शासको के कठोर-दमन-चक्र के नीचे भारतवासी पिस रहे थे, शासन व्यवस्था के विरुद्ध एक भी शब्द फासी पर चढवा देने के लिए पर्याप्त होता था और प्रेस एक्ट द्वारा विचारो की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता भी नही रह गई थी, इन राष्ट्रीय कवियो ने जिस साहस एव निर्भयता से राजनीतिक दुर्दशा का चित्रण काव्य मे किया है, वह प्रशसनीय एव अभिनन्दनीय है। राष्ट्र एव राष्ट्रवाद के प्रसार और विकास मे इन कवियो का महत्वपूर्ण योग रहा है।

आर्थिक सकट

अग्रेजी दासता के पूर्व, मुसलमानी राज्य काल मे भारत केवल राजनीतिक दृष्टि से विदेशियो के अधीन था किन्तु उसकी अर्थ व्यवस्था अक्षुण्ण बनी थी। परन्तु अग्रेजी साम्राज्यवाद पूजीवादी व्यवस्था पर आधारित था अतः भारत मे

भी इस व्यवस्था की स्थापना हुई। नागरिक तथा ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का ढाचा बदल गया। भारत प्रमुखतया कृषि प्रधान ग्रामो का देश है। अतः विदेशी शासको ने सर्वप्रथम भारतीय ग्रामो की आत्म निर्भर प्रणाली, हस्त कला उद्योग तथा सगठित जीवन को विच्छिन्न कर एक नवीन जमीदारी तथा रैय्यतवारी प्रणाली मे जकड दिया। अन्य कला कौशल के अभाव मे अधिकाश ग्रामवासियो की आजीविका का साधन कृषि कर्म ही रह गया था। सामाजिक रूढियो और धार्मिक अन्धविश्वासो के कारण उनकी आय की अपेक्षा व्यय ही अधिक था, अत ऋण लेना आवश्यक था। ऋण पाने की उचित व्यवस्था न होने के कारण ग्रामवासियो को महाजन एव साहूकारो का आश्रय लेना पडा। अत जमीदार तथा साहूकार दोनो ने किसानो की अज्ञानता, अशिक्षा का लाभ उठा कर उनका शोषण किया।

नागरिक जीवन मे भी अनेक आर्थिक समस्याएँ उठ खडी हुई थी। विदेशी शासक वर्ग ने जिस प्रकार की शिक्षा का प्रचार किया था, उससे अधिक सख्या में क्लर्कों की ही भरमार हो सकती थी। आजीविकोपार्जन मे सहायक स्वतत्र व्यवसाय सम्बन्धी शिक्षा न मिलने के कारण शिक्षित वर्ग को सरकारी नौकरी का द्वार खटखटाना पडता था, जिससे दिन प्रतिदिन बेकारी की समस्या बढती जा रही थी।

ठाकुर गोपालशरणसिंह, श्री 'त्रिशूल', माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, प० रामनरेश त्रिपाठी, रामधारीसिंह दिनकर आदि कवियो ने आर्थिक शोषण तथा अर्थ सम्बन्धी समस्याओ का विवेचन काव्य मे किया है। ठाकुर गोपाल शरण सिंह ने आर्थिक शोषण द्वारा भारत की दुर्दशा का अत्यधिक तीव्र शब्दो मे वर्णन किया है।[1]

'त्रिशूलजी' न विदेशी पूजीवादी साम्राज्यवाद की लोक-उत्पीडनकारी, अन्यायपूर्ण, असाम्यवादी आर्थिक नीति का उद्घाटन कर भारतीयो की दुर्दशा पर प्रकाश डाला है। भारत मे पूजीवादी व्यवस्था की स्थापना कर अग्रेजी शासको ने थोडे से भारतीयो को धनाधीश बनाकर उनकी सहायता से साधारण जनता को चूसने की अनोखी रीति निकाली थी। अत देश मे विषमता, अनेकता आदि कटु भावनायें फैल रही थी। 'त्रिशूल' ने उनकी इस नीति का विरोध करते हुए लिखा है—

सभी प्रकृति के पुत्र जान सबको है प्यारी।
पायें प्रकृति प्रसाद सभी हैं सम अधिकारी॥
धनाधीश क्यों रहे एक दूसरा क्यों भिखारी?
है यह अति अन्याय लोक-उत्पीडनकारी।
मिलता दीनों को नहीं समुचित श्रम का मोल है,
प्रकट न देखें लोग पर भरी ढोल मे पोल है॥

पडित रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' खण्डकाव्य मे प्रेम कथा के सहारे देश

---

१. ठाकुर गोपालशरणसिंह : सचिता पृ० १११

की आर्थिक दुर्दशा के चित्र प्रस्तुत किये हैं। देश-दशा से परिचित होने के लिए पथिक एक वर्ष तक भ्रमण करता है। देश के प्राकृतिक सौंदर्य को देख वह आश्चर्य-निमग्न हो जाता है कि इतने सुन्दर तथा प्राकृतिक वैभव से पूर्ण देशवासी क्षुधा-तृषित क्यों रहते हैं। यह कैसी विडंबना है कि कृषकगण अन्न उत्पन्न करके भी दाने दाने को तरसते हैं—

> धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर घर में।
> मांस नहीं है, निरी सांस है शेष अस्थि पंजर में॥
> अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, रहने का न ठिकाना।
> कोई नहीं किसी का साथी, अपना और बिगाना॥[1]

त्रिपाठी जी ने स्वदेश प्रेम के अतिरेक में देश-दशा का अत्यधिक करुण एवं भावात्मक चित्र खींचा है। उनकी यह सबसे बड़ी विशेषता है कि तत्कालीन देश-दशा के चित्रण के लिए कथा काव्य का आश्रय लिया है। 'पथिक' का क्रूर एवं अन्यायी नृप अंग्रेजी शासन का प्रतीक है जिसकी अनीति के कारण देश की आर्थिक व्यवस्था का विघटन हुआ था।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भारत की आर्थिक विपन्नता के प्रतीक भिखारी की स्थिति और स्वरूप दोनों का स्पष्ट और सप्राण चित्र खींचा है—

> वह आता —
> दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
> पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
> चल रहा लकुटिया टेक,
> मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
> मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
> दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता॥[2]

इसी कविता में 'निराला' जी ने भारत की दयनीय स्थिति का अत्यन्त करुण चित्र खींचा है।

भिक्षुक को अपने बच्चों के साथ जूठी पत्तलों को चाटने में भी चैन न मिल पाता था क्योंकि उन्हें झपट लेने को कुत्ते अड़े हुए थे। किसी भी देश की इससे अधिक आर्थिक दुर्दशा क्या होगी। 'तोड़ती पत्थर' कविता में निरालाजी ने पूंजीवाद के कारण उत्पन्न भारत की निम्न वर्ग की नारी की दयनीय दशा का सजीव एवं प्रभावात्मक चित्र प्रस्तुत किया है—

> वह तोड़ती पत्थर;
> देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
> वह तोड़ती पत्थर।

---

१ रामनरेश त्रिपाठी . पथिक · पृ० ४५

२. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अपरा : पृ० ६६

नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्म रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार —
सामने तरु मालिका अट्टालिका, प्रकार ॥[1]

विदेशी शासकों की दानवी प्रवृत्ति के कारण भारतीय जीवन में जिस अभाव एवं हाहाकार का साम्राज्य था उसका यथार्थ मार्मिक, वीभत्स चित्रण 'दिनकर' जी ने किया है—

पर शिशु का क्या हाल सीख पाया न अभी जो आँसू पीना ?
चूस-चूस स्तन माँ का सो जाता रो-विलप नगीना।
विवश देखती माँ, अंचल से नन्हीं जान तड़प—उड़ जाती,
अपना रक्त पिला देती यदि फटती आज वज्र की छाती।
कब्र कब्र में अबुध बालकों की भूखी हड्डी रोती हैं,
'दूध-दूध !' की कदम-कदम पर सारी रात सदा होती है।
'दूध-दूध !' ओ वत्स मन्दिरों में बहरे पाषाण यहाँ हैं,
'दूध-दूध !' तारे, बोलो इन बच्चों के भगवान कहाँ हैं ?[2]

इन पंक्तियों में कवि हृदय का हाहाकार करुणा से भीग कर बोझिल हो गया है और उसकी तीव्रता, उसकी गहनता और बढ़ जाती है। इसी देश में शोषक वर्ग अपने श्वानों को दूध से नहलाते दिखाई देते हैं।[3] कवि हृदय अपने देश की विवशता, दयनीयता और अभावों को देख चीत्कार कर उठता है कि जेठ हो कि हो पूस, हमारे कृषकों को आराम नहीं है।[4] उसमें अदम्य साहस आ जाता है और अभाव के निराकरण के लिए वह प्रयत्नशील दिखाई देता है।[5]

ग्रामवासिनी भारतीय जनता की शोचनीय आर्थिक अवस्था का उपहास सा उड़ाती दैवी विपत्तियाँ अधिक कष्टकर थीं। बाढ़ से बचने के लिए साधनों का अभाव था। सियारामशरण गुप्त ने 'बाढ़' कविता में बाढ़ से उत्पीड़ित दीन-हीन ग्रामीणों की विपत्ति का करुण दृश्य खींचा है। साम्राज्यवाद की शोषक नीति में सहयोग देती हुई बाढ़ आदि आधिदैविक विपत्तियाँ कृषक को भिक्षुक बना कर ही

१ निराला तोड़ती पत्थर (१९२० ई०) पृ० २०
२ रामधारीसिंह दिनकर हुंकार · पृ० २२
३ वही, पृ० २३
४ वही, पृ० २२
५ वही, पृ० २३

शान्त होती थी —

छोड कर रुद्र रूप भिक्षुक का रूप धार
आई आज बाढ है तुम्हारे द्वार ।
पर्व पर जाते हो स्वय ही जहाँ,
आये हैं वही ये तीर्थ-आप ही तुम्हारे यहा।
याचक खडा है पर्व ही स्वत ।
आये आज होके अत
देकर दया का दान
कुछ तो मिटाओ क्षुधा इनकी महा महान ।[1]

कवियो न देश के आर्थिक शोषण, आर्थिक विपन्नता तथा अर्थाभाव के कारणो पर लेखनी उठाकर, इतिवृत्तात्मक, भावात्मक आदि अनेक शैलियो मे काव्य रचना की है। अपने युग के आर्थिक अभाव का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर कवियो ने अपनी वाणी सार्थक की है। ये चित्र जनता के हृत्तल का स्पर्श करने वाले हैं।

काव्य मे सामाजिक दुर्दशा का चित्रण

सन् १९२० के पश्चात् हिन्दी काव्य क्षेत्र मे *छायावाद एव रहस्यवाद* की प्रवृत्ति के विकास के कारण द्विवेदीयुगीन अतिशय इतिवृत्तात्मक और बाह्यार्थ निरूपिणी काव्य धारा समाप्तप्राय होन लगी थी। अत इस युग के अधिकाश कवियो ने सामाजिक परिस्थितियो के स्थूल चित्रण की अपेक्षा अपनी व्यक्तिगत लौकिक प्रेमानुभूति को सूक्ष्म, छायात्मक, रहस्यात्मक एव विशेषण प्रधान शैली मे अभिव्यक्त किया है। मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य मे आध्यात्मिक छाया का आभास दे कर नवीन कल्पनाओ एव मान्यताओ को उद्भूत किया गया है। कवि-वर्ग की सामाजिक चेतना कु ठित हो गई थी। अत द्विवेदी युग की तुलना मे, इस युग के काव्य मे सामाजिक दुर्दशा के स्थूल अथवा भावात्मक चित्र अल्प सख्या मे मिलते हैं।

द्विवेदी युग से चले आ रहे कवियो ने अवश्य सन् १९२० के बाद भी अपनी कविताओ मे सामाजिक रूढियो, कुरीतियों, अनीति आदि का वर्णन इतिवृत्तात्मक रूप मे किया है। ये कवि हैं *नाथूराम शकर शर्मा, अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध'*, मैथिलीशरण गुप्त, रूपनारायण पाडेय, वियोगी हरि आदि।

नाथूराम शकर शर्मा ने काव्य मे इतिवृत्तात्मक शैली मे विधवाओ की दुरवस्था, वृद्धो का बालिका कन्याओ स विवाह, सामाजिक पाखण्ड, बाल विवाह आदि कुरीतियो का वर्णन किया है।[2] मैथिलीशरण गुप्त ने "विधवा" कविता मे विधवाओ के प्रति सामाजिक अत्याचारो और व्यभिचार का भडाफोड किया है। 'स्त्रियो के प्रति कर्तव्य'

१ सियारामशरण गुप्त दूर्वादल पृ० ९७
२ शकर सर्वस्व · पृ० २६३ (काव्य रचना का समय नहीं दिया गया है)
३ मैथिलीशरण गुप्त · हिन्दू : पृ० ६२
४ वही: पृ० ६४

में बेमेल विवाह का विरोध और स्त्री-शिक्षा का प्रचार कर नारी वर्ग की जड़ता एवं अज्ञानता को मिटाने का उद्योग किया गया है जिससे पुरुष के साथ समाज का नारी वर्ग भी देश की उन्नति में सहायक हो सके। 'वृद्ध विवाह'[1] में भारतवासियों की कूप मण्डूकता और वृद्ध विवाह के कुपरिणामों का दिग्दर्शन करा कर बाल-विवाह का भी कवि ने विरोध किया है।[2] 'द्वापर' में गुप्तजी ने कृष्णकथा के माध्यम से नारी की असहाय स्थिति की ओर 'विधृता' काव्य खंड में संकेत किया है। नारी पत्नीत्व के उच्च आदर्श से उतर कर दासी मात्र रह गई थी।[3]

रूपनारायण पांडेय ने भी इतिवृत्तात्मक शैली में सामाजिक कुरीतियों, नारी की अशिक्षा और विधवाओं की अवस्था के दयनीय सम्बन्ध में लिखा है।[4] अयोध्यासिंह उपाध्याय की सामाजिक चेतना अत्यधिक जागरूक है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों, दुर्बलताओं का अत्यन्त सजीव चित्र व्यंग्यात्मक शैली में खींचा है। डा० द्वारिका प्रसाद ने लिखा है—'रवि ने समाज के कायर, आलसी, अकर्मण्य, परमुखापेक्षी, धर्मान्ध अन्धविश्वासी, छूआ-छूत फैलाने वाले, ढोंगी पाखण्डी, मनचले, निर्लज्ज आदि महापुरुष पर अच्छी फबतियाँ कसी हैं।'[5] वृद्धों द्वारा युवतियों से विवाह पर हास्यपूर्ण शैली में व्यंग्य करते हुए लिखा है—

हो बड़े बूढ़े न गुड़ियों को ठगें,
पाउडर मुँह पर न अपने वे मलें ॥
ब्याह के रंगीन जामा को पहन,
बेईमानी का पहन जामा न लें ॥
छोकरी का ब्याह बूढ़े से हुए,
चोट जी में लग गई किसके नहीं।
किसलिए उस पर गड़ाये दाँत वह,
दाँत मुँह में एक भी जिसके नहीं ॥[6]

वियोगी हरि ने भी अपने युग की सामाजिक दुर्दशा का चित्रण ब्रजभाषा में किया है। बाल विधवा'[7] में स्पष्ट कह दिया है—

जहाँ बाल विधवा-हियें रहे धधकि अंगार।
सुख-सीतलता को तहाँ करिहौ किमि सचार ॥[8]

---

१ मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश संगीत : पृ० ४६
२ वही . पृ० ४०
३ मैथिलीशरण गुप्त द्वापर पृ० २५
४ रूप नारायण पांडेय : पराग। पृ० १८, १६
५ डा० द्वारिकाप्रसाद . प्रिय-प्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन पृ० २३२
६ अयोध्यासिंह उपाध्याय चुभते चौपदे पृ० १६
७ वियोगी हरि वीर सतसई पृ० २२
८. निराला काव्य और व्यक्ति . पृ० १११

रामनरेश त्रिपाठी की भी भारत की विधवा के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी । 'विधवा का दर्पण' कविता मे उस विधवा का चित्र है जिसने राष्ट्र के हित अपने पति का उत्सर्ग कर दिया था । इनकी विधवा दयनीय होते हुए भी गौरव की वस्तु है ।

छायावादी एव रहस्यवादी कवियो में केवल 'निराला' ने वर्तमान की यथार्थता को विस्मृत नहा किया है। 'अतिशय कल्पना के आरोप के उस युग मे भी निराला साधारण समाज और मानव जीवन की ओर दृष्टि निक्षेप करते हैं।'[1] उन्होने भारतीय विधवा का जो चित्र अपनी 'विधवा'[2] कविता मे खीचा है, वह अपूर्व है । 'शकर' अथवा मैथिलीशरण गुप्त की भाति उनकी लेखनी ने भारतीय विधवा जीवन की कुठाओ, विकृतियों, सामाजिक अन्याय एव अत्याचार का वर्णन इतिवृत्तात्मक शैली मे नही किया है । 'निराला' जी ने भारतीय विधवा के दिव्य रूप के साथ, उसकी मन स्थिति के विश्लेषण मे सामाजिक रूढियो के प्रति विक्षोभ के स्वर को मिला दिया है। मधु मे छिपे विष की ओर सकेत किया है। दिव्यता मे आवृत्त मानव मनोवृत्ति की यथार्थता का मनोवैज्ञानिक उद्घाटन किया है। विधवा के प्रति कवि की सवेदनात्मक अनुभूति गहरी होने के कारण वह सहज ही पाठको की समस्त सहानुभूति एव करुणा की पात्र बन जाती है—

> वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
> वह दीप शिखा सी शात, भाव मे लीन,
> वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी,
> वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन—
> दलित भारत की ही विधवा है ।।[3]

विधवा का इतना भावात्मक एव प्रभावोत्पादक चित्रण इसके पूर्व नही हुआ था।

सियारामशरण गुप्त ने 'आर्द्रा' मे लघु कथाओ के रूप मे काव्य द्वारा सामाजिक रूढिवादिता का सुन्दर एव मार्मिक चित्रण किया है। 'नृशस' मे अर्थाभाव और कन्या के विवाह की समस्या ली गई है। जब 'कौडी भी नहीं है पास, ऋण ने किया है ग्रास' तो कन्या के विवाह और दहेज की प्रथा माता पिता के लिए विष से भी अधिक घातक हो जाती हैं। बेटी को विष पान मे ही अपने माता-पिता की मुक्ति का उपाय मिलता है।[4]

हिन्दू समाज को विनष्ट करने वाली शक्तियो मे अस्पृश्यता की भावना का भी प्रमुख हाथ था। समाज के उच्चवर्ग मे, निम्न अथवा शूद्र वर्ण के लिए व्याप्त,

---

१ निराला काव्य और व्यक्तित्व : पृ० १११
२ निराला : अपरा पृ० ५६
३ वही, पृ० ५६
४ सियारामशरण गुप्त : आर्द्रा : पृ० २७-३६ द्वितीयावृत्ति

हीन भावना तथा भेदभाव उसे पंगु बना रहे थे। उसमें असमानता तथा मनोमालिन्य बढ़ता जा रहा था। समाज का एक वर्ग अस्पृश्य होने के कारण सकीर्णता, और अज्ञानता से भरा हुआ था। समाज बहिष्कृत इस अग के कारण राष्ट्रीय जीवन और तथा राष्ट्रीय भावना का समुचित विकास सभव नही था। विदेशी शासक इनकी अज्ञानता का लाभ उठा, सहज ही अपने धर्म मे दीक्षित कर, इन्हें अपना समर्थक बना लेते थे। गाधीजी ने इसी कारण देश की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों को राष्ट्रवाद के अनुकूल बनाने के लिए अछूतो की समस्या पर विशेष ध्यान दिया।[1]

अछूतो की समस्या तथा उनके उद्धार के विषय को लेकर हिन्दी मे काव्य रचना तत्कालीन अधिकाश राष्ट्रीय कवियो ने की है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'स्वदेश-सगीत' मे समाज मे व्याप्त भेदभाव तथा अस्पृश्यता की भावना का वर्णन 'अछूत' कविता मे किया है।

'हरिऔध' जी ने भी छुआछूत की निन्दा की है। कवि की धार्मिकता इतनी सहिष्णु है कि उसकी आत्मा सामाजिक पाखड, कूपमण्डूकता, भेदभाव, सकीर्ण विचार के कारण मिटते हुए राष्ट्रीय रगो को देखकर व्यथित हो जाती है—

पाँव छू छू उनके तरे हैं छितितल पापी
और हम छाह से अछूत की हैं हटते ॥[2]

वियोगी हरि ने 'अछूत' कविता मे अस्पृश्यता निवारण पर बल दिया है। अस्पृश्यता को समाज की काली करतूत कहा है—

अपनावत अजहू न जे अपनेहि अग अछूत।
क्यो करि ह्वं हैं छूत वै करि कारी करतूत ॥[3]

'साकेत' महाकाव्य में मैथिलीशरण गुप्त ने राम सीता को कोल, किरात, भील, आदि निम्न जातियो के साथ आत्मीय सम्बन्ध जोड़ते दिखाया है। वर्ण आश्रम की भाति उन्हें कातने बुनने का उपदेश दिया जाता है। अत उन्हें भी अस्पृश्यता अमान्य है। 'पचवटी' खण्ड मे गुप्त जी की सहानुभूति निम्न वर्ग के साथ साथ पशु वर्ग के प्रति भी है। मैथिलीशरण गुप्त की वैष्णव भावना अति विस्तृत एव महान है जो प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना से भरी हुई है। 'आर्द्रा' मे सियाराम-शरण गुप्त ने कथा-काव्य द्वारा अछूतो की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्र खींचा है।

हिन्दी कविता मे सामाजिक दुर्दशा के अन्य रूपो के साथ अछूतो के प्रति सामाजिक अत्याचार के अधिक चित्र नहीं मिलते। विभिन्न विद्वानो न छायावादी और रहस्यवादी कवियों द्वारा सामाजिक उपेक्षा के भिन्न भिन्न कारण खोजे हैं,

---

१. M K Gandhi—Hindu Dharma—P 10
२ हरिऔध · कल्पलता . पृ० ८
३ वियोगी हरि : वीर सतसई ; पृ० ७८

लेकिन उनकी तत्कालीन सामाजिक निरपेक्षता अथवा विमुखता राष्ट्रवाद की दृष्टि से खटकती है। इसमे सदेह नही कि यह उनकी वर्तमान से पलायन की प्रवृत्ति का ही परिणाम था।

साम्प्रदायिकता तथा प्रादेशिकता आदि

भारत का चिरकाल से यह दुर्भाग्य रहा है कि यह देश फूट, वैर, अनेकता आदि दुर्भावो के कारण ही विदेशियों से आक्रान्त होता रहा है। हमारा इतिहास इसका साक्षी है कि भारत की अवनति का मूल कारण आपसी फूट तथा वैर रहा है। अन्यथा वीरता का अभाव न था। अ ग्रेजी साम्राज्यवाद रूपी विष लता ने भी भारतीयो की इस दुर्बलता का पूर्ण लाभ उठाया। साम्प्रदायिकता तथा अनेकता के अनुकूल वातावरण मे अबाध रूप से वह बढती गई। भारतीयो की जातीय कटुता के कारण ही अ ग्रेजो की कूटनीति फली फूली और हमे उनके अत्याचार सहन करने पडे। हरिऔध जी ने भारतीयों की दुर्दशा के इस रूप का अति व्यग्या मक शैली मे वर्णन किया है—

हरिऔध कटुता न जाति में जो फैली होती।
कैसे कूटनीति वाला कूद कूद कूटता॥[1]

आज हमारे घर मे फूट पाँव जोडकर बैठी है, बैर अकडा हुआ खडा है, अनबन की बन आई है और 'रगडे झगडे गुलछर्रे उडा रहे हैं।'[2] श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी फूट को ही भारतीयो के विनाश कारण माना है। उन्होने भारतवासियो को, साम्प्रदायिक विभिन्नता को मिटा कर, हिन्दुत्व के एकत्व मे अभिन्न हो जाने का उपदेश दिया था। श्री मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीयता का सास्कृतिक पक्ष अति प्रबल है अत उन्होने समस्त देशवासियो को हिन्दूपन के गर्व तथा सस्कृति की रक्षा के लिए प्रोत्साहित किया था। उनका 'हिन्दू' शब्द अति व्यापक है। उन्होने जैन, बौद्ध, सिक्ख, वैष्णव, शैव सभी धर्मावलम्बियो को हिन्दू की परिभाषा के अन्तर्गत लिया है। मुसलमानो को भी गुप्त जी ने, हिन्दू ही माना है क्योकि परिस्थितिवश उन लोगो ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। ये सभी मूल रूप मे हिन्दू हैं, इस कारण गुप्त जी को जातीयता अथवा धार्मिक मतमतान्तर के आधार पर भारतीयो का विभाजन अनिष्टकर लगता है।

वैष्णव, शैव, शाक्त, सिख, जैन,
हो कि न हो या कुछ हो ऐन,
पर तुम मे है हिन्दू, रक्त;
हो इस पुण्य भूमि के भक्त॥[3]

---

१ अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' · पद्म प्रसून : पृ० ३५
२ अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' चुभते चौपदे ४
३ मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० १६

'गुरुकुल' की रचना कर श्री मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दुओं के बीच फैलते हुए धर्म सम्बन्धी विभेद को मिटाना चाहा है। उन्होंने स्वयं इस पुस्तक के उपोद्घात में लिखा है, 'यदि इस पुस्तक से हम में परस्पर कुछ भी एकता की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई तो लेखक का सारा श्रम सार्थक हो जाएगा।'[1] हिन्दुओं से सिक्खों का विरोध बढ़ रहा था, व हिन्दुओं से धर्म के आधार पर साम्प्रदायिक विभेद करना चाहते थे। गुप्त जी ने इस ग्रन्थ की रचना द्वारा यह स्पष्ट किया है कि मूलतः सिक्ख धर्म हिन्दू धर्म से भिन्न नहीं है। सिक्ख गुरुओं के जीवन चरित, उनके वीर कार्यों तथा सिक्ख परम्परा का संक्षिप्त इतिहास देते हुए सिद्ध किया है कि सिक्खों की धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा गीता के सिद्धान्तों के अनुरूप थी। सिक्ख धर्म हिन्दू धर्म का एक उपसम्प्रदायमात्र है—

हिन्दू जाति एक जननी है, जात उसी का सिक्ख समाज;
किन्तु आज वह रूठ रहा है, हुआ रुष्ट, हे ईश्वर हा! लाज।।[2]

इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में गुप्त जी ने साम्प्रदायिक विभेद की भावना को मिटा कर सिक्खों को राष्ट्र का सच्चा नागरिक बनाना चाहा है तथा उनकी राष्ट्रीय भावना की प्रशंसा अनेक स्थलों पर की है। 'साकेत' महाकाव्य में गुप्त जी ने कहा है कि अनेकता में राष्ट्र का बल बिखर जाता है—

एक राज्य न हो बहुत से हों जहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।।[3]

बहुत से राज्य का अर्थ वर्तमान काल में साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता की हानिकर भावना से है।

साम्प्रदायिकता का सबसे विषम रूप था हिन्दू मुसलमानों के मध्य बढ़ती हुई विद्वेषाग्नि। यद्यपि इसका बहुत कुछ कारण अंग्रेजों की कूटनीति थी क्योंकि वे इन दो प्रबल धर्म सम्प्रदायों को आपस में लड़ा कर अपना स्वार्थ साधन करते थे। देश का यह दुर्भाग्य था कि शताब्दियों से इस देश में बसकर भी मुसलमान इसे अपना वतन नहीं मानते थे। वे अज्ञानवश एक देश रूपी नौका के यात्री होने पर भी एक दूसरे से धार्मिक मतभेद के कारण भारत की नौका डुबा रहे थे। पंडित रामचरित उपाध्याय ने मुसलमानों को इस साम्प्रदायिकता की लहर में बह जाने से रोका है। उनमें देश प्रेम की भावना जाग्रत करनी चाही है—

भारत ही में पैदा होते, भारत ही में मरते हो,
दुख सुख हानि-लाभ सब कुछ तुम भारत ही में रहते हो।

१—मैथिलीशरण गुप्त : गुरुकुल पृ० २४
२—वही : पृ० २४६
३—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत · पृ० २४

बहको मत, कुछ समझो बूझो, लड़को, मुसलमानों के;
हिन्दुस्तान हमारा ही है हम हैं हिन्दुस्तान के ॥[1]

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी भारतवासियो को जातीयता की रक्षा का सदेश दिया था। 'हरिऔध' जी के 'जाति' शब्द का अर्थ अति विस्तृत था, जिसमे केवल हिन्दू जातियो का ही नही वरन् मुसलमान जाति का भी समाहार हो जाता है। हिन्दू मुस्लिम दगो से वे अति विक्षुब्ध हो गये थे। इस विषय मे खेदपूर्ण शब्दो म उन्होने कहा है—

जो निबाहो नेह के नाते न तुम। जो न बांट कर खाओ जुरी।
तो छुरी बेढग आपस में चला। मत गले पर जाति के फेरो छुरी ॥[2]

श्री सियारामशरण गुप्त का 'आत्मोत्सर्ग' हिन्दू मुस्लिम विरोध के प्रवल वेग के विनाशचक्र मे रक्तरजित मानवता की करुण कहानी है। इसका रचना काल विक्रम सवत् १९८८ है जब भारत की दो महान् जातिया एक दूसरे के रक्त से अपने हाथ रग रही थी और जिन्हें शान्त करने के प्रयास मे अमरशहीद श्रद्धेय गणेश शकर विद्यार्थी जी को प्राणोत्सर्ग करना पडा था। अ ग्रेजो की कूटनीति तथा भेद बुद्धि, हिन्दू मुसलमानो के बीच साम्प्रदायिक विद्वेष का विष घोल राज्य करने की युक्ति सफल हो रही थी। कानपुर मे हड़ताल हुई, लेकिन मुसलमानो ने साथ नही दिया। हिन्दू मुस्लिम भाई-भाई का स्वर मन्द पड गया था। मुसलमानो ने अ ग्रेजो के हाथो की कठपुतली बन उत्पात मचाने का बहाना खोज निकाला।[3] विद्यार्थी जी से इस वैर बुद्धि के गरल को विनष्ट करने की प्रार्थना की गई। हिन्दू मुस्लिम दगे की बात सुन वे दुर्घटना-ग्रस्त स्थलो पर गये और उन्हें समझाया कि वे भाई-भाई हैं और भाई का रक्तपात पशुत्व से भी गर्हित कार्य है। उन्होंने धार्मिक एकता के मूल तत्वो को समझाने का प्रयास किया—

नहीं दूसरा है वह कोई
उसे रहीम कहो या राम ॥[4]

प्रेम तथा अहिंसा द्वारा द्वेषभाव मिटाने का सदेश दिया। स्वय विद्यार्थी जी ने हिन्दू दलो के बीच फसे हुए कुछ मुसलमान परिवारो की रक्षा भी की थी। किन्तु हिन्दू मुसलमानो के सयुक्त राष्ट्र को आदर्श मानने वाले, दोनों के हितसरक्षक विद्यार्थी जी की राष्ट्रीय भावना बर्बरता के सम्मुख सफल न हुई। मजहब का गला घोट कर मजहब की धूम मचाने वालों की कमी न थी और अन्त मे साम्प्रदायिकता का बोल-बाला और मुसलमानो द्वारा विद्यार्थीजी का वध। दो धर्मों को मिलाने के प्रयत्न मे

---

१. प० रामचरित उपाध्याय . राष्ट्रभारती : पृ० २३
२ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' :चुभते चौपदे : पृ० २७
३ सियारामशरणगुप्त : आत्मोत्सर्ग : पृ० १७
४. वही, पृ० २०

उन्हें आत्मोत्सर्ग करना पड़ा था। 'आर्द्रा' मे सियाराम जी ने साम्प्रदायिकता के नृशस परिणाम को दिखाने के लिए लघु कथा काव्य 'अग्नि परीक्षा' लिखा। हिन्दुओं का कीर्तन जलूस निकलते ही मुसलमानो ने उसे पत्थर गिरा कर रोका। धर्म के नाम पर दोनों जातिया लड गई। जितना ही रक्त बहता था, विद्वेषाग्नि उतनी ही बढती जाती थी। गुलाबचन्द के घर के किवाड तोड आततायी मुसलमान उसकी पत्नी सुभद्रा को उठा ले गये। अबला नारी किसी प्रकार अपने सतीत्व की रक्षा कर पति के पास लौटती है लेकिन साम्प्रदायिकता से भी अधिक कठोर सामाजिक बन्धनो के कारण गुलाबचन्द उसे स्वीकार नही करते और अन्त मे वह आत्मघात कर लेती है। साम्प्रदायिकता और सामाजिक रूढिवादिता के दो चक्को के बीच हिन्दू नारी पिस जाती है। सियाराम जी ने इस कथा को अपनी सम्वेदना के स्पर्श से अत्यधिक करुण बना दिया है। पाठक को साम्प्रदायिकता से अधिक हिन्दू समाज की नृशसता खलती है। इस कथा मे सुभद्रा ने अपने पति से कहा भी है—

> अच्छी बात ! वैसी ही परीक्षा अभी दूगी मै,
> पीछे नहीं हूगी मैं,
> मुझ पर जैसा क्रूर तुमने प्रहार किया,
> नागरिकों ने भी नहीं वैसा घोर वार किया॥[1]

काव्य मे कहानी के द्वारा श्री सियाराम शरण गुप्त कृत 'आर्द्रा' मे 'अग्नि परीक्षा' मे हिन्दू मुस्लिम दगो की भूमिका पर सुभद्रा नाम की हिन्दू नारी के सतीत्व के ओजमय दर्शन मिलते हैं जिसने सीता की भाति सतीत्व परीक्षा देकर प्राण त्याग दिये।

भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा की दुर्दशा

विदेशी शासन ने भारतीयो को केवलमात्र राजनीतिक दृष्टि से ही नही, सास्कृतिक दृष्टि से भी पगु कर दिया था। पश्चिमी शिक्षा पद्धति ने अधिकाश शिक्षित जनसमुदाय के मनोविज्ञान को बदल दिया। नवीन पाश्चात्य शिक्षा मे दीक्षित शिक्षित वर्ग अपने सास्कृतिक मूल्यों तथा आदर्शों को विस्मृत ही नही कर बैठा था वरन् उन्हें हीन दृष्टि से भी देखने लगा था। वह भारत के पतन का अतिम सर्ग था। हिन्दी साहित्यकारो ने तत्कालीन शिक्षित भारतवासियों की विकृत मनोवृत्ति का ग्लानियुक्त शब्दो म वर्णन किया है। शिक्षा भिक्षुक की भिक्षा मात्र रह गई थी जो दासता की बेडियाँ कसने म अधिक साधक थी। श्री अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' के शब्दो मे—

> क्या ऐसी ही सुफलदायिनी है अब शिक्षा ?
> क्या अब वह है बनी नहीं भिक्षुक की भिक्षा ?

---

१ सियारामशरण गुप्त . आर्द्रा पृ० ६१
२ वही : पृ० ६६

क्या अब है वह नहीं दासता बेड़ी कसती ?
क्या न पतन के पाप-पंक में है वह फंसती ?
क्या वह सोने के सदन को नहीं मिलाती धूल में ?
क्या बन कर कीट नहीं बसी वह भारत-हित फूल में ?[1]

वह भारत जिसने सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान विज्ञान की शिक्षा दी थी, उचित शिक्षा के अभाव मे विवेकशून्य हो गया था। विदेशी शासक जिस शिक्षा का प्रचार कर रहे थे, वह देश तथा जाति पर मर मिटने की अपेक्षा उनकी स्वार्थ-सिद्धि की पूर्ति मे सहायक थी। अत इसी कारण गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन के समय ही सरकारी स्कूलो के बहिष्कार का प्रस्ताव रखा था और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार के लिए राष्ट्रीय विद्यालयो के स्थापन का पूर्ण प्रयत्न किया था। उस समय गाधीजी का यह कार्य देशवासियो को असम्भव तथा अति कठिन-सा प्रतीत हुआ था। 'हरिऔध' जी के विचार मे यह कार्य सरोवर की कुछ बूंदो के ही समान था।[2]

तत्कालीन शिक्षा के ही कारण कुछ राष्ट्रीय नेताओ के मस्तिष्क मे भी यह अविचार पुष्ट हो गया कि पश्चिम के सिद्धान्तो, वहाँ के रहन सहन, दीक्षा मे रग कर भारत का सच्चा सुधार होगा। विशेषकर नरम-दल वालो का अग्रेजी शासको तथा उनकी सस्कृति के प्रति किसी प्रकार का विरोधभाव न था। पंडित रामचरित उपाध्याय ने अपने काव्य मे नेताओ के इस वर्ग विशेष पर आक्षेप किया है।[3]

श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने भारतीय आत्म-गौरव के नाश का मूल कारण तत्कालीन शिक्षा को माना है—

जुल्म और भय ने नीरवता अथवा शान्ति जमाई जो,
वह है मृत्यु हमारी नीरव रूप बनाकर आई जो;
फिर जो दी तालीम, आत्म-गौरव का नाश हुआ सारा
मनुष्यत्व मर मिटा बड़ी ही-बुरी मौत हमको मारा॥[4]

(५ जुलाई, १६२१)

पडित रामनरेश त्रिपाठी ने भारत की दुर्दशा का कारण तत्कालीन शिक्षा पद्धति को माना है। विदेशी शासको द्वारा प्रचलित शिक्षा का उद्देश्य केवल राज्य कार्य के सचालन के लिए प्रजा को तैयार करना था—

प्रजा नितान्त चरित्रहीन हो शक्ति जाय मिट मन की
शिक्षा का उद्देश्य यही है, नीति यही शासन की।

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : कल्पता : पृ० ४०
२ वही : पृ० ४१
३ रामचरित उपाध्याय : राष्ट्र-भारती पृ० ४८
४. माखनलाल चतुर्वेदी : माता पृ० ७३

चरितहीन डरपोक अशिक्षित प्रजा अधीन रहेगी
है यह भाव निरकुश नृप का, 'सदा अनिति सहेगी ॥'[1]

हिन्दी नाट्य साहित्य मे दुर्दशा के अनेक रूपो का चित्रण (१९२०-३७ ई०)

इस युग मे रचित, भारतीय दुर्दशा का अकन करने वाले नाटको की सख्या अति अल्प है। अधिक सख्या ऐतिहासिक नाटको की ही मिलती है। भारतेन्दु युग में अवश्य भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक दुर्दशा को प्रत्यक्ष रूप से नाटको की कथावस्तु के लिए चुना गया था। उनके पश्चात् जयशकर प्रसाद ने हिन्दी साहित्य को उच्च कोटि के अनेक साहित्यिक नाटक प्रदान किये। इनके प्राय सभी नाटक ऐतिहासिक हैं, जिनमे भारत के सांस्कृतिक जागरण का प्रयास किया गया है। इस युग के अन्य नाट्यकारो ने प्रसाद जी की ही परम्परा मे ऐतिहासिक नाटकों की रचना कर भारत के विगत गौरव का चित्र खीचा है। अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाट्यकार हैं—बेचन शर्मा उग्र, बदरीनाथ भट्ट, चतुरसेन शास्त्री, उदयशकर भट्ट, जमुनादास मेहरा, हरिकृष्ण प्रेमी और सुदर्शन। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अवश्य अपने युग की सामाजिक समस्याओं को लेकर समस्या नाटक भी लिखे हैं। अत अधिकाश नाटककारो ने ऐतिहासिक नाटको के माध्यम से प्रच्छन्न रूप मे अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओ और विषम परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराया है।

आध्यात्मिक नैतिक पतन

बेचन शर्मा उग्र के 'महात्मा ईसा' नाटक मे प्रतीकात्मक शैली म लेखक ने अपने युग आध्यात्मिक नैतिक पतन की झलक दिखाई है। इस नाटक मे ईसा के युग और देश की समस्यायें एव परिस्थितिया वही दिखाई गई हैं जो अग्रेजी शासन काल के भारत की थी। वस्तुत नाट्यकार ने प्रच्छन्न रूप मे राजा हेरोद तथा महारानी हेरोदिया के चारित्रिक पतन, अनाचार, अनैतिकता मे अपने युग के भारतीय शासक वर्ग का नैतिक पतन दृष्टिगत कराया है।[2] राजा नैतिक एव आध्यात्मिक दृष्टि से पतित था, तो प्रजा की दुर्दशा क्यों न होती। धार्मिक स्थान, पडे-पुरोहित, महन्त आदि नैतिक पतन एव आध्यात्मिक हीनता को प्राप्त हुए थे। उग्र जी ने एलाजर का चरित्र चित्रण अप्रत्यक्ष रूप से अपने युग और अपने देश के धर्माचार्यों के नैतिक पतन को दिखाने के लिए किया है।[3] अपने देश मे इस समय धर्म का उद्देश्य अति विकृत हो गया था। वह ब्राह्मण वर्ग को भोजन कराने और मन्दिरो म स्वादिष्ट भोग्य पदार्थ प्रसाद रूप म चढाने तक सीमित हो गया था, जैसा कि इस नाटक मे दिखाया गया है। नाटक मे महात्मा ईसा की सूक्ष्म दृष्टि एव सत्याराधना धार्मिक

१ रामनरेश त्रिपाठी पथिक पृ० ४७
२ बेचन शर्मा उग्र . महात्मा ईसा पृ० ५६
३ बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा . पृ ४०

अनाचार को मिटाने के लिए प्रयत्नशील है और हमारे देश मे गाधी जी उसी कार्य को कर रहे थे।

जयशकर प्रसाद ने अपने सभी नाटको मे सत्य-असत्य, धर्म अधर्म, न्याय-अन्याय, नीति अनीति का सघर्ष दिखाया है। यह भी आलोच्य काल की विशेषता थी। उनके नाटको मे देश के आध्यात्मिक नैतिक पतन के प्रतीक पात्र हैं—राज्य-श्री मे शान्ति भिक्षु, विशाख मे महापिगल, स्कन्दगुप्त मे प्रपचबुद्धि कापालिक, अजातशत्रु मे देवदत्त। 'विशाख' नाटक मे राजा नरदेव, विलासी एव उच्छृखल प्रवृत्ति के जमीदार, तालुकेदार, भारतीय नरेश आदि पूजीवादी वर्ग का प्रतीक है, जिनके कारण ग्रामीण सुन्दरियो की मर्यादा अरक्षित हो गई थी। प्रसाद जी ने अपने युग की समस्याओ को ऐतिहासिक कथा मे कल्पना के योग द्वारा मूर्त किया है। 'अजातशत्रु' मे मागधी अथवा श्यामा और देवदत्त का नैतिक पतन सत्य रूप गौतम बुद्ध का विरोध करता है। इसी प्रकार अन्य नाटको मे भी दो प्रकार के पात्र दृष्टि-गत होते हैं। प्रसाद जी ने भी उग्र जी की भांति अपने युग की धार्मिक मिथ्यावादिता, अनैतिकता, आडम्बर आदि की झाकी दिखाई है। 'विशाख' नाटक मे बौद्धो के चारित्रिक पतन का वर्णन, महन्त द्वारा चन्द्रलेखा को बन्दी बनाना, राजा नरदेव का बौद्ध मठो को भस्म करने की आज्ञा देना आदि दृष्टान्त हैं।

वर्तमान काल मे भारत के देश-जीवन के चारित्रिक पतन का सबसे बडा उदाहरण वेश्याओ की घृणित वृत्ति थी। देश का यह दुर्भाग्य था कि नारी के इस पतित रूप पर सामाजिक मान्यता की मुहर लगी हुई थी। समाज के उच्च वर्ग, सम्भ्रान्त परिवारो तथा मन्दिर जैसे धर्म स्थानो मे वेश्याओ का नृत्य-गान एव गौरव की बात बन गई थी। सामाजिक जीवन की इस पतित मनोवृत्ति की ओर उग्र जी के 'महात्मा ईसा' नाटक मे सकेत मिलता है। एलाजर धर्म मन्दिर को विलास भवन बना देना चाहता है। उसके शब्दो मे 'धर्म मदिर मे विलास भवन '''कोई बुरी बात तो नही है डेविड ! जिसने धर्म की सृष्टि की है विलास भी तो उसी की पवित्र रचना है—है न डेविड ?'[1] शासक वर्ग की ओर से इस नैतिक पतन को रोकने की अपेक्षा प्रोत्साहन मिल रहा था। कैसर हेरोद के शासन मे महारानी हेरोदिया ने प्रार्थना स्थानो पर वेश्या का नाच करवाने की आज्ञा दी थी।[2] इस ध्येय की पूर्ति के लिए एलाजर जैसे चरित्रहीन तथा लोभी व्यक्ति धर्माचार्य के पद पर नियुक्त किये गये थे। लेखक के अपने युग मे भारत की भी यही दशा थी। देश के मन्दिर विलास-साधना के केन्द्र बन गये थे और अग्रेजी शासक वर्ग देश के इस पतन मे अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहा था। जयशकर प्रसाद के नाटको मे भी वेश्यावृत्ति से सम्बन्धित सामाजिक पतन के चित्र मिल जाते हैं। उनके 'अजातशत्रु' नाटक मे श्यामा वार-

---

१ बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : ४२

२ वही, पृ० ४२

विलासिनी के चित्र द्वारा वेश्या समस्या की ओर संकेत किया गया है। काशी की वारविलासिनी का रूप अपनाने के बाद श्यामा स्पष्ट शब्दों में यह कहती है कि भारतीय समाज में पत्नी की अपेक्षा वेश्या को अधिक मान मिलता है।[1]

श्यामा को वेश्या जीवन अपनाने के बाद बड़े बड़े श्रेष्ठी और राजपुरुषों के द्वारा सम्मान प्राप्त होता है शताब्दियों से चली आ रही इस निकृष्ट वृत्ति ने वर्तमान युग में विकट रूप धारण कर लिया था। गांधी जी इसके निराकरण द्वारा सामाजिक शुद्धि के लिए क्रियाशील थे जिससे राष्ट्रवाद का समुचित विकास सम्भव हो सके।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' के ऐतिहासिक नाटक 'रक्षा-बन्धन' में भी प्रच्छन्न रूप से देश के नैतिक पतन की ओर 'एकाध स्थलों पर इंगित किया गया है। इस नाटक में धनदास लेखक के अपने युग के नैतिक आदर्शों से च्युत धनिक व्यापारी वर्ग का प्रतीक है। वह देश-कल्याण की अपेक्षा अपने ही लाभ की बात सोचता है—'जो ज्यादा कीमत देगा, उसी के हाथ माल बेचेंगे।' देशी, विदेशी का प्रश्न इस वर्ग के सम्मुख महत्व नहीं रखता था।

देश-जीवन के आध्यात्मिक नैतिक पतन के चित्रण, हिन्दी साहित्य में अप्रत्यक्ष एवं प्रच्छन्न रूप से ही अधिकतर लिए गए हैं।

राजनीतिक दुर्दशा

इस युग के नाटकों में राजनीतिक दुर्दशा का चित्रण भी प्रच्छन्न, सांकेतिक अथवा प्रतीकात्मक शैली में मिलता है। जमनादास मेहरा ने अवश्य 'पंजाब केसरी' नामक राजनीतिक नाटक में अपने युग की विषम राजनीतिक परिस्थितियों, आंदोलनों, साइमन कमीशन के बहिष्कार आदि का वर्णन किया है।

उग्र जी का 'महात्मा ईसा' नाटक प्रतीकात्मक शैली में देश की युगीन राजनीतिक दुर्दशा का विशद चित्र उपस्थित करता है। 'महात्मा ईसा' वस्तुतः महात्मा गांधी हैं और उन। युग की राजनीतिक अवस्था प्रच्छन्न रूप में भारत की विदेशी साम्राज्यान्तर्गत दुर्दशाग्रस्त स्थिति। महात्मा ईसा के देश के समान इस देश में भी सत्ताधारी शासक दल अत्याचार का डमरू बजाकर ताण्डव नृत्य कर रहा था', जिसे रोकने के लिए महात्मा ईसा की भांति गांधी जी का जन्म हुआ था। इस नाटक में हेरोद की निरंकुशता, अत्याचार, अनाचार आदि भारत में विदेशी शासकों के दुर्व्यवहार का प्रतिबिम्ब है। हेरोद के समान, विदेशी शासकों की भी भारतीय प्रजा के साथ यही नीति थी—' '' ''राजा के लिए कोई भी कर्म पाप नहीं। राजा पाप और पुण्य का नियन्ता है। जैसे संसार की सभी वस्तुओं का भोक्ता मनुष्य है'' ''' क्योंकि परमात्मा ने उसे सबका सम्राट् बनाया है—उसी प्रकार मनुष्यों का सम्राट्

१. जयशङ्कर प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी : पृ० ७७
२ बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ० ८१

भी अपनी प्रजा के भाग्य का भोग स्वेच्छया कर सकता है।"[1] शावेल जैसे देशद्रोही सम्राट के कृपापात्र थे, जिनके मतानुसार राजा की आज्ञा मानना प्रजा का कर्तव्य था, चाहे शासक धर्म मन्दिर को वेश्या भवन बना दें अथवा प्रजा के सिर पर राजस्व कर का बोझ लाद दें। शावेल द्वारा किए गए अत्याचार, भारत मे अंग्रेजी शासन व्यवस्था म नौकरशाही द्वारा किए गए अत्याचारो का प्रतिरूप हैं। बडे-बडे पद और उपाधियो का लालच देकर प्रजा द्वारा जघन्य से जघन्य कृत्य करवाए जाते थे।[2] राष्ट्रीय उत्थान के लिए अग्रसर शक्तियो को कठोर दण्ड दिया जाता था। महात्मा ईसा द्वारा असत्य एव अन्याय के निराकरण के लिए किया गया अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन है क्योंकि इस नाटक की रचना आन्दोलन काल मे हुई थी। असहयोग आन्दोलन में विदेशी शासकों द्वारा जिस नृशस एव अन्यायकारी दमन नीति से कार्य लिया गया था उसका भी प्रच्छन्न रूप से वर्णन मिल जाता है। असहयोगी सत्याग्रहियो पर कोडे लगवाए गए थे। औरतो और बालको पर अत्याचार किया था, सिपाहियो ने औरतो की इज्जत लेने मे भी सकोच नही किया था। उग्र जी ने सत्ताधारियो के काले कारनामो का वर्णन इन शब्दो मे किया है—'सो तो ठीक है प्रभो! परन्तु इन सत्ताधारी यहूदियो का हृदय काले बादलो से भी काला, वज्र से भी कठिन तथा मृत्यु से भी भयकर है।......'

देश का यह दुर्भाग्य था कि शासको के भय से अथवा स्वार्थ साधन से प्रेरित होकर भारतीय पूजीपति, जमीदार आदि राष्ट्रीय चेतना का विरोध कर रहे थे। 'महात्मा ईसा नाटक के राजनीतिक दुर्दशा के इस रूप का भी उल्लेख मिलता है।[3] शासको ने भारतवासियो को शराब पीना, चापलूसी करना आदि दुर्गुणो और व्यसनो का चस्का लगवा कर उनकी मानसिक अवस्था विकृत कर दी थी। इसके अतिरिक्त निर्धन व्यक्तियो को छल द्वारा फोड कर सत्याग्रह को मिटाने का उद्योग किया था। प्रच्छन्न रूप से इस नाटक मे इन सबका वर्णन मिलता है।[4] सत्याग्रही राष्ट्र-भक्तो को राजद्रोह, ईश्वर निन्दा, शान्ति भग आदि अपराध लगा कर दण्डित किया जाता था। पराधीन भारत म न्यायालय और विचारपति न्याय का गला घोट रहे थे। इस नाटक मे महात्मा ईसा कहते हैं—मैं क्या कहू? जहा पर विचारक ही वादी और रक्षक ही भक्षक—वहा पर क्या कहा जा सकता है? मैं न तो इस न्यायालय को अदालत मानता हू और न हैरोद को सम्राट्—जिसके आप नौकर हैं। मुझे कुछ

१—बेचन शर्मा 'उग्र' महात्मा ईसा पृ० ५६
२ वही, पृ० १५५
३ वही पृ० १४३
४, वही पृ० १७७
५ वही पृ० १५१

नहीं कहना है।'[1] गांधीजी भी इसी कारण न्यायलय को निरर्थक मानते थे, और ऐसा ही बयान सत्याग्रही कैदी के नाते आन्दोलन के उपरान्त दिया था। शासक वर्ग और न्यायालय की स्वेच्छाचारिता का वर्णन डेविड ने अधिक यथार्थ शैली में किया है—'इसे कहते हैं स्वेच्छाचार। अधिकार के दुरुपयोग का ऐसा ज्वलन्त उदाहरण संसार के इतिहास में खोजने से भी न मिल सकेगा।......'[2] इस नाटक के वक्तव्य में स्वयं लेखक ने लिखा है—'मेरे हृदय में आग सुलग रही थी, उसे ही मैंने इस नाटक के रूप में फूंक दिया है।' यह आग पराधीनता के अभिशाप की आग है, जिसके प्रकाश में भारत का अतीत-गौरव चमक उठा है।

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में युगीन राजनीतिक दुर्दशा का चित्रण ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से सांकेतिक रूप में हुआ है। उन्होंने अपने अधिकांश नाटकों में गौरव युक्त अतीत संस्कृति, इतिहाससम्मत योग्य शासक, उनकी शासन पद्धति एवं राजनीतिक आदर्शों से संयुक्त कथानक प्रस्तुत कर पाठक-वर्ग को अपनी राजनीतिक पराधीनता एवं दुर्दशा के अन्य कारणों की ओर से विक्षुब्ध कर, उनके निराकरण के लिए कर्म करने की प्रेरणा दी है। अज्ञात एवं अप्रत्यक्ष रूप में इनके नाटक देशवासियों को विदेशी शासन पद्धति, उनकी कुटिल नीति तथा अत्याचारों से मुक्त होने के लिए उत्साहित करते हैं। प्रसाद जी के 'अजातशत्रु', राज्यश्री', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त', विशाख' आदि नाटकों में राजनीतिक उथल पुथल के चित्र मिलते हैं। इसका यह कारण है कि स्वयं प्रसाद जी का युग राजनीतिक दृष्टि से शान्तिपूर्ण नहीं था। 'अजातशत्रु' नाटक में अजात अराजक स्वच्छन्द, अन्यायी और अत्याचारी राजा का प्रतीक है। प्रजा की रक्षा की अपेक्षा उन पर आतंक जमा कर राज्य करना चाहता है। अंग्रेजी शासक वर्ग का भारतीय प्रजा के साथ यही व्यवहार था। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त अत्याचारी राजा नन्द और विदेशी शक्ति के आक्रमण से राष्ट्र का उद्धार करते हैं? राज्यश्री' नाटक में भी षड्यन्त्र, विद्रोह, रक्तपात एवं संघर्ष का दिग्दर्शन कराया गया है। यह देश की युगीन स्थिति थी। 'अजातशत्रु' नाटक में अजात और देवदत्त सभ्य गणों की परिषद् में जिस वाक् चातुरी से वृद्ध जनों को अपनी ओर कर लेते हैं, प्रायः उसी वाक्चातुरी से अंग्रेजी शासकों ने भी प्रतिष्ठित एवं सम्माननीय देशवासियों को प्रजा-वत्सलता के नाम पर मूर्ख बना दिया था। 'विशाख' नाटक में राजा नरदेव शासक वर्ग के पतन का प्रतीक है—'हा! जो विपत्ति में आश्रय है, जो परित्राण है वही यदि विभीषिकामयी कृत्या का रूप धारण करे तो फिर क्या उपाय है। राजा के पास प्रजा न्याय कराने के लिए जाती है, किन्तु जब वही अन्याय पर आरूढ़ है तब क्या किया जाय।' प्रसाद

---

१ बेचन शर्मा 'उग्र' - महात्मा ईसा पृ० १७५

२ वही पृ० ७७

३. जयशंकर प्रसाद : विशाख : पृ० ७८

जी के सभी नाटको मे उनके अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा प्रतिध्वनित हो रही है।

इस युग के अन्य नाट्यकारो ने प्रसाद जी का अनुकरण किया है। अन्य ऐतिहासिक नाटको मे भी भारतीय इतिहास के वीर पुरुष एव नारी चरित्रो की प्रतिष्ठा की गई है। इतिहास के झरोखे से वर्तमान राजनीतिक दुर्दशा की झलक दिखाई गई है। अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक हैं— बदरीनाथ भट्ट का दुर्गावती नाटक, उदयशकर भट्ट के विक्रमादित्य और 'दाहर अथवा सिन्ध पतन' नाटक; बाबू लक्ष्मीनारायण का 'महाराणा प्रताप का देशोद्धार' नाटक, हरिकृष्ण प्रेमी का 'रक्षा-बन्धन' नाटक, सुदर्शन का 'जय पराजय' नाटक। इन नाटको के मूल मे अवस्थित सघर्ष लेखको के अपने युग का राजनीतिक सघर्ष है, जो भारतीयो द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के हेतु किया जा रहा था।

बदरीनाथ भट्ट के 'दुर्गावती' नाटक मे अकबर की कूटनीति तथा अग्रेजी कूट-नीति मे बहुत कुछ साम्य है। राव गिरधारीसिंह के इलाके मे सुधार के नाम पर जो 'बिगाड' चल रहा था, वह प्रच्छन्न रूप मे अग्रेजी सरकार की नीति थी। देशी रियासतो और जमीदारियो की यही दशा थी।[1] राव गिडधारी जैसे देशघातियो के कारण दुर्गावती की पराजय हुई और वह वीरगति को प्राप्त हुई। 'जब तक किसी देश मे विश्वासघाती नहीं होते, तब तक उस देश की स्वतन्त्रता पर कहीं से कोई वार नही हो सकता।'[2] नाटक के यह शब्द नितान्त सत्य हैं, क्योंकि अग्रेजी काल मे पराधीनता का अभिशाप इतना अधिक फलित हुआ था कि राष्ट्र सघातक व्यक्तियो का अभाव नही था। उदयशकर भट्ट के 'दाहर अथवा सिन्ध पतन' नाटक मे भी सिन्ध के पतन का कारण ज्ञानबुद्ध जैसे देशद्रोही हैं, जो स्वार्थ-बुद्धि, अविवेक तथा कायरता के कारण विदेशी शक्ति से मिल कर राष्ट्र का गला घोटते हैं। इसी प्रकार भट्ट जी के पौराणिक नाटक 'सगर विजय' मे दुर्दम की मनमानी, सत्यनिष्ठ नागरिकों को मृत्युदड, प्रजा का विद्रोह, सगर की माता की प्रसन्नता के हेतु राष्ट्र सेवा का व्रत आदि घटनाए लेखक के अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा की परिचायक हैं। इसी कारण भट्ट जी के सबध मे डा० वि० ना० भट्ट ने लिखा है—'तथापि क्या पौराणिक और क्या ऐतिहासिक नाटको मे भट्टजी को अतीत मात्र अतीत के लिए प्रिय नही है। अपने पात्रो को नूतन भावनाओ और वाणी से मुखर बनाकर लेखक ने उनकी विषमताओ मे अतिशय आत्मीयता और आधुनिकता समाहित कर दी है।'[3]

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द के नाटक 'प्रताप प्रतिज्ञा' मे भी प्रच्छन्न रूप से भारत मे फैलने वाली अग्रेजी कूटनीति पर प्रकाश डाला गया है। इस नाटक मे

१ बदरीनाथ भट्ट : दुर्गावती : पृ० ३०
२. बदरीनाथ भट्ट : दुर्गावती : पृ० ३३
३ डा० नगेन्द्र—सम्पादक . सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ

अकबर विदेशी साम्राज्यवाद का प्रतीक है, जो फूट डलवा कर देश में राज्य करना चाहता है। राजपूतों में फूट डलवा कर शक्तिसिंह को प्रताप के विरुद्ध अपने पक्ष में मिला कर अकबर ने जिस कुशल राजनीति अथवा कूटनीति का परिचय इस नाटक में दिया है वह वस्तुत अंग्रेजी शासकों की नीति थी। अकबर कहता है—'जाओ बेवकूफ बहादुरो जाओ! लडो, खूब लडो, बेइज्जती पाने के लिए लडो, गुलामी को गले लगाने के लिए जान लडाओ! और अकबर! अकबर आराम करेगा! लोहों से लोहों को लडाकर फूलों की खुशबू लेगा—नवरोज के मेले के मजे देखेगा।'[१] राष्ट्रीयता और स्वाभिमान को विदेशी राज्य में विद्रोह समझा जाता था।[२]

सुदर्शन द्वारा लिखित 'जय पराजय' नाटक में राजपूतों की आपसी फूट, मेवाड में चल रहे षड्यन्त्र, विद्वेष आदि युगीन बातें हैं। अंग्रेजी शासन काल में देश के अन्तर्गत कई स्वतन्त्रता विरोधी शक्तियां—षड्यन्त्र, विद्वेष भावना आदि कार्य कर रही थी। इस नाटक में भी प्रच्छन्न रूप से अपने अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा की ओर संकेत किया गया है। 'अनघ' नामक गीतिनाट्य में मैथिलीशरण गुप्त ने अप्रत्यक्ष रूप से अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा की ओर इंगित किया है। मघ दुर्दशा के निराकरण के लिए प्रयत्न करता है।

बाबू जमनादास मेहरा ने 'पंजाब केसरी' नाटक में अंग्रेजी काल में राजनीतिक पराधीनता के कारण देश-दुर्दशा का प्रत्यक्ष चित्र खींचा है। देश की निर्धनता तथा पाठशालाओं की दुर्दशा का कारण पराधीनता था।[३] अकाल पीडित भारतवासियों को अवसर पर सरकार द्वारा सहायता नहीं की जाती थी। कांगडा भूकम्प के समय पंजाब केसरी तथा स्वयंसेवकों ने पीडितों की सहायता की थी। सरकार तो उनकी असहाय अवस्था से अपना स्वार्थ साधन करना चाहती थी।[४] राष्ट्रीय कार्यक्रम अहिंसात्मक आन्दोलन का दमन हथियार द्वारा किया जा रहा था।[५] इस नाटक में जमुनादास मेहरा ने निर्भीक, स्पष्ट, कटु शब्दों में अंग्रेजी शासन की निन्दा की है—

> नाश कर डाला इन्हीं नीचों ने सारे देश का।
> बीज बोया हाय! भारत में इन्हीं ने द्वेष का।
> ठोकरें खा बूट की सभलेंगे ये भए मार कर।
> सब मजा मिल जायेगा, इनको विदेशी वेश का॥

---

१ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द · प्रताप-प्रतिज्ञा : पृ० ३५
२ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द : प्रताप-प्रतिज्ञा पृ० ३६
३ जमनादास : पंजाबकेसरी : पृ० १४
४ वही : पृ० ५७
५ वही : पृ० ६६

संगठन हो गर, नहीं मांगी मिलेगी भीख भी।
शीघ्र ही आ जायगा, इनका समय भी शेष का ॥
पाप का बेडा सदा, भरपूर होकर डूबता।
देश-घाती को मिलेगा फल हमारे क्लेश का ॥'[1]

जमुनादास मेहरा का 'पंजाब केसरी' नाटक संस्कृत नाट्य शैली पर लिखा कलात्मकता एवं भाषा की दृष्टि से अधिक उच्चकोटि का नाटक न होने पर भी राष्ट्रीय भावना विषय की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण नाटक है। यह नाटक अपने युग का सच्चा परिचायक है। देशवासियों को उत्साह और देशभक्ति से भर देने के लिए इसमें पर्याप्त शक्ति है।

हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में भी प्रच्छन्न रूप से युगीन राजनीतिक परिस्थिति का विवेचन मिलता है। 'रक्षा-बन्धन' नाटक में बहादुरशाह और मुल्लू खां की बातचीत में अंग्रेजी शासकों की स्वार्थपूर्ण कुटिल नीति का उद्घाटन होता है। जब बहादुरशाह की सहायता के लिए पुर्तगीज आये तो मुल्लू खां कहते हैं—

मुल्लू खां—मैं इन फिरंगी को नहीं चाहता।

बहादुर—क्यों सूबेदार?

मुल्लू खां—जिस शख्स के हाथ में तलवार हो, उससे दोस्ती करने में खतरा नहीं, लेकिन जिसके हाथ में तराजू भी हो और तलवार भी, उससे दोस्ती करना अपने गले में फांसी लगाना है।

बहादुर—क्यों?

मुल्लू खां—क्योंकि तलवार जब सर पर तनती है, तो साफ दिखाई देती है, लेकिन तराजू कब हमारा सब कुछ डंडी के पासंग में मार ले जाती है, कुछ पता नहीं चलता।

बहादुर—है तो ठीक। जिन पुर्तगीजों ने गुजरात के पुत्तन, पेंट, मंगलोर, थाना, तोलाजा और मुजफ्फराबाद को जलाकर खाक किया है और चार हजार आदमियों को गुलाम बना कर विलायत भेजा, वे आज मेरी मदद को क्यों आए हैं, इसमें जरूर कुछ राज है।

मुल्लू खां—राज़ यही है कि वे हिन्दुस्तान की बादशाहत चाहते हैं। इधर आपको राजपूतों से लड़ाकर कमजोर कर देंगे, उधर दिल्ली का तख्त डांवाडोल है ही, फिर उन्हें अपना उल्लू सीधा करने में देर न लगेगी।'[2]

इस बातचीत में लेखक ने युगीन राजनीतिक परिस्थिति का परिचय दिया है। अंग्रेजी सरकार की तराजू हमारा सब कुछ 'डंडी के पासंग' में मार कर ले जा रही थी। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच फूट डालकर, दंगे करवा कर और दोनों शक्तियों को क्षीण करके अपना स्वार्थ-साधन कर रही थी। उनकी

१. जमनादास मेहरा : पंजाब केसरी : पृ० ७४
२. हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन : पृ० २५

कुटिल नीति का ही परिणाम मुस्लिम-लीग जैसी मुसलमानों की कट्टर साम्प्रदायिक संस्था थी। अधिकांश मुसलमान हिन्दुओं के प्रति द्वेष-भाव से भर कर अंग्रेजी सहायता के बल पर राष्ट्रीय शक्ति क्षीण कर रहे थे। इस समय भारत की राजनीतिक स्थिति जितनी विकट थी, वैसी कदाचित् ही किसी अन्य देश की रही होगी।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य में उच्चकोटि के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक नाटकों द्वारा अपने युग के संघर्ष को मूर्त रूप प्रदान किया है। उनके युग की परिस्थितियों की स्पष्ट झलक कलात्मकता, साहित्यिकता, ऐतिहासिकता, भावुकता, दार्शनिकता एवं मानवता के आवरण में यत्र तत्र मिल जाती है। बदरीनाथ भट्ट, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, सुदर्शन आदि के नाटकों में युगीन राष्ट्र-संघातक शक्तियों—फूट, स्वार्थ परता, संघर्ष आदि पर प्रकाश डाला गया है। उग्रजी ने 'महात्मा ईसा' नाटक में ईसाई धर्मानुरागी शासकों की नृशंसता, स्वार्थ-परता पर व्यंग्य कसा है। उनके इस नाटक में यह स्पष्ट ध्वनित है कि ईसा जैसी महान आत्मा के अनुयायियों ने भारत को पराधीन बनाकर और जनता पर अत्याचार करके अपने धर्म का अनादर किया है। इस युग के नाट्य साहित्य में भारत की राजनीतिक दुर्दशा का चित्रण प्रच्छन्न, सांकेतिक अथवा प्रतीकात्मक शैली तथा विभिन्न नाट्य रूपों में मिलता है। प्रत्यक्ष रूप से चित्रण करने वाले नाटक इने गिने ही हैं। इन्हीं नाटकों में राजनीतिक दुर्दशा के प्रच्छन्न चित्रण का कदाचित् यह कारण था—अंग्रेजी शासकों की दमन नीति अधिक कठोर हो गई थी, इसलिए शासन सम्बन्धी आलोचना अधिक सम्भव नहीं थी। ऐसे नाटकों का प्रदर्शन भी नहीं किया जा सकता था और रंगमंच पर प्रदर्शन नाटक का आवश्यक तत्त्व है।

आर्थिक संकट

भारतीय इतिहास से सम्बन्धित ऐतिहासिक नाटकों में आर्थिक संकट के चित्र प्रायः नगण्य हैं। इसका कारण यह है कि अंग्रेजी साम्राज्य के पूर्व भारत कभी भी आर्थिक दृष्टि से विपन्न नहीं हुआ था। वह अपने धन धान्य के लिए विश्व-विख्यात था। उग्रजी के 'महात्मा ईसा' नाटक में अवश्य प्रच्छन्न रूप में आर्थिक संकट का उल्लेख मिलता है। इस नाटक में यह दिखाया गया है कि जनता सत्तावादियों से आतंकित थी, लेकिन उसमें विरोध का साहस नहीं था। इसका कारण यह था कि शासक के अनाचार के विरोध का दण्ड था भूख से मर जाना।[1]

बाबू जमनादास मेहरा के 'पंजाब केसरी' नाटक में स्वर्गीय लाला लाजपत राय जी के जीवनादर्शों के साथ देश के आर्थिक संकट का भी वर्णन किया गया है। विदेशी शासन में देश निर्धनता के साथ दैवी विपत्तियों का भी कोपभाजन बना हुआ था।[2] लेखक ने अकाल पीड़ितों की दशा का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है—

---

१ बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ० ८३

२ बाबू जमनादास मेहरा पंजाब केसरी पृ० १४

दिया ध्यान एक धर्मी ने ना दानी ने नहिं दाता ने।
अन्न लिया पुत्री देकर हा ! बड़े-बड़े गुणज्ञाता ने ।।
बिके धर्म कुल वधुओं व, बहनों को बेचा भ्राता ने ।।
पति ने बेचा पत्नी को, बालक को बेचा माता ने ।।
मरे हजारों बिना अन्न, फिर भी नहीं देखा त्राता ने ।
करता हो सब करता है, यह किये विधान विधाता ने ।।[1]

लाला लाजपतराय तथा अन्य राष्ट्रभक्तों ने अकाल पीड़ित धनविहीन जनता की सहायता की थी । भारतीय धनिक वर्ग से राष्ट्रीय सेवार्थ भिक्षा मांगी थी।[2] पंजाब केसरी ने नौकरशाही के अत्याचारों से गरीब जनता को मुक्त करने का प्रयत्न किया था—'भाइयो ? आओ मैं चलता हूं तुम पीछे-पीछे आओ, ग्राम-ग्राम में चलकर पहले उन भूखे भाइयों का अन्न से भेंट कराओ । हम किसी तरह बच रहेंगे तो अन्याय की दुहाई मचायेंगे और ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि 'हमें अन्न प्राप्त हो।'[3] वास्तव म भारत की आर्थिक दशा अत्यधिक करुण थी।

हिन्दी-नाटकों में सामाजिक दुर्व्यवस्था का चित्रण

इस युग के हिन्दी साहित्य म सामाजिक दुर्दशा के प्रतिरूप नाटकों की सख्या अति अल्प है। प्राय ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से अतीत गौरव और इतिहास की पृष्ठभूमि में युगीन सामाजिक समस्याओं की ओर सकेत किया गया है । लक्ष्मी-नारायण मिश्र ने अवश्य युग-जीवन से समस्याए लेकर ससस्या नाटकों की परम्परा का प्रचलन प्रारम्भ किया था । कतिपय एकाकी नाटक भी सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखे जाने लगे थे ।

'महात्मा ईसा' नामक नाटक म उग्रजी ने एलाजर के चरित्र चित्रण में अपने युग के महन्तों के पतित जीवन और धार्मिक पाखड का उच्छेद किया है।[4] भारतीय सामाजिक धर्म-व्यवस्था में सत्यता की अपेक्षा मिथ्यात्व, अन्धविश्वास और पाखड बढ़ गया था, उसकी ओर प्रच्छन्न रूप म महात्मा ईसा के देश की सामाजिक स्थिति के चित्रण द्वारा सकेत किया है । अत यह नाटक प्रतीकात्मक शैली में भारत की सामाजिक दुर्दशा के कुछ पक्षों पर प्रकाश डालता है। उदयशकर भट्ट ने 'दाहर अथवा सिन्ध पतन' नाटक में समाजिक रूढ़ियों अन्धविश्वास और धार्मिक मिथ्यात्व का निरूपण ऐतिहासिक कथा के माध्यम से किया है ।[5] सिंध के महाराजा दाहर

१ बाबू जमनादास मेहरा पजाब केसरी : पृ० ३६
२ वही, पृ० ४१
३ वही, पृ० ५१
४ बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा : पृ० ३५
५ 'हमारी जातीयता में धर्मवाद की निकम्मी, थोथी रूढ़ियों ने हमें विवेक से गिरा दिया, मनुष्यत्व से खींच कर दासता, भ्रातृ विद्रोह विवेकशून्यता के गड्ढे में ले जाकर पीस दिया।'

उदयशकर भट्ट : दाहर अथवा सिन्ध पतन · अपने पाठक से

अत्यन्त उदार, वीर एव धर्म सहिष्णु व्यक्ति थे। उन्हो ने शूद्रो को ब्राह्मण वर्ग के समान पद दिया था। अत उच्च वर्ग, धर्म मिथ्यात्व तथा प्रतिहिंसा की भावना से भर कर राज पुरोहित द्वारा निषेध किये जाने पर स्वय राजा युद्ध के लिए न जाकर राजकुमार को भेजते हैं। इस अन्धविश्वास का अन्तिम परिणाम विदेशियो की विजय मे घटित होता है। इस नाटक द्वारा भट्ट जी ने अपने युग के सवर्ण एव अवर्ण के बीच बढते भेदभाव की ओर आकृष्ट कर, निम्न वर्ग को अन्य वर्गों के समान स्थान देने की प्रेरणा दी है। इस नाटक के सदृश वतमान काल मे भी ब्राह्मणो अथवा उच्च वर्ग की मनोवृत्ति अत्यन्त संकुचित थी, वे नीच जातियो को अधिकार देना धर्म प्रतिकूल मानते थे।[1] गाधीजी समाज मे प्रविष्ट धर्म के मिथ्यात्व, पाखड, भेदभाव के दुष्परिणामो से परिचित थे। इसी कारण इन्होने इस मनोवृत्ति के विरुद्ध आन्दोलन सगठित किया था।

हिन्दी के प्रमुख नाट्यकार जयशकर प्रसाद न अपने नाटको मे अतीतकालीन भारत के उज्ज्वल पक्ष का चित्रण किया है। अत राष्ट्रीय-जीवन के अभावात्मक पक्ष का सकेत मात्र ही उनके नाटको मे मिलता है। सामाजिक दुर्दशा के भी स्थूल चित्र न खीच कर, उस ओर इगित मात्र किया है। 'विशाख' नाटक मे सामाजिक अनीति का वर्णन मिलता है। 'मठो मे महन्त आदि अनैतिक जीवन व्यतीत करते थे, और शासक वर्ग मे भी नैतिकतापूर्ण आचरण का अभाव था। इससे समाज की दरिद्र कन्याओ का जीवन सकटापन्न हो गया था। यह प्रसाद जी के अपने युग के सामाजिक पतन का प्रतिबिम्ब है। उनके कतिपय नाटको मे हिन्दू समाज की विधवा से सम्बन्धित समस्या को भी लिया गया है। 'ध्रुवस्वामिनी', 'राज्यश्री' और 'अजातशत्रु' म विधवाओ की समस्या, जीवन और आदर्श को ढूढा जा सकता है। प्रसाद जी वैधव्य को समाज के लिए अभिशाप मानते हैं। भारतीय विधवा नारी के प्रति समाज की उपेक्षा को दृष्टि मे रख कर 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक मे विधवा विवाह को इतिहास सम्मत तथा शास्त्र विहित सिद्ध किया गया है। विधवा की दुर्दशा के चित्रण की अपेक्षा समस्या के निदान की ओर नाट्यकार की विशेष दृष्टि है। 'राज्यश्री' नाटक म राज्यश्री पति की चिता से उतर कर देश सेवा के लिए वैधव्य वेदना सहती है। अजातशत्रु' नाटक मे भी प्रसाद जी ने विधवा मल्लिका का उदात्त एव महान् रूप प्रस्तुत किया है। वह चाहती तो पति के साथ भस्म हो सकती थी, लेकिन मानवता की सेवा के लिए वह जीवित रहती है। प्रसाद जी ने राज्यश्री और मल्लिका जैसी महान् विधवा नारियों के चरित्राकन द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि समाज जिस विधवा को अभिशाप समझता है, वह अभिशाप नही, वरदान बन सकती हैं। ध्रुवस्वामिनी नाटक मे प्रसाद जी ने एक अन्य समस्या अनमेल विवाह की ओर भी इगित किया है। रामगुप्त जैसे क्लीव एव विलासी राजा के साथ सुन्दरी वीर नारी ध्रुवस्वामिनी का विवाह नितान्त

1 उदयशकर भट्ट : दाहर अथवा सिन्ध पतन पृ० ३४

असगत था। कभी-कभी ऐसे विवाह का परिणाम अत्यन्त भयकर होता है और अनैतिकता को जन्म देता है क्योकि नाटक मे अशक्त एवं कायर रामगुप्त अपनी पत्नी को शकराज के पास भेजने को तैयार हो जाता है। अनमेल विवाह प्रसाद जी के अपने युग की विषम समस्या थी।

जयशकर प्रसाद ने 'अजातशत्रु' नाटक मे वर्तमान युग के समाज मे व्याप्त सवर्ण अवर्ण जैसी घातक समस्या पर भी आक्षेप किया है। सवर्ण अवर्ण के संघर्ष को रानी शक्तिमती और विरुद्धक मे मूर्तमान किया है। रानी दासी की पुत्री है, अत सदैव अपमानित होती है। इस अपमान ने उसके हृदय मे विद्रोह की अग्नि भडका दी है।[1] ब्राह्मण कन्या मागधी का वेश्यावृत्ति अपनाना सामाजिक ह्रास का सूचक है। प्रसाद जी के प्राय सभी नाटको का अन्त प्रसादान्त होना है। राष्ट्रीय विघटन मे सहायक शक्तियो की हार और निर्माण शक्ति की विजय होती है। प्राचीन सास्कृतिक आदर्शों के आधार पर राष्ट्र का सास्कृतिक पुर्ननिर्माण लेखक का उद्देश्य है। हरिकृष्ण प्रेमी के 'शिवा-साधना' नाटक मे शिवाजी द्वारा स्पष्ट किया है कि वर्ण और जातिभेद स्वराज्य, सुख और शान्ति मे बाधक हैं।[2] लेखक के मतानुसार साम्प्रदायिकता का मूल कारण तराजू हाथ मे लेकर आने वाले विदेशी शासक थे। 'प्रेमी' जी मुसलमानो को भारत की सम्पत्ति मानते थे, और उन्हें पूरा विश्वास था कि 'मुसलमान भारत को ही अपनी जन्मभूमि मान कर एक राष्ट्रीयता के सूत्र मे गु थ जावेंगे लेकिन साथ ही आशका भी थी कि ये विदेशी जातिया इन दोनो महान् सस्कृतियो को कभी मिलकर एक न होने देंगी।[3]

सामाजिक समस्याओ को लेकर लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समस्या नाटकों को जन्म दिया। प्रसाद की भाति अतीत-गौरव गान गाना इनकी प्रतिभा को, अपने युग तथा जनता की दृष्टि से न्याय्य नही लगा। डा० देवराज उपाध्याय ने मिश्र जी की नाट्यकला के सम्बन्ध मे लिखा है—'प्रसाद जी चाहते हुए भी आधुनिक समस्याओ के साथ न्याय नही कर सके। उनकी प्रतिभा प्रेरणा के लिये सदा अतीत का मुह जोहती रही, जिससे वे पूर्ण रूप से मुक्त नही हो सके। पर मिश्रजी हिन्दी के प्रथम नाटककार हैं जो देह झाड कर नवीनता के रगमच पर आ गये और उसी का जयोच्चार करने लगे।'[4] 'सन्यासी' (स० १९८८) नाटक मे मिश्रजी ने सह शिक्षा की समस्या को लिया है. 'सिंदूर की होली' (स० १९९१) मे आधुनिक मनुष्य की धनलिप्सा के कारण उत्पन्न जघन्य-वृत्ति का वर्णन किया है। भारतीय समाज मे एक ओर भारतीय सस्कार, सामाजिक आचार-विचार थे और दूसरी ओर पश्चिमी

---

१ जयशकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृ० ५६, ५७
२ हरिकृष्ण प्रेमी : शिव-साधना : पृ० १७
३ वही : पृ० १६१
४ डा० नगेन्द्र—सम्पादक : सेठ गोविन्ददास अभिनन्द ग्रन्थ

शिक्षा से उत्पन्न सस्कार, विचार आदि। इन दोनों का सघर्ष तथा उससे उत्पन्न अनेक समस्याए भारतीय शिक्षित जीवन को त्रस्त कर रही थी। इनका चित्रण ही मिश्र जी का लक्ष्य है। यह समस्याए सम्पूर्ण राष्ट्र से सम्बन्धित नहीं थी, केवल एक वर्ग विशेष से ही इनका सम्बन्ध था। अत राष्ट्रवाद के अभावात्मक-पक्ष-निरूपण की दृष्टि से इन नाटको का अधिक महत्व नहीं है।

इसी समय सामाजिक समस्याओ को लेकर भुवनेश्वर प्रसाद ने कुछ एकाकी नाटक भी लिखे जो इनकी पुस्तक 'कारवा' मे सग्रहीत हैं। 'प्रतिभा का विवाह' (१६३२ ई०) मे उन्होने प्रेम और विवाह का रूप स्पष्ट किया है। 'आज के समाज मे शिक्षित स्त्रियाँ प्रतिष्ठा चाहती हैं, मातृत्व नही', श्यामा, एक वैवाहिक विडम्बना' (१६३२ ई०) मे अनमेल विवाह की समस्या है। इनके एकाकी नाटकों मे पश्चिमी सभ्यता सस्कृति से प्रभावित शिक्षित उच्चवर्ग की समस्याओ को ही लिया गया है। राष्ट्र के विभिन्न सामाजिक वर्गों की समस्याओं का विवेचन इस युग के एकाकी नाटको मे नहीं मिलता।

साम्प्रदायिकता

हिन्दी नाट्य साहित्य मे साम्प्रदायिता का वर्णन भी प्रच्छन्न रूप म हुआ है। हिन्दू काल से सम्बन्धित ऐतिहासिक नाटको मे यवनों को विदेशी शक्ति के रूप मे लिया गया है क्योकि तब तक वे इस देश मे बस कर इसका अग नहीं बन पाए थे। मुस्लिम काल मे सबन्धित ऐतिहासिक नाटको म हिन्दुओ और मुसलमानो को धर्म के आधार पर अलग रखा है। दोनो जातियो के बीच धार्मिक कट्टरता, विद्वेष, प्रतिहिंसा की ध्वनि की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। बदरीनाथ भट्ट का 'दुर्गावती' नाटक, जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का 'प्रताप प्रतिज्ञा' नाटक, बाबू लक्ष्मीनारायण का 'महाराणा प्रताप का देशोद्धार' नाटक इसके निदर्शन हैं।

'दुर्गावती' नाटक म वीर रानी दुर्गावती के उज्ज्वल चरित्र के सम्मुख अकबर अथवा अन्य मुसलमान चरित्रो का अकन अधिक कालिमा म युक्त दिखाया गया है इसी प्रकार 'प्रताप-प्रतिज्ञा, अथवा महाराणा प्रताप का देशोद्धार' नाटक मे महाराणा प्रताप के चरित्र की विशेषताओ के प्रदर्शन म ही नाट्यकार ने अपनी समस्त शक्ति लगा दी है जिनके सम्मुख मुसलमान पात्र अथवा शासको की आत्मीयता नहीं पा सकते। 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक म प्रच्छन्न रूप मे अकबर अग्रेजी साम्राज्यवाद का प्रतीक है। शक्तिसिंह उस जन विशेष का प्रतीक है जो स्वार्थ एव प्रतिशोध भावना से भर कर विदेशी सहायता के बल पर राष्ट्र भवन प्रताप के विरोधी बन राष्ट्रीयता की जड़ काट रहे थे। मानसिंह 'भारत का गुलामी की जजीरो से जकड़ने विदेशियो की जूठन खाने वाले'[१] देशद्रोही हैं। यदि इस नाटक को प्रतीकात्मक शैली मे लिखा गया मानें तो यह अपने युग की राजनीतिक परिस्थितियों की ओर सकेत करता

१. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द प्रताप-प्रतिज्ञा : पृ० २७

हुआ साम्प्रदायिकता मे मुक्त सच्चे अर्थो म राष्ट्रीय नाटक कहा जायेगा, लेकिन प्रत्यक्ष रूप म इन नाटको से यही ध्वनित होता है कि यह विदेशी हैं अन्यायी हैं, वे भारतीयता के अग नही बन सकते। ये नाट्यकार हिन्दू संस्कृति, हिन्दू धर्म और हिन्दू वीर चरित्र के प्रति ही श्रद्धान्वित हैं। ये साम्प्रदायिकता के विपाक्त रूप को दिखाकर उसके निराकरण का प्रयास नही करते, वरन इनसे साम्प्रदायिकता की भावना बढ़ती ही है।

हरिकृष्ण प्रेमी ने हिन्दू मुस्लिम सास्कृतिक एकता का प्रयास किया है। और राष्ट्रवाद के विकास को दृष्टि म रखकर साम्प्रदायितता क घातक प्रभाव को दिखाया है। 'रक्षा-बन्धन नाटक मे बहादुरशाह मुसलमानो का प्रतीक है। वह प्रतिहिंसावश, बदला लेने के लिए मेवाड से युद्ध करना चाहता है। अब मुसलमान विदेशी नही थे, वे इसी देश के अग बन गये थे। बहादुरशाह इस तथ्य से परिचित है, लेकिन केवल विद्वेष की भावना से प्ररित होकर फिरगी की सहायता से मेवाड को विनष्ट करने के लिए सन्नद्ध होता है। वह जानता है कि फिरगी से दोस्ती करना अपने गले में फासी लगाना है।[1] शाह शेख ग्रोलिया उसे उसकी भूल के सम्बन्ध मे समझाते हुए कहते हैं—

'भूलता है बहादुर ! हिन्दुस्तान मे रहने वाला मुसलमान भी हिन्दू है। क्या अपने भाइयो का खून बहाना चाहता है ? जिस शाख पर बैठा है, उसी को काटने पर क्यो आमादा है ?[2]

बहादुरशाह पर इस कथन का कोई प्रभाव नही पडता। वह फिरगियो से सहायता लेकर मेवाड पर आक्रमण करता है। आलोच्य काल मे भी साम्प्रदायिकता की अग्नि प्रबल होती जा रही थी। यद्यपि चाँद खाँ और हुमायूँ जैसे उदारवृत्ति, महान आत्मा मुसलमान काग्रेस के साथ राष्ट्रीय उत्थान कार्य मे लगे थे लेकिन बहादुरशाह जैसे सकीर्ण बुद्धि, स्वार्थी एव प्रतिहिंसा से प्रेरित मुसलमान अग्रेजी शासको की सहायता लेकर विद्वेषाग्नि फैलाने म सलग्न थे। देश की सामयिक आवश्यकता को दृष्टि मे रखकर प्रेमी जी ने यह नाटक लिखा है।

'दाहर अथवा सिन्ध पतन मे उदयशकर भट्ट न वर्ण भेद, प्रान्त-भेद आदि के दुष्परिणामो को दिखाया है। साम्प्रदायिकता अथवा प्रान्तीयता की जो सकीर्ण भावना देश की राष्ट्रीय भावना को आघात पहुँचा रही थी उसका प्रत्यक्ष चित्र नही मिलता।

कथा-साहित्य मे दुर्दशा के अनेक रूपो का चित्रण

कथा-साहित्य मानव जीवन के अधिक निकट है, क्योकि इसमे मानव जीवन के विभिन्न अगो अथवा क्षेत्रो के यथातथ्य चित्रण का सुयोग रहता है। काव्य की अपेक्षा उपन्यास तथा कहानियो मे समाज और जीवन की विशद व्याख्या सम्भव

१ हरिकृष्ण 'प्रेमी' रक्षा बन्धन · पृ० २५
२ वही : पृ० २७

होती है। अतः हिन्दी उपन्यास एवं कहानियों में युगीन देश दुर्दशा के सभी पक्षों चित्रण विशद् रूप में मिलता है।

आध्यात्मिक तथा नैतिक पतन का वर्णन

भारत के आध्यात्मिक-नैतिक-पतन का वर्णन उपन्यास तथा कहानियों में सबसे अधिक किया गया है। भारतीय समाज के पतन के इस रूप का विशद् चित्रण प्रेमचन्द, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', विनोदशंकर व्यास, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, कमला चौधरी, जयशंकर प्रसाद आदि के उपन्यास तथा कहानियों में मिलता है। इनमें भारतीय जीवन की विषमताओं का यथार्थ चित्रण किया गया है।

भारतीयों के चारित्रिक पतन ने दुर्व्यसनों का आश्रय लिया था। वेश्यावृत्ति इसका प्रमुख साधन था। वेश्यावृत्ति ने कुष्ठरोग की भांति भारतीय समाज को विकलांग कर दिया था। इस अमानवीय कुत्सित, घृणित वृत्ति के कारण देश के आध्यात्मिक नैतिक उच्चादर्शों को गहरा आघात पहुचा था। नारी को अपनी विलासिता-पूर्ति का साधन बनाने के लिए पुरुष वर्ग ने वेश्यावृत्ति जैसी घृणित एवं गर्हित वृत्ति को प्रश्रय दिया था। प्रेमचन्द जी के सेवासदन उपन्यास की प्रमुख समस्या वेश्यावृत्ति है, जिसके मूल में दहेजप्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियां एवं झूठी प्रतिष्ठा कार्य करती लक्षित होती है।[1] समाज के प्रतिष्ठित कहलाने वाले व्यक्तियों द्वारा वेश्याओं का आदर सम्मान तथा धार्मिक स्थानों पर उसका महत्व देखकर इस उपन्यास की महत्वाकांक्षिणी, किन्तु परिस्थितियों से विवश नायिका सुमन पर प्रतिक्रिया होती है। समाज के आध्यात्मिक नैतिक पतन के कारण वेश्यावृत्ति जैसी घृणित कुप्रथा ने नगर के सार्वजनिक स्थानों को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया था। सम्मान्य, प्रतिष्ठित, शक्ति-सम्पन्न एवं धनिक वर्ग अपनी वासना पूर्ति की साधन इस वृत्ति को मिटाने की अपेक्षा इसे प्रश्रय दे रहा था। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, के 'अप्सरा' उपन्यास में अंग्रेज अफसरों, भारतीय राजाओं एवं रईसों तथा भारतीय नौकरशाही के नैतिक पतन पर प्रकाश डाला गया है।[2] भारत के धनिक वर्ग का पतन अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था।[3]

प्रेमचद जी की 'रामलीला' जयशंकर प्रसाद की 'चूड़ीवाली', सुदर्शन की 'चोर-पाप', विनोदशंकर व्यास की 'पतिन, प्रत्यावर्त्तन', 'मुग्ध' कहानियां वेश्यावृत्ति से सम्बन्धित आध्यात्मिक नैतिक पतन पर प्रकाश डालती हैं। 'रामलीला'[4] कहानी में प्रेमचन्द जी ने हिन्दू समाज के कतिपय विशिष्ट व्यक्तियों के मानसिक पतन का

---

१ प्रेमचद सेवासदन पृ० ६७
२. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, अप्सरा पृ० १०, ३६, १२७
३. वही, पृ० १५६
४. प्रेमचन्द की सर्व श्रेष्ठ कहानियां पृ० ५६

चित्रण किया है जो रामलीला जैसे धार्मिक पर्व पर भी यशप्राप्ति, स्वार्थ-साधन तथा वासनापूर्ति करने मे सकुचित नही होते। धर्म के नाम पर ईश्वर की आरती मे एक रुपया डालना लोगो को इष्ट न था किन्तु वेश्याओ के हावभाव पर मुग्ध होकर वे अर्शाफिया दे डालते थ। राम, लक्ष्मण और सीता का स्वाग करने वाले गरीब बालको को राह खर्च भी नही दिया गया। जयशकर प्रसाद ने वेश्यावृत्ति का समस्त दोष सामाजिक रूढिवादिता को दिया है। उनके अनुसार वेश्या के पास भी हृदय होता है और वह भी कुलवधू बनना चाहती है।[1] सुदर्शन की 'घोर-पाप'[2] नामक कहानी मे भी वेश्यावृत्ति का मूल कारण धनिक वर्ग की नैतिक भ्रष्टता मानी गई है। मेहताबराय जैसे सम्मानित तथा समाज मे आचरण के लिए प्रसिद्ध व्यक्ति छिप कर वेश्याराधन करते हैं लेकिन प्रत्यक्ष रूप में उसके प्रति घृणा प्रदर्शित करते हैं। विनोद-शंकर व्यास की 'पतित' कहानी मे दिवाकर जैसे पतित एव वासना की साधना करने वाले व्यक्तियो के कारण रागिनी जैसी सद्विचार और एकनिष्ठ प्रेम मे पगी नारियाँ वेश्यावृत्ति अपनाने को बाध्य होती हैं। सामाजिक कट्टरता इसका कारण है।[3] 'प्रत्या-वर्तन' कहानी मे व्यास जी ने युग की परिवर्तित स्थिति मे, वेश्यावृत्ति के कारण पति द्वारा उपेक्षित नारी की नैतिकता को भी असुरक्षित दिखाया है।[4] 'सुख' कहानी मे समाज के उच्चवर्ग का नैतिक पतन आर्थिक विपन्नता की स्थिति तक ले जाता है। धन सुख का मूल न होकर विलास का साधन है। अत. दूसरे के सहारे मनुष्योचित जीवन व्यतीत करने मे ही सुख है।[5]

विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक के 'मा' उपन्यास मे श्यामनाथ का चरित्र, नैतिक पतन का दृष्टान्त है। वेश्याओ के यहा मनोरजन करना उसके जीवन का लक्ष्य था। 'कौशिक जी' ने आदर्शवाद तथा देश के चारित्रिक उत्थान की भावना से प्रेरित होकर यह उपन्यास लिखा है और ह्रासोन्मुख जीवन का यथार्थ चित्रण किया है।

प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा तथा सुदर्शन को एक ही परम्परा का कथा लेखक कहा जा सकता है। समाज सुधार की प्रेरणा से सचालित होकर उन्होने वेश्यावृत्ति के कारण सामाजिक पतन के चित्र खीचे। जयशकर प्रसाद मे भावना की प्रधानता है। निराला ने नैतिक पतन पर अवश्य प्रकाश डाला है किन्तु उनकी कहानियो का मूलाधार मानव हृदय की अन्यतम कोमल प्रवृत्ति, प्रेम है। इनकी कहानियो मे दार्शनिकता की मात्रा अधिक होने के कारण चारित्रिक पतन सीमारेखा तक पहुच

---

१. जयशकरप्रसाद : आकाश-दीप : पृ० ११३
२ सुदर्शन · तीर्थ यात्रा : पृ० ३
३. विनोदशकर व्यास : अस्सी कहानियां · पृ० १६२
४ वही, पृ० २१६
५ वही, पृ० ३६६

कर ठहर जाता है और कथा का अन्त संसार से निवृत्ति में होता है। इनके मतानुसार इन्द्रिय सुख भोग की लालसा भारत की आध्यात्मिक नैतिक दुर्दशा का कारण है।

इन्द्रिय-सुख भोग की प्रबल इच्छा ने केवल व्यक्तिगत जीवन को ही विष्ट नहीं किया था वरन् सार्वजनिक क्षेत्रों, धर्मस्थानों को भी विषाक्त बना दिया था। धर्म का सत्य स्वरूप भूल कर लोग वाह्याडम्बर, कर्मकांड को ही धर्म समझने लगे थे। प्रेमचन्द के सेवासदन' उपन्यास म वेश्या द्वारा मन्दिर मे संगीत, प्रसाद जी के 'कंकाल तथा 'तितली' मे तीर्थस्थान और धर्म के अड्डो पर व्यभिचार आदि का पर्दाफाश किया गया है। पुरातनता की रूढिवादिता के विरुद्ध प्रसाद जी का विरोधी स्वर अधिक प्रखर है। प्रयाग काशी, हरिद्वार, मथुरा तथा वृन्दावन जैसे पवित्र तथा पुण्य स्थानो का जीवन उपन्यास म अ कित है, जहा जारज सन्तानो का अभाव नही है और जिनको लेकर लेखक ने रूढिगत सामाजिक तथा धार्मिक सस्थाओ पर कठोर प्रहार किया है और व्यक्तिवादी चिन्तन तथा व्यवहार को महत्व दिया है।[1] पुरुष समाज मे नैतिक आचरण को नहीं, सम्पत्ति को आदर दिया जाता था। प्रसाद के 'कंकाल उपन्यास मे श्री चन्द्र व मगलदेव, प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' उपन्यास मे ज्ञानशकर वैयक्तिक दृष्टि से पतित होने पर भी सामाजिक दृष्टि से आदरणीय हैं।

भारतीय समाज के आध्यात्मिक नैतिक पतन का प्रमुख कारण था, विदेशी शासन व्यवस्था। जो शासन ही अन्याय, अधर्म, अत्याचार पर आधारित था, उसकी प्रजा से न्याय, धर्म, आचार, नीति की आशा कैसे की जा सकती थी। पूजीवादी व्यवस्था और शासकों की आचरण भ्रष्टता का ही परिणाम था कि ताल्लुकेदार, जमीदार, सेठ आदि धनिकवर्ग के चारित्रिक पतन की सीमा नही रह गई थी। उनकी नैतिक अनैतिक, उचित-अनुचित धर्म अधर्म, न्याय अन्याय की विवेक बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के 'अलका' उपन्यास मे समाज के उच्च एव धनिक वर्ग के ताल्लुकेदार के नैतिक पतन का वर्णन किया गया है। अग्रेजी शासन काल मे यह वर्ग सरकारी उपाधि प्राप्ति के लिये अनैतिक एव घृणित कर्म करने से भी नहीं चूकता था। इस उपन्यास का मुरलीधर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उसके पितामह ने सम्पत्ति प्राप्त की, पिता ने प्रतिष्ठा अब उसके लिए कोई दुरूह दुर्ग विजय के लिए नहीं रह गया था,' अत प्रतिष्ठा के लिए खिताब पाने का जो अचूक मन्त्र उसके सेक्रेटरी बाबू मोहनलाल न दिया उससे देश की दुर्दशा की भयकरता पर प्रकाश पड़ता है—

'पहले छुरी चम्मच, काटा पकडा कर साहबी ठाट से भोजन करना सिखाया। फिर धीरे धीरे स्वास्थ्य के नाम पर शराब का नुस्खा रखा। फिर छिपा-कर सरकारी अफसरो के साथ भोजन करने को प्रोत्साहन। फिर बगीचे की कोठी

१ डा० सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास, पृ० ६४
२ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, अलका पृ० २२

मे दाकायदा पच मकार-साधन और देसी विलायती सरकारी अफसरो को क्रम-क्रम से निमत्रण। एक साल के अन्दर लखनऊ, इलाहाबाद और कानपुर आदि की खूबसूरत से खूबसूरत वेश्यायें आकर, नाच कर गाकर सरकारी अधिकारियो को खुश कर-कर चली गई। दूसरे साल सम्राट् के जन्मदिन के उपलक्ष म स्टेटसमेन, पायनीयर लीडर आदि मे देखा तो उन्ह पदवी नही मिली।[1] मुरलीधर की आत्मा का पतन वेश्याओ तक सीमित न रहा, उनके इस लोभ की अग्नि म शहर के मद्गृहस्थ तथा ग्राम की निर्दोष रूपसियो का सतीत्व होम किया जाने लगा।

'देहात की सुन्दरी विधवाये, भ्रष्ट की हुई अविवाहिता युवतिया एकमात्र माता जिनकी अभिभाविका थी, और अपना खर्च नहीं चला सकती थी, और इस तरह के लब्ध अर्थ से लडको का धोखे से ब्याह कर देना चाहती थी लगान के छूट, माफी आदि पाने की गरज से, कुट्टनियो के बहकावे म आकर चली जाती थी या भेज दी जाती थी। लौट आन पर किसी रिश्तेदारी की जगह जाने वाल कारण गढ लिए जाते थे। जमीदार के लोग स्वय सहायक रहते थे, कोई डर वाली बात न होने पाती थी। विश्वासी जिलेदार इस तरह के मामला म सुराख लगाने वाले, सौदा तय करने वाले थे।[2] सरकारी कर्मचारी इसमे सहायक थ। शोभा जैसी साधारण स्त्री को 'मर्जी के खिलाफ' लाने का पूरा षड्यन्त्र रचा जाता था। विदेशी शासन की सहायता द्वारा राष्ट्रीय जीवन का पतन अत्यन्त विनाशकारी था। प्रेमचन्द जी ने भी सेवासदन उपन्यास मे इस ओर इगित किया है कि अग्रेजी शिक्षा ने लोगो को इतना उदार बना दिया था कि वेश्याओ का अब उतना तिरस्कार नही होता था।[3] निरालाजी ने समाज के इस पतन का चित्रण अधिक यथार्थ एव कटु शैली म किया है।

विदेशी शासको द्वारा प्रचारित पूजीवादी व्यवस्था के कारण देश का आध्यात्मिक नैतिक पतन बढता जा रहा था, फैक्टरी मिलें आदि इनके अड्डे थे और शराब की दूकानें उत्तेजक तत्व। प्रेमचन्द कृत 'रगभूमि' उपन्यास म सूरदास फैक्टरी के लिए जमीन नही देना चाहता क्योकि वह जानता है कि उससे गाँव की नैतिकता को आघात पहुचेगा। श्रीमती कमला चौधरी की कहानी 'श्रमी की अभिलाषा'[4] म श्रमिक वर्ग की बढती हुई धनाभिलाषा मस्ता को अपनी पत्नी का सतीत्व बेच कर धन एकत्र करने के लिए प्रेरित करती है। उच्च वर्ग के सेठ जी तथा निम्न वर्ग के श्रमिक के नैतिक पतन मे अन्तर नही था। दोनो के बीच नारी की मर्यादा अरक्षित थी।

'मोहनियाँ को जानते देर न लगी—इस हिन्दू समाज के वातावरण मे पले

---

२ निराला . अलका पृ० २६

१ वही, पृ० २४, २५

३. प्रेमचन्द सेवासदन : पृ० ६७

४. कमला चौधरी उन्माद : पृ० १२८

हुए पुरुष स्त्रियों के सतीत्व की कैसी रक्षा करना जानते हैं। नीच जाति का गरीब मस्ता ही नहीं, उच्च जाति के सम्पत्तिशाली सभ्य समाज के सेठ जी भी मस्ता से कम नहीं हैं। उनकी आँखें भी स्त्री की इज्जत का मूल्य उतना ही आंकती हैं, जितनी मस्ता की।[1]

पूंजीवादी व्यवस्था के कारण वर्ग भेद अथवा असमानता बढ़ती जा रही थी, श्रमिक वर्ग को अथक परिश्रम के पश्चात् भी भरपेट भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता था, अन्य भौतिक साधनों का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। 'मजदूर कोई आशा, कोई उम्मीद ही क्यों करे? उसके हृदय में धनवान बनने की अभिलाषा ही क्यों हो? और हो भी तो इस घृणित कमाई के सिवा पैसा कमाने का उसके पास दूसरा जरिया ही *क्या है? परिश्रम से तो भरपेट रोटी भी मयस्सर नहीं होती।*' मजदूर की आर्थिक विपन्नता, सामाजिक असमानता, तथा शासन व्यवस्था ने उसे कुकर्म की ओर अग्रसर किया था। श्रीमती कमला चौधरी ने देश के आध्यात्मिक नैतिक पतन के कारण की ओर इंगित करते हुए उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी कर दिया है। इनका नारी के प्रति विशेष सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण है। अमीर और गरीब सभी के *हृदय में समान रूप से धन प्राप्ति की लालसा विद्यमान रहती है,* जिसकी पूर्ति के लिए वह अनुचित मार्ग अपनाने में भी सकुचित नहीं होता।

आत्मिक पतन के एक अन्य रूप का वर्णन भी तत्कालीन कथा-साहित्य में मिलता है, जिसका सम्बन्ध देशवासियों के साथ विश्वासघात से है। कतिपय व्यक्ति राष्ट्रीय संग्राम के आवेश में राष्ट्र भक्त बन गये थे किन्तु अभाव और दरिद्रता न सह *सकने के कारण नैतिकता से च्युत हो गए थे। सार्वजनिक कार्य के लिए एकत्रित* चन्दे के हिसाब किताब में गड़बड़ करना, उधार लेकर न देना आदि उनके पतन के द्योतक थे। 'नेता बन कर नाम कमाने और प्रतिष्ठा बढ़ाने की महत्वाकांक्षा ने उन्हें इतना जकड़ रखा था, वह उसके लिए देश सेवा तो क्या अत्यन्त घृणित से घृणित काम करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते थे।'[2]

हिन्दी कथा-साहित्य में पुरुष लेखकों के साथ महिला लेखिकाओं ने भी समाज के आध्यात्मिक नैतिक पतन के सुन्दर करुण यथार्थ तथा कटु व्यंगपूर्ण चित्र खींचे हैं। गांधी जी ने जीवन में नैतिकता पर विशेष बल दिया था क्योंकि भारत देश नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण भूलकर भौतिकतावादी होता जा रहा था।

पराधीनता-जन्य दुर्दशा का चित्रण

कथा साहित्य में पराधीनता के अभिशापवश भारतीय दुर्दशा का चित्रण

---

१ कमला चौधरी उन्माद पृ० १३७
२ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक कल्लोल · पृ० ११०

अधिक स्पष्ट शब्दो तथा यथार्थ में किया गया है। तत्कालीन असह्य राजनीतिक परिस्थितियो, शासक द्वारा भारतीयो पर अत्याचार, शासन सम्बन्धी अव्यवस्था, अन्याय, अनीति आदि के अनेक दृश्य अथवा चित्र उपन्यास तथा कहानियो मे मिलते हैं। भारतवासियो को पराधीन बनाने के लिए जिस चातुर्य एव कौशल का खेल अग्रेजो ने खेला था उसका वर्णन प्रेमचन्द जी की 'राजभक्त' कहानी मे मिलता है। अग्रेजो ने ऐसे षड्यन्त्र रचे, छल तथा कपट किया कि अवध के बादशाह का चारित्रिक पतन हुआ और रियाया के दिल से बादशाह की इज्जत और मुहब्बत उठ गई।[1] भारत अन्याय, अत्याचार, अधर्म, अनीति की भित्ति पर स्थापित साम्राज्यवाद की क्षुधा का ग्रास बन गया।

यह युग राष्ट्रीय चेतना का युग था। अनेक धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक सस्थाओं द्वारा जन जीवन मे राष्ट्रीय भावना का सचार हो चुका था। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जनता का सगठन विदेशी शासको की दृष्टि मे अक्षम्य था। जलियावाले बाग की निर्मम घटना उनकी बर्बर दमन-नीति का इतिहास-प्रसिद्ध उदाहरण है। प्रथम महायुद्ध मे विश्व के सम्मुख वीरता की धाक बैठा देने वाले वीर पजाब के युवको को, जलियावाले बाग मे, पशु से भी गई बीती मृत्यु मिली थी। आचार्य चतुरसेन शास्त्री की 'अभाव' कहानी, तथा सुदर्शन की 'भग्न-हृदय' कहानी मे जलियावाला बाग की घटना के उल्लेख के साथ सरकार द्वारा लगाए मार्शल ला, रौलेट एक्ट और पजाब निवासियों द्वारा सहन किये अनेक नृशस, एव अमानवीय अत्याचारो का वर्णन मिलता है। चतुरसेन शास्त्री की 'अभाव' कहानी मे एक विशाल अट्टालिका मे एक युवक बैठा सोच रहा है—किस प्रकार प्राणो पर खेल कर अग्रेजो की सहायता की गई थी, लेकिन अब वे ही सुन्दर युवक जलियावाला बाग मे मुर्दा पडे हैं, उनकी लाश का भी प्रबन्ध नही है। 'ओफ! हत्यारे डायर!' युवक सिसकियां लेकर रोने लगे—रोते-रोते ही धरती पर लेट गये।[2] डाक्टर के अभाव मे स्त्री मर रही थी, किन्तु मार्शल ला के कारण डाक्टर रोगिणी तक जाने मे असमर्थ था। किसी प्रकार डाक्टर साहस कर चला तो गोरे सार्जन्ट की बन्दूक का कुदा उसकी ओर/ डाक्टर कर्नल मेजर था, किन्तु 'काला आदमी' था, इस कारण उसे कीडे की/ रेंग कर रोगिणी के घर जाना पडा।[3] लोगो के घर मे एक बूद पानी न / के कुओं पर निर्लज्ज गोरों का पहरा था। डाक्टर को पानी लाने के प्रयत्न

लो

कुन्दो

१ प्रेमचन्द प्रेम पंचमी . पृ० ६७-६८

२ आचार्य चतुरसेन शास्त्री : अभाव : पृ० ३१

३. वही ' पृ० ३२

की मार से कुचल दिया गया।[1] इस कठोर दमन की अत्यधिक तीव्र प्रतिक्रिया देशवासियों में हुई थी। कथा के अन्त में डाक्टर साहब सरकारी वर्दी तथा विदेशी कपड़ों का परित्याग कर राष्ट्रीयता का गौरव अनुभव करते हैं। विदेशी के प्रति घृणा का स्वर, इस कहानी में अति प्रखर है। सुदर्शन की 'भग्न हृदय' कहानी की कथावस्तु में भी जलियांवाला बाग तथा अंग्रेजी अत्याचार की कुटिल नीति की कटु आलोचना की गई है। लाला छज्जूमल का एकमात्र पुत्र जलियांवाला बाग की घटना में घायल होकर घर आता है, लेकिन 'कर्फ्यू आर्डर' पकड़ धकड़ व डर से किसमें साहस था कि रात्रि को घर से निकलता।[2] प्रातः काल उसके बूढ़े पिता के बाहर निकलते ही अकारण पुलिस ने पकड़ लिया। उनकी अनुपस्थिति में उनका पुत्र डाक्टर के अभाव में मृत्यु को प्राप्त हुआ और प्रसव की पीड़ा न सह सकने के कारण पुत्र वधू ने भी पति का साथ दिया। 'भूल' के कारण पकड़े गये छज्जूमल जब लौट कर घर आए तो देखा कि उनका घर उजड़ चुका था। अंग्रेजी दमन नीति में छज्जूमल जैसे कितने ही निरीह एवं निर्दोष व्यक्तियों का घर उजड़ गया था। राजनीतिक पराधीनता के कारण उद्भूत दुर्दशा का इससे अधिक करुण चित्र सम्भव नहीं है। सुदर्शन जी की कहानी में करुण रस की अबाध धारा प्रवाहित हुई है। अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों को भी पत्थर का बना दिया था, पुलिस के पास अपने भाइयों का दुख-दर्द सुनने के लिए हृदय नहीं रह गया था। चतुरसेन शास्त्री तथा सुदर्शन, दोनों लेखकों ने तत्कालीन परिस्थितियों तथा अन्याय का यथातथ्य, करुण एवं यथार्थ चित्रण किया है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के 'अलका' उपन्यास की कथा का प्रारम्भ ही भारतीय जीवन की विषम परिस्थितियों के वर्णन से होता है। महासमर का अन्त हुआ और भारत में महाव्याधि फैली। महासमर की जहरीली गैस ने भारत को घर के धुएं की तरह घेर लिया चारों ओर त्राहि-त्राहि, हाय-हाय मच गई।[1] युक्तप्रान्त में इसका विशेष प्रकोप हुआ और गंगा का पावन जल भी कलमष से युक्त हो गया। गंगा के दोनों ओर तीन-तीन कोस के घाट पर, एक-एक घाट में जब दो दो हजार लाशें पहुंच रही थीं, भारत के साठ लाख आदमी मृत्यु को प्राप्त हुए थे, नृशंस विदेशी

---

१ कुएं पर पहुंचने पर ज्यों ही उन्होंने कुएं में बाल्टी छोड़ी त्यों एक गोरे ने लात मार कर कहा—साला ! भाग जाओ।

डाक्टर साहब ने तान के एक घूंसा उसके मुंह पर दे मारा। क्षण भर में २-३ सिपाहियों ने बन्दूक के कुन्दों से अकेले डाक्टर को कुचल कर धरती पर डाल दिया।

मरी खाल की हाय पृ० ३४ चतुरसेन शास्त्री

४ फौजी लोग नगर में घूम रहे थे, अपनी जान और मान को कौन खतरे में डालता :' सुदर्शन . सुप्रभात : पृ० ६७

२ ।'निराला अलका . पृ० ६

शासन ने महासमर मे प्राप्त विजय का उत्सव मनाने का कठोर आदेश दिया। निराला जी ने तत्कालीन भारतवासियो की राजनीतिक पराधीनता के कारण विवश एव दयनीय स्थिति का अत्यधिक प्रभावोत्पादक शब्दो मे वर्णन किया है—'इसी समय सरकारी कर्मचारियो ने घोषणा की, सरकार ने जंग फतह की है, आनद मनाओ, सब लोग अपने-अपने दरवाजो पर दिए जला कर रखें। पति के शोक मे सद्य विधवा, पुत्र के शोक मे जीर्ण माता, भाई के दुःख मे मुरझाई बहन और पिता के प्रयाण मे दुःखी, असहाय बाल विधवाओ ने दूसरी विपत्ति की शका कर कापते हुए शीर्ण हाथो मे दिए जला-जला कर द्वार पर रखे, और घरो के भीतर दुःख से उमड-उमड कर रोने लगी। पुलिस घूम-घूम कर देखने लगी, किसी घर मे शाति का चिह्न, रोशनी नही।[1]

प्रेमचन्द, सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक के कथा साहित्य मे तत्कालीन दुर्दशा ग्रस्त राजनीतिक परिस्थितियो का विस्तृत चित्रण मिलता है। प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर प्राय अपने सभी उपन्यासो तथा अधिकाश कहानियो मे ग्राम, नगर एव देशी रियासतों की प्रजा की असहाय स्थिति, पुलिस एव अधिकारीगणो के अन्याय, न्यायालयो की निरर्थकता, रिश्वत, डाड, बेगार आदि प्रचलित कुरीतियों का वर्णन किया है, जिनका मूल कारण देशवासियो की पराधीनता था। 'रगभूमि' इनका राजनीतिक उपन्यास है, जिसमे असहयोग आन्दोलन (१९२०-१९२१) के समय की राजनीतिक परिस्थितियो, शासक वर्ग की अनीति, अन्याय आदि का विस्तृत विवेचन मिलता है।[2] न्यायालय सरकार की वणिक नीति के कारण व्यापारालय बन गये थे। वहा न्याय की अपेक्षा धन की प्रतिष्ठा थी। अदालतें दीनो की बलि-वेदी थी।[3] न्याय और सत्य के नाम पर कोई भी कार्य असम्भव था, लेकिन खुशामद और रिश्वत से सभी कार्य सुलभ थे। 'कर्मभूमि' उपन्यास मे प्रेमचन्द जी ने समरकान्त के शब्दो मे इसका उदघाटन किया है।[4] प्रेमचन्द जी की 'जेल',

---

१ वही, पृ० १०

२ 'सरकार यहां न्याय करने नहीं आई है भाई, राज्य करने आई है। न्याय करने से उसे कुछ मिलता है ? कोई समय वह था, जब न्याय को राजा की बुनियाद समझा जाता था। अब वह जमाना नहीं है। अब व्यापार का राज्य है, और जो इस राज्य को स्वीकार न करे, उसके लिए तारों का निशाना मारने वाली तोपें हैं। तुम क्या कर सकते हो ? दीवानी मे मुकदमा दायर करोगे वहां भी सरकार ही के नौकर चाकर न्याय-पद पर बैठे हुए हैं।'

—प्रेमचन्द : रगभूमि : दूसरा पृ० १६१

३ प्रेमचद रगभूमि : पृ० १३०

४ वही, : पृ० २३५

कहानी मे मदुला के शब्दो मे अंग्रेजी सरकार के अन्यायपूर्ण आचरण का वर्णन मिलता है। किसानो और गाव वालो के लिए वह कहती है—'अदालत और हाकिमो से तो उन्होंने न्याय की आशा करना ही छोड दिया।'[1]

सुदर्शन की भी 'सुभद्रा का उपहार' कहानी मे न्यायालयो की निरर्थकता पर प्रकाश डाला गया है। केवल गवाही द्वारा सिद्ध कर असत्य को सत्य और अन्याय को न्याय बना देना न्यायालय का कार्य रह गया था, सच्चा न्याय नही होता था।[2] विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'धुन' कहानी मे न्यायालयो को गरीब, अज्ञानी किसानो के धन हडपने का साधन बताया गया है।[3] न्याय बहुत महगा था जिससे किसान साधारण मजदूर बन जाता था। न्यायालयो द्वारा सबसे अधिक शोषण ग्राम वासी कृषक वर्ग का हुआ था। 'कानून कुमार' नामक सवादात्मक कहानी मे प्रेमचन्द जी ने देश के चारित्रिक पतन, स्त्रियो की दशा, भिखमगो की समस्या, आदि समस्त विकृतियो का एकमात्र आधार विदेशी शासन व्यवस्था मे ढूढा है।[4] 'लाल फीता या मैजिस्ट्रेट का इस्तीफा' कहानी मे प्रेमचन्द जी ने विदेशी शासको की रणनीति का स्पष्ट शब्दो मे वर्णन किया है। धर्म एव न्याय का गला घोट कर ही भारतीय अधिकारी उच्चपद प्राप्त कर सकता था। विदेशी शासन मे देश की सच्ची दशा के परिचायक समाचार पत्रो का पढना, दीन किसानो की रक्षा करना जुर्म था। साधु, सन्यासियो पर भी कडी दृष्टि रखने का आदेश था। राष्ट्रीय पाठशालाए खोलने, पचायत बनाने वाले तथा जनता को मादक वस्तुओ के निषेध के लिए कार्य करने वालो के नाम देशद्रोहियो मे लिखे जाते थे। पराधीनता का अभिशाप इतना कठोर था कि वे भी व्यक्ति राजद्रोही थे जो जनता मे स्वास्थ्य के नियमो का प्रचार अथवा भयानक बीमारियो से उसकी रक्षा का उपाय करते थे।[5] अत राष्ट्रीय उन्नति मे

१ प्रेमचद मानसरोवर पृ० १२ भाग (७)

२. 'यहां न्याय रुपये के तोल बिकता है, जो ज्यादा वकील करे, जो ज्यादा रुपया खर्च, उसी की जीत है।'

—सुदर्शन सुप्रभात पृ० १११

३ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक . कल्लोल पृ० ४३

४ 'कानून कुमार —(आप ही आप, देश की दशा कितनी खराब होती चली जाती है। गवर्नमेंट कुछ नहीं करती। बस दावतें खाना और मौज उड़ाना उसका काम है। ...' राजनैतिक कहानियां और समर-यात्रा : पृ० १७ :

५ प्रेमचन्द प्रेम चतुर्थी। पृ० ६७-६८

साधक प्रत्येक सामाजिक, धार्मिक अथवा अन्य सेवा-कार्य सम्बन्धी संस्थाओ पर कड़ा नियन्त्रण था। जिससे राष्ट्रीय सग्राम मे भाग लेने वाले राष्ट्रीय वीरो के जलूसो पर डडे बरसाये जाते थे। प्रेमचन्द की 'जुलूस' कहानी मे पुलिस के अत्याचार का मार्मिक वर्णन मिलता है।[1]

'प्रेस एक्ट' द्वारा समाचार पत्रो की स्वाधीनता छीनने का श्रेय विदेशी शासको को मिल चुका था किन्तु वह इतने से ही सतुष्ट नही हुए थे। सी आई डी विभाग द्वारा राष्ट्र के हितचिन्तक समाचार पत्रो तथा सपादकों पर कड़ी दृष्टि रखी जाती थी। शासन की जडे गहराई से जमाने के लिए आतक फैलाना ही पर्याप्त नही था, कपटनीति का आश्रय भी लिया गया था। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'विश्वास' कहानी मे 'स्वराज्य सोपान' नामक दैनिक पत्र का भेद लेने के लिए सी. आई डी विभाग की ओर से शुक्लजी की, सहकारी सम्पादक के पद पर नियुक्ति करवाई जाती है।[2] यद्यपि अन्त मे वे सम्पादक जी की सच्चाई एव निश्छलता से प्रभावित होकर राष्ट्रभक्त बन जाते हैं। भारत का यह दुर्भाग्य था कि स्वय भारतीय अधिकारी गण विदेशी शासन की नौकरशाही मे अति कुशाग्रता से कार्य सचालन कर पराधीनता को अधिक कठोर बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। पदोन्नति के लालच मे निर्दोष राष्ट्र-सेवको को फसाने के लिए जाल रचा जाता था। सम्पादक को जेल भेज देने मात्र मे ही शासको की कूटनीति की इति नहीं थी वरन् समस्त राष्ट्रीय कार्यवाही तथा राष्ट्रीय व्यक्ति का गुप्त रीति से वे पता लगाना चाहते थे।[3] राष्ट्रीयता से पूर्ण लेख लिखने पर सरकार सम्पादक, प्रकाशक मुद्रक पर मुकद्दमा चला कर उन्हें जेल भेज देती थी।[4] वह तो चाहती थी कि किसी प्रकार राष्ट्रीय पत्र बन्द हो जायें।[5] गुप्त विभाग वालो की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध मे 'निराला' ने 'अलका' उपन्यास मे विजय से सुन्दर एवं सत्य निरूपण करवाया है। 'ये गुप्त विभाव वाले बकरे चुन-चुन कर पौदो के सिर काट कर खाते हैं—पत्ते नही, नए कोपल-वाले डठल। एक बार चर जाने पर फिर पौदा नही पनपता, धीरे-धीरे मुरझाता हुआ सूख ही जाता है।'

---

१ 'उधर सवारों के डडे बड़ी निर्दयता से पड रहे थे। लोग हाथो पर डंडों को रोकते थे और अविचलित रूप से खड़े थे।'......

—प्रेमचन्द : मान सरोवर. भाग (७) : पृ० ५५

२ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० ६३

३ वही : पृ० ७०

४. वही : पृ० ७३

५ वही : पृ० ७५

शताब्दियों की पराधीनता के कारण देशवासियों में आत्मगौरव अथवा स्वाभिमान की मात्रा रह ही नहीं गई थी। 'हाकिम' उनके लिए भय की वस्तु बन गया था चाहे वह विदेशी था अथवा स्वदेशी।[1]

इसके अतिरिक्त विदेशी शासन ने भारतीयों की मानसिक अवस्था विकृत कर दी थी। देश में ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं था जो झूठा सम्मान तथा खिताब पाने के मोह में राष्ट्रघातक बन गये थे। विनोदशंकर व्यास की 'भाग्य का खेल' कहानी में श्यामदास ऐसे ही व्यक्ति हैं जिन्होंने 'रायबहादुर' का खिताब पाने के लिए असहयोग के समय सरकार की सहायता की थी।[2]

देशी रियासतों की दशा और भी बुरी थी। रियासतें भी मुकद्दमेबाजी और ऋण में फंसी हुई थी। प्रेमचन्द की कहानी 'बैंक का दिवाला' में बरहल की महारानी द्वारा ऋण लेकर राज्यकार्य चलाने का उल्लेख मिलता है। बड़ी रियासतों में राजनीतिक अत्याचार अधिक बढ़ गया था। उनकी आन्तरिक स्वाधीनता नाममात्र को ही थी, तथा पोलिटिकल एजेन्ट्स और राज्य कर्मचारियों की दुहरी मार प्रजा पर पड़ रही थी। देशी महाराजे सरकार के साथ राष्ट्रीय चेतना के दमन में अधिक कठोरता से कार्य ले रहे थे। प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' उपन्यास में रियासत में हो रहे अत्याचार का विस्तार में वर्णन किया है। यहां तक कि स्त्रियों पर भी अत्याचार होता था।[3]

प्रेमचन्द विश्वम्भरनाथ शर्मा, सुदर्शन निराला, चतुरसेन शास्त्री प्रभृति कथा-साहित्यकारों ने 'राष्ट्रहित एवं राष्ट्रीय उत्थान की भावना से प्रेरित होकर सामयिक जीवन से राजनीतिक दुर्दशा सम्बन्धी अनेक तथ्यों का उद्घाटन किया है। देशवासियों को उनकी दुर्दशा के इस प्रमुख रूप से परिचित करा के, उनमें विदेशी शासन की नृशंसता, निर्ममता, अत्याचार, अन्याय, असत्य के प्रति घृणा की भावना को जाग्रत करना उनका विशेष उद्देश्य था। प्रेमचन्द का राजनीतिक दुर्दशा के चित्रण में भी एक विशेष उद्देश्य था। प्रेमचन्द जी राजनीतिक दुर्दशा के चित्रण में भी एक विशेष आशावादिता से प्रेरित होकर अन्त में राष्ट्रीयता, सत्य, धर्म न्याय की ही विजय दिखाते हैं। इस क्षेत्र में सबसे अधिक संख्या में प्रेमचन्द जी ने ही लेखनी चलाई है। प्रायः सभी उपन्यास एवं कहानीकारों ने निश्चक रूप से यथातथ्य चित्रण किया है, जिसमें अतिरंजिकता नहीं है।

आर्थिक शोषण

हिन्दी-कथा-साहित्य में भी आर्थिक शोषण के विभिन्न रूपों का चित्रण मिलता है। नागरिकों की अपेक्षा ग्रामीण जनता आर्थिक शोषण से अधिक क्षुब्ध

---

१ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक . कल्लोल पृ० ५

२ विनोदशंकर व्यास : अस्सी कहानियाँ : पृ० २६६

३ प्रेमचन्द . रंगभूमि दूसरा भाग : पृ० ६६

थी। नगर तथा ग्राम दोनों की भिन्न आर्थिक समस्यायें थी। नागरिक शिक्षित जन के सम्मुख नौकरी की समस्या थी लेकिन ग्रामवासियो का तो सम्पूर्ण जीवन ही विदेशी शासको की पूंजीवादी व्यवस्था पर अर्जित हो गया था। अन्य हस्त-उद्योग के अभाव मे कृषि-कर्म ही भारत के बहुसख्य ग्रामवासियो की आजीविका का एकमात्र साधन रह गया था। नवीन वैज्ञानिक प्रणाली से अनभिज्ञ, जमीदारी व्यवस्था से त्रस्त, महाजनो के ऋणी, अशिक्षित एव अज्ञानी कृषक को परिवार के लिए भोजन जुटाना भी कठिन था। आर्थिक सकट की विभीषिका से परास्त होकर नगरो मे मजदूर बन कर रहने के अतिरिक्त उसके पास अन्य कोई चारा न था। जमीदारी प्रथा के राहु ने उसकी जमीन का अधिकार भी सुरक्षित न रखा था। देश की बढती हुई निर्धनता मे राष्ट्रीय हित की उपेक्षा हुई और साम्राज्यवादी स्वार्थ-साधना की भावना प्रबल हुई। प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि साहित्यकारो के उपन्यासो एव कहानियो मे ग्रामीण तथा नागरिक जीवन की आर्थिक अवस्था, समस्याओ तथा अर्थाभाव के कारण प्रभावोत्पादक चित्र मिलते हैं। प्रेमचन्द जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योकि इन्होंने ही सर्वप्रथम देश की पूंजीवादी शोषण प्रवृत्ति को उपन्यास तथा कहानियो मे मुखरित किया है।

प्रेमचन्द जी के 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' उपन्यास को कृषक जीवन की विपन्नता का इतिहास कहना चाहिए। अन्य उपन्यास—जैसे कायाकल्प, कर्मभूमि मे भी अनेक स्थल इससे सम्बन्धित मिल जाते हैं। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास मे जमीदारी व्यवस्था से उत्पीडित ग्रामीण जनता की विवशता और कष्टो का मार्मिक चित्र मिलता है। उपन्यास के प्रारम्भ मे ही सुक्खू, दुखरन, मनोहर आदि की बातचीत मे ग्रामीणो की आर्थिक दुर्दशा के कई कारण खुल जाते हैं। हाकिमो द्वारा रिश्वत लेना, गांव वालो का अज्ञान और अशिक्षा, मालगुजारी न दे पाने पर जाफा, बेदखली, अखराज आदि दण्ड ग्रामीणो की आर्थिक दुर्दशा के कारण थे।[1] इसके अतिरिक्त खेती मे बरकत ही नही रही' थी।[2] हाकिमो का दौरा क्या था गाव वालो की मौत थी—

'कादिर-हाकिमो का दौरा क्या है, हमारी मौत है। बकरीद मे कुर्बानी के लिए जो बकरा पाल रखा था, वह कल लदकर मे पकडा गया। रब्बी बूचड पाच रुपये नकद देता था, मगर मैंने न दिया था। इस बखत सात से कम का माल न था।

मनोहर—यह लोग बड़ा अन्धेर मचाते हैं। आते हैं इन्तजाम करने, इन्साफ करने, लेकिन हमारे गले पर छुरी चलाते हैं। इससे कही अच्छा तो यही था कि दौरे बन्द हो जाते। यही न होता कि मुकदमे वालो को सदर जाना पडता। इस

१. प्रेमचन्द : प्रेमाश्रम : पृ०

२ वही : पृ० ७

सासत से तो जान बचती।[१]

नगरो मे खुलने वाली व्यापारिक सस्थाओ से देश को लाभ के स्थान पर हानि पहुच रही थी। प्रेमाश्रम उपन्यास मे राय साहब इस सम्बन्ध मे कहते हैं—इस लिए कि सेठ जगतराम और मिस्टर मनचूर जी का विभव देश का विभव नही है। आपकी यह कम्पनी धनवानो को और भी धनवान बनायेगी, पर जनता को इससे बहुत लाभ पहुचने की सम्भावना नही। निस्सन्देह आप कई हजार कुलियो को काम मे लगा देंगे पर यह मजूरे अधिकाश किसान ही होगे और म किसानो को कुली बनाने का कट्टर विरोधी हू। मैं नही चाहता कि वे लोभ के वश अपने बाल बच्चो को छोडकर कम्पनी की छावनियों मे जाकर रह और अपना आचरण भ्रष्ट करें। अपने गाँव मे उनकी एक विशेष स्थिति होती है। उनमे आत्म प्रतिष्ठा का भाव जाग्रत रहता है। बिरादरी का भय उन्हें कुमार्ग से बचाता है। कम्पनी की शरण मे जाकर वह अपने घर के स्वामी नही दूसरे के गुलाम हो जाते हैं और बिरादरी के बन्धनो से मुक्त होकर नाना प्रकार की बुराइया करने लगते हैं। कम से-कम अपने किसानो को इस परीक्षा म नही डालना चाहता।[२]

प्रेमचन्द जी ने 'प्रेमाश्रम उपन्यास मे जमीदारी प्रथा का उत्पीडनकारी प्रभाव दिखाया है और 'गोदान' मे महाजनो द्वारा कृषक शोषण। सरकार की ओर से किसानो को ऋण देने की कोई व्यवस्था नही थी। जमीदारी व्यवस्था, दैवी विप तिया और सामाजिक रूढिवादिता अन्धविश्वास से त्रस्त कृषक के लिए महाजनो से मनमाने सूद पर धन लने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा न था। गोदान' का होरी आर्थिक विपन्नता के कारण ऋण लेता है। अशिक्षित होरी का ऋण दिन दूना रात चौगुना बढता जाता है। उसका अनाज खलिहान मे ऋण के ब्याज अदा करने मे ही बिक जाता है बैल बिक जाते हैं और अन्त मे वह मजदूर बन पेट की समस्या को हल करता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है। मृत्यु के समय भी उसकी आर्थिक समस्या विकराल रूप धारण कर खडी हो जाती है। घर की समस्त सचित पू जी—बीस आने पैसे—भारतीय कृषक वग की आर्थिक दुर्व्यवस्था की सूचना देते हुए 'गोदान' के लिए अर्पित हो जाते हैं।[३] अर्थाभाव ने होरी की विवेक-बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी, उसमे नैतिकता की अनैतिकता भावना का अभाव हो गया था, तभी तो वह अपनी छोटी पुत्री का विवाह, धन के लालच में, वृद्ध के साथ कर देता है।[४] प्रेमचन्द जी के अन्य उपन्यासो कायाकल्प, कर्मभूमि' आदि में भी कृषको के यथार्थ जीवन के चित्र मिलते हैं। कायाकल्प', में लेखक ने भारतीय नरेशो के अधीन निम्न वर्ग की जनता की दुर्व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। 'छाती फाड कर काम' करने वाले मजदूरों

१ प्रेमचन्द प्रेमाश्रम पृ० ४६
२ वही पृ० ७६-८०
३ प्रेमचन्द गोदान पृ० ३६५
४ वही, पृ० ३५६

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'निरुपमा' उपन्यास मे कृषको की आर्थिक दुर्दशा की झलक दिखाई है। 'निराला' जी ने भी इस उपन्यास मे यह स्पष्ट कर दिया है कि जमीदार तो विदेशी सरकार के दलाल मात्र थे जो अपने कारिन्दो के साथ मिलकर कमीशन खाते थे। तत्कालीन शासन-व्यवस्था इतनी दोषपूर्ण थी कि रिश्वत, बेगार, डाड आदि उसके आवश्यक अग थे। निराला जी ने 'अलका' मे आर्थिक दुर्व्यवस्था को नैतिक चारित्रिक पतन का कारण दिखाया है। महादेव केवल धन प्राप्ति के लिए ग्राम की कुलीन सुन्दरी, विवाहिता शोभा की असहाय अवस्था से लाभ उठाना चाहता है। अनीति का मार्ग अपनाते हुए उसकी अन्तरात्मा धिक्कारती है, किन्तु धन की आवश्यकता उसकी सद्वृत्ति को कुठित कर देती है। वह सोचता है—'पर उसे तरक्की करनी है, दुनिया इसी तरह उत्थान के चरम सोपान पर पहुची है, वह गरीब है, इसीलिये अमीरो के तलुवे चाटता है, उसके भी बच्चे हैं, उन्हे भी आदमी बनना है, लडकियो की शादी मे तीन तीन,चार-चार और पाच-पाच हजार का सवाल हल करना है इतना धर्म का रास्ता देखने पर यह ससार की मजिल वह कैसे तय करेगा।'[2]

बाबू राधिकारमण प्रसाद सिंह के उपन्यास 'पुरुष और नारी' मे १९२०ई० से ३० ई० तक भारत के राष्ट्रीय जीवन की गतिविधि का निरूपण किया गया है। उन्होने भारत की आर्थिक दुर्दशा का कारण विदेशी सरकार की नौकरशाही की दोहन नीति मे खोजा है—'नौकरशाही की दोहन-नीति भारत की सारी शक्ति को तिमचटे की तरह चाट रही है। आज तो देश, त्रिदोष मे गिरफ्त है—गुलामी, गरीबी, बेकारी —।[3] शासक वर्ग की शान शौकत भारतवासियो की गरीबी पर पल रही थी।[3] लेखक ने देहात की तबाही का वर्णन किया है—'स्टेशन से दाई ओर, रेलवे-लाइन की बगल मे, तमाम खेत हैं। धान कट चुका है। मगर उन उजाड ठूठियो भरे खेतो मे औरतो और बच्चो का हुजूम है। चिथडे लपेटे बच्चे और औरतें, हाथो मे सूप और झाड लिये, एकाध कटे छटे बिखरे धान की बाल की तलाश मे, सूखी जमीन बुहार रहे हैं। आपस मे छीना-झपटी का बाजार भी गर्म है। दो दाने धान के लिए बच्चे चीखते हैं औरतें एक दूसरे का सर नोचती हैं।[4] लेखक को भारत की आर्थिक दुर्दशा की इस विभीषिका मे देशवासियों की निष्क्रिय जडता खल जाती है—भारत की यह गरीबी, नौकरशाही की यह दोहन-नीति, पैसे वालो की यह मगदिली, आखफोडो की यह खुदगर्जी। फिर भी लोग आराम से राम का नाम लेते हैं सत्तू चाटकर सुबह से शाम करते हैं। यह जहालत है कि नाबदान मे रेंगते हैं और स्थिति का पता नही। यह जडता है कि छूछा भात और लात खाकर भी दात नहीं किटकिटाते। जो अमीर हैं, उसे आराम की तलाश है, जो गरीब हैं उसे राम की तलाश है। और देश गुलाम है तो रहे—हमारी रोटी दाल का इन्तजाम दुरुस्त रहे।[6] गरीबो को श्रम का मूल्य नहीं मिलता था।[7] कैसी असहाय स्थिति थी। अर्थाभाव के बीच देश का नैतिक पतन

---

१ प्रेमचद : कायाकल्प पृ० १०६ . नया सस्करण . नवम्बर १९५३
२ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला . अलका : पृ० १३
३ राधिकारमण प्रसाद सिंह . पुरुष और नारी . पृ० ९
४ वही . पृ० ११
५ राधिकारमण प्रसाद सिंह . पुरुष और नारी . पृ० ५७
६. वही : पृ० ५८ ७. वही : पृ० ५९

भयकर था। राधिकारमण प्रसाद सिंह ने सम्पूर्ण राष्ट्र के आर्थिक सकट को राजनीतिक दृष्टिकोण से देखा है।

प्रेमचन्द जी की कफन', अलगोझा', 'सवा सेर गेहूं', 'ईदगाह' आदि प्रसिद्ध कहानियो मे हिन्दुओं और मुसलमानो, नगर और समाज की आर्थिक कठिनाइयों का दिग्दर्शन है। 'सवा सेर गेहू' कहानी मे लेखक ने शकर नामक कुरमी किसान को, साधू के आतिथ्य सत्कार के लिये गये सवा सेर गेहू का ऋण न चुकाने के परिणामस्वरूप आजीवन विप्र महाजन की दासता करते दिखाया है। अन्नदाता कृपक धर्मभीरुता, अज्ञानता, अशिक्षा के कारण कृषक से सेवक बन जाता है। उसकी मृत्यु के पश्चात दासता का बोझ उसके पुत्र को ढोना पडता है। ब्राह्मण वर्ग भी धन के लोभ मे कर्त्तव्य च्युत होकर 'महाराज' से महाजन' बन गया था।[१]

प्रेमचन्द के सदृश विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने भी 'वेदखली',[३] धुन'[४] आदि कहानियो मे भारतीय कृषक वर्ग की आर्थिक कठिनाइयो का चित्रण किया है। भारतीय कृपक, जमीदारी व्यवस्था मे जमीदार, साहूकार और उनके कारिंदो की शोषण नीति तथा मुकदमेबाजियो मे पिस रहा था। 'कौशिक जी' की 'अपराधी' कहानी मे सरकारी अफसरो और कर्मचारियो की शोषण प्रवृत्ति का व्यग्यात्मक चित्र मिलता है। —'उधर जिस गाव मे डिप्टी साहब पहुचे हैं उस गाव की दशा क्या कही जाय, वे यही समझते हैं कि यमदूत आ गये। वे सोचते हैं कि जो कुछ बाल बच्चो के खाने के लिए रखा है डिप्टी साहब की नजर कर देंगे, हम समझ लेगे अकाल पड गया।'[४] सूखी रोटी खाने पर भी लगान का बोझ और वेदखली का भय कृषक को आक्रान्त किये रहता था, 'वेदखली' कहानी इसका उदाहरण है। अर्थलोभ के कारण जमीदार अति नीच प्रवृत्ति के हो गये थे—' आजकल ये जमीदार तो चमार हैं। विष्ठा मे पडा हुआ पैसा उठा लें।'[५] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'श्यामा' कहानी में शोषित कृपक की दयनीय आर्थिक स्थिति का मार्मिक वर्णन किया है—महाराज' आठ रुपये बीघे के हिसाब से जमीदार दयाराम महाराज ने तीन बीघे खेत दिये थे। मैंने कई साल तक खेतों को खूब बनाया, खाद छोडी, जब खेत कुछ देते लगे, तब परसाल इन्होने वेदखल कर दिया, पहले इजाफा लगान बीघा पीछे पाच रुपये मागते थे। अपने पास इतना दम न था। खेत छोड दिये। पर किसान जाय कहाँ, क्या खाय ? फिर उन्ही जमीदार दयाराम महाराज के पैरो नाक रगडनी पडी। उन्होने पाँच रुपये बीघे पर ढाई बीघे का एक खेत दिया। खेत बिल्कुल ऊसर है। मैं जानता था। पर लेना पडा। खेती न करें, तो महाजन उधार नहीं देता। भूखो मरा नही जाता। खेती मे साढ़े बारह का पूरोपूर डाड पड गया। कुछ न हुआ। एक बैल था, साझे मे जोत लेते थे, वह भी मरा, इधर श्यामा की अम्मा थी, वह भी भगवान के यहाँ गई। परमात्मा ने

१. प्रेमचद मानसरोवर भाग ४ : पृ० १८६
२ प्रेमचद : मानसरोवर भाग ४ : पृ० १६६
३ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक। कल्लोल : पृ० १३२
४. वही : पृ० ४३
५ वही : पृ० १२४
६. वही : पृ० १४८

सब तरफ से बैठा दिया । अफसोस-अफसोस मुझको भी दमा हो गया है । काम होता नहीं । उस किस्त किसी तरह पाच रुपया चुकाया था । अब के कुछ भी डौल नहीं । बरखा आ गई । छप्पर वैसा ही रखा है । कहा से पैसे आवें, जो छा जाय । मिहनत मिजूरी का बल नहीं है । श्याम दूसरे की पिसौनी करती है, तब दो रोटी तीसरे पहर तक मिलती हैं ।"[1]

उस समय अधिकाश भारतीय कृपको की यही स्थिति थी जिसने राष्ट्र की प्रगति को अवरुद्ध कर दिया था । रामवृक्ष बेनीपुरी ने 'कहीं धूप कही छाया'[2] कहानी मे जमीदार द्वारा असामियो पर किय जाने वाले नृशस व्यवहार, बेगार आदि का अत्यन्त करुण शब्दो मे वर्णन किया है जिसे पढकर पाठको का हृदय द्रवित हो जाता है ।

जयशकर प्रसाद की कहानियो मे भी भारतीय जीवन के अन्य वर्गों की निर्धनता, उसके कारण उत्पन्न विपमता का सजीव एव भावात्मक चित्रण मिलता है । आर्थिक विपन्नता समाज के लिए अभिशाप बन गई थी । 'छोटा जादूगर' कहानी मे बालक को आवश्यकता ने कितना शीघ्र चतुर बना दिया[3] था । मा की दवा दारु और अपने पेट भरन के लिये छोटा सा बालक अत्यन्त चतुर हो गया था । 'अनबोला'[4] मे मछली बचने वाली जग्गैया की मा की करुण मृत्यु की कहानी मे भारत की आर्थिक दुर्दशा की झाकी दिखाई देती है । 'भिखारिन' मे भोली भिखारिन ने देश के सम्पन्न वर्ग पर कठोर व्यग्य कसा है— दो दिन माँगने पर भी तुम लोगो से एक पैसा तो देते नही बना, फिर गाली क्यो देते हो बाबू ? ब्याह करके निभाना तो बडी दूर की बात है ।'[5] युवती नारी भीख माँगे इससे अधिक किसी देश के लिये लज्जा की क्या बात हो सकती है । निर्धनता ने नारी को रूप बेचने के लिए बाध्य किया था । 'पाप की पराजय'[6] कहानी मे इसका उल्लेख मिलता है । दरिद्र कन्या से विवाह समाज मे असम्मानित समझा जाता था ।[7] 'करुणा की विजय' कहानी मे प्रसाद जी ने देश की दरिद्रता के क्रूर अट्टहास की ओर सकेत किया है । देश दरिद्र हो गया था, खोखला हो गया था, इसी कारण अभागिन बुढिया, अभागे देश मे जन्म ग्रहण करने का फल भोगती है ।[8] इस निर्धनता, विवशता अवशता मे भी कही कही आत्मसम्मान बचा रह गया था ।[9] प्रसाद जी ने देश की आर्थिक दुर्दशा के भावात्मक चित्र खीचते हुए उसके

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला लिली : पृ० ६५
२. बेनीपुरी ग्रन्थावली भाग १ : चिता के फूल : पृ० १३
३ जयशकर प्रसाद . इन्द्रजाल पृ० २८
४. वही . इन्द्रजाल पृ० १०७
५ जयशकर प्रसाद : आकाश-दीप : पृ० ६३
६. वही : प्रतिध्वनि : पृ० २७
७. वही : पृ० ७२
८. वही : पृ० १५
९ " १५

भीषण परिणाम की ओर सकेत किया है।

सुभद्रा कुमारी चौहान की ससमरणात्मक कहानियो मे आर्थिक विपन्नता की 'सीधे सादे चित्र' मिलते हैं। 'राही' कहानी मे सुभद्रा जी ने समस्त प्रकार के अपराध का मूल कारण पेट की भूख मे ढूंढा है। मजदूरी जब नही मिली तो चोरी के अतिरिक्त जीविकोपार्जन का और साधन ही क्या था।[1] रामवृक्ष बेनीपुरी की 'वह चोर था' कहानी मे भी चोरी का प्रमुख कारण निर्धनता, विवशता, असहाय स्थिति मे ढूढा गया है— 'सडा मुर्दा-चोरी का पेशा। सडा मुर्दा—बदबू, उकबाई। कलेजा मुह को आता। लेकिन, दूसरा चारा क्या था? या अथाह सागर मे डूबो, या इस सडे मुर्दे को पकडो। अकेले रहता तो लालू यह पेशा कभी न करता—मर जाना पसन्द करता। किन्तु ये बच्चे, यह बीवी कभी भी उसकी सुन्दरी, प्यारी स्त्री। सडे-मुर्दे को पकड कर उसने भव-सागर पार करने का निश्चय किया।[2]

विदेशी शासको की पूँजीवादी नीति ने देश मे विषमता का ऐसा विष भर दिया था कि निम्न वर्ग धन की लालसा के मद मे अनैतिकता को अपनाने मे भी सकोच नहीं करता था। श्रीमती कमला चौधरी की 'अभी की अभिलाषा'[3] 'भिखमगे की बिटिया'[4] कहानियाँ इसका उदाहरण हैं।

नागरिक जीवन का अशिक्षित एव निम्न वर्ग ही आर्थिक समस्याओ से ग्रसित नही था, शिक्षित समुदाय के सम्मुख भी 'अर्थ' एक जटिल समस्या बन गया था। शिक्षा का जो रूप विदेशी सरकार द्वारा प्रचलित किया गया था, उसमे शिक्षित होने के पश्चात् आजीविकोपार्जन के लिए केवल सरकारी नौकरी का साधन शेष रह जाता था। स्वतत्र व्यवसाय अथवा आत्मनिर्भरता की शिक्षा नहीं दी जाती थी। श्री निराला जी के 'निरुपमा' उपन्यास का नायक लन्दन से डी० लिट्० की डिगरी लेकर आता है लेकिन अनेक टक्करें मारने पर भी उसे नौकरी नही मिलती। अन्त मे वह जूते साफ करने का व्यवसाय कर समाज के प्रति विद्रोह करता है। मोहनलाल महतो 'वियोगी' की 'पाच मिनट' (१६२० ई०) कहानी मे भारतीय ग्रेजुएट की बेकारी, पारिवारिक कष्ट, दरिद्रता और भूख से त्रस्त होकर कुसग मे पडने का उल्लेख किया गया है। वह अपराध करता है, खून करता है और चोरी, डाके डालता है।[5]

उपेन्द्रनाथ अश्क ने मध्य वर्ग एव निम्न वर्ग के जीवन से कथावृत्त लेकर देश की आर्थिक विपन्नता के चित्र खीचे हैं। 'आर्टिस्ट' (१६३४ ई०) कहानी मे कलाकारो की आर्थिक विपन्नता की ओर सकेत किया है— गाने के शौकीन तो बहुत हैं पर दाम देकर सुनने वालो का अभाव है।[6] 'ऐरोमा' (१६३२ ई०) कहानी मे लेखक ने

१ सुभद्रा कुमारी चौहान सीधे सादे चित्र पृ० ७३
२ रामवृक्ष बेनीपुरी . बेनीपुरी ग्रन्थावली चिता के फूल : पृ० ४६
३ कमला चौधरी उन्माद पृ० १२८
४ वही . पृ० १०६
५ विनोद शकर व्यास-सम्पादक मधुकरी दूसरा खण्ड . पृ० १३२
६ उपेन्द्रनाथ अश्क , सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ . पृ० ७६

अर्थाभाव के कारण अभिशप्त प्राणनाथ की वैज्ञानिक खोज को व्यर्थ जाते दिखाया है। प्राणनाथ ने धन के अभाव के कारण विज्ञान की डिग्रियाँ उपलब्ध नहीं की थी, इसी कारण वह ऐरोमा जैसी दवा की खोजकर भी उसका मूल्य नहीं पाता और अन्त मे उसके प्राण भी चले जाते हैं। 'तीन सौ चौबीस' (१६३३ ई०)[1] शिमला जैसे पहाडी वैभवशाली नगर के मजदूर की शोचनीय आर्थिक स्थिति मे उत्पन्न अर्थलालसा के कारण मृत्यु का करुण चित्र है। भारत के पर्वतीय नगरो मे जब धनिक वर्ग ऐश्वर्य का सुख भोगने जाता है तो चिथडो मे लिपटे, आधी टांगो और बाँहो वाले कुलियो की आर्थिक विपन्नता को देखकर मानवता कराह उठती है। कुमारी वाल्टन, हैदर को अकेले प्यानो उठाते देखकर सोचती हैं कि योरुप मे होता तो बोझ उठाने का रिकार्ड मात करके सहस्रो रुपये कमा लेता।[2] इसी प्रकार 'नमक ज्यादा है' (१६३२ ई०)[3] 'निशानियाँ'[4], भिश्ती की बीवी'[5] मे लेखक अर्थाभाव के कारण उत्पन्न कठिन जीवन का वर्णन किया है। 'भिश्ती की बीवी' मे लेखक ने गरीबी के अभिशाप मे नारी के अरक्षित सतीत्व की ओर सकेत किया है। गरीब की औरत को भी अपनी इज्जत प्यारी थी।

प्रेमचन्द, विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने ग्रामीण जीवन, कृषक वर्ग एव मजदूरो के अधिक चित्र खीचे हैं। निराला जी की क्रान्ति चेतना अधिक तीव्र है और प्रतिशोध लेना जानती है। सुभद्राकुमारी चौहान, कमला चौधरी की निर्धन नारी की ओर विशेष सहानुभूति है। जयशकर प्रसाद, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि ने कृषको अथवा श्रमिको के अतिरिक्त अन्य वर्गों की आर्थिक विपन्नता का भी उल्लेख किया है। शिक्षित नागरिक समुदाय की बेकारी की समस्या को भी लेकर कथा-साहित्य रच गया है। राधिकारमण प्रसाद सिंह की राष्ट्रीय चेतना सम्पूर्ण राष्ट्र जीवन को एक साथ लेकर बढती है। इन सभी लेखको ने राष्ट्रीय-उत्थान के उद्देश्य को लक्षित कर देश की आर्थिक विवशता का यथार्थ चित्र खीचा था।

सामाजिक दुरवस्था

तत्कालीन भारत की सामाजिक दुरवस्था के भी सजीव एव पूर्ण चित्र कथा साहित्य मे मिलते हैं। प्रेमचन्द, विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक, वृन्दावनलाल वर्मा, सुदर्शन, जयशकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुभद्राकुमारी चौहान, कमला चौधरी, विनोदशकर व्यास आदि कथा-साहित्यकारो ने राष्ट्रवाद के अवरोधक तत्त्व सामाजिक विषमताओं के यथार्थ चित्र खीचे हैं। कतिपय सामाजिक उपन्यास तथा कहानी लेखकों ने समाज सुधार एव आदर्शवाद से अभिप्रेरित होकर देश के पुनर्निर्माण के लिए नवीन आदर्श, मान्यताओ तथा चेतनाओ द्वारा सामाजिक

१. उपेन्द्रनाथ अश्क - सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ पृ० ६३
२. वही : पृ० ३१६
३. वही : पृ० ३७३
४. वही : पृ० ३८६
५ ' ˆ : प ४८२

दुरवस्था के निराकरण का प्रयास भी किया है ।

इस क्षेत्र मे भी प्रेमचन्द जी का नाम अग्रगण्य है, इन्होने ग्राम, नगर, हिन्दू, मुसलमान ईसाई, पुरुष, नारी सभी वर्गों की सामाजिक समस्याओ को लेकर सबसे अधिक उपन्यास और कहानिया लिखी हैं। भारत के प्राय सभी भागो तथा जातियों मे दहेज, अनमेल विवाह, विधवा दुर्गति, छुआछूत, अन्धविश्वास, वेश्यावृत्ति आदि सामाजिक कुरीतिया व्याप्त थी। इसी कारण गाधी जी के राष्ट्रीय आन्दोलन के रचनात्मक कार्यक्रम मे समाज-सुधार के कार्य पर विशेष बल दिया गया था । ये सामाजिक समस्याए नगर तथा ग्राम दोनो प्रकार के जीवन को आक्रान्त कर रही थी, किन्तु विशेषकर नागरिक जीवन तथा 'नारी' इससे अधिक त्रस्त थे। इन प्रमुख सामाजिक समस्याओ का एक एक कर विवेचन अधिक युक्तिसगत होगा।

विधवाओ की समस्या

भारतीय समाज की अतिशय रुढिवादिता के कारण विधवा का पुनर्विवाह घोर पाप समझा जाता था। समाज द्वारा उनके सरक्षण की उचित व्यवस्था भी नही थी, अत उनकी असहाय तथा दयनीय स्थिति से कामुक लोग लाभ उठाने लगे । प्रेमचन्द के 'प्रतिज्ञा' उपन्यास की मूल समस्या विधवा है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र अमृतराय त्यागी तथा देश प्रेमी हैं। अपनी पत्नी की मृत्यु के उपरान्त उन्होंने विधवा विवाह का व्रत लिया है। पूर्णा असमय मे विधवा हो जाती है । उदर-पोषण के साधन के अभाव मे पडोसी बदरीप्रसाद के यहा आश्रय लेती है। उसके आश्रयदाता का पुत्र कमलाप्रसाद उसके सौंदर्यपूर्ण यौवन तथा विवशता का अनुचित लाभ उठाना चाहता है। किसी प्रकार साहस कर वह अपने सतीत्व की रक्षा करती है । अन्त मे अमृतराय द्वारा स्थापित विधवाश्रम मे आश्रय लेती है। प्रेमचन्द जी ने इस उपन्यास मे विधवा की दयनीय, असहाय, अरक्षित अवस्था का मार्मिक चित्र खीचा है । इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द जी ने इस उपन्यास में विधवा की अन्तर्प्रवृत्ति का उद्घाटन कर इस तथ्य का विवेचन भी किया है कि कठोर सयम, व्रत, नियम आदि के आवरण मे भी विधवा हृदय मे सुख की प्रबल आकांक्षा छिपी रहती है, जो अनुकूल अवसर पाकर प्रकट हो जाती है।[1]

कथा साहित्य के इस युग मे विधवा-समस्या से सबधित कई उपन्यास तथा कहानिया मिलती हैं। सूर्यकान्त त्रिपाठी ने 'अलका' उपन्यास मे सामाजिक अन्धकार के इस पक्ष की भर्त्सना करते हुए लिखा है—'इसी भारत मे आश्रयहीन बालिका और तरुणी विधवाए भी हैं। उन्हें खाने को नहीं मिलता, भूख के कारण विधर्म को भी उन्हें ग्रहण करना पडता है, चिरसचित सतीत्व धन से भी हाथ धोना पडता है।'[3] जैनेन्द्रकुमार ने परख (सन् १६२६) लिख कर विधवा की समस्या तथा उनकी मनोभावनाओं को मनोवैज्ञानिक ढग से रखने का प्रयास किया है । विधवा कट्टो

१. प्रेमचद : प्रतिज्ञा . पृ० १४५

२ वही : पृ० १२१

३. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अलका : पृ० ४२

के अन्तर्जगत का विश्लेषण करते हुए उन्होने उसके हृदय मे भी कोमलता, उदारता, त्याग, कमनीयता, भावुकता आदि विशेष गुणो का सम्मिलित रूप खोजा है। बिहारी और कट्टो के आत्मिक मिलन द्वारा जैनेन्द्रकुमार ने तत्कालीन सामाजिक आदर्श की रक्षा की है। विधवा समस्या से सबधित बाह्यजगत् की स्थल घटनाओ की अपेक्षा जैनेन्द्र जी ने उसके अन्तर्मन के सूक्ष्म व्यापारो, मन की स्वाभाविक गति का अकन सफलतापूर्वक किया है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यास 'प्रेमपथ' (सन् १९२६) मे जीवन के उभार मे ही विधवा हो जाने वाली नारी के नारीत्व मे सामाजिक रूढिवाद तथा सास्कृतिक आदर्शवाद का विरोध दिखाया गया है। वासना और कर्तव्य मे अन्तर्द्वन्द्व विधवा की सबसे बडी समस्या थी। त्यागमयी' (सन् १९३०) उपन्यास मे वाजपेयी जी ने दिखाया है कि समाज द्वारा ठुकराई विधवा नारी को प्रेम का भी अधिकार नहीं रह गया था। उसके पास भौतिक जगत् की कुठाओ से मुक्ति का केवल एकमात्र साधन था प्राणोत्सर्ग। वाजपेयी जी के ये प्रारम्भिक उपन्यास केवल उपन्यासकार होने की इच्छा से लिखे गये थे, इनमे अन्य विशेषता दृष्टिगत नही होती। 'पतिता की साधना' मे उन्होने विधवा नन्दा के हृदयगत भावो के मथन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। युवती विधवा, जिसने वैवाहिक सुख का प्रभात ही देखा था, किस मानसिक स्थिति मे जीवन-यापन करती है, इस पर भारतीय समाज विचार नही करता। मानसिक दुर्वलतावश, यदि विधवा सयम से गिर जाती है तो पतिता का जीवन व्यतीत करने के लिए उसे बाध्य होना पडता है। विधवा नन्दा हरि से प्राप्त पुत्र की जीवन रक्षा के लिए पतिता गायिका का जीवन बिताती है लेकिन सतीत्व की रक्षा करती है। अन्त मे हरि पाखण्डी समाज के लिए विद्रोही बन कर नन्दा और अपने पुत्र को प्राप्त करता है। उसकी मा द्वारा विधवा नन्दा को स्वीकार करना सामाजिक परिवर्तन का सूचक है।[1]

कहानीकारो मे प्रेमचन्द सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', विनोद शकर व्यास, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने इस समस्या के सबध मे अपना विशेष दृष्टिकोण रखा है। प्रेमचन्द की 'बेटो वाली विधवा'[2], 'बूढी काकी'[3] मे विधवा एव वृद्धा नारी की समस्या ली गई है। 'निराला' जी की कहानियो मे विधवाओ के प्रति किये गये सामाजिक अन्याय के प्रति विशेष आक्रोश मिलता है। सामाजिक अन्याय की प्रतिक्रियावश उन्होंने 'ज्योतिर्मयी'[4] कहानी मे युवती विधवा द्वारा विधवा-विवाह का समर्थन कराया है। प्रेमचन्द और जैनेन्द्रकुमार से एक पग आगे बढ कर इन्होने विधवा विवाह को क्रियात्मक रूप भी प्रदान किया है। ससुराल तथा पति से अनभिज्ञ, बारह वर्ष की आयु मे विधवा हो जाने वाली ज्योतिर्मयी का, युवक विजय की ओर आकर्षित हो

---

१. भगवतीप्रसादवाजपेयी . पतिता की साधना
२ प्रेमचंद : मानसरोवर : भाग १ : पृ० ५७
३. वही : भाग ८ : पृ० १४८
४. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : लिली : पृ० २३

जाना स्वाभाविक था। समाज-सुधार के उस युग में जबकि गाधाजी विधवा-विवाह के समर्थक थे, विजय के पिता के मित्र ने षड्यन्त्र रचकर, विजय की अभिज्ञता मे यह विवाह सपन्न कराया। विजय के पिता दहेज के लोभ मे विवाह करते हैं। विजय को जब राह मे यह ज्ञात होता है कि उसका विवाह विधवा ज्योतिर्मयी से हुआ है तो वह प्रसन्नता के स्थान पर चीख उठता है। लेखक ने इस कहानी मे तत्कालीन शिक्षित युवको की मनोवृत्ति का चित्रण भी किया है। उन्हे सिद्धान्त रूप मे तो विधवा-विवाह मान्य था, किन्तु जीवन के व्यवहारिक क्षेत्र मे नही। उस समय विधवा-विवाह आन्दोलन चल पडा था, वह अखवारो का विषय था लेकिन न तो युवको मे साहस था और न उनकी मनोवृत्ति इसके अनुकूल बन पाई थी।

सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'कल्याणी'[1] कहानी मे विवाह का रग चढते ही विधवा हो जाने वाली कल्याणी की करुण कथा लिखी है। विधवा के प्रति पुरुष समाज का ही अभिशाप नही था वरन् अन्धविश्वास के कारण स्वय नारी का व्यवहार भी उसके प्रति कठोर हो गया था। वह अमगल का प्रतीक समझी जाती थी। कल्याणी विवाह के पश्चात् नववधू का साज सजा कर लौट रही थी, तभी रेल दुर्घटना मे उसके पति की मृत्यु हो गई। उसके पति अपने मित्र जयकृष्ण पर उसकी रक्षा का भार छोड जाते हैं। सौभाग्यवती स्त्रिया उसकी छाया से दूर भागती हैं और जयकृष्ण की पत्नी अमगल की दुर्भावना से शकित रहती है। अन्त मे स्वय जयकृष्ण उसके सौन्दर्य पर मोहित हो जाते हैं, वह भी उनकी ओर आकृष्ट होती है किन्तु अपने प्रेम का प्रतिदान नही चाहती और उनका घर त्याग कर चली जाती है। कहा? अज्ञात है। सुभद्राकुमारी चौहान ने नारी हृदय की सम्पूर्ण कोमल भावनाओ के साथ विधवाओ पर किये जाने वाले सामाजिक अत्याचार को हृदयगम किया है। विधवा हृदय-शून्य नही होती उसमे भी प्रेम की कोमल किन्तु शाश्वत भावना विद्यमान रहती है, इसकी ओर इगित करते हुए भी लेखिका ने कल्याणी के आदर्श चरित की रक्षा की है। यथार्थता के फेर मे पडकर नारी का पतित रूप उन्हें स्वीकृत नहीं है। इसी कारण पाठको की विशेष सहानुभूति उनकी विधवा के लिये उमडती है।

विनोदशकर व्यास की 'पूर्णिमा', 'हृदय की कसक', 'मान का प्रश्न' कहानिया विधवा, समाज और प्रेम के सघर्ष से अनुप्राणित हैं। पूर्णिमा'[2] कहानी में कृष्ण नामक युवक विधवा हीरा से प्रेम करता है, हीरा के हृदय मे भी पुरुष के लिए प्रबल लालसा है, लेकिन समाज का भय बाधक है और कृष्ण का जीवन समाज की वेदी पर अर्पित हो जाता है। हीरा अपनी मनोवृत्तियो को समाज के अकुश से भी वश मे नहीं रख पाती, वह गृहस्थी बसाती है और व्यास जी उसकी गोद मे तीन साल का बच्चा छोड उसे पुन पति से वचित कर पाठको के सम्मुख उसकी स्थिति अधिक दयनीय रूप मे प्रस्तुत करते हैं। विधवा समाज की क्रूरता तथा दैवी विपत्ति का एक साथ शिकार बनती है और लेखक एक दार्शनिक वातावरण मे उसका उद्धार कृष्ण के मित्र

---

१ सुभद्राकुमारी चौहान . सीधे सादे चित्र : पृ० ३७
२. विनोद शकर व्यास : झसी कहानियाँ : पृ० २०४

द्वारा करवाता है।[1] उद्धार का रूप लेखक की आदर्शवादी एव दार्शनिक प्रवृत्ति के कारण स्पष्ट नही हुआ है। 'हृदय की कसक' कहानी मे भी व्यास जी अट्ठारह वर्ष की विधवा शाता की मन स्थिति, उसके प्रेम तथा विवाह के बीच समाज के भय, कलक और आदर्श का चित्रण किया है। इस कहानी मे विधवा के हृदय की गुत्थिया खोलकर उसके सत्य स्वरूप को इन शब्दो मे रखा गया है—"निगोडा समाज मतलबी है। वह दूसरो को सुखी नही देख सकता—किसी के दुख मे हाथ भी नही बटा सकता। फिर ऐसे समाज के कलक की क्या चिंता ? मैं तुम्हारे साथ रहकर परम सौभाग्यवती समझूगी। अगर मेरा सौभाग्य अन्धे समाज को खलेगा, तो देखने देना।"[2] व्यास जी की आदर्शवादी प्रवृत्ति जीवन की क्षणभगुरता का सहारा लेकर विधवा के इस प्रस्ताव को स्वीकार नही करती—'तो देखो—यह शरीर और यह रूप एक दिन मिट्टी मे मिल जाएगा, किन्तु मेरी आत्मा सदा तुम्हारे साथ रहेगी। मेरा शरीर चाहे कही भी रहे, लेकिन तुम्हे मेरे वियोग का दुख नही उठाना पडेगा।'[3] शाता इसी अटल सिद्धान्त को लेकर दिव्य जीवन व्यतीत करती है। 'मान का प्रश्न' कहानी मे विधवा सुभद्रा पर सामाजिक अत्याचार की निर्ममता,[4] सुभद्रा के यौवन की सहज प्रेम सबधी लालसा तथा सामाजिक मान मर्यादा के बीच सघर्ष दिखाया गया है। अन्त मे मान का प्रश्न विजयी होता है और सुभद्रा आत्मघात कर लेती है। विधवा की करुण दशा के प्रति व्यास जी की पूर्ण सहानुभूति है। उन्होने इसे सामाजिक समस्या के साथ वैयक्तिक समस्या का रूप भी दिया है, किन्तु समाज एव व्यक्ति की इस दुर्दशा के प्रति उनकी आदर्शवादी तथा भावुक प्रवृत्तिपूर्ण न्याय नहीं कर सकी। जीवन की क्षणभगुरता तथा प्रेम के शुद्ध सात्विक स्वरूप के प्रतिष्ठापन मे, सामाजिक अत्याचार एव व्यक्तिगत भावनाओं का स्वर दब गया है। निराला के सदृश विधवा के सबध मे उनके विचार क्रान्तिकारी नही हैं, प्रेमचन्द के समान उन्होंने विधवा-विवाह तथा वनिताश्रम की स्थापना का उद्योग कर समस्या के निराकरण का प्रयत्न भी नही किया गया है, और सुभद्रा कुमारी चौहान के सदृश विधवा नारी के भारतीय सस्कारवश स्वत प्रेरित आदर्शरूप की पूर्ण प्रतिष्ठा मे भी उन्हे सफलता नहीं मिली है।

प्रेमचद ने विधवा विवाह तथा वनिताश्रम की स्थापना द्वारा विधवाओ की आर्थिक समस्या के हल भी ढूढे थे। विधवा की अन्तर्कथा को प्रेमचन्द जी ने हृदय से अनुभव किया था। 'निराला' तथा भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने विधवा विवाह करा कर समाज की उपेक्षा का साहस प्रदर्शित किया है। विधवा नारी की समस्या केवल सामाजिक एव आर्थिक नही थी, वैयक्तिक और आन्तरिक भी थी।

---

१. विनोद शकर व्यास अस्सी कहानियाँ : पृ० २१०
२. वही : पृ० २६४
३. वही : पृ० २६४
४. वही : पृ० २८६

दहेज प्रथा

अधिकाश भागो मे प्रचलित दहेज प्रथा के कारण इस अभाव ग्रस्त देश की कन्याओ का जीवन भार स्वरूप हो गया था। इस प्रथा के कारण मध्यवित्तीय जीवन में वैवाहिक जटिलता बढ गई थी, कन्याओ का अनादर होने लगा था, और प्राय सुन्दर सुयोग्य विवाह योग्य कन्याओ को उनके योग्य वर नही मिल पाता था। कथा-साहित्य मे लेखको न समाज में प्रचलित इस कुप्रथा के दुष्परिणामो पर लेखनी उठाई है। प्रेमचन्द के सेवासदन' उपन्यास की सुन्दरी, महत्वाकाक्षिणी नायिका द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाने का मूल कारण इसी मे निहित है। रिश्वत जैसी दुर्बल मनोवृत्ति को यही जन्म देती है। 'निर्मला' उपन्यास मे अनमेल विवाह दहेज प्रथा के कारण होता है, जिसकी ज्वाला मे एक पूरी गृहस्थी जल जाती है। अभिभावक ही नही, स्वय शिक्षित नवयुवको की मनोवृत्ति इतनी दूपित हो गई थी कि वे दहेज के रुपयो पर चैन का जीवन बिताना चाहते थे।[1] निर्मला का जीवन समाज की बलिवेदी पर चढ जाता है, उसकी सगाई टूट जाती है क्योकि उसकी विधवा माँ के पास दहेज मे देने के लिये मोटी रकम नही थी। वृन्दावनलाल वर्मा के 'लगन' तथा 'सगम' उपन्यासो मे दहेज के प्रश्न पर सबधियो के मनमुटाव तथा उसके कारण उत्पन्न समस्याओ का विश्लेपण किया गया है। सियारामशरण गुप्त ने अपने 'गोद' उपन्यास मे सहज रूप से इस ओर सकेत कर दिया है कि तुच्छ धन के लोभ मे सजीव लक्ष्मी जैसी कन्या को ठुकरा दिया जाता था।[2]

प्रेमचन्द जी ने छोटी कहानियो के माध्यम से भी दहेज प्रथा के भीषण परिणाम पर प्रकाश डाला है। 'उद्धार' नामक कहानी मे दहेज द्वारा उत्पन्न दूषित वैवाहिक प्रथा की भयकरता का वर्णन किया गया है। 'अभी बहुत दिन नही गुजरे कि एक या दो हजार रुपये दहेज केवल बडे घरों की बात थी, छोटी-मोटी शादियाँ पाच सौ से एक हजार तक तै हो जाती थीं, पर अब मामूली विवाह भी तीन-चार हजार से नीचे नहीं तै होत। खर्च का तो यह हाल है और शिक्षित समाज की निर्धनता और दरिद्रता दिनो-दिन बढती जाती है। '[3] इसी प्रकार एक आँच की कसर' नामक कहानी म प्रेमचन्द जी ने धनी मानी विद्वान लोगों की पतित मनोवृत्ति का निदर्शन किया है जो बाह्य रूप स यश प्राप्ति के लिए समाज-सुधार तथा दहेज विरोधी थे किन्तु गुप्त रीति मे दहज लेत थे।

जयशकर प्रसाद की कहानी 'प्रतिभा मे धनी मानी व्यक्तियो की अर्थ लोलुपता पर प्रकाश डाला गया है। दरिद्र घर की कन्या द्वारा अधिक दहेज न लाने के कारण उसका तिरस्कार होता था और यह सामाजिक अप्रतिष्ठा का कार्य समझा जाता था। प्रसाद जी ने समाज को दोष देत हुए कहा है—'मनुष्य इसना पतित कभी न होता

---

१. प्रेमचन्द निर्मला पृ० २७

२ प्रेमचन्द मानसरोवर : तृतीय भाग : पृ० ३६

३ सियारामशरण गुप्त . गोद : पृ० ८०

यदि समाज उसे न बना देता ।[1] 'प्रतिध्वनि' कहानी मे दरिद्रता और दहेज न जुटा पाने के कारण रामा अपनी पुत्री श्यामा का विवाह किये बिना ही चल बसती है। पेट की ज्वाला मे श्यामा का सब कुछ बिक जाता है और अन्त मे वह पगली बनकर समाज के अभिशाप पर व्यग्य कसती हुई घूमती फिरती है।[2]

समाज मे अनमेल विवाह का कारण भी कन्यापक्ष वालो का अर्थाभाव था। राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास मे इस ओर सकेत किया गया है। स्पष्ट रूप से अधिक नही कहा है। सुधा का विवाह अधेड एक दो बेटो के बाप से होता है, जिसमे अन्य दुर्गुण भी थे।[3]

रामवृक्ष बेनीपुरी की कहानी 'जुलेखा' पुकार रही है (चिता के फूल मे सगृहीत— इन कहानियो का निर्माण काल १६३०-३२ ई० है— बेनीपुरी परिचय— बेनीपुरी ग्रन्थावली) मे यह दिखाया गया है कि केवल हिन्दू समाज मे ही नही मुसलमानो मे भी दहेज तथा धन प्राप्ति की महत्वाकाक्षा मे युवक युवतियो का जीवन विनष्ट हो रहा था। सरकारी उच्च नौकरियो पर पहुच कर लोगो की मनोवृत्ति बदल जाती थी, उसमे सबधो की अपेक्षा स्वार्थ का अधिक समावेश हो जाता था।[4]

सामाजिक अन्धविश्वास तथा रूढिया

अन्धविश्वास तथा रूढिवादिता ने सामाजिक मस्तिष्क की विवेक-बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। हिन्दी कथा-साहित्य मे सामाजिक अन्धविश्वास तथा रूढियो के कुपरिणाम का चित्रण मिलता है। जयशकर प्रसाद ने 'ककाल' और 'तितली' उपन्यास में यथार्थवादी शैली मे सामाजिक अन्धविश्वास, रूढिवादिता, मिथ्यात्व का भडाफोड़ कर, उसकी कुरूपता का नग्न प्रदर्शन किया है। यथार्थवादी दृष्टिकोण होने के कारण उन्होने समाज की गन्दगी को खोलकर रख दिया है। लेकिन इनका यथार्थवाद समाज के लिए अस्वस्थ अथवा हानिकर नही है।

सियारामशरण गुप्त ने 'गोद' उपन्यास मे समाज की उस अनीति का उद्‌घाटन किया है जिसमे मिथ्यावाद के कारण निर्दोष कन्या का जीवन विनष्ट हो सकता था। देहाती समाज की कठोरता एव सकीर्णता का सरल, कलात्मक, मार्मिक चित्रण किया गया है। यद्यपि शोभाराम का चरित्र अधिक सबल नही है लेकिन वह लोकापवाद एव मिथ्यात्व के विरुद्ध विवाह करके समाज-सुधार का प्रयास करता है। 'नारी' उपन्यास में भी सियारामशरण जी ने लोकापवाद के कारण अस्तव्यस्त जीवन का सफल अकन किया है।

धर्म कर्म के नाम पर बाह्याडम्बर और अन्धविश्वास ने लोगो को जकड लिया था। अर्थ-लिप्सा और स्वार्थ-पूर्ति के लिए धर्म का रूप गढ लिया जाता था। 'निराला'

१. जयशकरप्रसाद : प्रतिध्वनि : पृ० ७२
२. जयशंकरप्रसाद : आकाशदीप . पृ० ६५
३. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० ६८-६६
४. बेनीपुरी ग्रन्थावली : चिता के फूल : पृ० ३४ : भाग १

जी ने निरुपमा उपन्यास मे सुशिक्षित कुमार को सामाजिक रूढियो तथा अन्धविश्वास से आक्रान्त दिखाया है। समाज ने कुमार और उसके परिवार को इसलिए दण्डित किया था कि वह शिक्षा के लिए विदेश गया था। इस उपन्यास की नायिका के अभिमत मे ऐसे धर्म एव सामाजिक रीतियो का समर्थन करने से ज्ञान का विरोध होता है — जिन सामाजिक रीतियो के कारण कुमार जैसे शिक्षित मनुष्य को पीडा पहुँचती है, उनका समर्थन करके वस्तुत ज्ञान की ओर बढने का उसने विरोध किया है, यह रीति के अनुसार धर्म नहीं ।"[1]

वृन्दावनलाल वर्मा के सामाजिक उपन्यास 'कुण्डलीचक्र' मे सामाजिक अन्ध-विश्वास की प्रतीक कु डली मिला कर विवाह करने की प्रथा का दुष्परिणाम दिखाया गया है। कु डली की वेदी पर बलि हो जाने वाले युवक युवती की यह कथा है। आपके ऐतिहासिक उपन्यासो म भी युगीन समस्याओ की झलक मिलती है। 'गढ़-कुण्डार' म जातिवाद के प्रश्न को लिया गया है। राजपूतो की जात्याभिमान की मिथ्या भावना देश के विनाश का मूल कारण थी। इस उपन्यास म तीन प्रणय कथाए चलती हैं—तारा-दिवाकर, अग्निदत्त-मानवती, हेमवती और इसके दो प्रेमी नागदेव और पुण्यपाल। जाति भेद के विष के कारण प्रणय असफल होते हैं केवल तारा और दिवाकर का मिलन सभव होता है। डा० सुषमा धवन ने अपनी पुस्तक म लिखा है—'उपन्यास मे जातिवाद के प्रश्न के माध्यम से लेखक आधुनिक युग की परिस्थिति का विश्लेषण कर आज क मानव को सन्देश देने मे सफल हुए हैं।'[2] 'जातिवाद की भ्रान्त भावना कितनी विनाशकारी सिद्ध हो सकती है और राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने मे कितनी बाधा डाल सकती है, इसकी चेतावनी लेखक ने उपन्यास द्वारा दी है और इसमे इतिहास से गृहीत जीवन का सन्देश निहित है जो आधुनिक युग के लिए उपा-देय है। भयानक युद्ध एव रक्तपात के बीच मानवीय स्निग्ध भावना प्रेम की अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास की प्राण-प्रतिमा है।'[3]

विवाह के सबध मे जातिवाद की कट्टर भावना का वर्णन विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक के 'भिखारिणी' उपन्यास मे मिलता है। व्यक्तिगत प्रेम भावना को सामाजिक रूढियो पर बलिदान करना पडता था अथवा समाज और जाति से च्युत। इस उपन्यास मे जस्सो को आजीवन अविवाहित रहना पडता है क्योकि उसके रूप और यौवन पर मोहित रामनाथ सम्पन्न पिता का बेटा है, जो जातिवाद क समर्थक हैं। उसके पिता ने समाज विरुद्ध विवाह किया था, अत पिता के कार्य का फल बेटी को भुगतना पडता है। 'कौशिक' जी आदर्शवादी लेखक हैं, इस कारण उन्होंने इस उपन्यास में वैयक्तिक भावना की अपेक्षा सामाजिक दायित्व को निभाने का प्रयत्न किया है। इनके विपरीत 'निराला' जी प्रगतिवादी और क्रान्तिकारी उपन्यासकार हैं, जिनके 'निरुपमा' उपन्यास की नायिका समाज एव जाति बहिष्कृत कुमार से विवाह कर

---

१ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला . निरुपमा

२ डॉ॰ सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास : पृ० ११७

३ वही : पृ० ११८

संबंधी जन, समाज तथा जाति की उपेक्षा करती है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यास मध्यवर्गी समाज से संबंधित हैं। उन्होंने मध्य-वर्ग में प्रचलित अहितकर रीति रिवाजों, मान्यताओं और आदर्शों का तीक्ष्ण दृष्टि से विवेचन किया है। 'पतिता की साधना' उपन्यास इसका उदाहरण है। राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'पुरुष और नारी' उपन्यास में, इस संबंध में लिखा है—"इस देश में धार्मिकता की गर्म बाजारी ही उसके गले में, भीख की झोली डाल गई। अब जंजीर तुड़ा कर थोड़े खुले दिल से चौकड़ी भरना भी उसके जीवन के स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। परलोक की धाधली में उसकी मिट्टी काफी पलीद हो चुकी। मैं जानता हूं, पुरुषों ने उसके गले की सांकल पर धर्म के मीने का पानी चढ़ा कर उसे गले का हार करार दे रखा है। पर वह गले का हार गले का भार न होता तो किसी को इन्कार न था।"[1]

हिन्दी कहानी साहित्य में भी प्रचलित अन्धविश्वास के चित्र मिलते हैं। प्रेमचंद जी की 'नैराश्य'[2] कहानी में निरुपमा के पति इस कारण रूठे रहते हैं कि वह लड़कियों को जन्म देती है। 'तेंतर' कहानी में सामाजिक अन्धविश्वास के कारण तीन पुत्रों के पश्चात् उत्पन्न कन्या को अमंगल का प्रतीक समझ कर, उसकी मां भी भली प्रकार लालन पालन नहीं करती।[3] अंत में किसी प्रकार का अनिष्ट न होने पर घर की वृद्धा माता को तेंतर का प्रभाव दिखाने के लिए असाध्य बीमारी का स्वांग रचना पड़ता है। 'बहिष्कार' कहानी में कालिन्दी का पति अपनी पत्नी को अकारण निष्कासित कर देता है। गोविन्दी उच्च कुल की न थी, उसके इस अभाव का लाभ उठाकर कालिन्दी का पति उसे और उसके पति को समाज से निकलवा देता है। अंत में गोविन्दी, उसका पति ज्ञानचन्द और उनका पुत्र, सबका जीवन समाज की रूढ़िवादिता की कठोर वेदी पर अर्पित हो जाता है।[4] प्रेमचन्द जी ने सामाजिक अन्धविश्वास की निरर्थकता, निराधारता और निःसारता की ओर देश-वासियों का ध्यान आकृष्ट किया है जो समाज में जड़ता फैलाकर राष्ट्रीय जीवन को विवेक-शून्य बना रहे थे।

प्रेमचंद जी की परम्परा में आने वाले कहानी लेखक 'कौशिक' जी ने सामाजिक रूढ़ियों और अन्धविश्वास को देश की आर्थिक दुर्दशा का कारण माना है। उनकी 'बेदखली' कहानी में स्वयं किसान कहता है कि पिता की मृत्यु में सामाजिक रीति वश रुपया लगाने, लड़की के विवाह में सामर्थ्य से अधिक व्यय करने के कारण उसकी आजीविका के साधन बैल बिक गये।[5] सामाजिक कुरीति, अज्ञानता और

---

१. राधिकारमण प्रसाद सिंह . पुरुष और नारी : पृ० १३०
२ प्रेमचन्द : मानसरोवर . भाग ३
३. वही :
४. वही : भाग ५ : पृ० १०६
५. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० १४५

अन्धविश्वास ने भारतीय जीवन को खोखला बना दिया था। भगवती प्रसाद वाजपेयी की कहानियों में भी मध्यवर्गीय समाज की मान्यताओं, रीतियों, आदर्शों का एक कटु आलोचक की भांति निरीक्षण एवं विवेचन हुआ है। 'लेकिन इसके साथ ही साथ अपनी परम भावुकता, आदर्शवादिता और भारतीयता के स्पर्शों से समाज के कुचक्रों, भयानक विवर्तों में पड़े हुए घायल-उदास असहाय व्यक्तियों के हृदयों को रंग देना, इन कहानियों की अपनी विशेषता है।'[1]

सामाजिक रूढ़ियों के कारण ग्रामीणों की सबसे अधिक दुर्दशा हुई थी जैसा कि प्रेमचंद, कौशिक आदि की कहानियों से स्पष्ट है। सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'सीधे सादे चित्र' नामक संस्मरणात्मक कहानी संग्रह में 'बिराहा' नामक कहानी में सामाजिक रूढ़िवादिता के कारण उद्भूत छोटी सी ग्रामीण बालिका की दयनीय स्थिति के संबंध में लिखा है। एक ग्रामीण बाला अपने जीवन की समस्त संचित पूंजी एक थाली और कटोरी आरती की मुद्रा में उठाये एकाकी, अपने अनदेखे पति को इलाहाबाद जैसे विशाल शहर में ढूंढने चल देती है।[2] ग्रामीण समाज कितना पिछड़ा हुआ था, रूढ़ि के कारण उसकी कितनी असहाय स्थिति थी, इस ओर सुभद्रा जी ने सीधी सादी रीति से कटु व्यंग्य कसा है।

सामाजिक अनाचार के प्रति हिन्दी साहित्यिक जागरूक थे और उनकी समाज-सुधार की प्रवृत्ति ने ही उन्हें इन सामाजिक दुर्दशा के विषयों पर लिखने के लिए प्रेरित किया था।

अछूत समस्या

हिन्दू समाज में अस्पृश्यता अथवा अछूतों की समस्या अति विकट थी। समाज का एक अंग समस्त सामाजिक अधिकारों से वंचित होकर, अति दीन, हीन कष्ट कर जीवन बिताने को बाध्य हुआ था। गांधी जी ने समाज के इस वर्ग में उठते हुए विद्रोह को देख लिया था। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारंभिक काल में ही उन्होंने अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न को महत्व दिया था। जैसा कि राष्ट्रवाद के विकास के इतिहास में स्पष्ट किया जा चुका है कि सन् १९३० के आन्दोलन में यह प्रमुख समस्या बन गई थी और विदेशी शासकों ने जब समाज के इस वर्ग की विशेष सहानुभूति प्राप्त करने के लिए इनके पृथक मतदान की व्यवस्था करनी चाही, तो गांधीजी ने आमरण अनशन कर उनकी राष्ट्रीय-विभेदक-नीति का विरोध किया। उन्हें हिन्दू समाज का शूद्रों के साथ व्यवहार अमानवीय तथा बर्बर लगता था। गांधीजी की विचारधारा के अनुकूल उपन्यास और कहानियों में भी समाज द्वारा बहिष्कृत इस वर्ग की अज्ञानता, दुर्बलता, विपन्नता, तिरस्कार एवं उसके परिणाम का सफल एवं मार्मिक चित्रण मिलता है।

प्रेमचंद जी के उपन्यास 'कर्मभूमि' में अछूतों के साथ सवर्णों के दुर्व्यवहार का वर्णन मिलता है। इस उपन्यास में उन्होंने अछूतों के उद्धार, उनमें शिक्षा तथा सदा-

१ भगवतीप्रसाद वाजपेयी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ३७

२. सुभद्रा कुमारी चौहान : सीधे सादे चित्र : पृ० १०७

चार के प्रसार का कार्य अमरनाथ द्वारा सपादित कराया है। 'निराला' के निरुपमा उपन्यास मे सवर्ण अवर्ण का भेद स्पष्ट किया गया है। गोविन्दवल्लभ पन्त के 'जूनिया' उपन्यास मे अवर्ण जूनिया इस भेदभाव के कारण ही ईसाई धर्म ग्रहण कर लेता है। जूनिया अवर्ण था इस कारण बाल्यावस्था मे गुसाईं जी की बावली मे पानी पीने के कारण गुसाईं जी ने लकडी लेकर उसका पीछा किया था और पिता ने पीटा था। शिकार के समय सिंह से प्राण रक्षा के लिए उसने शिव-मदिर का आश्रय लिया था। जिसका दण्ड उसे ग्राम-निकाला मिला। जूनिया का हृदय इन घटनाओ से विद्रोही हो जाता है, वह अपनी पत्नी से कहता है—'सारी देवमंदिर की इमारत मेरे पुरखाओ ने एक एक पत्थर ढोकर चिनी है। उसके अन्दर की मूर्तियां भी उन्होंने ही गढी हैं। वे देवता की पूजा का वरदान लेने वाले हो गए और हम, उनके चरणो की धूल, जब काल हमे निगलने के लिये जबडा फैलाता है, तब उसके अन्दर जाकर अपनी प्राण रक्षा भी नही कर सकते।'[1] जूनिया जैसे अवर्णों द्वारा ईसाई धर्म ग्रहण करने का प्रमुख कारण था, उन पर हिन्दू समाज द्वारा अत्याचार। सदियो से कुचली हुई जातियो को अब हिन्दू-धर्म और समाज मे कोई स्थान प्राप्त नही था, दिन भर मेहनत करने पर भी जूठा खाने को और गदला पानी पीने को मिलता था, तो वे 'ईश्वर बदल' देते थे।[2]

उपन्यासो की भांति प्रेमचन्द, निराला, जयशकर प्रसाद की कहानियों मे भी इस वर्ग का विशेष वर्णन मिलता है। प्रेमचन्द की 'ठाकुर का कुआं', 'कफन', 'सद्गति' 'मन्त्र' आदि कहानियां शोषित अछूत वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति की परिचायक हैं। 'ठाकुर का कुआं' कहानी मे बीमार जोखू को स्वच्छ जल की उपलब्धि नहीं हो पाती क्योंकि अछूतो के कुओ म किसी जानवर के गिर जाने से बदबू आ गई थी। ठाकुर, ब्राह्मण के कुओं की सीमा का स्पर्श भी उनके लिए धर्म विरुद्ध था। उसकी पत्नी गगी साहस कर ठाकुर के कुएँ मे पानी भरना चाहती है, किन्तु ठाकुर का स्वर सुन उसके हाथ से रस्सी छूट जाती है और घडा कुए मे गिर जाता है। समाज के अत्याचार से पीडित जोखू को वह गन्दे पानी का लोटा मुह मे लगाये देखती है। इस कहानी म प्रेमचद जी ने गगी के हृदय मे समाज के उच्च वर्ग की मिथ्यावादिता, आचरणहीनता, अन्याय के प्रति विरोध भावना और द्वन्द्व दिखाकर, इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि निम्न वर्ग मे अपनी विवशता के प्रति विद्रोह जगने लगा था जिससे राष्ट्रीय एकता को आघात पहुचता है।

जयशकर प्रसाद की 'विराम चिन्ह' कहानी मे अछूतो के दयनीय जीवन का करुण चित्र है। अर्द्ध-नग्न वृद्धा दुकान वाली तीन दिन से भूखी थी लेकिन मन्दिर का प्रसाद उसके लिए वर्जित था क्योंकि वह अछूत थी। वह दूर से ही एक अधिक सडता हुआ केला अपनी अजलि मे रख कर नैवेद्य के रूप मे चढा कर, प्रसाद समझ कर ग्रहण कर लेती है। प्रसाद जी कहते है—'भगवान् ने उस अछूत का नैवेद्य ग्रहण

---

१. गोविन्द वल्लभ पन्त। जूनिया : पृ०]३१

२. वही। पृ० ६०,६१

किया या नहीं, कौन जाने, किन्तु बुढ़िया ने उसे प्रसाद समझ कर ही ग्रहण किया।[1] देश और समाज की यह कैसी विडम्बना थी, जहां ईश्वर भी उच्च वर्ण की पैतृक सम्पत्ति बन गया था। वृद्धा का विद्रोही लड़का अन्य अछूत वर्ग के साथ मन्दिर-प्रवेश के लिए तत्पर होता है। सवर्ण आस्तिक भक्तों के झुण्ड ने अपवित्रता से भगवान् की रक्षा करने के लिए वृद्धा के पुत्र राघो के बलिदान से मन्दिर की देहली को पवित्र किया और बुढ़िया ने अपने प्राण देकर अछूतों के मन्दिर प्रवेश के दुस्साहस पर विराम चिन्ह लगा दिया।[2]

निराला की 'श्यामा' कहानी में निम्न वर्ग की समस्या एवं विवशता का हृदय विदारक चित्र मिलता है। लगान के सात रुपये वसूल न कर पाने पर जमींदार शूद्र सुधुवा की अच्छी पिटाई करवाते हैं। पंडित रामप्रसाद के पुत्र बंकिम द्वारा उसके प्रति संवेदना प्रकट करने पर और सहायता देने पर बंकिम और सुधुवा को जाति बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया जाता है। समाज के उच्चवर्गीय ठेकेदार मानवता के इस धर्म को सहन नहीं कर पाते कि एक ब्राह्मण का पुत्र शूद्र जाति के तुच्छ प्राणी की सहायता करे। सुधुवा की मृत्यु पर जमींदार के आतंक के कारण, बिरादरी के लोग उसकी अन्त्येष्टि क्रिया के लिए भी एकत्रित नहीं होते। प्रेमचंद की अपेक्षा इस क्षेत्र में भी निराला' जी की सामाजिक विचारधारा अधिक क्रान्तिकारिणी है। वह समाज के अन्याय और अत्याचार का प्रतिशोध लेना जानती है। शूद्र श्यामा का ब्राह्मण बंकिम के साथ आर्य समाज के मन्दिर में विवाह करवाकर और आर्य समाज की सहायता से उसे शिक्षा दिलाकर वे डिप्टी कलक्टर के पद पर नियुक्त करते हैं। अन्त में श्यामा द्वारा उसी जमींदार को डाली लौटा कर, तिरस्कार करके 'निराला' जी की क्रान्ति भावना सतुष्ट होती है। इसी प्रकार उनकी 'चतुरी चमार' कहानी में ग्रामीण समाज के इस निम्न वर्ग के मनोविकारों का लेखक द्वारा गम्भीर अध्ययन मिलता है। जमींदार के उत्पीडन के विरुद्ध यह वर्ग विद्रोही हो रहा था।[3]

साम्प्रदायिकता

राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष का प्रमुख विघटनकारी तत्व साम्प्रदायिकता है। भारत की राष्ट्रीयता को इसने राहु सम ग्रस लिया था। जिसका अन्तिम परिणाम देश का विभाजन हुआ। इसके विभिन्न अंग हैं वैमनस्य, हिंसा घृणा प्रतिशोध आदि। मुस्लिम लीग की स्थापना हिन्दू मुस्लिम राष्ट्रविभेद की नीति पर हुई थी जो उत्तरोत्तर विकसित होती गई। असहयोग आन्दोलन के पश्चात् भारत के राष्ट्रीय जीवन में हिन्दू मुस्लिम संघात फलीभूत न हो सका। हिन्दू-मुसलमानों के दंगों ने प्रारम्भ होकर पाकिस्तान के जन्म में ही अन्त किया।

---

१ जयशंकर प्रसाद इन्द्रजाल पृ० ११६

२ वही पृ० १२२

३ 'वह एक ऐसे जाल में फंसा है, जिसे वह काटना चाहता है, भीतर से उसका पूरा जोर उभड़ रहा है पर एक कमजोरी है, जिसमें बार-बार उलझ कर रह जाता है।'—सम्पादक—विनोद शंकर व्यास : मधुकरी : दूसरा खण्ड : पृ० ६

प्रेमचन्द जी के 'कायाकल्प' उपन्यास में हिन्दू मुस्लिम दंगों का वर्णन किया गया है। वृन्दावनलाल वर्मा का 'प्रत्यागत' उपन्यास साम्प्रदायिक विद्वेष तथा मोपला विद्रोह पर लिखा गया उपन्यास है।

प्रेमचन्द की 'हिंसा परमो धर्मः' कहानी में साम्प्रदायिकता का भीषण रूप दिखाया गया है। गाँव हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना से मुक्त थे लेकिन शहर में धर्म के नाम पर मानवता का गला घोटा जा रहा था। हिन्दू भक्तगण देहाती मुसलमान जामिद को फास कर धर्म बदलना चाहते थे और मुसलमान काजी हिन्दू औरत का धर्म विनष्ट करने में सकुचित नहीं थे। धर्म के नाम पर बहू बेटियों की इज्जत बे-आबरू हो रही थी।[1] काजी साहब नैतिकता अनैतिकता को भूल कर कहते हैं—'हा, खुदा का यह हुक्म है कि काफिरों को जिस तरह मुमकिन हो इस्लाम के रास्ते पर लाया जाय। अगर खुशी से न आयें, तो जब्र हो।'[2] जामिद ने शहर का यह रूप देखा तो वहाँ की विषाक्त वायु में सास लेते उसका दम घुटने लगा— वह जल्द-से-जल्द शहर से भाग कर अपने गाव में पहुचना चाहता था, जहाँ मजहब के नाम सहानुभूति, प्रेम और सौहार्द था। धर्म और धार्मिक लोगों से उसे घृणा हो गई थी।'[3]

जयशंकर प्रसाद ने भी साम्प्रदायिकता का दुष्परिणाम दिग्दर्शित कराने वाली कहानियाँ लिखी हैं। 'सलीम'[4] कहानी में प्रसाद जी ने साम्प्रदायिकता को मानवता की चुनौती दी है। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में मुसलमानों के गाव में हिन्दू और मुसलमान एक परिवार के सदस्यों की भाँति रहते थे, लेकिन नवागन्तुक मुसलमान सलीम ने भारत में व्याप्त साम्प्रदायिकता के विष-वृक्ष का वपन करना चाहा। इस कार्य में उसे सफलता न मिल सकी, क्योंकि प्रसाद जी की मानवता के सम्मुख धार्मिक संकीर्णता पराजित हो जाती है।

सुभद्राकुमारी चौहान की 'हींग वाला'[5] कहानी हिन्दू-मुस्लिम दंगे की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'हिन्दुस्तानी'[6] कहानी में साम्प्रदायिकता के स्वरूप का विवेचन, उसके कारणों तथा निवारण के साधनों का उल्लेख मिलता है। इस कहानी में कौशिक जी ने दोनों पक्षों की समस्याओं का निष्पक्ष रूप से चित्रण किया है। हिन्दू धार्मिक कट्टरता तथा अपने साथ खानपान का सम्बन्ध न रखने के कारण भारत के मुसलमानों को विक्षोभ होता था। उन्हें यह सन्देह था कि यदि हिन्दुस्तान आजाद हो गया तो हिन्दू-मुसलमानों के बीच छुआछूत के ऐसे झगड़े

---

१. प्रेमचन्द : मानसरोवर : भाग ५ : पृ० ८६
२ प्रेमचन्द : मानसरोवर . भाग ५ : पृ० ८८
३. वही : पृ० ६१
४. जयशंकर प्रसाद : इन्द्रजाल : पृ० १२
५. सुभद्रा कुमारी चौहान : सीधे सादे चित्र : पृ० ६३
६. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० २४१

उठ खड़े होगे कि एक बला से निकल कर दूसरी मे फसना पडेगा।[1] मुसलमानों मे भी हिन्दू-धर्म के प्रति सहिष्णुता की भावना नही थी। वे हिन्दुओ को काफिर और गाय की कुर्बानी को धर्म समझते थे। हिन्दुस्तान मे पैदा होकर, यहा के अन्न से पल कर भी उनकी मुल्की दिलचस्पी टर्की के साथ रहती थी। जब तक मुसलमान इस देश को अपना देश, देश के प्रत्येक व्यक्ति को भाई और देश के जानो माल की रक्षा के लिए अग्रसर न होगे, और हिन्दू मुसलमानो का तिरस्कार करेंगे, तब तक राष्ट्र का उत्थान एवं विकास असम्भव था।[2]

सास्कृतिक दुर्दशा

भारतीयो की सास्कृतिक हीनता की जडें गहराई के साथ देशवासियो के आन्तरिक एव मनोवैज्ञानिक परिवर्तन मे निहित थी। विदेशी शासको की शिक्षा-दीक्षा ने भारत की अन्तरात्मा का हनन किया था। 'स्वदेशी' के प्रति शिक्षित समुदाय मे एक ऐसी हीन भावना ने जकड लिया था कि पश्चिम के अन्धानुकरण मे उन्हे जीवन की सार्थकता दृष्टिगत होती थी। भारतीय संस्कृति, जीवन दर्शन, धर्म सभी उनकी दृष्टि मे हेय थे। प्रेमचन्द जी की 'पत्नी से पति',[3] 'शान्ति'[4] 'दो बहनें'[5] 'उन्माद'[5] आदि कहानियो मे पश्चिमी चमक-दमक, जडवादिता तथा अति भौतिक-वादी सस्कृति की नि सारता प्रमाणित की गई है। भारतीयो की पतित मनोवृत्ति का वर्णन करते हुए लेखक ने 'पत्नी से पति' कहानी मे सेठजी के शब्दो मे सास्कृतिक हीनता का चरम रूप दिखाया है—'हा, लेकिन मुझे इसका हमेशा खेद रहता है कि ऐसे अभागे देश मे क्यो पैदा हुआ—[6] 'शान्ति' कहानी मे भारतीयो द्वारा पश्चिमी सस्कृति की भौतिक विचारधारा के अनुकरण के दुष्परिणाम पर प्रकाश डाला है।

तत्कालीन भारतीय शिक्षा पद्धति के दोषो का भी कतिपय उपन्यास तथा कहानियो मे यत्र-तत्र वर्णन मिल जाता है। "कर्म भूमि" उपन्यास मे प्रेमचन्द जी ने तत्कालीन शिक्षा-पद्धति की बुराइयो का विवेचन किया है— "हमारे शिक्षार्थी मे नर्मी को घुसने ही नहीं दिया जाता। वहाँ स्थायी रूप से मार्शल-ला का व्यवहार होता है। कचहरियो मे पैसे का राज है उसम वही कठोर, वही निर्दय यह राज है। देर मे आइये तो जुर्माना, न आइए तो जुर्माना, सबक न याद हो तो जुर्माना, कोई अपराध हो जाय जुर्माना शिक्षालय क्या है जुर्मानालय है। यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है, जिसकी तारीफो के पुल बाधे जाते हैं। यदि ऐसे विद्यालयो से पैसे पर जान

१. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक कल्लोल पृ० २५४
२ वही पृ० २५५
३ प्रेमचन्द मानसरोवर भाग ७ पृ० १७
४. वही पृ० ८०
५ वही पृ० ८५
६. वही ६२
७ वही : पृ० १६

देने वाले, पैसे के लिए गरीबो का गला काटने वाले, पैसे के लिए अपनी आत्मा को बेच देने वाले छात्र निकलते हैं, तो आश्चर्य क्या है ?"[1]

यह शिक्षा अत्यधिक व्ययशील थी, साधारण जन के लिए शिक्षा प्राप्ति का प्रयास ही व्यर्थ था।" लाल फीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा "नामक कहानी मे इस तथ्य की ओर दृष्टि आकृष्ट करते हुए प्रेमचन्द जी ने इसके दोषो का उल्लेख किया है कि यह शिक्षा विलासिता का दास बनाकर अनावश्यकताओं की बेडी से जकड देती है।[2] यह शिक्षा एकागी थी। व्यक्ति को केवल सरकारी नौकरी के लिए तैयार करने मे ही इसकी इति हो जाती थी। अत बेगारी की समस्या विकराल रूप धारण करती जा रही थी। सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" ने "निरुपमा" उपन्यास मे लन्दन से प्राप्त डी० लिट् डिग्री वाले कुमार को भारत मे नौकरी का द्वार खटखटाकर तथा निराश हो कर मोची का स्वतन्त्र व्यवसाय अपनाते दिखाया है।

निम्न वर्ग मे शिक्षा का प्रचार न होने से भारत की जनसख्या का एक बडा भाग अन्धविश्वास, रूढियो, परम्पराओ मे जकडा हुआ, शासक वर्ग, जमीदार आदि के अन्याय, अत्याचार सह रहा था। इस वर्ग मे शारीरिक श्रम के साथ बुद्धि की भी कमी नही थी। "निराला" की "चतुरी चमार"[3] कहानी मे इस पर प्रकाश डाला गया है। निराला जी ने इस वर्ग को शिक्षित करने के लिए जाति और धर्म के विरुद्ध पग उठाया था।

हिन्दी कथा-साहित्य मे प्रेमचन्द का विशिष्ट स्थान है, उन्होने भारतीय राष्ट्रवाद के अभावात्मक अग के प्रत्येक तत्व का सस्पर्श अपनी प्रतिभा द्वारा किया है। उनकी समाज सुधारक आत्मा को दुर्दशा का चित्रण मात्र अभीष्ट नही है वरन् वह उसके निवारण का मार्ग भी प्रदर्शित करती चलती है। इनकी अधिकाश सामाजिक समस्याओं का सम्बन्ध मध्यवर्गीय समाज एव कृषक वर्ग से है। इसमे सन्देह नही कि प्रेमचन्द जी ने उपन्यास तथा कहानियो के विविध रूपो एव शैलियों मे इन दुर्दशाओ का अकन किया है किंतु प्रमुखता वर्णनात्मकता तथा इतिवृत्तात्मकता की ही है। कही-कही विषय प्रतिपादन और उद्देश्य की स्थापना मे कला को आघात भी पहुँचा है। प्रेमचन्द जी ने अपने युग की समस्याओ, दुर्दशाओ, एव राष्ट्रविरोधी तत्वों का विस्तृत इतिहास लिख डाला है। सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुभद्रा कुमारी चौहान को प्रेमचन्द की परम्परा मे रखा जा सकता है। सुभद्रा जी मे नारी सुलभ भावुकता एव कोमलता की मात्रा अधिक है। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला को प्रेमचन्द का पूरक कहा जा सकता है, उनमे दुर्दशा के प्रति आक्रोश की मात्रा और उग्रता अधिक है। प्रेमचन्द ने सामाजिक दुर्दशा के क्षेत्र मे समाधान प्रस्तुत किया था, उसको निरालाजी ने मूर्त रूप प्रदान किया है। प्रेमचन्द की अपेक्षा वे अधिक प्रगतिवादी हैं। देश-दुर्दशा के कारणो का आपरेशन कर वे उसे जड से मिटा डालना चाहते हैं। इसके लिए वे समाज, देश, धर्म से टक्कर लेने के लिऐ तत्पर हैं।

---

१. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० ५
२ वही : प्रेम चतुर्थी : पृ० ६६
३ सम्पादक—विनोदशंकर व्यास : मधुकरी : दूसरा खण्ड : पृ० ६

जयशंकर प्रसाद ने देशदुर्दशा का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है, उनकी सहानुभूति के पात्र समाज के निकृष्ट जीव हैं। समाज, धर्म, रूढ़ियो का नग्न चित्रण यथार्थवादी शैली मे किया है। प्रसाद जी का दृष्टिकोण सामाजिक न होकर व्यक्ति-वादी अधिक है। भगवती प्रसाद वाजपेयी की सवेदना स्त्री पात्रो पर अधिक है प्रेम सबंधी वैयक्तिक भावना का चित्रण सामाजिक दुर्व्यवस्था की पृष्ठभूमि पर किया है। विनोदशंकर व्यास सामाजिक दुर्दशा का वर्णन करते करते दार्शनिकता मे खो गये हैं। इनकी कहानियो मे समाज सुधार का स्वर तीव्र नही है, ऐसा लगता है वे अतिशय आदर्शवादिता के कारण समाज-सुधार का उद्देश्य विस्मृत कर बैठते हैं। अन्त मे यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इस युग के इन सभी उपन्यास एव कहानीकारो ने देश की दुर्दशा के अनेक रूपो को अतिनिकट से देखा था और राष्ट्रीय समाज सुधार, धर्म सुधार सम्बन्धी सस्थाओ के कार्यक्रम को स्वर प्रदान किया था।

निष्कर्ष

हिन्दी-साहित्य मे राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष अर्थात् भारतीय दुर्दशा के अनेक रूपो का चित्रण काव्य अथवा नाटक की अपेक्षा कथा-साहित्य मे अधिक हुआ है। छायावाद-रहस्यवाद की प्रवृत्ति की प्रमुखता के कारण काव्य क्षेत्र मे वर्तमान की अपेक्षा दार्शनिक एव कल्पना प्रधान व्यक्तिगत प्रेमानुभूति के सूक्ष्म चित्रो की बहुलता थी। राष्ट्रीय कवियो की दृष्टि देश की सामाजिक अथवा सास्कृतिक दुर्दशा की अपेक्षा राजनीतिक दुर्दशा की ओर अधिक थी। विदेशी शासको के अत्याचार, नृशसता, पराधीनता के अभिशाप की करुण पृष्ठभूमि के साथ कवि के सवेदनशील हृदय का अधिक सामजस्य हुआ था। भारतीय दुर्दशा का मूलभूत कारण भी यही था। देश की आर्थिक विपन्नता का भी कतिपय कवियो ने करुण एव मार्मिक वर्णन किया, किन्तु द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक शैली मे काव्य लिखने की प्रणाली का लगभग अन्त हो गया था। अत अधिक मात्रा म इस प्रकार का काव्य नहीं मिलता। हिन्दी मे नाट्य साहित्य अधिकतर इतिहास की घटनाओं को लेकर लिखा गया। वर्तमान समस्याओ को लेकर लिखे गये नाटको की सख्या अति अल्प है। नाटको मे वर्तमान दुर्दशा के चित्र प्रच्छन्न अप्रत्यक्ष एव प्रतीकात्मक रूप मे मिलते हैं। उपन्यास अथवा कहानियो मे दुर्दशा के वर्णन का सबसे अधिक सयोग अथवा सुयोग था। अत राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, साम्प्रदायिक, शिक्षा सबधी अनेक समस्याओ का विस्तृत विवेचन मिलता है। इस समय के अधिकाश कथा-साहित्यकारो ने देश के यथार्थ जीवन का सूक्ष्म अवलोकन किया था दुर्दशा के विभिन्न रूपों का उनकी भावना से साधारणीकरण हुआ था। अत यथार्थ शैली मे देश-जीवन व अनेक अभावग्रस्त चित्र हिंदी कथा साहित्य म बिखरे पडे हैं। शासकों की कठोर दमन नीति के कारण राजनीतिक उपन्यास तथा कहानियो की सख्या अधिक नहीं है किन्तु सामाजिक, आर्थिक अभावों का चित्रण अत्यधिक उदार मनोवृत्ति से लेखकों ने किया है। अपने युग की राष्ट्रवाद में बाधा डालने वाली अनेक समस्याओ तथा तत्वो का निरूपण मात्र ही नहीं किया गया है, अपितु उनमे राष्ट्रीय जीवन को मुक्त कर राष्ट्रीय एकता के प्रयास के साधनों का भी उल्लेख किया गया है। कथाकारो का यह प्रयत्न राष्ट्रवाद की दृष्टि से अत्यन्त स्तुत्य है।

: ८ :

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद का भावात्मक पक्ष
(१९२०-३५)

भारतीय राष्ट्रवाद का लक्ष्य था भारत की स्वाधीनता अथवा विदेशी पराधीनता से मुक्ति। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न शक्तियाँ गतिशील थी। इस युग मे भारत की स्वतन्त्रता के लिए दो प्रवृत्तिया प्रमुख रूप से कार्य करती लक्षित होती हैं

(१) अहिंसात्मक

(२) हिंसात्मक

अहिंसात्मक प्रवृत्ति ने मानव को आत्मिक शक्ति का आधार ग्रहण कर मुक्ति का आग्रह किया किन्तु हिंसात्मक प्रवृत्ति ने मनुष्य की शारीरिक अथवा पाशविक शक्ति का सहारा लिया। अहिंसात्मक साधन सत्य अर्थात आध्यात्मिक आधारशिला पर अवस्थित था, जिसका नेतृत्व गाधी जी ने किया था। सन् १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलन रचनात्मक कार्यक्रम तथा सन १९३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन को क्रियान्वित कर, रक्तपात रहित क्रान्ति तथा आत्मबलिदान के अपूर्व आदर्श द्वारा स्वाधीनता प्राप्त का उद्योग गांधी जी की अपूर्व देन थी। अध्यात्म प्रधान भारत देश के जनवासियो को गाधीजी द्वारा प्रदत्त राष्ट्रवाद के आदर्श रूप ने अधिक प्रभावित किया। जिस आदर्श ओर उन्होने संकेत किया, उसी ओर देश के लाखों व्यक्ति चल पड़े। गाँधीजी देश के राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन को पराधीनता, अभाव तथा दोषो से मुक्त करना चाहते थे। गाधीजी का राष्ट्रवाद भावना प्रधान था और विश्वास पर आधारित था, उसमे तर्क तथा बुद्धि का अधिक आग्रह नही था। हिन्दी साहित्यकार गाँधीजी के राष्ट्रवाद से अत्यधिक प्रभावित हुये। अत सत्याग्रह आन्दोलनो तथा रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा देश जीवनके सभी पक्षो के उत्थान का पूर्ण प्रयास हिन्दी-साहित्य मे मिलता है।

हिंसात्मक सघान द्वारा विदेशी शासन व्यवस्था का अन्त कर देने का साहस पूर्ण कार्य विभिन्न क्रान्तिकारी दलों द्वारा सम्पूर्ण भारत में गुप्त तथा सगठित रूप से चल रहा था। भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि प्रसिद्ध क्रान्तिकारियो के अद्भुत हिंसात्मक कार्य एव वीरता पर देश मुग्ध हो गया था। देशवासियो मे राष्ट्रीय उन्मेष को भरने का सफल प्रयास भी इन वीर क्रान्तिकारियो के बलिदान द्वारा सम्पन्न हुआ, किन्तु जनता की भावना का सहयोग इनके साथ अधिक नही हुआ था। वह सक्रिय रूप में इनके कार्यक्रम में भाग लेना उचित नहीं समझती थी। अत हिन्दी साहित्य में

इस दल के साधन का अधिक उल्लेख नहीं मिलता। इनके साथ सहानुभूति होने पर भी साहित्यकार इस साधन को राष्ट्रीय हित के प्रतिकूल समझते थे।

हिन्दी-काव्य मे गाधीवादी राष्ट्रवाद के सैद्धन्तिक पक्ष की अभिव्यक्ति

गाधीजी द्वारा सचालित असहयोग आन्दोलन ठोस आध्यात्मिकता पर आधारित था। सत्य साध्य एव अहिंसा साधन थी। उनके मतानुसार 'सत्य' का 'हर'अथवा उच्च अर्थ था परमेश्वर। साधारण तथा अपर अर्थ मे सत्य का व्यञ्जक था सत्याग्रह, सत्य-विचार तथा सत्य-वाणी। सत्य अथवा परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए आत्मा की शुद्धि परमावश्यक थी। अहिंसात्मक मार्ग के अनुगमन द्वारा सत्य की प्राप्ति निश्चित थी। गांधी जी के सत्य तथा अहिंसा की सात्विक मीमासा, हिन्दी काव्य क्षेत्र मे श्री त्रिशूल, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री सियाराम शरण गुप्त, श्री मैथिलीशरण गुप्त, पडित रामनरेश त्रिपाठी, श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान आदि ने की है।

श्री त्रिशूल ने सत्याग्रह अथवा सत्य तत्त्व की विवेचना करते हुये लिखा है—

सत्य सृष्टि का सार, सत्य निर्बल का बल है,
सत्य सत्य है, सत्य नित्य है, अचल अटल है।
जीवन-सर मे सरस मित्रवर! यही कमल है,
मोद मधुर मकरन्द, सुयश सौरभ निर्मल है॥
मन-मिलिन्द मुनिवृन्द थे, मचल मचल इस पर गये।
प्राण गये तो इसी पर, न्यौछावर होकर गये॥[1]

त्रिशूल जी ने सत्य तत्त्व का निरूपण इतिवृत्तात्मक शैली मे तथा अत्यधिक स्पष्ट शब्दो मे किया है। उनके अनुसार गाधी जी का सत्य भारत का युग युग का सत्य है जिसका प्रयोग मुनि-वृन्दो ने अपने जीवन मे किया था।

निःसन्देह गाधीजी का सत्य चिर पुरातन सत्य था।[2] यह वही सत्य था जिस का आश्रय ले ध्रुव और प्रह्लाद ने अन्याय और अत्याचार के प्रतीक नृप उत्तानपाद तथा हिरण्यकश्यप पर विजय पाई थी।[3] इसी सत्यपालन के हेतु दशरथ ने कैकेयी के वरदान की पूर्ति मे प्राण त्याग दिये थे। 'साकेत' महाकाव्य मे मैथिलीशरण गुप्त ने स्वय दशरथ के मुख से इस सत्य की व्याख्या कराई है —

सुनो तुम भी सुरगण, चिरसाक्षि, सत्य से ही स्थिर है संसार।
सत्य ही सब धर्मों का सार, राज्य ही नहीं, प्राण परिवार।
सत्य पर सकता हूँ सब वार।[4]

१ श्री त्रिशूल राष्ट्रीय मन्त्र पृ० ४

२. 'I have nothing new to teach the world Truth and Non-Voilence are as old as the hills All I have done is to try experiments in both on a vast scale as I could.'
Nirmal Kumar Bose – Selections from Gandhi—p 13.

३. माखनलाल चतुर्वेदी . माता : पृ० ७२

४. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत . पृ० ६४

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत की आध्यात्मिक भावना तथा जीवन दर्शन की अपने काव्य में व्याख्या की है। उनके अनुसार यह वह देश है, जहाँ आत्मा के आत्म भाव को जगाकर तथा मृत्यु के भय को मिटाकर, पुनर्जन्म का पता लगाया गया है। जीवन दर्शन त्याग सिखाता है और उसका अन्तिम लक्ष्य आध्यात्मिक है।[1] भारतीय जीवन का सत्य निष्क्रियता अथवा अकर्मण्यता की शिक्षा नहीं देता, वह कर्ममय है। गीता में इसी कर्ममय सत्य की शिक्षा दी गई है। गांधी जी को भी सत्य का यही रूप प्रिय था। जीवन की सत्चेतना तथा सदाचरण में ही इसका अस्तित्व है श्री मैथिली-शरण गुप्त के शब्दों में—

> कर्म को कभी न हम त्यागें,
> धर्म में अनुरागें, जागें।
> मुक्ति को छोड़ न हम भागें,
> मुक्ति के लिए सदा जागें।
> हृदय निर्मल चिर संशय हो।
> दयामय भारत की जय हो॥[2]

गांधीजी ने स्वराज्य को भारत का नैसर्गिक धर्म माना था, यही उनका जीवन सत्य था। इस सत्य का आग्रह अत्यधिक प्रबल था। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'सत्याग्रह' काव्य में गाँधी जी के सत्याग्रह का विवेचन किया है।[3] श्रीमाखनलाल चतुर्वेदी की 'अदालत में सत्याग्रह कैदी के नाते बयान' कविता में भी गाँधीजी द्वारा प्रदत्त सत्याग्रह तथा अहिंसा का वर्णन किया गया है। सत्य की प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक साधन गांधीजी को इष्ट था—

> आज पशुबली जगती तल ने
> पाया उद्धारक सिद्धान्त,
> मिसर और हंगेरी जीते
> छू उसके पद कोमल कान्त।
> पर इतना ही नहीं—राष्ट्र की
> आज्ञा पा उद्धारक कर्म
> आज अहिंसक असहकारिता
> है मेरे जीवन का धर्म,
> सब मतवाले कहें भले ही
> मैं जड़ जीव निराला हूँ—
> मैं तेरे पिंजड़े का कैदी
> असहयोग मतवाला हूँ।[4]

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत · पृ० ६३
२. वही, पृ० ६५
३ वही, पृ० १७६
४. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ७१

अहिंसा म कष्ट-सहन तथा आत्मशक्ति का आग्रह था। गांधीजी ने अहिंसा को सिद्धान्त रूप म अपनाया था क्योकि बदले म रक्त बहाने की नीति उनके मन म अधार्मिक ही नही मानवता के प्रतिकूल भी थी। उन्होने विदेशी शासकों की क्रूरता से नैतिक तथा आत्मिक बल की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया था। श्री माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दो म—

जो कष्टों से घबडाऊँ तो मुझ मे कायर मे भेद कहाँ ?
बदले मे रक्त बहाऊ तो मुझ मे 'डायर मे भेद कहा ?

× × ×

सुख पर आराध्य गमा दू तो मुझ मे कैसे ईमान मिले।
जो सत्य मिटा कर साधु बनू तो क्यों मुझको भगवान मिले ?

\+ \+ \+

ममता की मीठी मदिरा पर ललचा कर जो मर जाऊँ मैं।
तो आर्य भूमि आजाद ईन का पद प्रसाद क्यों पाऊ मैं ?[1]

चतुर्वेदी जी ने गांधी जी के अहिंसात्मक विचारो नैतिक एव आत्मिक बल की श्रेष्ठता तथा सत्य के वास्तविक स्वरूप का अकन तत्कालीन गांधीवादी विचार धारा से प्रभावित होकर किया था। इन्होने गाधी जी के सिद्धान्ता का विवचन अधिक भावात्मक रूप स किया है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की राष्ट्रीयता की टेक भी यही सत्य स्वाधीनता तथा कमण्यता है।[2]

प० रामनरेश त्रिपाठी ने पथिक नामक प्रमाख्यानक खड काव्य म गांधीजी के सत्य तथा अहिंसा की पुष्टि की है। उनका नायक पथिक स्वदेश प्रम हित अपना जीवन उत्सग कर दता है। सत्य न्याय तथा अहिंसा उसके जीवन का मूलाधार है। पत्नी तथा पुत्र की मृत्यु भी उस सत्य तथा अहिंसा के माग स विचलित नही कर पाती। उसके अनुसार परहित साधन तथा आत्मा का उत्कष ही सत्य धम है—

पर पीडन मे विमुख और सम्मुख परहित-साधन मे।
पर निन्दा म मूक बधिर रहना निज निभय मन मे॥
आत्मा का अपमान न करना सत्य माग पर चलना।
है यह सत्य तुम्हें न उचित है सत स कभी विचलना॥[3]

अत्याचार से विक्षुब्ध युवक वग को हिंसोन्मुख देखकर यह अहिंसा की श्रेष्ठता तथा कल्याणकारिता का ममभान हुय कहता है—

कौडी मे यदि बन्लेगा निज अमूल्य मणिमाला।
उससे बढ़ कर जग म होगा कौन मूढ़ मतवाला।

---

१ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ५३
२ सुभद्राकुमारी चौहान मेरी देश, मुकुल पृ० १०७ षष्ठ सस्करण
३ रामनरेश त्रिपाठी पथिक पृ० ३४

रक्तपात करना पशुता है, कायरता है मन की।
अरि को वश करना चरित्र से शोभा है सज्जन की।।
भाग्यहीन जब किसी हृदय में क्रोध उदय होता है।
बढ़ती है पाशविक शक्ति आत्मिक बल क्षय होता है।।
क्रोध, दया सुविचार न्याय का मार्ग भ्रष्ट करता है।
अपना ही आधार प्रथम वह दुष्ट नष्ट करता है।।[1]

श्रीधर पाठक ने 'भ्रमर-गीत' में गांधीवादी सत्य तथा अहिंसा अथवा प्रेम द्वारा विश्व को जीतने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मधुकर देशवासियों का प्रतीक है, जिसे संबोधित कर पाठक जी कहते हैं—

(१)

ग्रहण कर मधुकर नीति नई
मधुर गुंज-मद में पल-भर को भर दे भुवन जयी

(२)

पल ही में तब पलट पड़ेगी पूरन प्रेम मयी
जग के बीच बनेगा तू जब त्रिभुवन का विजयी
ग्रहण कर मधुकर नीति नई।।[2] (सन् १६२४)

देश का कल्याण इसी में था तथा भारत स्वतन्त्रता ही नहीं प्राणिमात्र के हृदय को तभी विजित कर सकता था जब शुष्क ज्ञान तत्व को त्याग, प्रेम तत्व को ग्रहण करता। अतः गोपियों ने भ्रमर को कुंज कुंज में जाकर प्रेम की मंजुल गुंजार भरने का संदेश दिया। 'भ्रमर-गीत' में प्रतीकात्मक शैली में गांधीजी के राष्ट्रवादी सिद्धांतों का आरोपण कवि की नवीन उद्भावना थी।

हिन्दी-काव्य में सत्य तथा अहिंसा अर्थात् राष्ट्रवाद के साधनों के विवेचन के साथ श्री त्रिशूल के सम्पूर्ण राष्ट्रवाद की भी व्याख्या एवं उसके अंशों का सविस्तार वर्णन किया है—

ऐक्य, राज्य, स्वातन्त्र्य यही तो राष्ट्र-अंग हैं,
सिर धड़, टांगों सदृश जुड़े हैं संग संग हैं।
सप्तरंग इक मनुज मिले हैं एक रंग हैं,
बुन्द बुन्द मिल जलधि घने लेते तरंग हैं।
व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज सब मिले एक ही धार में।
मिला शान्ति सुख राष्ट्र के पावन पारावार में।।[3]

उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि राष्ट्रीयता की भावना वहीं पूर्ण होती है जहाँ अनेक मस्तिष्क होने पर भी सब के हृदय एक होते हैं और जाति, देश के हानि

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : पथिक : पृ० ६४
२. श्रीधर पाठक : भारत गीत : पृ० १०८
३. त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : पृ० २६

लाभ का समान भाव से विचार रहता है। गांधीजी ने सम्पूर्ण भारत को राष्ट्रीयता की एक शृंखला में बांध दिया था—

बड़ी कड़ी से बन गई बहुत बड़ी जंजीर है।
अब गजेन्द्र को बांधने मे समर्थ है धीर है।।[1]

त्रिशूलजी ने अपने काव्य मे यह भी स्पष्ट कर दिया है कि गाधीजी ने मौखिक राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद को कर्मक्षेत्र मे ला खड़ा किया था। उस अमूर्त भावना को कर्म मे ढालकर मूर्त रूप प्रदान किया था।[2] इसका विवेचन गांधीजी के राष्ट्रवाद के व्यावहारिक रूप अथवा रचनात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जायेगा।

सियारामशरण गुप्त ने गांधी दर्शन को प्रत्यक्षरूप मे स्वीकार किया है। उन के काव्य मे जिस करुणा का स्वर प्रमुख है, वह भौतिक कुण्ठाओं की करुणा न होकर भारतीय अध्यात्म की मानव करुणा है जो मानव मात्र का धर्म है। एक सत्य से अनुप्राणित होने के कारण प्राणिमात्र का समान अस्तित्व है। उनके काव्य मे सत्य के इस स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। गांधीजी की सत्य-अहिंसा से अनुप्रेरित नीति का समर्थन करते हुये वे लिखते हैं—

तूने हमे बताया—हम सब
एक पिता की हैं संतान
हैं हम सब भाई भाई ही
हैं सबके अधिकार समान
नहीं रहेंगे मानव हम यदि
मानव ही को पीसेंगे,
सत्य अहिंसा निखिल प्रेम मे
गूंज उठा तेरा जय-गान
पड़े बुद्धि पर थे ताले;
आहा आ पहुंचा बापू, तू
विप्लव की झाड़ू वाले।[3]

'आत्मोत्सर्ग' नामक कथा-काव्य की रचना ही सियारामशरण जी ने सत्य की रक्षा मे प्राणाहुति करने वाले अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के त्याग पर की थी। 'बापू' काव्य ग्रन्थ मे गांधी जी के व्यक्तित्व सिद्धान्त और विशेषताओं का उल्लेख है।

अतः गाधीजी ने विश्व के सम्मुख पशुबल की अपेक्षा जिस सत्य तथा अहिंसा का सिद्धान्त रखा था, राष्ट्रवाद का जो उच्च आदर्श प्रस्तुत किया था, उसका पूर्ण रूपेण अनुमोदन तत्कालीन हिन्दी-काव्य मे मिलता है। इतिवृत्तात्मक, भावात्मक प्रेमा-

---

१. त्रिशूल . राष्ट्रीय मन्त्र, पृ० २८
२. वही, पृ० ६
३. सियाराम शरण गुप्त : 'शुभागमन'—पाथेय : पृ० १००

स्थानक काव्य आदि विभिन्न रूपो मे इन सिद्धान्तो का प्रतिपादन, विवेचन निरूपण किया गया है।

हिन्दी-नाट्य साहित्य मे गाधी जी के सत्य-अहिंसा की अभिव्यक्ति

गाधीजी ने जो असहयोग अथवा सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा आत्म-त्याग, मनोबल, आत्मपीडन का प्राचीन आदर्श रखा था उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति नाट्य-साहित्य मे भी मिलती है। यग इडिया' मे गांधीजी ने लिखा था – 'पर मेरा विश्वास है कि हिंसा से अहिंसा की मर्यादा बलवती है दण्ड देने से क्षमादान कही वीरत्व का लक्षण है, क्षमादान सच्ची वीरता का प्रमाण है। यदि दड देने की मुझ मे क्षमता है और मैं दड देना स्वीकार नहीं करता तो वही क्षमा सच्ची क्षमा है। पांडेय बेचन शर्मा उग्र के 'महात्मा ईसा' नामक नाटक म महात्मा ईसा के व्यक्तित्व का चित्रण गांधी जी के व्यक्तित्व के सामजस्य मे हुआ है। उग्र जी ने गांधीजी के सत्य, अहिंसा, क्षमा आदि की पुष्टि महात्मा के जीवनचरित द्वारा कराई है। वस्तुत दोनों दो देश, दो धर्म और दो युग की एक ही महान् आत्मा हैं। इस नाटक से ईसा मसीह के व्यक्तित्व की प्रत्येक रेखा यह स्पष्ट कर देती है कि महात्मा गाधी के सदृश ईसाई मत भी सत्य का आराधक और अहिंसा का साधक है। ईसाई धर्म प्रवर्त्तक महात्मा ईसा को सत्य एव अहिंसा की शिक्षा भारत देश में विवेकाचार्य के आश्रम में मिली थी।[1] अपने देश पहुचकर ईसा देशवासियो को धार्मिक सत्याग्रह का मत्र देते हुये कहते हैं—'भैया! इस समय बहुतो की आत्मायें सत्य और धर्म के भावो से शून्य हैं। चारो ओर अनाचार और अधर्म का आतक फैला हुआ है। इसलिये पहले लोगो मे धार्मिकता और सत्याग्रह का मन्त्र फूकना होगा।

पहला ना०—प्रभो, सच्चा धर्म क्या है ?

ईसा—सत्य के लिए मर मिटना भय से अपनी आत्मा का अपमान न करना तथा सब पर दया रखना।'[2]

वे इस सत्य की प्राप्ति अहिंसात्मक साधन द्वारा करना चाहते थे—'पशु-बल को यदि पशु बल दबायेगा तो वह महा पशु-बल हो जायगा, जिससे किसी को भी सुख न मिल सकेगा। अत्याचार के प्रतिकार के लिये धैर्य, आत्म दमन और अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ साधन हैं—अस्तु यदि कोई तुम्हारे एक कपोल पर प्रहार करे, तो उसके सम्मुख हस कर दूसरा गाल भी कर देना, तुम देखोगे विजय तुम्हारी होगी। फिर वह, तुम्हें मारने के लिए हाथ न उठा सकेगा।[3] नाटक मे महात्मा ईसा सत्य की प्राप्ति के लिए प्राणोत्सर्ग करते हैं। उत्सर्ग अथवा त्याग ही सेवामार्ग की ओर प्रेरित करता है जिससे धर्म, यश और स्वतन्त्रता की प्राप्ति होती है।[4] सत्य के इसी रूप का प्रतिपादन गांधी जी ने किया है। उग्र जी ने कौशल एव सुन्दरता के साथ इस नाटक

१ बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० ४८
२. 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० १२४
३. वही, पृ० १४६
४. वही, पृ० १४६

मे ईसाई धर्म के सत्य और अहिंसा का निरूपण कर तत्कालीन ईसाई धर्मानुगामी शासन वर्ग को उनके धर्म के मूल मे अवस्थित सत्य एव अहिंसा का उपदेश दिया है। इसके अतिरिक्त गाधी जी के राष्ट्रवाद के सैद्धान्तिक पक्ष का अति विस्तृत, परिष्कृत तथा विश्व-ऐक्य के आग्रह से पूर्ण रूप नाटक मे मिलता है।

गाधी जी का यह विश्वास था कि सत्य ही ईश्वर है और सत्य की प्राप्ति का एकमात्र मार्ग दया और क्षमा है [1] जयशकर प्रसाद के नाटको मे ऐतिहासिक कथानको द्वारा गाधी जी की सत्य एव अहिंसा सबधी विचारधारा का पुष्ट रूप मिलता है। 'विशाख' नाटक मे प्रसाद जी ने प्रेमानन्द द्वारा प्रेम दया, सत्य का मार्ग प्रदर्शित कराया है। प्रेमानन्द राजा नरदेव को न्याय के दण्डात्मक आदेश की अपेक्षा उसके करुणात्मक आदेश पालन का उपदेश देते हैं क्योकि वही प्रजा मे सद्गुणो को प्रकाशित करने वाला है।[2] प्रसाद जी के नाटको मे सत्य का अधिक व्यावहारिक रूप मिलता है। वह जड न होकर मानव व्यवहार मे विकसित दिखाई देता है। ऐतिहासिक स्थितियो के विस्तृत चित्रण मे सत्य की विजय होती है। 'चन्द्रगुप्त' मे धर्मराज्य की स्थापना के लिए चाणक्य और चन्द्रगुप्त क्रियाशील दिखाई पडते हैं। 'अजातशत्रु' नाटक मे स्वय गौतमबुद्ध सत्य के प्रणेता हैं। 'राज्यश्री' नाटक म सत्य के लक्ष्य की पूर्ति के लिए हर्षवर्द्धन तथा राज्यश्री धन-वैभव का परित्याग करते हैं—'हर्षवर्द्धन भारत का यशस्वी सम्राट्, उदार, वीर, अहिंसावादी, धार्मिक और कर्तव्यशील है।'[3]

प्रसाद जी के मतानुसार सत्कर्म हृदय म उच्च वृत्तियो का उन्नयन करते हैं, किन्तु इसके लिये दया, क्षमा जैसी महान् भावना अपेक्षित है। 'अजातशत्रु' नाटक का मूल-भाव करुणा अथवा दया है। नाटक के प्रारम्भ मे ही पद्मावती अपने भाई अजातशत्रु की निर्ममता, कठोरता, उच्छृखलता से विक्षुब्ध होकर अहिंसा, दया, करुणा का पाठ पढ़ाना चाहती है—'मानवी सृष्टि करुणा के लिए है, यो तो क्रूरता के निदर्शन हिंस्र पशु जगत मे क्या कम हैं ?'[4] गाधी जी का यह विचार था कि मानव स्वभाव आध्यात्मिक एव नैतिक सिद्धातो से बधा हुआ है। वह सत् और असत् का सम्मिलित रूप है किन्तु असत् उसका कृत्रिम रूप है तथा सत् पुण्य और स्वतन्त्रता उसका वास्तविक रूप हैं। इसीलिए उन्होने अपने दर्शन का आधार मनुष्य के शारीरिक व्यवहार को न बना कर, उसके आध्यात्मिक तत्व अथवा स्वात्म को बनाया था।[5] उनका यह भी विश्वास था कि मानव मात्र का स्वभाव अपने वास्तविक रूप मे एक है क्योंकि आत्मा एक है। मनुष्य जीवन को नियमित तथा सयमित रूप मे प्रवसर करने

१- Nirmal Kumar Bose Selections from Gandhi—p 6

२. जयशकर प्रसाद . विशाख : पृ० ८१

३ जयशकर प्रसाद : राज्यश्री : पृ० ४

४. जयशकर प्रसाद अजातशत्रु : पृ० २६

५ Gopinath Dhawan The Political Philosophy of Mahatma Gandhi—p 117.

वाला तत्त्व एक है।'[1] इसी आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार पर उनके हृदय परिवर्तन का सिद्धान्त निर्भर था। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में गांधी जी की इस मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिक एवं नैतिक विचारधारा की पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। 'अजातशत्रु' नाटक में गौतम बुद्ध बिम्बसार को अहिंसा का उपदेश देते हुए छोटी रानी छलना के अविचार को दया करुणा के साधन से परिवर्तित करने का उपदेश देते हैं—

गौतम—शीतल वाणी मधुर व्यवहार-से क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते? राजन्, संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यंग्य है। हृदय में जितना यह घुसता है, उतनी कटार नहीं। वाक् संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है। अस्तु, अब मैं तुमसे एक काम की बात कहना चाहता हूँ। क्या तुम मानोगे-क्यों महारानी?'[2]

गांधी जी की अहिंसात्मक नीति एकान्तिक अथवा संकीर्ण राष्ट्रवाद का पोषण नहीं करती। वे इस सिद्धांत द्वारा विश्वमैत्री अथवा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की प्रशस्त भावना का विकास चाहते थे। प्रसाद जी को गांधी जी का अहिंसा सिद्धान्त पूर्णतया मान्य था। वे भी परदुःखकातरता की उच्च भावना से मंडित अहिंसा को विश्व-मैत्री का एकमात्र मार्ग मानते थे। अजातशत्रु' नाटक में श्यामा को गौतम बुद्ध इस मार्ग के अनुसरण का ज्ञान प्रदान करते हैं।[3] गांधी जी के सदृश वे भी नारी जीवन के लिए अहिंसा अथवा करुणा को आवश्यक कर्त्तव्य मानते हैं। कठोर पौरुष को स्त्रियाँ ही स्नेह, शीतलता, सहनशीलता, सदाचार की शिक्षा दे सकती हैं। 'अजातशत्रु' नाटक में मल्लिका का चरित्र इसका प्रमाण है। प्रेम अथवा करुणा हृदयपरिवर्तन का अमोघ अस्त्र है। इसी नाटक में अजात, छलना, शक्तिमती, विरुद्धक, प्रसेनजित् आदि पाशविक प्रवृत्ति के पोषक पात्रों का प्रेम और करुणा द्वारा हृदय परिवर्तन हो जाता है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त तथा कार्नेलिया का विवाह करा कर प्रेम और अहिंसा द्वारा विदेशी शक्तियों को विजित करने का आदर्श रखा है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है। भारतीय संस्कृति तथा इतिहास के गौरवमय पृष्ठों में प्रवाहित सत्य तथा अहिंसा की अमृतधारा को हिन्दी नाटकों में प्रतिबिंबित कर, प्रसाद जी ने राष्ट्रीय भावना का शाश्वत रूप प्रस्तुत किया है।

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'अशोक' नामक ऐतिहासिक नाटक में कलिंग युद्ध के वीभत्स व्यापार तथा भयंकर हत्याकांड के उपरान्त, कलिंग के सन्यासी महाराज अरिंदम द्वारा अशोक को अहिंसा का उपदेश दिलाया है। यह इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि कठोर हृदय अशोक कलिंग युद्ध की भयंकर हिंसात्मकता से द्रवित हो गया था। उसकी मानवता इसके विरुद्ध चीत्कार कर उठी थी और उसने अहिंसा के उत्कृष्ट मार्ग बौद्ध-धर्म को ग्रहण कर, भारत तथा एशिया के कई देशों में इस

१ Ibid · p. 119

२ जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृ० ३३

३. जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृ० १४६

धर्म का प्रचार किया था। मिश्र जी ने सर्वदत्त द्वारा सत्य एवं अहिंसा के महत्त्व का प्रदर्शन किया है—

'सर्वदत्त—डर क्या है सम्राट्! मुझे और किसी का नहीं, केवल डर का डर है—डर मेरे पास न आये, मुझे इसी का डर है—मैंने जो कुछ कहा सत्य कहा है सम्राट्। आतंक सत्य को दबाने में सफल नहीं हो सकता—कभी हुआ नहीं है। और फिर जो आप हैं वही मैं हूं। न आप सम्राट हैं और न मैं सन्यासी हूं। यह अन्तर केवल भ्रम है। जो वस्तु तलवार से ली जाती है वह तलवार से ही शासित होती है। यह विजय 'विजय' नहीं है विजय वह है जो मनुष्य की आत्मा में ईश्वरीय प्रकाश की किरण फेंके और वह विजय प्रेम से स्थापित होती है—तलवार से नहीं। यदि विजयी होना चाहते हो सम्राट तो सृष्टि के एक एक कोने में प्रेम का सन्देश भेजो। इसमें सफल हो सके तो अनन्त काल के लिए विजयी बने रहोगे।'[1] इसके अनन्तर अशोक विश्व प्रेम का उपासक हो गया था।[2]

गांधी जी ने शस्त्र की अपेक्षा प्रेम तथा आत्मा के बल को अधिक महान् तथा शक्तिशाली माना था।[3] उन्होंने हिंसा का परित्याग सिद्धान्त रूप में किया था। उनकी इस विचारधारा की पूर्ण अभिव्यक्ति मिश्र जी के इस नाटक में मिलती है। गांधी जी आत्मबल या मनोबल के मार्ग को कायरता का सूचक नहीं मानते हैं। इसके अतिरिक्त गांधी जी का सत्य और अहिंसा केवल बौद्ध धर्म की करुणा एवं दया नहीं थी, सनातन धर्म में भी इसकी शिक्षा मिलती है। मिश्र जी ने अपने युग की अहिंसा भावना का विश्लेषण सर्वदत्त द्वारा कराया है। कलिंग के महाराजा, अशोक से युद्ध या आधीनता का संदेश पाकर भी नरसंहार के लिए तत्पर नहीं होते क्योंकि उनके मन में ईश्वर की अपनी सृष्टि का संहार इष्ट नहीं है। उनका पुत्र जयंत रक्तपात में ही जीवन तथा वीरता के लक्षण देखता और अहिंसा को कायरता मानता है। सर्वदत्त उसकी मिथ्या धारणा के निवारण के लिए कहते हैं'—

'जयन्त! जो जितने ही अत्याचार करते हैं, उतने ही कायर होते हैं, और जो अत्याचार को सहन करते हैं वे उतने ही वीर। युद्ध और हत्या से मनुष्य की आत्मा सदैव पतित होती आई है कभी ऊंची नहीं हुई। तुम किसके साथ युद्ध करोगे जयन्त? तुम क्या हो और अशोक क्या है। जिस हाड़ मांस के पुतले को तुम सब कुछ समझ रहे हो, वह तुम नहीं हो। तुम समझते हो मैं बुद्ध का अनुयायी हूं, किंतु दया और स्नेह की शिक्षा क्या तुम्हारे सनातन धर्म ने नहीं दी?

श्री सियारामशरण गुप्त ने 'पुण्यपर्व' नामक ऐतिहासिक कथा संयुक्त नाटक में गांधी जी के सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों की पुष्टि की है। उन्हें सैद्धान्तिक तत्त्व

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र अशोक पृ० १४७
२ वही पृ० १४६
३ 'The force of arm is powerless when matched against the force of love or soul' M K Gandhi Satyagrah—p 14
४, लक्ष्मीनारायण मिश्र : अशोक : पृ० १०६

विवेचन मे सफलता मिली है। इन्द्रप्रस्थ के राजा सुत सोम अहिंसात्मक साधना द्वारा वाराणसी के निर्वासित हिंसोन्मत्त राजा को सत्य, धर्म, न्याय-परोपकार के मार्ग पर लाते हैं। सुत सोम गाधी जी की भाति आत्मबल तथा आत्मबलिदान द्वारा सत्य-प्रचार मे विश्वास करते हैं। उन्हे शारीरिक बल प्रयोग अभीप्सित नही। इस नाटक मे सुत सोम कहते हैं—

'इसीलिए कि सद्विचारो का यह उपाय मुझे अच्छा नही लगता। मैं तुम्हें या तुम मुझे मार डालते, तो क्या इससे अभीप्सित फल की प्राप्ति हो जाती? यदि हम मनुष्य को जिला नही सकते, तो हमे उसकी हत्या करने का अधिकार नही है। और साथ ही चाहता था कि यदि सम्भव हो, तो मैं तुम्हारे मन-परिवर्तन का प्रयत्न भी करूँ।'[1] गाधी जी की भाँति सुत सोम की अहिंसा का भी मूलाधार है मनुष्यमात्र की सद्भावना—मुझे तो अन्त मे मनुष्य मात्र की सद्भावना मे विश्वास है।'[2]

उदयशकर भट्ट के 'विक्रमादित्य' नाटक मे युद्ध और सघर्ष को मूलाधार बनाने पर भी सत्य तथा अहिंसा को महान् समझा गया है। विक्रमादित्य के चरित्र मे दार्शनिकता, क्षमा, दया की रेखाए सत्य एव अहिंसा का ही परिणाम हैं।[3]

जयशकर प्रसाद तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भारतीय इतिहास के हिन्दू काल की ऐतिहासिक कथाओ तथा महत चरित्रो के माध्यम से अपने युग की महान् राष्ट्रीय विचारधारा—सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्तो का निरूपण किया है। अत केवल भारतीय हिन्दुओ की भावनाओ का ही साधारणीकरण उनके साथ हो सकता था। हिन्दू धर्म, इतिहास तथा सस्कृति के प्रति विशेष मोह होने पर भी गाधी जी का सत्य तथा अहिंसा किसी एक धर्म की परिभाषा मे बधा हुआ नही था। वे सभी धर्मों को सत्य तक पहुचने के विविध मार्ग मानते थे।[4] उन्होंने इस तथ्य का भी उन्मूलन किया था कि सभी धर्मों का मूल दया एव करुणा अर्थात् अहिंसा है।[5] गाधी जी ने इस्लाम धर्म को भी बौद्ध, हिन्दू तथा ईसाई धर्म की भाति शातिप्रिय धर्म माना था, केवल इन धर्मों की शाति की मात्रा मे अन्तर है।[6] भारतीय मुसलमानो की राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने तथा उन्हें भी सत्य एव अहिंसा के मार्ग का अनुकरण कराने के लिये यह आवश्यक था कि उनके धर्म ग्रन्थो, मुस्लिम

१. सियाराम शरण गुप्त · पुण्य पर्व पृ० १०६
२ वही, पृ० १०८
३ उदयशकर भट्ट विक्रमादित्य . पृ० १४
४ Gandhi My Religion—p 19
५ Ibid p 19
६ 'I do regard Islam to be a religion of peace in the same sense as christianity, Buddhism and Hinduism are No, doubt there *are differences in degree but the object of these* religions is peace' M K Gandhi—My Religion . p 27

इतिहास के महान् चरित्रों तथा घटनाओं से सत्य, आत्मबल और अहिंसा के उदाहरण रखे जायें। हिन्दी नाट्य क्षेत्र मे यह कार्य प्रेमचन्द जी द्वारा सम्पन्न हुआ है। गाधी जी के सत्य एव अहिंसा का पाठ मुसलमानों को पढाने के लिये ही उन्होंने 'कर्बला' नाटक की रचना की थी। हिन्दू इतिहास मे रामायण तथा महाभारत का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है, वही मुस्लिम इतिहास मे कर्बला के सग्राम का है। वीरात्मा हुसैन इस नाटक के नायक हैं, जिनके आत्मबलिदान की इसमे कथा है। हुसैन बडे विद्वान्, सच्चरित्र, शात प्रकृति, नम्र, सहिष्णु, ज्ञानी, उदार और धार्मिक महापुरुष थे। यद्यपि अरब मे उनकी जोड का अन्य वीर न था किन्तु उनकी आत्मा इतनी उच्च थी कि वह सासारिक राज्य भोग के लिए सग्राम क्षेत्र मे उतर कर उसे कलुषित नहीं करना चाहते थे। उनके जीवन का उद्देश्य आत्म शुद्धि तथा धर्म था। उनकी शक्ति न्याय व सत्य की शक्ति थी। दैवयोग से अधर्म ने धर्म को दबा दिया, उन्होंने निरन्तर सधि का प्रयास किया क्योंकि वे सत्य और अहिंसा मे विश्वास करते थे। अन्त मे विवश होकर न्याय की रक्षा के लिए ही उन्हे युद्धरत होना पडा था। इस नाटक मे इस ओर भी सकेत मिलता है कि कुछ हिन्दू भी हुसैन के साथ थे। हिन्दू पात्रों के सवाद मे हुसैन की धर्मनिष्ठा का वर्णन इन शब्दों मे मिलता है—

> 'रामसिंह—हुसैन धर्मनिष्ठ पुरुष हैं। अपने बधुओं का रक्त नहीं बहाना चाहते।
>
> ध्रुवदत्त—जीव हिंसा महापाप है। धर्मात्मा पुरुष कितने ही सकट मे पडे किन्तु अहिंसा, व्रत को नही त्याग सकता।'[1]

आत्मत्याग का प्रशस्त रूप इस नाटक की इन काव्य पक्तियों मे मिलता है -

> मौत का क्या उसको गम है, जो मुसल्मॉं हो गया।
> जिसकी नीयत नेक है, जो सिद्क़ ईमॉं हो गया॥[2]

यह मुसलमानो के धर्म ग्रन्थों मे भी उपदेश दिया गया है कि कत्ल करने की अपेक्षा दोस्त बना लेने मे अधिक फायदा है।[3]

श्री मैथिलीशरण गुप्त के नाट्य-काव्य 'अनघ' का मूलभूत विचार-विन्दु भी सत्य, अहिंसा है। गौतम बुद्ध का चरित्र, भारत का इतिहास तथा साहित्य, भारत की आध्यात्मिक प्रौढ़ता के प्रदर्शक हैं। 'अनघ' नाट्य काव्य का उद्देश्य कवि नाटककार ने प्रारम्भ मे ही अभिव्यक्त कर दिया है कि इसमे उसे दयामय भगवान् बुद्ध के शुद्ध चरित्र और उनके सिद्धान्तो का अनुकरण, अनुशीलन एव अभिनय करना है। मघ भगवान् बुद्ध का एक साधनावतार है। गुप्त जी मघ द्वारा समाज मे सत्य तथा अहिंसा की स्थापना करा कर अधर्म, अनीति, अन्याय को मिटा डालना चाहते हैं। मघ आत्मा की आज्ञा मानता है और सच्चे अर्थों मे मानव धर्म का पालन करता

---

१. प्रेमचद कर्बला पृ० ३६
२. वही, पृ० ३६
३ वही, पृ० २३०

है।[1] वास्तव में मघ गांधी जी का प्रतिरूप है जो सत्य एवं अहिंसा के उच्चादर्शों से परिपूर्ण है।[2] उसके मतानुसार सच्चा न्याय विधान वही है जिसमे किसी का मत स्वातन्त्र्य न छिने। सत्य तथा अहिंसा का पुजारी मघ, समाज और शासक वर्ग के अन्याय एवं अत्याचारो का विरोध करता है। सुरभि के शब्दों में मघ के जिन उच्चादर्शों तथा महान् चरित्र का वर्णन मिलता है यह गीता तथा वेदान्त का अध्याय है :—

संयम ही उनके उच्च हृदय का व्रत है,
पर-हित ही उनके प्रेम विजय का फल है।
त्यागव्रत ही विश्वस्त कर्म है उनका;
निष्काम कर्म ही परम धर्म है उनका।[3]

मघ धर्म को सनातन मानता है, जो स्वयं सिद्ध है। गांधी जी के समान मघ भी मानवता की आराधना को सत्य का मूल रूप मानता है। उसकी अहिंसा का आधार भी क्षमा तथा प्रेम है। पाप से घृणा करो किन्तु पाप को प्रेम द्वारा परिवर्तित करो।[4] वह आत्मबल संयुक्त अहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा अत्याचार, अन्याय का दमन करता है। इसके लिये कारावास कठोर दंड भी सहर्ष स्वीकार करता है—

प्रेम करना है तो कर त्याग
नहीं तो है वह कोरा राग।[5]

राजा रानी के संवाद मे गुप्त जी ने भारतीय जीवन दर्शन, राजनीति दर्शन के मूल तत्वों—प्रेम तथा त्याग का सुन्दर वर्णन किया है।[6] अन्त मे सत्य तथा अहिंसा की विजय दिखाई है। गुप्त जी ने काव्यात्मक शैली मे लिखे इस नाटक मे तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक स्थिति की रूपरेखा के बीच सत्य तथा अहिंसा को मूर्त रूप प्रदान किया है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटको मे भी गांधीवादी सत्य अहिंसा संबंधी विचारधारा ध्वनित हो रही है यद्यपि उसका स्पष्ट विवेचन नही किया गया है। 'जाति और धर्म के नाम पर मनुष्यता के नाम पर मनुष्यता के टुकडे' करना प्रेमी जी के सत्य के प्रतिकूल है। 'रक्षा-बन्धन' नाटक मे वे विक्रमादित्य द्वारा धर्म एवं सत्य का निरूपण करते हुए कहलाते है—"'''मजहब मनुष्य के हृदय के प्रकाश का नाम है। जो मजहब का नाम लेकर तलवार चलाते हैं, वे दुनिया को धोखा देते हैं, वे धर्म का

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ . पृ० १८
२ 'गांधी नीति की साकार प्रतिमा मघ के आदर्श चरित्र की कल्पना अनघ की मूल विशेषता है।'—उमाकान्त गोयल—मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता : पृ० २३
३. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ : पृ० १८
४. वही, पृ० ५६
५ वही, पृ० ८६
६. वही, पृ० ७२

अपमान करते हैं। सच्चा वीर वही है खरा राजपूत वही है, जो न हिन्दुओं के अन्याय का हिमायती है और न मुसलमानों के। वह न्याय का साथी है और आजादी का दीवाना है। उसे अत्याचारी हिन्दू से ईमानदार मुसलमान ज्यादा प्यारा है। वह अत्याचारी मुसलमान का जितना दुश्मन है बेईमान और विश्वासघाती हिन्दू का उससे कहीं अधिक शत्रु। प्रेमी जी ने गाँधी जी के सत्य एवं न्याय का विवेचन हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक एकता के लक्ष्य से किया है।

सेठ गोविन्ददास ने वर्तमान युग तथा सामाजिक जीवन से कथा लेकर 'प्रकाश' नाटक में सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्तों का विवेचन किया है। इस नाटक में भी सत्य तथा अहिंसा की विजय होती है। इस नाटक के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है—'यह नाटक मैंने तारीख २५ जून १९३० को दमोह-जेल में लिखना आरम्भ किया और दस दिनों में यह समाप्त हो गया।

× × ×

यह नाटक सामाजिक है। वर्तमान समाज का राजनीति से घनिष्ट सम्बन्ध हो गया है। इसलिये इसमें कुछ राजनीतिक बातों का भी समावेश हुआ है। अतः इसे अंग्रेजी में सोसोपोलिटिकल ड्रामा कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा।'[1]

प्रकाश गांधीवादी विचारों का है। उसे नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति राजा जयसिंह के यहाँ दिये गये भोज में धनिक वर्ग तथा निर्धनों के बीच रखा गया भेदभाव अच्छा नहीं लगता। वह निर्धनों को धनवानों के भोज में असहयोग करने को कहता है। सत्य समाज के संगठन द्वारा वह जनता को सत्य का अनुभव तथा सत्य मार्ग का प्रदर्शन करा कर उनके दुःखों का परिमार्जन करना चाहता है। अपनी मां को समझाते हुए प्रकाश कहता है—

'वही तो बताता हूं। अजयसिंह के उद्यान से लौट कर हम सभी लौटे हुए लोगों ने एक सत्य समाज का संगठन किया है। उसका सभापति तेरा प्रकाश बनाया गया है। सत्य को संसार के सम्मुख रखना इस समाज का कार्य है। ग्राम और नगर-वासियों के सुख-दुःख का एक दूसरे को सत्य अनुभव हो तथा उस सत्य अनुभव के पश्चात् सत्य-मार्गों द्वारा ग्राम और नगर निवासियों के दुःखों का परिमार्जन किया जाय, तभी संसार में सत्य-वस्तु की स्थिति और सत्य सुख की स्थापना हो सकती है। इस खाई पर पुल बांधने से ही समाज पार लग सकता है। महात्मा गांधी के सन् २० के असहयोग और सन् ३० के सत्याग्रह आन्दोलन के पूर्व यह कार्य आवश्यक था। इसके न होने के कारण ही ये आन्दोलन असफल हो गये। सत्य-समाज यही कार्य करेगा।'[2] सत्य की सर्वाधिक व्यावहारिक परिभाषा सेठ गोविन्ददास ने इसमें की है। राष्ट्रीय जीवन की चित्तवृत्तियों के उदात्तीकरण के लिए सत्य के इस स्वरूप की स्थापना आवश्यक थी।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक

१ सेठ गोविन्ददास : प्रकाश : निवेदन

२ सेठ गोविन्ददास : प्रकाश : पृ० ४५

नाटकों में गांधी जी के सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्त, विचार तथा व्यवहार की पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उग्र जी, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त सेठ गोविन्ददास आदि नाटककारों ने सत्य तथा अहिंसा को संघर्ष तथा कर्ममय जीवन का महान् धर्म तथा आवश्यक कर्तव्य ठहराया है। उनके पात्रों ने कुशलता के साथ सत्य तथा अहिंसा के कठिन व्रत को निभाने का सफल अभिनय किया है। राष्ट्रवाद के इतिहास में ये नाटक हिन्दी साहित्य की अमर देन हैं।

कथा साहित्य में गांधी जी के राष्ट्रवाद के सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति

काव्य तथा नाटकों की भांति हिन्दी कथा साहित्य में भी गांधी जी के दार्शनिक विचारों अथवा राष्ट्रवाद के सैद्धान्तिक पक्ष की अभिव्यक्ति मिलती है। इस युग के उपन्यास तथा कहानियों में गांधी जी के राष्ट्रवाद के कर्म पक्ष अथवा व्यावहारिक कार्यक्रम का जो विस्तृत वर्णन मिलता है, उसमें सैद्धान्तिक पक्ष प्रतिध्वनित हो रहा है। उपन्यास तथा कहानी रचना के क्षेत्र में प्रेमचंद जी का नाम अमर एवं अग्रगण्य है। वे अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों तथा गांधीवाद से विशेष रूप से प्रभावित थे। जिस समय गांधी जी देश जीवन को नवीन राष्ट्रवाद के सिद्धान्तों एवं व्यवहारों में दीक्षित कर रहे थे, उसी समय प्रेमचन्द जी की लेखनी द्रुत गति से देश की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक समस्याओं तथा उनकी राष्ट्रीय विचारधारा एवं आन्दोलनों का अंकन कर रही थी। राष्ट्रीय पराधीनता के उच्छेदन के लिए जिस सत्य एवं अहिंसा के दार्शनिक सिद्धान्तों का आधार गांधी जी ने लिया था, उसकी कर्ममय वीरता की अभिव्यक्ति प्रेमचन्द जी के उपन्यासों तथा कहानियों में मिलती है।

गांधी जी का सत्य केवल सत्य भाषण मात्र नहीं था। विचार तथा कार्य द्वारा सत्य की साधना उन्हें इष्ट थी। प्रेमचन्द जी के प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि प्रभृति उपन्यासों में सत्य तथा अहिंसा का उपदेश मात्र अथवा जड़ रूप नहीं है। पात्रों ने अपनी गतिविधि एवं व्यवहार द्वारा गांधी जी के सत्य अहिंसा संबंधी सिद्धान्तों को क्रियाशील रूप में रखा है। प्रेमाश्रम के प्रेमशंकर, रंगभूमि के सूरदास कायाकल्प के चक्रधर, कर्मभूमि के अमरकान्त आदि पात्रों ने सत्य तथा अहिंसा को वाणी प्रदान की है।

गांधी दर्शन मूलतः आध्यात्मिक जीवन दर्शन है। उसका मानव की सद्-प्रवृत्तियों में अनन्य विश्वास है। सत्यनिष्ठा एवं सहिष्णुतापूर्वक कष्ट सहन कर सत्याग्रही को अवश्य विजय प्राप्त होती है और वह असत्य तथा अन्याय के उन्मूलन में सफल हो जाता है, इसकी पुष्टि प्रेमचन्द जी के प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि आदि उपन्यासों में दृष्टिगत होती है। प्रेमाश्रम में प्रेमशंकर किसानों की सेवा करके उनके अन्याय, अत्याचार, तथा शोषण की समस्या का अहिंसात्मक रीति से समाधान करना चाहता है।[1] यही उसके जीवन का सत्य है। इसी में राष्ट्र का कल्याण है। घृणा,

१. प्रेमचन्द : प्रेमाश्रम ; पृ० १५१

कटुता, द्वेष ग्रादि विभाजक प्रवृत्तियो के लिये उसके हृदय मे स्थान नहीं है।[1] गाधी जी की अहिंसा के पुजारी, प्रेमशकर, क्रुद्ध भीड के हाथो स्वयं चोट खाकर डाक्टर प्रियनाथ की रक्षा करते हैं।[2]

इसी उपन्यास मे प्रेमचन्द जी ने एक अन्य पात्र की सृष्टि गाधी जी के सिद्धान्तो की पुष्टि के लिए की है—यह हैं लखनपुर के मुसलमान किसान कादिर मिया। गाधी जी के राष्ट्रवाद के दार्शनिक ग्रथवा विचार-पक्ष की पूर्णता इसी मे थी कि मुसलमान ग्रौर ग्रामीण भी उनका जीवन मे प्रयोग करें। असहयोग ग्रान्दोलन में हिन्दू मुसलमानो ने समान रूप से भाग लिया था ग्रौर देश के अधिकांश मुसलमान सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्तो से प्रभावित हुए थे। 'प्रेमाश्रम' की रचना इस ग्रान्दोलन के बाद हुई थी। ग्रत प्रेमचन्द जी ने कादिर को सत्य एव अहिंसा के मार्ग का पूर्ण अनुगामी दिखाया है। सत्य से प्रेरित निश्चिन्त ग्रौर निर्भय होकर ग्राम मे रहता है। जिस समय गौमखा निर्दयता से लगान वसूल कर रहा था ग्रौर इजाफा लगने से सारा गाव दब गया था उस समय भी सत्य के साधक कादिर को अपने सर्वनाश का भय नही था। प्रेमचन्द जी ने स्वय उसके चरित्र की इस विशेषता के सबध मे लिखा है —

'उसके हृदय मे राग ग्रौर द्वेष के लिए स्थान न था ग्रौर न इस बात की ही परवाह थी कि मेरे विषय मे कैसे कैसे मिथ्यालाप हो रहे हैं। वह गाव मे विद्रोहाग्नि भडका सकता था, खा साहब ग्रौर उनके सिपाहियो की खबर ले सकता था। गांव मे ऐसे कई उद्दड नवयुवक थे जो इस ग्रनिष्ट के लिए ग्रातुर थे। किन्तु कादिर उन्हे सभाले रहता था। दीनरक्षा उसका लक्ष्य था, किन्तु क्रोध ग्रौर द्वेष को उभाड कर नही, वरन् सद्व्यवहार तथा सत्य प्रेरणा से।[3] वह हिंसात्मक रीति द्वारा अन्याय के प्रतिरोध के विरुद्ध है। उस प्रवृति को 'ग्राग म कूदने' से कम नही समझता।[4] उसका सेवा भाव इतना प्रबल है कि किसी का कष्ट शीघ्र ही उसे द्रवित कर देता है।[5] अपनी जान बचाने के लिए फरेब करना उसके सिद्धान्त के विरुद्ध था। उसके जीवन का यह धर्म था कि 'सच कहने के लिए जेल भी जाना पडे तो सच से मुह न मोडे।'[6] प्रेमचन्द जी ने ग्रामीण जीवन के इस मुसलमान पात्र द्वारा गांधीजी के सिद्धान्तों की जितने सशक्त रूप मे अभिव्यक्ति की है वह हिन्दीसाहित्य क्षेत्र मे उन्ही की विशेषता है।

'रंगभूमि' का सूरदास गाधी जी के सत्य तथा अहिंसा का मूर्त रूप है। 'सूरदास गांधी जी का ही प्रतिरूप है, कहना चाहिये उनका लघु साहित्यिक सस्करण

१ प्रेमचन्द प्रेमाश्रम पृ० १५२
२ वही, पृ० २६८
३ वही, पृ० ४३
४. वही, पृ० ४७
५ वही, पृ० ५०
६ प्रेमचन्द प्रेमाश्रम पृ० ८९

है। वह गाधी जी के विचारो और उनके अहिंसात्मक सत्याग्रह का सजीव प्रतिनिधि है।'[1] विदेशी पूजीवादी साम्राज्यशाही की मशीनी सभ्यता के आघात से देश को जर्जरित होने से बचाने के लिए वह अपने प्राणो का बलिदान दे देता है, किन्तु सत्य तथा अहिंसा का परित्याग नही करता। गांधीदर्शन आस्तिक दर्शन है, अत सूरदास का ईश्वर पर अटूट विश्वास था।[2] सत्य, न्याय तथा धर्म के लिए उसने आत्मबल अथवा अहिंसा की लडाई लडी थी।[3] वह भीख माग कर अपना निर्वाह करता है, किंतु अपनी जमीन नही बेचता, क्योकि इस जमीन से मुहल्ले वालो का बडा उपकार होता है आसपास के सब ढोर वही चरते हैं।[4] जान सवक ने उसे कितने ही प्रलोभन दिये, लेकिन वह सत्य-पथ से विचलित नही हुआ। उसकी विवेक बुद्धि और न्यायशीलता इतनी जागरूक है कि वह बाप-दादो से मिली जमीन का मालिक स्वय को नही मानता क्योकि वह उसने अपने बाहुबल से पैदा नही की है।[5] उपन्यास के प्रारभ मे ही उसने सत्यासत्य का विवेचन कर दिया है,[6] जिसका आधार वह जीवन पर्यन्त नही त्यागता। धर्मपालन मे प्रवृत्त सूरदास सामाजिक लाछनो से भी भयभीत नही होता। सुभागी को कष्ट के समय आश्रय देता है क्योकि—'आदमी का धरम है कि किसी को दुख मे देखे तो उसे तसल्ली दे। अगर अपना धरम पालने मे भी कलक लगता है तो लगे बला से। इसके लिए कहा तक रोऊ। कभी न कभी तो लोगो को मेरे मन का हाल मालूम हो जायगा।'[7] वह अहिंसा का अनन्य उपासक है। उसकी जमीन को लेकर जब नगर मे विशाल आन्दोलन उठ खडा होता है और हिंसात्मक प्रणाली द्वारा जान सेवक को परास्त करने का आयोजन होता है तो सूरदास लठैतो से कहता है कि तुम लोग यह ऊधम क्यो मचा रहे हो। वह उन्हें हिंसा मार्ग के अवलम्बन से रोकता है।[8] उसे मर जाना इष्ट था किंतु हिंसात्मक साधन प्रिय नही था।[9] रगभूमि के दोनो गीतो मे गाधी दर्शन के प्रति पूर्ण विश्वास तथा उसकी सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। रामदीन गुप्त ने प्रेमचन्द के इन गीतो के सबध मे लिखा है—'इन गीतो का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द इनके द्वारा स्वाधीनता सग्राम के वीर सेनानियो को गाधी दर्शन के मूल सिद्धान्तो का बोध कराना चाहते थे।'[10]

---

१. रामदीन गुप्त प्रेमचन्द और गाधीवाद पृ० १९१
२ प्रेमचन्द रगभूमि पृ० २३५
३ वही, पृ० ३६०
४. वही, पृ० २०
५ वही, पृ० १२७
६. वही पृ० १७
७ प्रेमचन्द रगभूमि, पृ० १६१
८. वही, पृ० ३४५
९ वही, पृ० ३४५
१० रामदीन गुप्त : प्रेमचन्द और गाधीवाद : पृ० १९८

रंगभूमि में विनय, कायाकल्प के चक्रधर तथा कर्मभूमि के अमरकांत सूरदास की तुलना में अधिक दुर्बल पात्र हैं। लेकिन इन्हें भी गांधीवादी सिद्धान्त पूर्णतया मान्य है। इनके चरित्रों में गांधी जी के सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति अधिक सशक्त रूप में नहीं हुई है। इन लोगों ने गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को ही विशेष रूप से क्रियान्वित किया है। इनके द्वारा गांधी जी का सत्य अहिंसा का सिद्धान्त क्रियात्मक रूप में सम्मुख आता है। नारी पात्रों में प्रेमचन्द के रंगभूमि उपन्यास की नायिका सोफिया इस दिशा में कुछ अग्रसर दिखाई देती है। साम्प्रदायिकता तथा धार्मिक भेदात्मकता का उसमें लेशमात्र भी नहीं है। वह सत्यासत्य के निरूपण में सदैव रत रहती है। धर्मतत्वों को बुद्धि की कसौटी पर कस कर देखती है यह उसका स्वाभाविक गुण है। केवल धर्म ग्रन्थों के आधार पर कोई सिद्धान्त उसे मान्य नहीं है। अध्यात्म और आत्मदर्शन उसके चरित्र की विशेषता है।[1]

प्रेमचन्द जी के पश्चात् सियारामशरण गुप्त के उपन्यासों में गांधीवाद अथवा गांधी-दर्शन की अभिव्यक्ति मिलती है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'गोद' एवं 'अन्तिम आकांक्षा' हैं। उन्होंने गांधी जी के सत्य की प्रतिष्ठा सामाजिक जीवन में अति सरल रूप में की है। 'गोद' उपन्यास में निंद्य अपवाद के कारण कौसा की कन्या किशोरी का जीवन समाज की वेदी पर बलिदान होने जा रहा था, तभी शोभाराम अन्त प्रेरणा तथा सत्य द्वारा प्रेरित होकर अपने परिवार की अनभिज्ञता में उससे विवाह कर लेता है।[2] सामाजिक अत्याचार का अहिंसात्मक रीति से निराकरण गांधी जी की विशेषता थी। सियारामशरण गुप्त ने शोभाराम द्वारा उस सिद्धान्त एवं आदर्श का पालन अवश्य कराया है किन्तु उसका चरित्र अत्यधिक दुर्बल है, उसमें परिवार तथा बड़े भाई का सामना करने का साहस नहीं है। उससे अधिक सिद्धान्त पालन की शक्ति एवं सबलता विधवा सोना में है, जो इस उपन्यास की गौण पात्र है। 'अन्तिम आकांक्षा' में आत्म-चरित प्रधान शैली में स्वयं लेखक का व्यक्तित्व उमड़ आया है।

राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' नामक राजनीतिक उपन्यास में १९२० ई० से ३७ ई० तक के राष्ट्रीय आन्दोलन की विस्तृत कथा दी गई है। गांधी जी के राष्ट्रवादी दार्शनिक विचारों का भी निरूपण विस्तार से किया गया है। उपन्यास के आरम्भ में ही अहिंसा का विवेचन करते हुए लेखक ने लिखा है 'दलीप ! अहिंसा कुछ दब्बूपन की दीनता नहीं है। जुल्म के आगे हम सर रोपते हैं कुछ सर नहीं झुकाते। दिलेरों की अहिंसा और है, बुजदिलों की अहिंसा और। हमारी अहिंसा में जो हिंसा की बू है वह हमारी अपनी वृत्तियों से है—दूसरे से नहीं। और सच पूछो तो आज अहिंसा कांग्रेस की नीति ही नहीं, गांधीत्व की भित्ति भी है। संसार इसे एक राजनीतिक शास्त्र समझा करे मैं तो इस जीवन का मूल तत्व मानता हूं।'[3] अहिंसा के प्रभाव के सम्बन्ध में आगे कहलाया है, 'अहिंसा तो वह तलवार है, जिसकी चोट

१. प्रेमचन्द . रंगभूमि . पृ० ४२
२. सियारामशरण गुप्त : गोद : पृ० १०७
३. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० २०

बचाने को कोई ढाल ही नहीं।"[1] हिंसा और अहिंसा का अन्तर स्पष्ट करते हुए लेखक ने लिखा है, 'हिंसा की तह में तुम्हारा भय है, अहिंसा की तह में आत्मसंयम है।[2]

प्रेमचन्द-युग के अन्य उपन्यासकारों ने गांधीवादी सिद्धान्तों की संयोजना की अपेक्षा तत्कालीन उत्पीडन का अधिक वर्णन किया है। 'रंगभूमि' के 'सूरदास' जैसे गांधी दर्शन को सजीव एवं मूर्त रूप प्रदान करने वाले चरित्र की सर्जना अधिक न हो सकी।

कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द, सुदर्शन तथा विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियों में सत्य तथा अहिंसा की पुष्टि मिलती है। प्रेमचन्द जी की 'विश्वास' कहानी का नायक आप्टे राष्ट्रसेवी प्रजा दुःखपीडित अहिंसाव्रतधारी है। विदेशी शासकों के अत्याचार से विक्षुब्ध जनता को वह अहिंसा का उपदेश देता है। शुद्धात्मा, नैतिक आचरणपूर्ण, दिव्य प्रेम ललित आप्टे के सत्य तथा अहिंसा संबंधी सिद्धान्तों ने मिस जोशी के हृदय का परिवर्तन कर दिया था।[3]

प्रेमचन्द जी की 'मैकू' कहानी में सत्याग्रही वीरों के अहिंसात्मक सिद्धान्त का वर्णन है। 'इनके जो महात्मा हैं, वह बड़े भारी फकीर हैं। उनका हुक्म है कि चुपके से मार खा लो, लड़ाई मत करो।'[4]

सुदर्शन की 'अमरीकन रमणी', 'पथ की प्रतिष्ठा', 'सत्य मार्ग', 'अंधेरे में', 'कैदी', सुभद्रा का उपहार' आदि कहानियों में सत्य की पुष्टि मिलती है। गांधी जी के अपने युग का सत्य था अपने देश, धर्म, जाति, सभ्यता, रीति नीति के प्रति सच्चाई, गौरव की भावना तथा इनका सम्मान। 'अमरीकन रमणी'[5] कहानी में मदनलाल तथा सावित्री के चरित्र प्राणिमात्र के प्रति दया करुणा की भावना तथा देशभक्ति के उदाहरण हैं। 'पथ की प्रतिष्ठा'[6] कहानी में सुदर्शन जी ने सिक्ख धर्म, अकाली फूला-सिंह के व्यक्तित्व में सदाचार, सच्चरित्रता, न्याय एवं सत्य को मूर्त किया है। महाराजा रणजीतसिंह ने सत्य-धर्म-पालन के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए साधारण प्रजाजन की भांति पथ के बीच अपने अपराध की क्षमा मांगी थी और दण्ड स्वीकार किया था। 'सत्यमार्ग'[7] में लेखक ने देशसेवा तथा देश के लिए प्राणोत्सर्ग को सत्य मार्ग कहा है। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के लिए जीवन का यही एक सत्य था। 'अंधेरे में' कहानी द्वारा वे सत्य की रक्षा के लिए भगवान को सरकारी नौकरी की अपेक्षा कष्ट सहन की प्रेरणा देते हैं। अमीर मुसलमान अब्दुल वहीद द्वारा सत्य

---

१ राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० २०
२. वही, पृ० २०
३ प्रेमचन्द मानसरोवर (भाग ७) . पृ० ६१
४. वही, पृ० ६६
५. सुदर्शन : सुप्रभात . पृ० १२
६ सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० ३८
७ वही, पृ० ५१

इसका नायक पथिक सम्पूर्ण देश का पर्यटन करता है। जनता के कष्टो का परिचय पाने के उपरान्त जनता मे नृप से सब प्रकार के सम्बन्धो का परित्याग करने की भावना भर देता है। इसका कारण यह है कि वह अन्यायी अधर्मी, अत्याचारी शासक का साथ देना पाप समझता है। वह कहता है कि प्रजा यदि राजा का साथ छोड दे तो राजा अकेला क्या कर सकता है ? जब तक प्रजा इस पाप से निवृत्त नहीं होती तब तक उसका कष्ट दूर नही हो सकता। असहयोग आन्दोलन निष्क्रय प्रतिरोध 'नही था। गाधी जी ने इस आन्दोलन द्वारा कर्मवाद का सन्देश दिया था। जीवन संघर्ष से मुख मोडने की अपेक्षा पौरुष, साहस, सत्य, न्याय, श्रद्धा, करुणा उदारता, सुशीलता, धर्म, क्षमा आदि ईश्वरीय गुणो का विकास कर स्वदेश की सेवा को मनुष्य का परम धर्म माना था। उनके इस आदर्श की पूर्ति पथिक द्वारा होती है।[1] देशवासियो मे, शासक वर्ग के प्रति विरोध भावना भरने के लिए पथिक पर राजद्रोह का अभियोग लगा कर मृत्यु दड दिया जाता है, उसकी पत्नी उसके लिए लाये गये विष का स्वय पान कर लेती है, पुत्र का वध किया जाता है लेकिन पथिक सत्य एव अहिसा का पथ नहीं त्यागता। शासको की नृशसता से क्रोधित युवक-वर्ग को शाति का पाठ पढाते हुए अहिसा का मर्म समझाता है। शारीरिक सुख त्याग कर वह मोह वस्त्र पहनता है। अन्त मे सत्य का आग्रही प्राणोत्सर्ग कर सत्याग्रह आन्दोलन की सभी परीक्षाओ मे उत्तीर्ण होता है।

पडित रामचरित उपाध्याय, श्री त्रिशूल तथा नाथूराम शकर ने द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली मे सत्याग्रह आन्दोलन मे सहयोग देने का आग्रह किया है। जीवन-दर्शन एव जीवन मार्ग के रूप मे विकसित गाधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन को देश-वासियो पर परम धर्म मानते हुए पडित रामचरित उपाध्याय ने लिखा है—

> तू सत्याग्रह के शस्त्र को धारण क्यो करता नहीं ?
> क्यों अपयश से डरता नहीं लज्जा से मरता नहीं ॥[2]

सन् १६२०-२१ ई० का असहयोग आन्दोलन हिन्दू और मुसलमान की एकता के सयोग पर छेडा गया था। गाधी जी ने खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमानो को भी राष्ट्रीय आन्दोलन के पक्ष मे कर लिया था। श्री त्रिशूल ने इस सम्बन्ध मे कहा है—

> हिन्दू मुस्लिम योग एक ऐसा सयोग था
> न भोगा किसी ने भी दुख भोग ऐसा,
> र टूटा लगा दास्य का रोग ऐसा ॥[3]

गाधी जी ने वैचारिक राष्ट्रवादिता को असहयोग आन्दोलन द्वारा कर्म-क्षेत्र मे ला खडा किया था। उस अमूर्त भावना को कर्म मे ढाल कर मूर्त रूप प्रदान किया

१. रामनरेश त्रिपाठी पथिक : पृ० ४८
२. रामचरित उपाध्याय : राष्ट्र भारती : पृ० ४५
३. श्री त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : पृ० ४३

था। भारत को आत्म-विश्वास से भर कर, उन्नति और विकास के लिए धर्म-क्षेत्र में लाने के लिए, गांधी जी के सदृश 'त्रिशूल' जी ने कहा है—

इनके हृदयों में अमर सुदृढ आत्म विश्वास हो।
आयें कर्म क्षेत्र में उन्नति और विकास हो।।[1]

कवि ने देशवासियों को ऐक्य सूत्र में बांध राष्ट्र यज्ञ में सम्मिलित होने और स्वातंत्र्य रूपी सोम सुधा का पान कर मृत होती जाति को प्राणदान देने का अनुरोध किया है। असहयोग-आन्दोलन द्वारा ही पंजाब की जलियांवाला बाग वाली नृशंस घटना के घाव पर मलहम लगाया जा सकता था। अतः त्रिशूल जी ने असहयोग की कठिन परीक्षा देने के लिए देशवासियों को प्रोत्साहित किया था।[2] कवि ने असहयोग की आग भड़काने के लिए बारबार भारतीयों की हीनावस्था तथा उनके उत्पीडन की ओर ध्यान आकृष्ट किया है—

न उतरे कभी देश का ध्यान मन से, उठाओ इसे कर्म से मन वचन से।
न जलना पड़े हीनता की जलन से, वतन का पतन है तुम्हारे पतन से।
असहयोग कर दो असहयोग कर दो।।[3]

नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने 'बलिदान गान' में देशभक्त वीरों को गांधीजी का मन्त्र पढ़ कर, सत्यधारी अगुओं के आगे बढ़ कर, विदेशी शासकों की अत्याचार की वेदी पर बलिदान होने के लिए उत्साहित किया है—

सिंहो सत्यामृत-प्रवाह में गोत खाय बहना होगा,
पोल खोल खोटे कुराज्य की दुश्शासन कहना होगा।
पशु-बल ठेलेगा जेलों में वर्षों तक रहना होगा,
मार खाय निर्दय दुष्टों की घोर कष्ट सहना होगा।
जाति जीवनाधार रक्त से कर्म-कुण्ड भरना होगा,
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।।[4]

युग की पुकार को काव्य में इतिवृत्तात्मक शैली में प्रस्तुत कर इन कवियों ने अपने युग धर्म का पूर्ण निर्वाह किया है। इनका काव्य साधारण पाठक की बुद्धि के अनुकूल है यद्यपि रस एवं काव्य कला की दृष्टि से इनकी रचनाओं को उत्कृष्ट कोटि के काव्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्राकुमारी चौहान ने असहयोग आन्दोलन का वर्णन अधिक भावात्मक शैली में कलात्मकता के आग्रह के साथ किया है। उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन के ध्येय और सिद्धान्तों की प्रत्यक्ष एवं सुस्पष्ट अभिव्यंजना की है। पापी शासन से असहयोग कर, गांधी जी ने स्वेच्छया शासकों के दण्ड को स्वीकार

---

१. त्रिशूल राष्ट्रीय मन्त्र पृ० ५०
२. वही, पृ० ३५
३ वही, पृ० ४१
४. सम्पादक—हरिशंकर शर्मा : शंकर सर्वस्व : पृ० २४८

किया था। सत्याग्रही कैदी के नाते उन्होंने अदालत मे जो बयान दिया था, उसका संक्षिप्त काव्य रूपान्तर चतुर्वेदी जी ने प्रस्तुत किया है—

समझाता हूँ अत्याचारी शासन पर हो प्यार नहीं,
जो करते हो प्यार छोड दे है इससे उद्धार नहीं,
अत्याचारी का वध कर दे यह पशुता दरकार नहीं,
पापी प्यार हमारा चाहे यह उसको अधिकार नहीं,
+ + +
पापी शासन पर अप्रियता उपजाना श्रुति सम्मत है,
इसीलिए जालिम पर ममता न हो, यही मेरा मत है,
बाकी एक उपाय बचा था जिसकी की गाधी ने याद
शीघ्र अहिंसक असहयोग से मातृभूमि होवे आजाद ॥[1]

गाधी जी ने असहयोग आन्दोलन के लिए आत्म-बलिदान को आवश्यक धर्म माना था, इस धर्म के पालन मे ही स्वराज्य सभव था। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य मे आन्दोलन के विविध अग - स्वराज्य, आत्मबलिदान, कारावास आदि के वर्णन मिलते हैं।[2]

सुभद्राकुमारी चौहान की कविता मे सत्याग्रही के वीरत्व और नारी की भावुकता का मिश्रित भाव झलकता है। इसका कारण था कि गाधी जी द्वारा क्रियान्वित अहिंसात्मक राष्ट्रीय आन्दोलन ने भारतीय पुरुष एव नारी दोनो को एक अपूर्व उत्साह, स्वाभिमान तथा आत्मबलिदान की भावना से भर दिया था। राखी जैसे पुण्य पर्व पर, नारी ने अपने सत्याग्रही वीरो के लिए गौरव का अनुभव किया था। सुभद्रा जी तत्कालीन नारी जागृति और राष्ट्रीय चेतना की प्रतीक है। वे अपने असहयोगी सत्याग्रही वीर भाई के लिए रेशम की नही, लोहे की हथकडियो की राखी भेजती हैं जिससे वे भारत-माता के बन्धन काटने मे समर्थ हो सकें—

आते हो भाई ? पुनः पूछती हूँ—
कि माता के बन्धन की है लाज तुमको ?
तो बन्दी बनो, देखो बन्धन है कैसा,
चुनौती यह राखी की है आज तुमको ॥[3]

सुभद्रा जी के काव्य मे अहिंसाव्रत धारी सत्याग्रही वीरो की सघर्ष प्रणाली का वर्णन प्रतीकात्मक शैली मे भी मिलता है। 'विजयी मयूर'[4] कविता मे मयूर सत्याग्रही का प्रतीक है। विदेशी सरकार की क्रोध रूपी काली घनघोर घटाओ के अत्याचार रूपी पत्थरो से भी उसने अपनी स्वराज्य की पुकार बन्द नहीं की। अन्त मे मयूर की विजय, सत्याग्रही वीर की विजय है।

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी माता : पृ० ७१-७२
२ वही, पृ० ५५
३. सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ७०
४. सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ७६

सियारामशरण गुप्त ने 'बापू' काव्य-ग्रन्थ मे महात्मा गाधी के प्रति अपनी अनन्य श्रद्धा एव भक्ति समर्पित करते हुए, सत्याग्रह आन्दोलन की लोकप्रियता पर प्रकाश डाला है। वस्तुत गाधी जी ने देशव्यापी आन्दोलन को जन्म दिया था। सियारामशरण जी ने लिखा है कि जब बापू अपने सत्याग्रही वीरों की टोली लेकर सत्याग्रह आन्दोलन के लिये चलते थे तो मार्ग मे जनता उत्सुकतावश उनके दर्शनो के लिए खड़ी खड़ी रहती थी।[1] जनता उनकी स्वर्गीय पुण्य रश्मि सम शुचि कान्तिमय झलक देखकर अपना जीवन सार्थक समझती थी।[2]

सोहनलाल द्विवेदी ने भी आन्दोलन से सबधित कविताए लिखी हैं। सेगाव का सन्त'[3] 'दाण्डी यात्रा'[4] उनकी प्रसिद्ध रचनाए हैं। गांधी जी का सत्याग्रह आदोलन जन-आन्दोलन था। सम्पूर्ण देश राष्ट्रीयता के रग में रगकर आन्दोलन-उत्साह से भर गया था। सोहनलाल द्विवेदी ने प्रसाद गुण सम्पन्न ओजपूर्ण भाषा मे इसका उल्लेख किया है—

> चल पड़े ग्राम ग्राम, चला नगर-नगर, ये कोटि कोटि चल पड़े किधर ?
> नवयौवन का आवेश लिये, यह कौन चला जाता पथ पर,
> नवयुग का सदेश लिये ?[5]

'दाण्डी यात्रा' कविता मे गाधी जी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय दाण्डी जाकर नमक-कानून भग करने का उल्लेख सजीव भाषा मे मिलता है। बापू की दाण्डी यात्रा ने जनजीवन मे हलचल मचा दी थी। इसमे पत्नी पति को सहयोग दे प्रमुदित हुई थी, भाई-बहन चल पड़े थे, जननी ने अभिमान के साथ पुत्र को विदा किया था। इस प्रकार बच्चा, बूढ़ो, माँ-बेटो बहनों भाइयो की यह टोली मतवाली बनकर झूमती हुई उर पर गोली खाने चल दी थी।[5] युद्ध की इस नवीन प्रणाली का विस्तृत वर्णन द्विवेदी जी की इस कविता मे मिल जाता है। आन्दोलन ने दिशाओ को कपा कर, चारो ओर अपनी धूम मचा दी थी—

> कप उठीं दिशायें नीरव हो छा गया एक स्वर निर्विकार।
> भारत स्वतत्र करने का प्रण है यही, यही, रण-मोक्ष द्वार॥[6]

सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के मध्य मे गाधी जी गोलमेज कान्फ्रेंस मे सम्मिलित होने विलायत गए थे, यद्यपि यह यात्रा व्यर्थ ही हुई थी। कवि बच्चन ने गाधी जी के विलायत प्रस्थान पर 'भारत माता की विदा' कविता गाधी जी की इस यात्रा का

१ सियारामशरण गुप्त बापू पृ० ११
२ वही, पृ० १५
३ सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी : पृ० ४४
४ वही, पृ० ६६
५. सोहनलाल द्विवेदी · भैरवी : पृ० ४५
६ वही, पृ० ७४
७. वही, पृ० ७५

भावात्मक चित्रण किया है।[1]

इन राष्ट्रीय आन्दोलनो मे कारावास अथवा जेल का महत्वपूर्ण स्थान था, क्योकि विदेशी शासको ने इन राष्ट्र-वीरो को कारावास का कठोर दण्ड देकर, देश की राष्ट्रीय भावना को कुचलने का साधन ढूढा था। वहाँ उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट दिये जाते थे, जिससे वे राष्ट्रीयता के सत्य-मार्ग से विचलित हो जायें। विदेशी शासको ने दमन की कोई भी योजना अछूती न छोडी, लेकिन देशवासियो ने शान्तिपूर्वक गाधीजी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर राष्ट्रीय भावना को अधिक प्रबल रूप प्रदान किया। गांधी जी की अहिंसात्मक नीति तथा सत्याग्रह आन्दोलन ने कारागृहो को मन्दिर बना दिया था, जहा बन्दिनी भारतीय जनता को अपने सत्य रूपी कृष्ण को प्राप्ति हो सकती थी। हिन्दी-साहित्य मे कवियो की वाणी में कष्ट-सहन की इस अनोखी रीति तथा कारावास का अनेक रूपो मे वर्णन मिलता है। श्री त्रिशूल के अभिमत मे कारागृह तो सत्याग्रही के लिये क्रीडास्थल बन गये थे, जहाँ वे आनन्दपूर्वक देश की स्वतन्त्रता के लिये कष्ट सहते थे।[2] कवि ने मौन रूप से जेलखानो की मार को सहकर अनीति, अन्याय और अधर्म से सघर्ष के लिए प्रेरित किया था। उन्होंने कारावास को रगमहल का रूप दिया था—

> सह कर सिर पर मार मौन ही रहना होगा,
> आये दिन की कड़ी मुसीबत सहना होगा।
> रंगमहल से जेल आहनी गहना होगा,
> किन्तु न मुख से कभी 'हन्त हा!' कहना होगा।
> डरना होगा ईश से, और दुखी की हाय से,
> भिड़ना होगा ठोक कर खम, अनीति अन्याय से ॥[3]

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रीयता के आवेश मे 'जन्माष्टमी'[4] कविता मे कृष्ण जन्म की पुण्य रात्रि का पुन आह्वान किया है जिसमे हिन्दू जाति के पापो का प्रहरी सो जाये, मा के बन्धन खुल जायें और कारागृह मन्दिर बन जायें। कृष्ण जन्म पाप का अन्त करने के लिये हुआ था। अत. इस काव्य मे गुप्त जी ने प्रतीकात्मक शैली मे भारत की अंग्रेज रूपी कस की कुटिल नीति तथा पाप के साधन को कारागृह रूपी मन्दिर मे बन्दिनी भारतीय जनता के सत्य रूपी कृष्ण द्वारा विनष्ट करना चाहा है। कवि के मतानुसार कुटिल नीतिज्ञ अंग्रेज रूपी कस को ससैन्य विध्वस कर ही देश मे धन, धान्य, आमोद, प्रमोद का माखन-मिश्री, मोहन-भोग का

---

१. बच्चन · प्रारभिक रचनाए (दूसरा भाग) पृ० १५
(यह प्रारभिक कविताओं का प्रथम संग्रह 'तेरा हार' के नाम से १६३२ ई० मे प्रकाशित हुआ)
२. राष्ट्रीय झंकार : दूसरा भाग : पृ० ५
३ त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : पृ० ८
४. मथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ७२

सकता था और तभी यशोदा रूपी माताएं थालो को सजा कर अपने बाल रूप गोपालो को भोजन करा सकती थी।[१] राष्ट्रीय भावना मे हिन्दू धार्मिक भावना का सामंजस्य वैष्णव कवि मैथिलीशरण गुप्त की विशेषता है।

माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'कैदी और कोकिला'[२] (सन् १९३०) मे सत्याग्रही कैदी के प्रति कवि हृदय की संवेदना भावात्मकता के आग्रह के साथ अभिव्यंजित हुई है। राष्ट्रीय भावना के उन्मेष का इससे सुन्दर उदाहरण हिन्दी काव्य जगत् मे विरल है। कारागृह की ऊँची काली दीवारो, चोरो, बटमारो के डेरों के बीच घिरे सत्याग्रही कैदियो को भरपेट भोजन भी प्राप्त नही होता था।[३] दिन भर ब्रिटिश राज की हथकडियो का गहना पहनकर कोल्हू चलाना, मोट खीचना तथा मिट्टी कूटना सत्याग्रही कैदियो का काम था। राष्ट्रभक्त कैदियो की मौन रूप से दण्ड सहने की शक्ति एवं कठोर परिश्रम ने ब्रिटिश साम्राज्य की 'अकड' कम कर दी थी। ब्रिटिश साम्राज्य की जड़े हिला दी थी। माखनलाल चतुर्वेदी ने व्यंग्यात्मक शैली मे कारागार के जीवन, कैदी की दशा का सजीव चित्र खीचा है—

क्या ?—देख न सकती जंजीरो का गहना ?
हथकडिया क्यो ? यह ब्रिटिश-राज का गहना,
कोल्हू का चर्रक चूं ?—जीवन की तान,
मिट्टी पर लिखे अंगुलियों ने क्या गान ?
हूं मोट खींचता लगा पेट पर जूआ,
खाली करता हूं ब्रिटिश अकड का कूआ।
दिन मे करुणा क्यो जगे, रुलाने वाली,
इसलिए रात मे गजब ढा रही आली ?
इस शान्त समय मे,
अन्धकार को बेध, रो रही क्यो हो ?
कोकिल बोलो तो !
चुपचाप, मधुर विद्रोह-बीज
इस भांति बो रही क्यों हो ?
कोकिल बोलो तो ![४]

काले शासन की, काली रात्रि मे, काली काल कोठरी मे, काली टोपी और काली कमली से युक्त परिधान तथा काली लोहशृंखला मे आबद्ध कैदी के समक्ष, काली किन्तु स्वतन्त्र कोकिल का स्वर संघर्ष का शंखनाद-सा सुनाई पड़ता है।[५]

१. मैथिलीशरण गुप्त . हिन्दू . पृ० ७३-७४
२. माखनलाल चतुर्वेदी : हिम किरीटिनी : पृ० १४
३. वही, पृ० १५
४. वही, पृ० १७
५. वही, पृ० १८

स्वतन्त्र प्रकृति के इन वीर कैदियों को संवेदना किन्तु साथ ही संघर्ष की प्रेरणा मिलती है। युगीन राष्ट्रीय भावना ने कवि के अन्तरतल तक का स्पर्श कर लिया था। वह उसकी अनन्य अनुभूति बन गई थी। कवि की राष्ट्रीय भावना भी, गांधी जी के सदृश संकुचित अथवा सीमित नहीं है। अतः हथकड़ियों से प्यार तथा जंजीरों का हार केवल भारत की स्वाधीनता के लिए ही ग्रहण किये गये थे, अपितु इनके द्वारा अखिल जगती-तल का उद्धार कर विश्व की परममुक्ति का द्वार खोल देना कवि को इष्ट था।[1]

सियारामशरण गुप्त ने 'बापू' में गांधी जी के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांतों का विवेचन काव्य रूप में करते हुए 'कारागार' के संबंध में भी लिखा है। कवि ने कारागार का अत्यन्त घृणित, क्रूर एवं भयंकर चित्र खींचते हुए कारागार को 'अबन्धन का मुक्ति द्वार' बनाने का समस्त श्रेय गांधी जी को दिया है—

> धन्य यह कारागार ?
> वह तो अबन्धन का मुक्ति द्वार।
> अंकुरित होकर वहां अखेद
> मुक्ति-बीज क्रूर भित्ति-भूमि भेद
> फूट पड़ा बाहर है,
> लाली लिये ले रहा लहर है
> मृत्यु के निकेतन पर जीवन का पुण्य-केतु।
> जा रहे वहां को तीर्थ यात्रा हेतु
> लक्ष लक्ष नारी-नर
> मंगलेच्छा सर्व-सुखकारी कर,
> धर के तुम्हारे वे चरण चिह्न ॥[2]

सियारामशरण जी की गांधी जी पर अटूट श्रद्धा है। कवि सम्पूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलन का समस्त श्रेय मान्यवर गांधी जी को देते हुए कहता है कि गांधी जी की प्रेरणा से राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख अंग कारागार सबके लिए सहजगम्य देवगृह बन गये थे।

छायावाद युग के अन्तिम चरण में छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पन्त राष्ट्र की ठोस पृथ्वी पर उतर आये। उन्होंने अपने युग-जीवन पर दृष्टिपात किया। राष्ट्रीय संग्राम के अमर-सेनानी महात्मा गांधी के प्रति वे अमित श्रद्धा से भर गये। 'बापू के प्रति' कविता में कवि ने बापू की सत्याराधना, अहिंसा, दिव्यता, उदारता आदि विशिष्ट गुणों के स्मरण के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन में, कारागृह के महत्त्व पर श्रद्धान्वित शब्दों में प्रकाश डाला है क्योंकि कारागृह में ही मानव-आत्मा की मुक्ति का

१. माखनलाल चतुर्वेदी : हिम किरीटिनी : पृ० ९६
२. सियाराम शरण गुप्त : बापू : पृ० ३६

दिव्य जन्म हुआ है—

साम्राज्यवाद का कंस, बंदिनी मानवता पशु बलाक्रांत,
शृंखला दासता, प्रहरी बहु निर्मम शासन-पद शक्ति-भ्रांत
कारागृह में दे दिव्य जन्म मानव आत्मा को मुक्त कांत,
जन शोषण की बढ़ती यमुना तुमने की नत, पद-प्रणत, शांत।[1]
(अप्रैल, १९३६)

सत्याग्रही के कर्तव्यों का विवेचन भी काव्य में मिलता है। श्री त्रिशूल जी ने इतिवृत्तात्मक शैली में सत्याग्रही के कर्तव्यों की विवेचना इस काव्य में की है—

उसका है कर्तव्य जो कि सत्याग्रह ठाने,
अन्यायी कानून असत्यादेश न माने।
छेड़े हरदम रहे प्रेम आनन्द तराने,
निश्चित अपनी विजय सत्य के रण में जाने।
ज्यों ज्यों घहराती उधर, क्षण-क्षण जीवन जग हो,
त्यों त्यों गहराता इधर, दृढ़ उमग का रंग हो।।[2]

इसके साथ ही त्रिशूल जी ने सत्याग्रह के कठिन व्रत की आवश्यक मान्यताओं को भी स्पष्ट कर दिया था। इस व्रत का मूलाधार था त्याग। सत्याग्रही को अपने व्रत पर अटल रहकर धैर्यपूर्वक तथा सहनशक्ति द्वारा विपदाओं का सामना करना पड़ेगा—

यह व्रत है अति कठिन समझ कर इसको लेना,
देह गेह, प्रिय, प्रिया, पुत्र-ममता तज देना।
अपने बल से नाव पड़ेगी इसमें खेना,
करना होगा सामना भीषण अत्याचार का
सहना होगा घाव पर घाव तीर तलवार का।।[3]

सच्चा असहयोगी, कष्ट-सहन की परीक्षा में भयभीत नहीं होता। कारागार उसकी क्रीड़ा का आगार बन जाता है और जीवन के ध्येय स्वराज्य पर वह सब कुछ न्यौछावर कर देता है—

कारागृह गृह हुआ खेलने औ खाने का।
तनिक नहीं भय कभी वहां आने-जाने का।।
वहां बड़े आनन्द सहित हम तो जायेंगे।
कार्य करेंगे, नहीं भाग्य पर पछतायेंगे।।
× × ×

---

१ सुमित्रानन्दन पंत युगान्त पृ० ६८
२ त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र. पृ० ४
३. वही, पृ० ८

इसीलिये हम अड़ गये, ले लेंगे निज ध्येय को।
बस स्वराज्य उद्देश्य पर, देंगे सभी विधेय को॥[1]

हिन्दी नाटकों में सत्याग्रह आन्दोलनों की अभिव्यक्ति

बदरीनाथ भट्ट, सुदर्शन, जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, गोविन्दवल्लभ पंत आदि ने ऐतिहासिक नाटकों की ही विशेषतया रचना की थी। उनके नाटकों का संघर्ष राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए युद्ध, इस आन्दोलन को प्रेरणा मात्र देता है। उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति इनके नाटकों में नहीं मिलती। बेचन शर्मा उग्र' के 'महात्मा ईसा' नामक नाटक में प्रच्छन्न रूप से सत्याग्रह अथवा असहयोग आन्दोलन का वर्णन मिलता है। गांधी जी और महात्मा ईसा के व्यक्तित्व द्वारा सत्य की प्रतिष्ठा का साधन एक ही है। महात्मा ईसा असत्य, अन्याय तथा अनीति का उन्मूलन असहयोग तथा अहिंसात्मक सत्याग्रह की नीति द्वारा करते हैं। वे असहयोग की विवेचना भी कर देते हैं।[2] गांधी जी के सदृश महात्मा ईसा भी कहते हैं, 'यदि पिता की आज्ञा पुत्र की आत्मा के विरुद्ध है तो उसे चाहिये कि वह अपने पिता से अत्यन्त नम्र शब्दों में असहयोग कर दे।'[3] दुरात्माओं से असहयोग रूपी धर्म-युद्ध कर कोड़ों की मार को विनोद और कारागार को विश्राम-स्थान समझने के लिए वे उपदेश देते हैं। महात्मा ईसा के सत्याग्रह आन्दोलन में भी गांधी जी अपने युग के सदृश बालक दल झंडिया लेकर गाते हुए जुलूस निकालते हैं। महात्मा ईसा भी सभा में भाषण करते दिखाये गये हैं। उनके आन्दोलन की प्रभावात्मकता का वर्णन हैरोद के इन शब्दों में मिलता है—'कैसा विचित्र आदमी है। इसके आन्दोलन के सामने हमारा दमन पंगु है—प्राणहीन जान पड़ता है। वह लड़ता तो है पर उसकी लड़ाई कोई देख नहीं सकता। लोग तलवार से साम्राज्य की जितनी हानि कर सकते हैं, उससे कहीं अधिक हानि बिना शस्त्र धारण किये ही ईसा कर रहा है। महात्मा ईसा। गलियों में, बाजारों में, ग्रामों में—जहां देखो वहीं महात्मा ईसा। इस समय जनता का सर्वस्व यह ढोंगी महात्मा ही बना हुआ है।...'[4] वस्तुतः यह गांधी जी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन का ही वर्णन है। गांधी जी की मुट्ठी भर हड्डियों के व्यक्तित्व का इतना प्रभाव था कि लक्ष लक्ष जनता उनके साथ थी।[5] शासक वर्ग आन्दोलन के इस नवीन रूप से आतंकित हो गया था। उसने प्रजा-द्रोह तथा शांति भंग का आरोप लगा कर सत्याग्रही वीरों को दण्डित किया। इस नाटक में असहयोग आन्दोलन का विस्तृत किंतु प्रच्छन्न वर्णन किया गया है।

१. निहालचन्द वर्मा : राष्ट्रीय झंकार (दूसरा भाग), पृ० ५
२. बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ० १२३
३. वही, पृ० १२३
४. बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ० १५५
५. वही, पृ० १५६

बाबू जमनादास मेहरा के 'पजाब केशरी' नाटक को पूर्णतया राजनीतिक नाटक कहना उपयुक्त होगा। इसमे लाला लाजपतराय, राष्ट्रीय स्वय सेवको और प्रजा द्वारा साइमन कमीशन के बहिष्कार का प्रत्यक्ष रूप से चित्रण किया गया है—

जिनको हालत हिन्द की लेने को लाया जा रहा।
फर्ज भी उनका 'अदल' हमको बताया जा रहा॥
सामने वे भी न हो, आये हैं वे जिनके लिये ?
क्यो न हम अपने कहें, रोका डराया जा रहा ?
क्या यही है साइमन का वो कमीशन आपका।
जिनको आंखो से हमारे यू हटाया जा रहा ?
दरबे मे उनको बन्द कर भारत दिखाया जा रहा।
औरतें हैं क्या जो घू घट मे छिपाया जा रहा ?[1]

जनता द्वारा कमीशन के तिरस्कार,[2] सत्य पर अटल राष्ट्र भक्तो पर पुलिस के प्रहार, लाला लाजपतराय पर लाठी के आघात, उनकी मृत्यु आदि समस्त उल्लेख ओजपूर्ण शैली मे मिलते हैं। वे भारतीयो को अपनी करुण स्थिति पर विक्षुब्ध कर राष्ट्र-निर्माणात्मक कार्य मे सलग्न करने मे सहायक हैं।

इस युग म राष्ट्रीय आन्दोलन के सक्रिय रूप का वर्णन इन कतिपय रचनाओ मे ही मिलता है। ऐतिहासिक नाटको का सघर्ष अपने युग के सत्याग्रह आन्दोलन की ओर सकेत करता है। बदरीनाथ भट्ट के 'दुर्गावती' मे स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अकबर रूपी विदेशी शक्ति से सघर्ष है, जयशकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' मे चन्द्रगुप्त चाणक्य की सहायता से विदेशी शक्ति—यूनानियो पर विजय पाता है। 'अजातशत्रु', 'स्कदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि प्रसाद जी के नाटक, जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का 'प्रताप-प्रतिज्ञा', हरिकृष्ण प्रेमी के 'रक्षाबन्धन', 'शिवा साधना', सुदर्शन का 'जय पराजय', गोविन्दवल्लभ पत का दाहर अथवा सिन्ध पतन', 'राजमुकुट' आदि सभी नाटको मे युद्ध विभीषिका का चित्रण मिलता है जो लेखको के अपने युग के राष्ट्रीय-सघर्ष को प्रतिध्वनित करते हैं। गोविन्दवल्लभ पत के 'राजमुकुट' नाटक की प्रजा भी राजा के अन्याय, अधर्म, अनीति के कारण विद्रोहिणी हो जाती है।[3] इसी प्रकार विदेशी शासन-काल के इस युग मे प्रजा ने आन्दोलन मे भाग लेकर अंग्रेजी शासको की दमन-नीति, अत्याचार, अन्याय आदि का विरोध किया था।

हिन्दी नाटको म सत्याग्रह आन्दोलन के प्रत्यक्ष चित्र अधिक न मिलने पर भी साकेतिक प्रतीकात्मक एव प्रच्छन्न शैली मे लिखे नाटको का अभाव नही है।

---

१ बा० जमनादास मेहरा : पजाब केसरी • पृ० ६६
२ वही, पृ० १०२
३. गोविन्दवल्लभ पत • राजमुकुट : पृ० २२

कथा-साहित्य मे गाधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन की अभिव्यक्ति

काव्य अथवा नाट्य साहित्य की तुलना मे कथा साहित्य राजनीतिक-आन्दोलनो का अधिक विशद एव मुखर रूप प्रस्तुत करने मे समर्थ हुआ है। कदाचित् इसका यह कारण है कि आन्दोलन के वर्णन अथवा सजीव चित्राकन का इसमे अधिक सुयोग रहता है। कथा-साहित्य ने भावात्मकता की अपेक्षा वर्णनात्मकता को ही प्रधानता दी है। आन्दोलन के प्रत्येक अंग, स्थिति तथा दृश्यो का चित्र कथा-साहित्य में मिल जाता है। विशेष रूप से प्रेमचन्द जी ने राष्ट्रीय-जागृति एव स्वतन्त्रता के लिये किए गए आन्दोलन को साहित्यिक परिधान मे आवृत्त कर शाश्वत रूप प्रदान किया है।

हिन्दी मे शुद्ध राजनीतिक उपन्यासो की अधिक सख्या नही मिलती है। सामाजिक समस्याओ एव राजनीतिक परिस्थितियो से मिश्रित उपन्यास ही अधिक सख्या मे मिलते हैं। प्रेमचन्द के 'रगभूमि', 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' तथा राधिकारमण प्रसाद सिंह का 'पुरुष और नारी' उपन्यास राजनीतिक उपन्यास की सज्ञा पाने के लिए पूर्ण समर्थ हैं। प्रेमचन्द की 'रगभूमि' असहयोग आन्दोलन की भूमिका पर लिखा गया सफल राजनीतिक उपन्यास है, 'प्रेमाश्रम' मे राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा कृषक जागृति का चित्र मिलता है, तो 'कर्मभूमि' मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन एव अछूतो की समस्या। राधिकारमण प्रसाद सिंह के पुरुष और नारी' उपन्यास का काल-क्षेत्र अति विस्तृत है उपन्यास ने सन् १६२० के असहयोग आन्दोलन से कथा का प्रारभ कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन की समाप्ति के पश्चात् प्रान्तीय स्वायत्त शासन के लिए प्रारंभिक चुनाव मे समाप्ति की है। इस उपन्यास मे सन् १६२०-३६ तक के राष्ट्रीय इतिहास के विकास का पूर्ण इतिहास उपलब्ध हो जाता है। आन्दोलन की बारीकियो एव मानव-मनोविज्ञान का सम्पूर्ण विश्लेषण मिल जाता है।

प्रेमचन्द को 'रगभूमि उपन्यास की मूल पेरणा असहयोग आन्दोलन से मिली थी क्योकि तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन का सजीव वर्णन तथा चित्र इसमे मिलते हैं। 'रगभूमि' उपन्यास मे दो कथावृत्त एक साथ चलते हैं और अन्त मे उन दोनो का एकीकरण हो जाता है। ये दो कथाएँ सूरदास तथा विनयसिंह से सबधित हैं। सूरदास गाधीवादी सिद्धान्तो का मूर्त रूप है और विनयसिंह राष्ट्रीय आन्दोलन की अभिव्यक्ति का साधन। कुवर विनयसिंह की कथा का सीधा सबध राष्ट्रीय आन्दोलन से है। कुवर भरतसिंह तथा रानी जाह्नवी ने देश-प्रेम की भावना से अभिभूत हो विनयसिंह को राष्ट्रीय शिक्षा दी थी।[1] कुवर भरतसिंह ने विदेशी सरकार से असहयोग का व्रत ले रखा था।[2] असहयोग आन्दोलन के कार्य को राष्ट्रव्यापी पैमाने पर प्रसारित करने के लिए गाधी जी ने राष्ट्रीय स्वय सेवकों का सगठन किया था। देश मे इस समय

१. प्रेमचन्द : रगभूमि ' पृ० १४५
२. वही, पृ० २६३

ऐसा उत्साह था कि स्वाधीनता प्राप्ति की आशा में युवक समूह हर्ष और उत्साह के साथ आत्म-बलिदान के लिए प्रस्तुत था। गांधी जी के आगमन के पूर्व अनेक सामाजिक, राजनीतिक संस्थाओं के रहने पर भी स्वयं सेवक नहीं मिल पाते थे। कुंवर भरतसिंह ने इस तथ्य का उद्घाटन किया है।[1] विनयसिंह राष्ट्रीय स्वयं सेवक के रूप में जसवंत नगर जाता है। सेवा और त्याग द्वारा वह वहां की जनता में राष्ट्रीय चेतना उद्बुद्ध कर देता है। राष्ट्रीय आन्दोलन की आग भारत के सभी क्षेत्रों में फैली थी, देशी रियासतें भी इससे अछूती नहीं बची थीं 'रंगभूमि' इसका प्रमाण है। राष्ट्रीय आन्दोलन के दमन के लिए सरकार ने राष्ट्रीय सेवा में संलग्न विनयसिंह जैसे व्यक्तियों को कारावास का कठोर दंड दिया था। हजारों आदमी निरपराध मारे गये थे और पकड़ धकड़ में असाधारण तत्परता से काम लिया गया था। 'सूरदास' की कथा इस उपन्यास की प्रमुख कथा है। उसका झोपड़ा जातीय मंदिर बन गया था। वस्तुतः उपन्यास के अन्तिम भाग में उसकी जमीन का झगड़ा व्यक्तिगत न रह कर *राष्ट्रगत आन्दोलन बन जाता है। स्वार्थ साधक विदेशी शासन की शोषण प्रवृत्ति का* राष्ट्रवादियों द्वारा विरोध होता है। यह आत्मबल, लोकमत एवं अहिंसा द्वारा भारत की मुक्ति का प्रयास है। सत्याग्रही वीरों के प्राणोत्सर्ग को देख कर पुलिस भी अपने भाइयों का गला काटने से मुख मोड़ लेती है। यह पुलिस के इतिहास में नयी घटना थी और राष्ट्रवाद के विकास का सूचक। गांधी जी के राष्ट्रवाद ने सत्य एवं *अहिंसात्मक साधन द्वारा नौकरशाही का भी हृदय-परिवर्तन कर दिया था।*[2]

कर्मभूमि उपन्यास में प्रेमचन्द ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन' के युग की राजनीतिक परिस्थितियां, जनता की विकसित राष्ट्रीय भावना तथा आन्दोलन के क्रियात्मक रूप को सम्मुख रखा है। अब जनता में इतनी चेतना आ गई थी कि वह अंग्रेजी शासन में सहयोगी व्यक्तियों को सामूहिक रूप में धिक्कारती थी।[3] न्यायालयों में अब इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि वह जनता की भावनाओं की उपेक्षा कर अत्याचार तथा अन्याय का पोषण करते।[4] असहयोग आन्दोलन में सरकारी उपाधियों, नौकरियों का त्याग कर विदेशी शासन से असहयोग किया गया था किन्तु सविनय अवज्ञा आन्दोलन में राष्ट्रीय एकता को स्वतन्त्रता का मूल मन्त्र माना गया था। 'कर्मभूमि' में सुखदा अछूत आन्दोलन का नेतृत्व करती है क्योंकि अछूतों को पृथक् मतदान का अधिकार देकर विदेशी शासक राष्ट्रीय अनेकता को प्रोत्साहन दे रहे थे।

१ प्रेमचन्द रंगभूमि पृ० २६२

२ सरकार के वे पुराने सेवक जिनमें से कितनों ही ने अपने जीवन का अधिकांश प्रजा के दमन करने ही में व्यतीत किया था, यों अकड़ते चले जाए, अपना सर्वस्व, यहां तक कि प्राणों को भी, समर्पित करने को तैयार हो जाय।'
—प्रेमचन्द रंगभूमि पृ० ३३८

३ प्रेमचन्द कर्मभूमि पृ० ५६

४ वही, पृ० ६४

सुखदा ने आन्दोलन मे नया जीवन डाल दिया था, लोगो ने पुलिस की गोलियो और बौछारो को सहर्ष सहन किया। 'धर्म और हक' की लडाई मे आत्मबल तथा बलिदान की भावना के सम्मुख पुलिस का पराजित हो लौट जाना गाधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन की विजय थी।[1] इस आन्दोलन मे विश्वविद्यालय के अध्यापको तथा विद्यार्थी वर्ग ने विशेष रूप मे भाग लिया था। अछूत आन्दोलन के पश्चात् सीधे सरकार पर आक्रमण किया गया है। गाधी जी ने इस आन्दोलन को प्रारम्भ करने के पूर्व शासक वर्ग को पत्र व्यवहार द्वारा न्याय व सत्य के मार्ग पर लाना चाहा था लेकिन उनके सारे प्रयत्न व्यर्थ हो गए थ। इस उपन्यास म सुखदा के शब्दो मे इसका आभास लेखक ने दे दिया है।[2] सुखदा ने निम्न वर्ग की सस्थाओ तथा पचायतो द्वारा हडताल करा कर सरकारी नीति का विरोध करवाना चाहा लेकिन इसमे अधिक सफलता न मिली। जन जीवन मे राष्ट्रीय चेतना का विकास करने के कारण उसे कारावास का दड मिलता है। सत्याग्रही वीर पुरुषो और नारियो को जनता के अधिकारी वर्ग से जो सम्मान मिलता था वह राष्ट्रीय चेतना के विकास का मूर्त्त रूप था।[3] सुखदा के जेल जाने के पश्चात् रेणुका देवी लाला समरकान्त, डा० शान्ति कुमार सभी राष्ट्रीय सग्राम का नेतृत्व कर बदी बने। अन्त मे नैना आन्दोलन के क्षेत्र मे उतरती है। वह हडताल की अपेक्षा जुलूस का नेतृत्व कर म्युनिसिपल बोर्ड के दफ्तर की ओर चलती है। प्रेमचन्द जी ने इस दृश्य का चित्रण अत्यधिक सशक्त भावात्मक तथा अलकारिक भाषा और शब्दो मे किया है —

'नैना ने झण्डा उठा लिया और म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर की ओर चली। उसके पीछे बीस पचीस हजार आदमियो का एक सागर उमडता हुआ चला और यह दल मेलो की भीड की तरह अश्रृखल नही फौज की कतारो की तरह श्रृखलाबद्ध था। आठ आठ आदमियो की असख्य पक्तिया गभीर भाव से, एक विचार, एक उद्देश्य एक धारणा की आन्तरिक शक्ति का अनुभव करती हुई चली जा रही थी और उनका ताता न टूटता था, मानो भूगर्भ से निकलती चली आती हो। सडक के दोनो ओर छतो पर दर्शको की भीड लगी हुई थी। सभी चकित थे। उफ्फोह! कितने आदमी है! अभी चले ही आ रहे हैं।"[4]

जुलूस मे नैना के गीत ने अधिक उत्साह भर दिया था। उसके पति ने उसे गोली मार दी, और तब जुलूस और भी शाति के साथ गभीर रूप मे, सगठित होकर आगे बढा। बलिदान द्वारा इस आन्दोलन को अजेय एव अभेद्य होने की शक्ति मिली। यह जुलूस मीलो लम्बी कतार मे था। म्युनिसिपल बोर्ड भी इस आत्म बलिदान से पराजित हो गया। उसने मजदूरो को मकानो के लिए जमीन दे दी। इस आन्दोलन

१. प्रेमचन्द . कर्मभूमि पृ० २१०
२ वही, पृ० २५५
३ वही, पृ० २६९
४ वही, पृ० ३७३

ने विदेशी शासन की जड़ें हिला दी थी। असहयोग आन्दोलन की अपेक्षा सविनय अवज्ञा आन्दोलन अधिक काल तक चला था और अधिक सगठित था। असहयोग आन्दोलन मे सरकार की कर सबधी नीति का विरोध भी नही किया गया था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे किसानों की जागृति के फलस्वरूप अन्याय पर आधारित भूमि कर का विरोध किया गया था। प्रेमचन्द जी ने किसानो द्वारा करबन्दी आन्दोलन का भी विशद विवरण दिया है। अमरनाथ के नेतृत्व मे हरिद्वार के पास के गाव मे यह आन्दोलन सचालित हुआ था। ग्रामीण जनता भूमिपतियो की निरकुश एव स्वच्छन्द नीति से अत्यधिक त्रस्त थी। उसका विक्षोभ विद्रोह का रूप लेना चाहता था कि अमरकान्त ने स्वय बन्दी होकर अहिंसात्मक सत्याग्रह का उदाहरण रख जनता को पथ भ्रष्ट होने से रोका। आन्दोलन के तीन भिन्न रूपो के वर्णन के साथ प्रेमचन्द जी ने जनता की यथार्थ मन स्थिति का भी परिचय दिया है। असहयोग आन्दोलन के समय अहिसा, आत्मबल सयम की जनता मे बहुत कमी था। अत गाधी जी ने देश को हिंसात्मक क्रांति से बचाने के लिए आन्दोलन स्थगित कर दिया था। उन्हें इसमे सफलता नही मिली थी। विदेशी शासको ने इस सुअवसर का पूरा लाभ उठाया था। 'रगभूमि' उपन्यास मे सूरदास तथा विनयसिह के बलिदान के उपरान्त भी जान सेवक रूपी विदेशी पूजीवादी नीति का कार्य सुचारु रूप से चलता है। उन्हें अपने स्वार्थ साधन के लिए अनुकूल वातावरण मिल जाता है। सूरदास की जमीन पर फैक्टरी बनना वस्तुत राष्ट्रीय सग्राम की असफलता का सूचक है। 'कर्मभूमि' उपन्यास द्वितीय आन्दोलन की सफलता का तथा भारतीय जीवन के प्रत्येक वर्ग, विशेष रूप से निम्न वर्ग की जागृति का सूचक है। 'रगभूमि' मे उच्च एव मध्य वर्ग द्वारा राष्ट्रीय सग्राम का सचालन किया गया है। 'सूरदास' निम्न वर्ग का है किन्तु वह प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय सग्राम का सचालन नही करता। विनयसिह आदि राष्ट्रीय स्वय सेवको ने उसके व्यक्तिगत सघर्ष को राष्ट्रीय रूप दे दिया था। 'कर्मभूमि' मे उच्च वर्ग मध्य वर्ग निम्न वर्ग, किसान, मजदूर अछूत सभी आन्दोलन मे प्रत्यक्ष रूप से भाग लेते हैं। इस आन्दोलन मे पग पग पर भारतीयो को सफलता मिलती है।

द्वितीय आन्दोलन काल मे भी जनता की उत्तेजना मे हिंसात्मकता का पूर्णतया निराकरण नही हो पाया था। वह अहिंसात्मक साधन से भ्रष्ट हो ईंट पत्थर भी फेंकती है, लेकिन प्राय अमरनाथ, सुखदा, डा० शान्तिकुमार के उचित निर्देशन के कारण अधिक नियत्रित एव सयत रहती है। प्रेमचन्द जी के राजनीतिक उपन्यास 'रगभूमि' से 'कर्मभूमि' मे विकसित राष्ट्रवाद प्रत्यक्ष दृष्टिगत होता है।

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'पुरुष और नारी'[१] उपन्यास मे पुरुष और नारी के हृदय मे उठने वाले अन्तर्द्वन्द्वो के मार्मिक एव मनोवैज्ञानिक चित्रण की पृष्ठभूमि मे

१ यद्यपि इस उपन्यास का प्रकाशन काल १९३९ ई० है, लेकिन रचना काल शोध विषय के अन्तर्गत आ जाता है। महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उपन्यास होने के कारण इसे लेना असगत न होगा।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता सग्राम का विशद चित्र खीचा है। उन्होने स्वय लिखा है—'आज देश की आजादी की जो जग छिडी है उसी को पट-भूमि पर मैंने जीवन की एक बुनियादी जग का रखा है।"[1] गाधी जी के सत्याग्रह आन्दोलनो की अभिव्यक्ति के लिए, भिन्न काल मे रचित, प्रेमचन्द जी के दो उपन्यास मिलते हैं लेकिन राधिकारमण प्रसादसिंह ने आन्दोलनो के उपरान्त उपन्यास लिखा था, अत उन्होने एक ही उपन्यास मे ई० सन १९२० से १९३६ तक के काल की राजनीतिक परिस्थितियो को समावृत कर लिया है। सन् १९२० मे गाधी जी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया था। उपन्यास के प्रारम्भ मे ही असहयोग आन्दोलन के समय की परिस्थितियो का वर्णन मिलता है—'१९२० साल। जलियावाला बाग की आग अभी बुझी नही है। महात्मा गाधी ने राष्ट्र के अन्तर मे नवीन चेतना का जादू फूंका है। भारत पहली बार चौंक कर सुनता है—ब्रिटिश सरकार की मिलजोई के प्रयास के बदले अपनी आध्यात्मिक शक्ति की तलाश ही उसकी जिन्दगी की सास है।'[2] असहयोग आन्दोलन के पूर्व राष्ट्रीय चेतना को क्रियात्मक रूप देकर जन सगठन का प्रयास नही हुआ था, लेखक ने इसका उल्लेख भी किया है कि 'आराम कुर्सी की फुरसत वाली लीडरी सर पर नौकरशाही की सलीमशाही को काफी ढो चुकी थी', अत अब आन्दोलन का विस्तृत एव नवीन रूप सम्मुख आया। इस आन्दोलन का विद्यार्थी वर्ग पर विशेष प्रभाव पडा था—'आज उसके सामने न दीन है, न दुनिया, न बन्धन है, न माया, न कला है, न कविता। बस, जो कुछ है—वह देश और देश का सन्देश।'[3] उपन्यास का नायक अजीत एम० ए० का विद्यार्थी लेकिन राष्ट्र की पुकार पर परिवार की इच्छा के विरुद्ध, देश के लिए 'दिल पर सिल रखकर', सत्याग्रह रूपी भारत के जौहर व्रत मे खादी रूपी केसरिया बाना पहन कर सम्मिलित हो जाता है। अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन के व्रती वीर 'जान हथेली पर रखकर तलवार की धार' पर चले थे।[4] महात्मा जी ने आजादी का बीज इस मिट्टी मे रोप दिया है, अब जवानो का लहू उसे सीच-सीच कर पनपा कर ही दम लेगा।'[5] ऐसा उस समय देशवासियो का दृढ विश्वास था। लेखक ने असहयोग आन्दोलन के समय निकलने वाली प्रभात-फेरियो, राष्ट्रीय गीतो आदि की झलक दिखाकर तत्कालीन राष्ट्रीय वातावरण को मुखर किया है।

इस उपन्यास के अजित जैसे कितने ही युवको ने असहयोग आन्दोलन के जोश

---

१. राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी : दो शब्द : पृ० ३
२. वही, पृ० ४, ५
३. वही, पृ० ५
४. वही, पृ० ४
५. वही, पृ० २३
६. वही, पृ० २४

मे 'रम की पेनिस बोतल' को त्याग कर राष्ट्रीयता को अपनाया था। इसके पश्चात् लेखक ने दो साल बाद की कथा को मोड दिया है। चौरी-चौरा की घटना ने गाधी जी को असहयोग स्थगित करने के लिए प्रेरित किया। देश-जीवन मे पुन. शिथिलता आ गई लेकिन 'मर मिटने की लहर मिटी नही थी।'[1] इस आन्दोलन ने भारत को जगा दिया था, सार्वजनिक जीवन की नैतिक मर्यादा ऊँची हो गई थी और 'गाधी टोपी की वन्दानबाजी लोगो के दिल म लौ लगा चुकी थी।'[2] कुछ वर्ष तक गाधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति मे अजित लगा रहा। पुन. सन् १९३० मे 'देश की हवा फिर बदली', कांग्रेस का रुख 'गर्म' हुआ और साबरमती के गर्त मे तूफान उठा। 'सरकार की भृकुटि पर फिर बल आया। कायरो ने बिल ढूँढा, वीरो ने ताल ठोका'[3]। लेखक ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन की राजनीतिक परिस्थिति का विस्तृत चित्र खीचा है। गाधी अविन पैक्ट के टाके टूटने, समझौते के लिए गाधी जी का लदन जाकर गोलमेज-सभा से निष्फल लौटन, नजरबन्द होने का भी उल्लेख उपन्यास मे मिल जाता है।[4]

गाधी जी न सविनय अवज्ञा आन्दोलन काल मे दाण्डी मार्च कर कानून भग किया था। इसके उल्लेख के साथ राधिकारमण प्रसाद सिंह ने पुरुष और नारी' उपन्यास मे सत्याग्रह आन्दोलन की प्रक्रिया का भी वर्णन किया है—'आज आश्रम मे काफी हलचल है। जल जान वालो पर कचन बरस रहा है। इस बे-हथियार, वे बैर की लडाई म पैतरे देख कर गाव वाले दग हैं। जेल के जत्थे के इर्द गिर्द हजारो की भीड जमी है। अजब माजरा है। जेल जाना एक जशन है। किसी के चेहरे पर एक शिकन तक नही। सर पर चन्दन का टीका, गले म गजरा, हाथ मे तिरंगा झण्डा और झण्डा ऊँचा रहे हमारा।'[5] पिकेटिंग और गिरफ्तारी के लिए जुलूस जाते थे। इन जुलूसो मे राष्ट्रीय गीत गाते थे।

विरादराने नौजवां, बढ़े चलो, बढ़े चलो।
झुके न हिन्द का निशा, बढ़े चलो बढ़े चलो ॥

अब खादी के सम्मुख विलायती कपडा एक तमाशा बन गया था। नारी ने भी ब्रिटिश दार मे पजा लेन क लिए सिपाहियाना ठाठ बनाया था।[6] इस आन्दोलन को नारी ने जितना कारावास दण्ड सहन कर सहयोग दिया था वह इसके पूर्व नहीं था। इस उपन्यास में सुधा का त्याग प्रशसनीय है। 'जेल तो मानो सनम का देश

१ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी, पृ० ६४
२ वही,
३ वही, पृ० ८७
४ वही, पृ० १३२
५ वही, पृ० १३७
६ वही, पृ० १४१

हो गया था।[1] सत्याग्रह का जोर उठता और गिरता रहा, कितने ही घर वीरान हुए और कितने ही मुकुल असमय मुरझा गये।[2] अन्त मे यह सत्याग्रह आन्दोलन भी समाप्त हुआ।

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने आन्दोलन के पश्चात् की राजनीतिक परिस्थितियो का भी उल्लेख किया है। सन् १९३५ मे प्रान्तीय स्वायत्त शासन के अधिकार का नियम बना। काग्रेस मे चुनाव के प्रश्न पर दो दल हो गए, एक समर्थक और दूसरा विरोधी। लेखक ने अजीत के माध्यम से अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं। वे काग्रेस द्वारा तख्तनशीनी को राष्ट्रीय त्याग और साधन मे बाधक मानते हैं। 'मैं तो समझता हू, मसनद की हवा लगी और काग्रेस की त्याग की तमाम साधना हवा हुई। आपस मे वह छीना-झपटी वह मैं मैं तू-तू होगी कि तुम देख लेना।'[3] इसके साथ ही लेखक का यह भी मन्तव्य है कि काग्रेस का आश्रम अब तपोभूमि न रहा था।[4] यद्यपि लेखक ने राष्ट्रवाद की दृष्टि से उपन्यास का अन्त अति निराशाजनक दिखाया है लेकिन सत्याग्रह आन्दोलन एव तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो के विशद चित्रण से अन्त मे यह प्रत्यक्ष ध्वनित है कि राष्ट्र को रग-रग मे चेतना की लहर दौड चुकी थी, नगर, ग्राम, पुरुष-नारी सभी समान रूप से इसके भागी थे। उपन्यासकार ने इस उपन्यास की रचना मे राजनीतिक परिस्थितियो, राष्ट्रीय आन्दोलनो और देशभक्ति को पट-भूमि के रूप मे अकित किया है, उनका प्रमुख लक्ष्य तो राष्ट्र की तत्कालीन परिस्थितियो मे पुरुष और नारी के हृदय मे उठने वाले अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना ही है। उपन्यास-कला के सयोग से और मानव-मनोवृत्तियो के सूक्ष्म विश्लेषण मे राष्ट्रीय आन्दोलन अधिक सजीव हो गया। पुरुष और नारी की विशेष गुत्थियो पर जिस अनोखे ढग से लेखक ने प्रकाश डाला है, उससे भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन शुष्क एव जड इतिहास न रहकर सरस एव कलात्मक हो गया है। 'देशभक्ति' और 'नारी का प्रेम' चिरकाल से पुरुष के अन्तर्द्वन्द्व का कारण रहे हैं और चिरकाल तक इनके बीच सघर्ष चलेगा, इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए राधिकारमण प्रसाद जी ने इस उपन्यास के रूप मे राष्ट्रीय आन्दोलन को शाश्वत साहित्य का रूप दिया है।

कहानी मे सत्याग्रह आन्दोलनो के विशद रूप का चित्रण सभव न होने के कारण, उसके विभिन्न पक्षो का सफल एव पूर्ण चित्रण हुआ है। असहयोग आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन से प्रेरित होकर कहानीकारों ने पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन के बीच आन्दोलन का कार्यक्रम, स्थूल चित्र, उनका प्रभाव

१. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी पृ० १५३
२. वही, पृ० १५१
३ वही, पृ० १८५
४. वही, पृ० १८५

तथा उनके कारण उत्पन्न संघर्ष का चित्र खींचा है। असहयोग आन्दोलन के प्रारम्भ के साथ ही सरकारी नौकरियो, न्यायालयो, शिक्षालयो से असहयोग प्रारम्भ हो गया था। प्रेमचन्द जी की 'लाल फीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा' कहानी मे डिप्टी मजिस्ट्रेट हरविलास सरकारी नौकरी छोड देते हैं।[1] हरविलास ने अपने त्यागपत्र मे लिखा था—'मेरे विचार मे वर्तमान शासन सत्पथ से सम्पूर्णत विचलित हो गया है। यह आज्ञा प्रजा के जन्मसिद्ध स्वत्वो को छीनना और उनके राष्ट्रीय भावो का वध करना चाहती है। '[2] स्वय प्रेमचन्द जी ने भी असहयोग आन्दोलन मे सरकारी नौकरी छोड दी थी। सुदर्शन जी की 'अन्धेरे मे' कहानी मे लाला भगतराम की सरकारी नौकरी दफ्तर टूट जाने के बाद समाप्त हो जाती है और नौकरी के अभाव मे वे कष्टकर जीवन व्यतीत करते हैं। इसी समय देश मे असहयोग की पुकार उठी और वे दिन रात देश सेवा मे लग गये। अब उन्हे सच्चा प्रकाश मिल गया था। अत दारिद्र्य के थपेडे सहने पर भी वे सरकारी नौकरी ठुकरा देते हैं।[3] सुभद्राकुमारी चौहान की 'तागेवाला कहानी मे तागेवाले ने सरकारी नौकरी न कर तागा चलाने का स्वतन्त्र व्यवसाय इसीलिये किया था कि उसमे किसी की गुलामी न थी। इस कहानी मे लेखिका ने इस तथ्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है कि सत्याग्रह आन्दोलनो ने साधारण जनता मे जागृति कर दी थी। तागेवाला दो बार सत्याग्रह आन्दोलन मे जेल हो आया था।[4]

जुलूस निकालना, नारे लगाना, राष्ट्रीय गीत गाना, धरना देना, सभाए करना तथा सरकार की कुटिल नीति का सभाओ मे उद्घाटन करना, जेल जाना अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन के प्रमुख साधनो का स्थूल वर्णन प्रेमचन्द की 'जुलूस', 'जेल', 'समरयात्रा' कहानियो मे, सुदर्शन की कैदी', 'हार-जीत', 'अन्तिम साधन' कहानियो मे, तथा सुभद्राकुमारी चौहान की 'गौरी' कहानी मे मिलता है। प्रेमचन्द की 'जुलूस' कहानी मे सामान्य जनता द्वारा काग्रेस के राष्ट्रीय कार्यक्रम मे भाग लेने का वर्णन है। राष्ट्रीय स्वय सेवको का दल अपने स्वत्वाधिकारो की प्राप्ति और विदेशी शासको के प्रतिकार के लिए जुलूसो मे नारे लगाता चलता था। पुलिस के अत्याचार, लाठियो के निर्दय प्रहार, उनके घोडो के टापो की चोट सहन करता हुआ जुलूस अविचल भाव से सुसगठित रूप मे चलता रहता था। 'यह पेट के भक्तो, किराये के टट्टुओ का दल न था। यह स्वाधीनता के सच्चे स्वय सेवको का, आजादी के दीवानो का सगठित दल था—अपनी जिम्मेदारियो को खूब समझता था'।[5] काग्रेस

१ 'सरकारी प्रजा हित नीति पर उन्हें लेशमात्र भी विश्वास न रहा था।'
—प्रेमचन्द प्रेम चतुर्थी पृ० ७२ सातवीं बार

२ प्रेमचन्द प्रेम चतुर्थी पृ० ७४

३ सुदर्शन सुप्रभात पृ० ७८

४. सुभद्राकुमारी चौहान . सीधे सादे चित्र पृ० ३२

५ प्रेमचन्द : मानसरोवर ; पृ० ५५

को जनता की पूरी सहानुभूति प्राप्त हुई थी, यद्यपि वह गाधी जी के सत्य एव अहिंसा की पूरी सहानुभूति प्राप्त हुई थी, यद्यपि वह गाधी जी के सत्य एव अहिंसा की नैतिकता मे तप कर सहनशक्ति का पूर्ण पाठ नही पढ पाई थी। प्रेमचन्द्र जी ने इस कहानी मे उन्मत्त जनता को हिंसा-कार्य से रोकने के लिए सत्याग्रही वीरो द्वारा पीछे लौटना दिखाया है। अत सत्याग्रह आन्दोलन मे अहिंसात्मकता की पूर्ण रक्षा की गई थी। 'जेल'कहानी मे प्रेमचन्द जी ने सत्याग्रह आन्दोलन का जीवित चित्र अकित किया है। देश-जीवन मे राष्ट्रीय भावना तपस्या बन गई थी । भारत की निहत्थी और अशक्त जनता ने भी अपने अन्दर मे अपार शक्ति का अनुभव किया था और सामूहिक रूप से आन्दोलन मे भाग लिया था।[१] सुदर्शन की 'कैदी' कहानी मे धनाढ्य परिवार के अब्दुल वहीद को असहयोग आन्दोलन के समय ओजस्विनी वक्तृता देने के कारण कारावास का दण्ड मिलता है। और वे विवाह की पहली रात्रि मे 'वतन की खिदमत' के लिए दण्ड स्वीकार करते हैं।[२] हार जीत'[३] तथा 'अन्तिम साधन'[४] कहानियो मे सुदर्शन जी ने पारिवारिक जीवन मे सत्याग्रह आन्दोलन की झाकी दिखाई है । 'समर यात्रा' कहानी मे प्रेमचन्द ने ग्रामीण जीवन मे आन्दोलन तथा गाधी जी के प्रभाव को दिखाया है। गाधी जी द्वारा सचालित आन्दोलन, नगर तक सीमित नहीं थे, उनमे ग्रामीण जनता ने भी उत्साहपूर्वक सहयोग दिया था। गाँव वाले स्वराज्य के दीवाने, गाधी टोपी वालो का हृदय से स्वागत करते थे। राष्ट्रीय वीरो को देख कर 'नौहरी' का बुढापा भाग गया था।[५] उनमे आत्मसम्मान की भावना जागृत हो गई थी । जेल और फासी गाव वालो के लिए भी गौरव की वस्तु बन गये थे।[६] असहयोग आन्दोलन के समय गाव के हिन्दू व मुसलमान दोनो ने समर यात्रा मे भाग लिया था । उस समय ऐसा उत्साह, ऐसी उमंग गाववालो मे छा रही थी मानो स्वराज्य ही मिल गया हो।

निराला जी की 'चतुरी चमार' कहानी मे भी गाव वालो मे आन्दोलन के प्रभाव को दिखाया है। गावों मे तिरगा झण्डा फहराया जाता था, वहा भी कांग्रेस का जोर था। इस कहानी का रचनाकाल सन् १९२३ ई० है जब असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया था। इसमे आन्दोलन तथा उसके स्थगन की प्रतिक्रिया का वर्णन मिलता है—'इन्ही दिनो देश मे आन्दोलन जोरो का चला—यही, जो चतुरी आदियो के कारण फिस्स हो गया है। होटल मे रहकर, देहात से आने वाले शहरी

१. वही : पृ० १४
२ सुदर्शन : सुप्रभात पृ० ८०
३. वही : पृ० ८३
४. वही : पृ० ६३
५. प्रेमचन्द : मानसरोवर : पृ० ७५
६ वही : पृ० ८०, ८१

युवक मित्रो से सुना करता था, गढा कोला मे भी आन्दोलन जोरो पर है—छ-सात सौ तक का जौत किसान लोग इस्तीफा देकर छोड चुके हैं—वह जमीन अभी तक नही उठी—किसान रोज इकट्ठे होकर झडा गीत गाया करते हैं। साल भर बाद, जब आन्दोलन मे प्रतिक्रिया हुई, जमीदारो ने दावा करना और रियाया को बिना किसी रियायत के दबाना शुरू किया, तब गाव के नेता मेरे पास मदद के लिए आए, बोले—गाव मे चल कर लिखो। तुम रहोगे तो मार न पडेगी, लोगो की हिम्मत रहेगी, अब सख्ती हो रही है।'[1]

गाधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन की सबसे बडी विशेषता थी इसमें नारी का प्रमुख रूप मे भाग लेना। 'रगभूमि' मे सोफिया, 'कर्मभूमि' मे सुखदा, रेणुका देवी, नैना उपन्यास साहित्य द्वारा, प्रेमचन्द की अमर नारी देन है। इसके साथ ही उनकी कहानियो मे भी नारी का विशेष स्थान है। जेल कहानी मे मृदुला अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर हसते हुए बिना किसी प्रतिवाद या अपने पक्ष की सफाई के जेल चली जाती है।[2] पत्नी से पति कहानी मे नारी जागृति तथा उसमे बढते हुए साहस का वर्णन है गोदावारी राष्ट्रहित के लिए राष्ट्र-विरोधी पति का तिरस्कार करती है।[3] शराब की दूकान मे मिसेज सक्सेना शराब की दूकान पर धरना देती हैं।[4] जुलूस कहानी मे मिट्ठनबाई अपने दरोगा पति द्वारा सत्याग्रहियो पर किये गये अत्याचार से अत्यन्त क्षुब्ध हो जाती है। वह सरकार द्वारा पति की पदोन्नति को देशद्रोह की कीमत समझती है।[5] सुदर्शन जी की 'अन्तिम साधन' कहानी मे पति की इच्छा के विरुद्ध स्वदेशी का व्रत न पूरा करने के कारण सुशीला प्राण दे देती है[6] हार जीत कहानी मे सुदर्शन जी ने आन्दोलन से प्रभावित होकर उसमे सक्रिय रूप से भाग लेने वाले सेठ साहब के पुत्र तथा पत्नी से उसका विरोध करवाया है।[7] 'सीधे सादे चित्र' मे सुभद्रा कुमारी चौहान की गौरी ने विलासी नायब तहसीलदार की अपेक्षा दो बच्चो के पिता कांग्रेसी कार्यकर्ता सीतारामजी को विवाह का पात्र बनाया है। सत्याग्रह आन्दोलन मे सीताराम जी की कारावास यात्रा मे, वह उनके बच्चो की देख रेख कर त्याग और आदर्श का उदाहरण रखती है।[8]

आन्दोलन म भाग लेने के लिए पुरुष की अपेक्षा नारी ने अधिक त्याग तथा

१ विनोद शकर व्यास, सम्पादक मधुकरी (दूसरा खड) पृ० १५
२ प्रेमचन्द मानसरोवर पृ० ६
३ वही . पृ० ११
४ वही पृ० ५१
५ वही पृ० ५८
६ सुदर्शन सुप्रभात पृ० १०१
७ वही पृ० ८६
८ सुभद्रा कुमारी चौहान सीधे सादे चित्र पृ० १३

संघर्ष किया था। प्रेमचन्द, सुदर्शन, सुभद्राकुमारी चौहान आदि कहानीकारों की रचनाओं से यह स्पष्ट है कि उसे सबसे अधिक विरोध अपने परिवार वालों का करना पड़ा था। कुमारी कन्याओं को माता पिता का जैसे 'रंगभूमि' उपन्यास की सोफी, सुभद्राकुमारी चौहान की 'गौरी' विवाहित स्त्रियों को अपने पति तथा ससुराल वालों का जैसे 'कर्मभूमि' उपन्यास की सुखदा नैना राधिका रमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास की सुधा और कहानी कहानियों में पत्नी से पति' में गोदावरी तथा जुलूस में मिट्ठनबाई अपने पति का विरोध करती हैं। नारी ने राष्ट्रीय कार्यक्रम से प्रभावित होकर अपने व्यक्ति सबंधों के बलिदान का अपूर्व आदर्श रखा था। ग्राम की नारी भी सक्रिय सहयोग देने में पीछे न रही थी। प्रेमचन्द की 'समर यात्रा' कहानी में बूढ़ी नोहरी पुलिस और दरोगा के मुख पर उनकी कुटिलता का वर्णन करती है तथा गाव वालो को अपनी ओजस्विनी वक्तृता से राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए अनुप्रेरित करती है।

इसके अतिरिक्त बच्चो मे भी राष्ट्रीय भावना लहरा रही थी।[1] 'जुलूस' कहानी मे प्रेमचन्द जी ने कालेज-स्कूल के बच्चों, स्त्रियों, बुढियो, मजदूरो द्वारा आन्दोलन मे भाग लेने का विशेष रूप से वर्णन किया है।[2]

रामवृक्ष बेनीपुरी की 'चिता के फूल' नामक कहानी सग्रह[3] मे १९३०-३२ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का विशद् एव स्पष्ट चित्र मिलता है। 'चिता के फूल' कहानी मे गाधी जी द्वारा राउण्ड टेबुल कान्फ्रेंस से असफल होकर लौटने, सीमाप्रान्त मे 'लाल कमीज' दल के सगठन, राष्ट्रीय नेताओं गाधी जी, ज्वाहरलाल नेहरु आदि की गिरफ्तारी, अब्दुल गफ्फारखा के सपरिवार निर्वासन, गाधी जी के बबई लौटने पर कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक, नये वाइसराय से गाधी जी की खतो किताबत नये वाइसराय द्वारा आदोलन दबाने के प्रयत्न का उल्लेख मिलता है।[4] यह सब समाचार ग्रामवासियों को भी विस्तार मे मिलने लगे थे। देश की निरन्तर बदलती हुई गतिविधि, राष्ट्रीय नेताओं के प्रयत्न ने उनमे एक अपूर्व उत्साह भर दिया था। सरकार द्वारा कांग्रेस कमेटिया के गैरकानूनी करार दिये जाने पर ग्राम का बच्चा बच्चा विक्षुब्ध हो गया था और राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणोत्सर्ग की बाजी लगा बैठा था।[5] कुछ पुलिस अफसरों ने सारे कानून अपने हाथ में ले लिये थे जिससे राष्ट्रीय नेता अपने पथ से विचलित नही हुए। इस द्वितीय आन्दोलन की सबसे बडी विशेषता थी कि गैरकानूनी करार दिये जाने पर भी कांग्रेस

१. प्रेमचन्द : मानसरोवर . पृ० ८
२. वही : पृ० ९२
३. इन कहानियों का संग्रह बाद में किया गया था, किन्तु रचना १९३०-३२ के काल में हुई थी। —बेनीपुरी परिचय . बेनीपुरी ग्रन्थावली . भाग १
४ बेनीपुरी ग्रन्थावली : भाग १ : चिता के फूल पृ० २
५. बेनीपुरी ग्रन्थावली : चिता के फूल : भाग १ : पृ ४

के कामो की शृंखला पूरी तरह अक्षुण्ण चल रही थी, यहा तक कि स्वराजी डाक का बाजाब्ता सगठन हो गया था, राष्ट्रीय अखबार बन्द होने पर भी कांग्रेस की बुलेटिनें नियमित रूप से प्रकाशित होती थी। कांग्रेस के कार्यकर्ताओ मे फौजी प्रवृत्ति बढ गई थी। बेनीपुरी जी ने लिखा है—'वे प्रकट और गुप्त लडाइयो की कलाएँ धीरे-धीरे जानने लगे हैं। नये वाइसराय ने कहा था, वह एक महीने मे आन्दोलन कुचल देगा, उसकी शेखी धूल मे मिल गई—रामू के आनन्द का क्या कहना ?'[1] रामू जैसे छोटे छोटे ग्रामीण बालको ने राष्ट्र के लिए प्राण निछावर कर दिए थे।'[2] उस दिन झोपडी रोई कहानी मे राघो जैसे निर्धन किंतु मेधावी विद्यार्थियो द्वारा अध्ययन छोड कर राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग लेने, धन तथा परिवार के त्याग का उत्कृष्ट उदाहरण रखा है।

प्रथम आन्दोलन की अपेक्षा द्वितीय सत्याग्रह आन्दोलन के समक्ष स्थिति बहुत बदल चुकी थी। बडे घरानो के युवको ने भी प्रतिष्ठा पाने की महत्वाकाक्षा से राष्ट्रीयता को अपना लिया था।[3] अब 'राष्ट्रीयता' जेल जाना, देशभक्ति का प्रदर्शन सम्मान की वस्तु थे। जेलो की स्थिति मे भी बहुत कुछ सुधार आ गया था। ए० क्लास के कैदियो को तो सब प्रकार की सुविधाए मिलती थी।[4] यह राष्ट्रवाद के विकसित रूप का ही परिणाम था। गाधी जी का ऐसा प्रताप था कि उन्होंने देशभक्ति को खादी, अहिसा, सत्याग्रह द्वारा साधारण जनता के लिए भी अति सहज बना दिया था।

इस राष्ट्रीय आन्दोलन के काल मे राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ की विचारधारा मे परिवर्तन होने लगा था। समाजवादी विचारधारा अधिक प्रबल होने लगी थी, इसका सकेत भी रामवृक्ष बेनीपुरी की 'वह चोर था' कहानी मे मिल जाता है।[5]

सत्याग्रह आन्दोलनो का मूलाधार बलिदान की भावना थी। अत इसका विस्तृत विवेचन भी अपेक्षित है।

बलिदान की भावना

गांधीजी ने अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा देशवासियोके सम्मुख आत्म-त्याग का प्राचीन भारतीय आदर्श रखा। वे तलवार की अपेक्षा कष्ट सहन का अपूर्व सिद्धान्त रखकर विदेशी शासको का हृदय परिवर्तन कर, स्वराज्य लेना उचित सम-

---

१ बेनीपुरी ग्रथावली : चिता के फूल भाग १ पृ० ६
२ वही : पृ० १०१
३ वही पृ० १०२
४ वही : पृ० ४१
५. बेनीपुरी ग्रन्थावली : भाग १ : चिता के फूल : पृ० ४१

करते थे।[1] अधिक से अधिक व्यक्तियों को आन्दोलन मे सम्मिलित कर मनोबल द्वारा विदेशी शासको से असहयोग कर मुक्ति प्राप्ति का साधन अधिक मनोवैज्ञानिक तथा जनकल्याणकारी था। हिन्दी-साहित्य मे बलिदान की भावना का सुन्दर एव प्रशस्त वर्णन मिलता है।

काव्य

रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, नाथूराम शकर शर्मा त्रिशूल सियारामशरण गुप्त सोहनलाल द्विवेदी प्रभृत राष्ट्रीय कवियो ने देशवासियों को प्राणोत्सर्ग का सदेश दिया था। प० रामचरित उपाध्याय देश पर प्राण न्यौछावर करने के लिये देशवासियो को प्रेरित करते हुए कहते हैं—

देश प्रेम रस छके हुए हम अग्नि कुण्ड में खेलेंगे,
पराधीन हो किन्तु नहीं अब विविध वेदना झेलेंगे।[2]

भारत की सत्याग्रही जनता के लिए देश निकाला स्वर्गवास, फाँसी मुक्ति तथा नजरबन्दी की सजा काशी जी की पुण्य एव सुखराशिदायिनी यात्रा बन गई थी।[3] उपाध्यायजी की भाँति त्रिशूल ने भी आत्मोत्सर्ग का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया था। उनके अनुसार सत्याग्रही का यह अन्यतम धर्म था कि वह विदेशी शासको के क्रूर अत्याचारो को मौन रूप से, हिंसा तथा घृणा की भावना परित्याग कर सहे।[4]

त्रिशूल तथा पण्डित रामचरित उपाध्याय की भाँति शकर कवि ने भी देशवासियो को असहयोग आन्दोलन के पुण्य यज्ञ मे आत्माहुति देने का महान सदेश दिया था—

देशभक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा,
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।
लोकमान्य गुरु गाधी जी का प्रेम मत्र पढ़ना होगा,
साथ सत्य धारी अगुओं के अब आगे बढ़ना होगा।।[5]

---

१ 'आयी बड़ी बन्धुगण स्वतन्त्रता हुकार सुनो,
अपने ही हाथों अब अपना करो करो उद्धार सुनो।
स्वतन्त्रता देवी के पद पर यदि निज शीश चढ़ाओगे,
पाओगे सुख सुयश लोक मे अन्त परमपद पाओगे।'
—महात्मा गाधी यग इण्डिया पृ० ६

२. रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती : प्रथम सस्करण पृ० ३०

३ वही : पृ० २६

४ त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : प्रथमावृति : पृ० ८

५ सम्पादक हरिशकर शर्मा : शकर सर्वस्व : पृ० २४८

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत माता के कल्याण के लिए भारतवासियो को आत्म त्याग तथा बलिदान का पाठ पढाया था—

मातृभूमि को वेदी मान,
करो धर्म-सगत बलिदान।[1]

महात्मा गाधी ने देशवासियो को बलिदान का ऐसा महामन्त्र दिया था कि जन-जीवन मे पराधीनता के प्रति विद्रोह कर जेल जाने एव अनेक अन्य कष्ट सहन करने की क्षमता आ गई थी। इस बलिदान की उत्कृष्ट भावना का ही यह परिणाम था कि जेलो मे सत्याग्रहियो की ऐसी भीड थी कि उनमे जगह नही रह गई थी। स्वतन्त्रता के साधको ने प्राणो की बाजी लगा दी थी। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य मे बलिदान की भावना अधिक पुष्ट रूप मे अभिव्यक्ति हुई है।[2] राष्ट्रीय झडे पर जीवन भेंट कर देना गौरव की बात समझी जाती थी।[3]

सियारामशरण गुप्त ने अमर शहीद गणेशशकर विद्यार्थी द्वारा राष्ट्र की साम्प्रदायिक एकता के प्रयत्न में किये जाने वाले अपूर्व बलिदान को राष्ट्रीय कथाकाव्य का ही रूप दे दिया था। 'आत्मोत्सर्ग' गणेशशकर विद्यार्थी का राष्ट्रहित अमर पद प्राप्त करने का महान राष्ट्रीय काव्य है।

इतिहास से वीर-चरित्रो को लेकर काव्य रचना हुई, जिन्होने युग-युग से चले आ रहे बलिदान का उच्च आदर्श स्थापित किया। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने 'झाँसी की रानी' कविता द्वारा सन् १८५७ ई० के स्वातन्त्र्य सग्राम मे देश की स्वतन्त्रता के लिए वीरगति प्राप्त करने वाली वीर भारतीय नारी झाँसी की रानी का महानचरित्र ओजपूर्ण शब्दो मे रखा। भारत के पुरुषो को ही नही, नारी को भी बलिदान के लिए अभिप्रेरित किया। देश की बहिनो का प्रतिनिधित्व करती हुई श्रीमती चौहान ने देश के भाइयो को सग्राम मे कट मरने के लिए विदाई दी। उन्होंने अपने अपने वीर भाइयों को यह सदेश दिया कि वे स्वातन्त्र्य सग्राम मे पीछे न हटें, नहीं तो बहनो को निर्भय मरने का वरदान दे जायें।[4]

त्रिशूल, शकर तथा रामचरित उपाध्याय ने इस काल मे भी द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक शैली मे ही बलिदान का आदर्श रखा है। उनके काव्य मे भावात्मकता का ही प्राधान्य है। माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान तथा सियारामशरण गुप्त के काव्य मे मार्मिकता अधिक है। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की कविता में बलिदान की भावना वीर-रस मडित है, उसमे करुणा की अपेक्षा उत्साहवर्द्धक गुण अधिक है। माखनलाल चतुर्वेदी मे बलिदान का स्वर अधिक स्पष्ट है किन्तु मार्मिकता

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : चतुर्थावृत्ति : पृ० ७५
२ माखनलाल चतुर्वेदी : माता · पृ० ५५
३ वही . पृ० ७६
४ सुभद्राकुमारी चौहान · मुकुल · पृ० १०६

तथा करुणा का प्राधान्य है। उनकी बलिदान-भावना के पीछे राजपूत-काल का गर्जन-तर्जन अथवा ओज नहीं है, वह गाधी युग के सुसस्कृत एव सयत ओज से पूर्ण है। सियारामशरण गुप्त ने बलिदान की भावना को करुण चरित्र-काव्य के रूप मे रखा है। आत्मोत्सर्ग पाठको को करुण वातावरण मे बलिदान के लिए प्रेरित करता है। इन सभी कवियो का, बलिदान द्वारा, राष्ट्रीय जीवन को चेतन करने का प्रयास अद्भुत है।

गाधी जी के असहयोग आन्दोलन मे बलिदान की भावना का प्राधान्य था। सोहनलाल द्विवेदी ने अधिक ओजपूर्ण किन्तु सरल भाषा मे जन-जीवन मे जाग्रत बलिदान की भावना का विवेचन किया है —

किसने स्वतन्त्रता की आगी,
पग-पग मग मग मे सुलगा दी ?
नस-नस मे धधक उठी ज्वाला
पर मिटने का उन्मेष लिये,
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव सदेश लिए ?

हिन्दी काव्य मे बलिदान की भावना को वर्णनात्मक भावात्मक, एव अन्योक्ति पद्धति मे अभिव्यक्त किया गया है।

हिन्दी नाटको मे बलिदान की भावना

सन् १६२०-३७ मे रचित हिन्दी नाटको में भी बलिदान की भावना का कई रूपो मे चित्रण किया गया था। भारतीय इतिहास की वीर-कथाओ के माध्यम से वीरतापूर्ण बलिदान का पोषण किया गया था। ईसाई धर्म एव मुसलमान धर्म के महापुरुषो की चरित्र कथा द्वारा भा त मे बसने वाले सभी धर्म तथा जातियो के लिए बलिदान का महत्व दिग्दर्शित कराया गया था। गाधी जी द्वारा सचालित सत्याग्रह आन्दोलन में वीर गति पाने वाले राष्ट्र-भक्तो के बलिदान की भी झलक दिखाई गई थी।

भारतीय इतिहास प्रसिद्ध वीराख्यान लेकर, बलिदान का महत्त्व प्रदर्शित करने वाले प्रसिद्ध नाटक हैं—बदरीनाथ भट्ट का 'दुर्गावती', जयशकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त, 'स्कदगुप्त', 'राज्यश्री', आदि, जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द' का 'प्रताप प्रतिज्ञा', हरिकृष्ण प्रेमी का 'रक्षा बन्धन', 'शिवा साधना', सुदर्शन का 'जय पराजय'। बदरीनाथ भट्ट के 'दुर्गावती' नाटक मे अकबर से राज्य की रक्षा हेतु वीर रानी दुर्गावती की प्राणाहुति को इतिहास प्रसिद्ध कथा ली गई है। भट्ट जी ने दुर्गावती के वीर चरित्र के ओजपूर्ण वर्णन द्वारा अपने युग की भारतीय नारी को स्वतन्त्रता प्रा त के लिए बलिदान होने के लिये प्रेरित किया है। जयशकर प्रसाद ने भारतीय इतिहास के हिन्दू काल से उन महान् वीर राजाओं और नारियो को अपने नाटको के लिए चुना है, जिन्होने देश की

रक्षा के लिए प्राणो की बाजी लगा दी थी। चन्द्रगुप्त, स्कदगुप्त, हर्षवर्द्धन, राज्यश्री ध्रुवस्वामिनी आदि वीर पुरुष एव नारी पात्र हैं जो देश को स्वतन्त्रता के लिए बलिदान होने का सदेश देते हैं। 'प्रताप प्रतिज्ञा' नाटक मे जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' ने राजपूताने के इतिहास प्रसिद्ध वीरवर, स्वतन्त्रता के उपासक, दृढव्रती महाराणा प्रताप के जीवन की कथा ली है। इस नाटक मे प्रताप ने दलित देशवासियो को गाधी जी के सदृश चित्तौड रूपी देश के उद्धार के लिए बलिदान का मार्ग अपनाने को प्रेरित किया है—

वीरों! मेवाड के अभिमान! चित्तौड की आशा! आज तुम्हे पाकर हृदय उत्साह से भर गया है। चित्तौड के खडहरो का शून्य हृदय हमारी अकर्मण्यता पर हाहाकार कर रहा है। एक बार उसे फिर स्वाधीनता-सग्राम के लाल दिन दिखाने को जी चाहता है। चलो, हम ससार को दिखा दें कि पद-दलित देशो के शेष शूर किस तरह अत्याचारियो की जड हिला देते हैं। आज से मेवाड का प्रत्येक पर्वत हमारा दुर्ग, प्रत्येक वन हमारा युद्ध-क्षेत्र और प्रत्येक गुफा हमारा राजमहल होगी। चित्तौड का उद्धार हमारा लक्ष्य होगा और बलिदान हमारा मार्ग। जय मेवाड।'[1]

जगलो मे मारे मारे फिर कर, बाल-बच्चों को अनेक कष्ट देकर, भूख से तडपने पर भी महाराणा प्रताप ने अकबर की आधीनता स्वीकार नही की थी क्योकि मातृभूमि के स्वाधीनता यज्ञ मे हसते-हसते प्राणोत्सर्ग करने की उन्होने प्रतिज्ञा की थी।[2] स्वाधीनता की प्रबल आकाक्षा प्रलयाग्नि बनकर[3] उनके हृदय मे भडक रही थी। जिस भूमि पर उन्होने जन्म लिया है, वह 'ईश्वर से भी पूज्य और प्राणो से भी प्यारी है।'[4] अपने अन्तिम समय मे वे कहते हैं—" मैं चाहता हू कि इस पीडित भारत वसुन्धरा पर कभी कोई ऐसा माई का लाल पैदा हो, जिसके हृदय-रक्त की अन्तिम बूदें इसके स्वाधीनता-यज्ञ मे पूर्णाहुति दें, इसे सदा के लिए स्वाधीन कर दें, जिसके इगित पर, बरसों के बिछुडे हुए कोटि-कोटि भारतीय एक सूत्र मे बधकर सर्वस्व बलिदान करने मातृ मन्दिर की ओर दौड पडे। मेरी प्रतिज्ञा तो अधूरी रह गई सामत! हृदय मे अतृप्ति की एक आग छिपाए जा रहा हू। उफ!'[5] निस्सन्देह भारतवासियो को सर्वत्र बलिदान करके ही स्वतन्त्रता की उपलब्धि हुई है। इस नाटक के गीतो मे भी हमने हसते बलिदान होने के लिए देशवासियो को प्रेरित किया गया है।[6]

---

१. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द : प्रताप प्रतिज्ञा : पृ० ११
२ वही पृ० ५४
३. वही : पृ० १३
४. वही : पृ० ४१
५. वही : पृ० ६५
६ वही : पृ० २२, ८७

बाबू लक्ष्मीनारायण कृत 'महाराणा प्रतापसिंह का देशोद्धार' नाटक भी देश के उद्धार के लिए बलिदान का पाठ पढाता है। हरिकृष्ण प्रेमी के 'रक्षा बन्धन' नाटक मे स्वदेश प्रेम एव ग्रान के लिए बलिदान देने वाले राजपूतो का वर्णन मिलता है। राजपूत पुरुष ही नही नारियां भी बलिदान के महत्त्व को समझती थी। इस नाटक म राजपूत नारियां सतीत्व की रक्षा के लिए मरण का गीत गाते हुए चिता पर चढ़कर बलिदान का अद्भुत आदर्श रखती हैं।[1] हमारा इतिहास साक्षी है कि स्वाधीनता पराधीनता का विचार तज वे केवल एक बात जानती थी रण मे अपनी आहुति देना"[2]। नाटक के गीत भी बलि-पथ का दीवाना बनने की प्रेरणा देते हैं।[3] बलि-वेदी पर मर मिटने के लिए आग्रह करते हैं—

पहनो बन्धु, मरण का ताज।
जन्मभूमि की रखलो लाज ॥[4]

इसी प्रकार 'शिवा-साधना' नाटक म शिवाजी का चरित्र, बलिदान का सजीव चित्र है, जिन्होंने स्वतन्त्रता के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया है। लेखक ने शिवाजी के कथन मे बलिदान को स्वतन्त्रता की साधना के लिए आवश्यक माना है—"....एक सैनिक की वीरता, एक-एक भावुक का आत्म बलिदान बूंद-बूंद मे एकत्र होकर, अगणित सिंधु भर देता है। तब जाकर किसी दिन स्वतन्त्रता की साधना सम्पूर्ण होती है।"[5] इस नाटक मे भी गीत द्वारा स्वतन्त्रता के लिए तन-मन-प्राण लुटाने का आह्वान किया गया है।[6]

बेचन शर्मा उग्र का 'महात्मा ईसा' और प्रेमचन्द का 'कर्बला' नाटक, क्रम से ईसाई एव मुसलमान महापुरुषो के चरित्रांकन द्वारा भारत मे बसने वाली अल्प-संख्यक ईसाई एव मुसलमान जातियों के बलिदान का महत्त्व प्रदर्शित करते हैं। 'महात्मा ईसा' मे भारतीय परिस्थितियो राष्ट्रीय संग्राम अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन के अनुकूल ईसा का चरित्र निर्मित कर उग्र जी ने बलिदान का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया है। महात्मा ईसा का बलिदान सत्य, न्याय, अहिंसा एव देशहित रक्षार्थ हुआ था। यही कारण है कि उनके अनुयायियो की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ी।[7] 'कर्बला' नाटक मे प्रेमचन्द जी ने मुस्लिम इतिहास के धर्म-प्रधान महापुरुष हुसैन के बलिदान की कथा लिख कर देश के मुसलमानो को बलिदान के लिए प्रेरित किया है।

---

१. हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन पृ० ६८
२ वही : पृ० ६६
३. वही : पृ० ३२
४. वही : पृ० ३३
५. हरिकृष्ण प्रेमी : शिवा-साधना : पृ० १५२
६ वही : पृ० १५३
१. बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० १६७

युगीन राष्ट्रीय आन्दोलन मे प्राणाहुति देने वालो मे लाला लाजपतराय से सबधित नाटक 'पजाब-केसरी' मिलता है। इस नाटक मे पजाब केसरी लाला लाजपतराय द्वारा बलिदान का महत्त्व प्रकाशित करते हुए लेखक ने लिखा है—'यदि पराधीनता की बेडी काटते हुए प्राण निछावर हो तो इससे बढ कर मुक्ति का मार्ग और दूसरा नही।'[1]

अत हिन्दी नाट्यकारो ने हिन्दू, मुसलमान, ईसाई धर्मावलम्बी जनता की आस्था एव धार्मिक विचारधारा के अनुकूल बलिदान के उज्ज्वल दृष्टान्त रख कर राष्ट्र की मुक्ति के लिए बलिदान की शिक्षा दी है। गाधी जी ने राष्ट्रीय सग्राम मे धर्म तथा जातीयता की सकीर्ण भावना का परित्याग कर बलिदान के लिए समस्त देशवासियो का आह्वान किया था। उनके विचार हिन्दी-नाटको मे प्रतिबिम्बित मिलते हैं।

कथा-साहित्य मे बलिदान की भावना

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो मे भारतीय राष्ट्रीयता से प्रेरित बलिदान की उच्चतम भावना से मडित उत्कृष्ट पात्रो का सजीव रूप प्रस्तुत किया है। उनके 'रगभूमि' उपन्यास मे सूरदास, विनयसिंह, इन्द्रदत्त,सोफिया रानी जाह्नवी आदि के चरित्रो मे बलिदान की भावना मूर्तमान हुई है। असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर रचना होने के कारण, इस उपन्यास मे प्रतिध्वनित है कि उस समय सत्य के लिए मिट जाना गौरव की बात थी।[2] इन्द्रदत्त की मृत्यु पर स्वय विनयसिंह कहते हैं, 'कितनी वीर मृत्यु पाई है।'[3] हवलदार विनयसिंह के त्याग भाव के सम्बन्ध मे कहते हैं—'कुअर साहब मरने जीने की चिंता नही, मरना तो एक दिन होगा ही, अपने भाइयो की सेवा करते हुए मारे जाने से बढ कर और कौन मौत होगी। धन्य है आप को, जो सुख विलास त्यागते हुए अभागों की रक्षा कर रहे हैं।'[4] इस उपन्यास मे बलिदान के कई रूप सम्मुख आते हैं, विनयसिंह, इन्द्रदत्त द्वारा राष्ट्र के लिए प्राणोत्सर्ग किया जाता है सूरदास पूजीवादी तथा मशीनी उद्योग से राष्ट्र को बचाने के लिए अहिंसा तथा सत्य की आराधना मे प्राण त्यागता है रानी जाह्नवी ने धन सम्पत्ति ही नहीं अपना पुत्र राष्ट्र की वेदी पर न्यौछावर कर दिया है, राष्ट्र की साधना मे इन्द्र का पारिवारिक जीवन विच्छिन्न हो जाता है। सोफिया परिवार और अपने जीवन सर्वस्व विनयसिंह के साथ अपना जीवन भी त्याग देती है। इस राष्ट्रीय आन्दोलन मे बलिदान का जो महान रूप सम्मुख आता है उसका वर्णन इन शब्दो मे मिलता है —

१ जमनादास मेहरा पजाब केसरी पृ० ६१
२ प्रेमचन्द रगभूमि पृ० ३३७
३ प्रेमचन्द रगभूमि पृ० ३३६
४ वही : पृ० ३४१

'गंगे ! ऐसा प्रभावशाली दृश्य कदाचित् तुम्हारी आँखों ने भी न देखा होगा। जो वीरों का मुंह फेर सकते थे, बड़े बड़े प्रतापी भूपति तुम्हारी आंखों के सामने राख मे मिल गए, जिनके सिंहनाद से दिक्पाल थर्राते थे, बड़े-बड़े प्रभुत्वशाली योद्धा यहाँ चिताग्नि मे मिल गए। कोई यश और कीर्ति का उपासक था, कोई राज्य-विस्तार का, कोई मत्सर ममत्व का। कितने ज्ञानी, विरागी, योगी, पंडित तुम्हारी आंखों के सामने चितारूढ हो गए। सच कहना, कभी तुम्हारा हृदय इतना आनन्द पुलकित हुआ था ? कभी तुम्हारी तरंगो ने इस भांति सिर उठाया था ? अपने लिए सभी मरते हैं, कोई इहलोक के लिये, कोई परलोक के लिये, आज तुम्हारी गोद में वे लोग आ रहे हैं, जो निष्काम थे, जिन्होंने पवित्र, विशुद्ध न्याय की रक्षा के लिए अपने को बलिदान कर दिया।'[1] रानी जाह्नवी विनयसिंह की वीर मृत्यु पर मां की ममता भूल कर गौरव का अनुभव करती हैं।[2]

'कर्मभूमि' उपन्यास मे भी प्रेमचन्द जी ने अमरकान्त, सुखदा, रेणुका देवी, समरकान्त, नैना के व्यक्तित्व मे आदर्श की प्रतिष्ठा की है। अमरकान्त, सुखदा, रेणुकादेवी द्वारा सुख सम्पत्ति का त्याग, समरकान्त का प्राचीन रूढिवादिता, धन तथा झूठी प्रतिष्ठा के मोह का त्याग, बलिदान के ही विभिन्न रूप हैं। इस उपन्यास मे भी नैना ने राष्ट्रीय संग्राम मे जीवन की आहुति दी है। "प्रेमाश्रम" उपन्यास मे प्रेमशंकर द्वारा धन सम्पत्ति के त्याग और ग्रामीणों की उन्नति के लिए रचनात्मक कार्य मे भी बलिदान की भावना निहित है। अत. प्राणदान के साथ राष्ट्रीयता के लिए धन-सम्पत्ति, रागात्मक एवं भावात्मक सम्बन्धो का बलिदान अत्यधिक महत्व रखता है।

राधिकारमण प्रसाद सिंह का "पुरुष और नारी" उपन्यास राष्ट्रीय संग्राम के लिए किये गए युवक और नारियो के बलिदान की कथा है। अजीत जैसे कितने ही विद्यार्थियो ने असहयोग आन्दोलन छिडते ही सूट-बूट त्याग, परिवार से संबध तोड और धन-सम्पत्ति पर लात मार कर साबरमती आश्रम की ओर पग उठाया था। इस उपन्यास में लेखक ने अजीत जैसे युवको को "आंखो की उलझन न गले की थिरकन" छोड कर 'भारत की आजादी-लाखों की रोटी, करोडो की नून-तेल-लकडी का" प्रश्न सुलझाने के लिए राष्ट्रीय संग्राम मे सम्पूर्ण जीवन होम करते दिखाया है।[3] लेकिन उसके चरित्र की मानवीय दुर्बलता—"रस की फेनिल बोतल" की आकांक्षा, उसके समस्त बलिदान को उत्कर्ष के चरम पर नहीं पहुंचा पाती। गांधी जी ने राष्ट्रीय वीरो के लिए शरीर की आवश्यकताओं से कहीं ऊंची मंजिल ढूंढी थी, वह उस उच्चता तक नहीं पहुंच पाता। प्रेमचन्द जी ने अपने "कर्मभूमि" उपन्यास मे

---

१ प्रेमचन्द : दूसरा भाग पृ० ३४३

२. वही : पृ० ३७५

३. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी . पृ० ४०

नायक अमरकान्त के चरित्र मे भी मानवीय दुर्बलताओं को दिखाया है लेकिन उपन्यास के अन्तिम भाग मे उसका सुधरा हुआ रूप सम्मुख आता है। राधिकारमण प्रसाद सिंह के अजीत का चरित्र निरन्तर पतनोन्मुख सम्मुख आता है।

इस उपन्यास मे भी 'सुधा" का चरित्र बलिदान की दृष्टि से अधिक महत्व रखता है। असहयोग आन्दोलन के उत्साह मे अजीत ने जिस नारी के प्रेम को बन्धन समझ कर, अवहेलना की थी, वही आन्दोलन की प्रेरक शक्ति बन जाती है। "किसी भी विरोध के बवण्डर मे वह अपनी ऊचाई से जौ भर भी नही झुकती ।"[1] राष्ट्र के नाम पर सुधा का सारा व्यक्तित्व निछावर हो गया। वह सेवा और त्याग का प्रतीक बन जाती है।" उसकी सेवा तो सरासर साधना हो रही है। उसमे न कही ग्रहण है, न विज्ञापन।"[2] पारिवारिक सुख का बलिदान कर महिलाओ को देश सेवा के लिए तैयार करती है। अजीत को राष्ट्र-धर्म से च्युत न होन देने के लिए ही वह विषपान कर राष्ट्र की वेदी पर अपने प्राण अर्पित कर देती है। गौण पात्रो मे छन्नूलाल जैसे राष्ट्र भक्त की पुत्र-वधू का बलिदान भी स्तुत्य है—"चौधरी घराने की बेटी को दो दाने के लिए चक्की पीसना पडा' लेकिन उसकी देश-भक्ति, स्वाभिमान, अहम्मन्यता ने किसी का दान स्वीकार न किया।

उपन्यासो की अपेक्षा बलिदान भावना से पूर्ण कहानियां अधिक सख्या मे लिखी गई। प्रेमचन्द की सभी राजनीतिक कहानियां—'जुलूस,' 'समर-यात्रा,' सुहाग की साडी,' आदि मे देश के लिए बलिदान के विभिन्न रूपो का चित्रण मिलता है। राष्ट्रीय स्वातत्र्य सग्राम काल मे स्वराज्य के लिए बडे से बडा बलिदान किया जा रहा था। नारी, पुरुष, बच्चे, बूढे सभी इस क्षेत्र म अग्रसरित थे। सुदर्शन की "हार जीत' कहानी मे स्वार्थ का बलिदान, 'कैदी'[4] मे धनाढ्य युवक द्वारा पारिवारिक सुख और ऐश्वर्य का बलिदान, 'अधेरे मे'[5] कहानी मे सरकारी नौकरी की अस्वीकृति का बलिदान प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी मे भगतराम ने आर्थिक कष्टो के बीच सरकारी नौकरी न करने का जो आदर्श रखा था,वह अन्धकार मे हुआ था,किसी प्रकार की वाहवाही अथवा यश प्राप्ति के लिए नही न जाने कितने भारतीय परिवारों ने इस प्रकार बलिदान देकर भारत को स्वतत्र किया है।इस बलिदान की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए सुदर्शनजी ने लिखा है -'यह बलिदान अनाज के दाने का बलिदान है, जो अन्धकार में पृथ्वी के अन्दर धस जाता है और अपने आप अपने जैसे बीसो

१ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी पृ० ११२
२ वही पृ० ११८
३ वही : पृ० २५४
४ सुदर्शन सुप्रभात . पृ० ६१
५ वही । पृ० ८०
६. वही : पृ० ७८

दाने उत्पन्न कर देता है।[1] विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियों में भी राष्ट्रीय-संग्राम में बलिदान देने का उल्लेख मिलता है। 'विश्वास' कहानी में 'स्वराज्य सोपान' के सम्पादक प्रसन्नता के साथ अपने परिवार तथा प्रेस का कार्य सहकारी सम्पादक पर छोड़ कर जेल जाते हैं। राष्ट्र के लिए किए गये बलिदान ने सी० आई० डी० विभाग की ओर से उनका भेद लेने के लिए नियुक्त, उनके सह-सम्पादक शुक्ल जी भी हृदय परिवर्तित कर, उन्हें सच्चा देश-भक्त बना दिया।[2] इसी प्रकार कौशिक जी ने 'शान्ति' कहानी में दिखाया है कि राष्ट्र-उन्नति के लिए धन सम्पत्ति के बलिदान में ही सच्ची शान्ति मिलती है। 'हिन्दुस्तानी' कहानी में राष्ट्रीय-एकता के लिए धार्मिक कट्टरता के बलिदान पर लेखक ने विशेष बल दिया है।[3]

सुभद्राकुमारी चौहान की गौरी राष्ट्रीय भावना को महत्व देने के कारण नायब तहसीलदार की अपेक्षा विधुर राष्ट्र-सेवी से विवाह कर, राष्ट्र के लिए युवती-हृदय की आकांक्षाओं के बलिदान का आदर्श रखती है।[4] चतुरसेन शास्त्री की 'अभाव' कहानी में भी बलिदान के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।[5]

अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि स्वाधीनता की 'प्रकाशपुरी' में जाने के लिए बलिदान की आवश्यकता थी—'देवता जीवन नहीं मांगते। वे जीवन के भोगों की, जीवनी की लालसाओं की जीवन के सुखों की, और जीवन की विषय वासनाओं की बलि मांगते हैं। बोलो क्या तैयार हो।'[6] इस बलिदान के लिए देश तत्पर था स्वार्थ पर कर्तव्य को और प्रेम पर पवित्र आत्म-सत्ता को महत्व दिया गया था। जिन्होंने प्राण देकर बलिदान का आदर्श रूप रखा था, उनसे धन, जन तथा लालसाओं का बलिदान देने वालों का महत्व कम नहीं था। कथा-साहित्य में बलिदान की भावना का सुन्दर, यथार्थ एवं प्रेरणादायक चित्रण मिलता है।

हिन्दी-साहित्य में गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का विवरण

गांधी जी ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं पुनरुत्थान के लिए रचनात्मक कार्यक्रम की विस्तृत योजना बनाई थी। इस योजना को क्रियान्वित करने के लिए स्वयं-सेवकों का विशाल दल संगठित किया गया था, जिससे देश में सामूहिक रूप में जागृति आ सकती और सच्चे अर्थों में स्वतन्त्रता की प्राप्ति होती। गांधी जी ने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक अंग के सुधार के लिए जिस अनेकांगी कार्यक्रम को क्रियान्वित किया था, उसके अन्तर्गत प्रमुख रचनात्मक कार्य थे—स्वदेशी का प्रचार एवं विदेशी का बहिष्कार,

१ विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक कल्लोल पृ० ६१
२. वही : पृ० १३
३. वही · पृ० २५६
४. सुभद्राकुमारी चौहान : सीधे सादे चित्र : पृ० १५
५. चतुरसेन शास्त्री : मरी खाल की हाय : पृ० ३७
६. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० १०

चर्खा, खादी तथा अन्य ग्रामोद्योगों का विकास, मादक द्रव्य निषेध, सामाजिक कुरीतियों को मिटाना, अस्पृश्यता निवारण, ग्राम-सुधार योजना अर्थात् गावों की सफाई, शिक्षा एवं अन्धविश्वासों का निराकरण, साम्प्रदायिक एकता तथा धार्मिक समानता की चेष्टा, स्वभाषा प्रेम की शिक्षा तथा राष्ट्रभाषा का प्रचार। ये रचनात्मक कार्य गांधी जी की राष्ट्रवाद सम्बन्धी आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक नीति के अन्तर्गत समाहित थे। इनकी पूर्ति द्वारा उन्होंने स्वतंत्र भारत के आदर्श रूप की व्याख्या की थी।

जैसा कि गांधी जी के राष्ट्रवाद के व्यावहारिक पक्ष के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है, वे स्वदेश के प्रचार एवं स्वदेशी के बहिष्कार द्वारा राष्ट्र के कला-कौशल, हस्त-उद्योग को विकसित कर उसकी अर्थनीति को व्यवस्थित और बेकारी की समस्या को सुलझा कर राष्ट्रीय प्रतिमा को बढ़ाना चाहते थे। खादी, चर्खा तथा अन्य ग्रामोद्योगों को, वे भारतीय मन स्थिति एवं व्यवहार के अनुकूल मानते थे। भारतीय उद्योग धन्धों ने पश्चिमी जगत् की भांति कल-कला अथवा मशीनी विद्या में प्रगति नहीं की थी अतः चर्खा द्वारा साधारण अपढ़ ग्रामवासी सरलता से सूत कात सकता था। हाथ करघे अथवा चर्खे के लिए अधिक पूंजी की भी आवश्यकता नहीं थी। स्त्रियां बूढ़े, बच्चे भी अपनी आजीविका का उपार्जन कर सकते थे। इनके द्वारा देश की आर्थिक दशा सुधर सकती थी।[1] घर बैठे रोजी देने का यह अचूक साधन था। ग्रामीणों की दशा सुधारने में चर्खा खादी अति सहायक थे। इसी कारण *गांधी जी ने प्रत्येक राष्ट्र-कर्मी के लिए चर्खा कातना आवश्यक धर्म माना था,* क्योंकि इससे वह स्वावलम्बी बन सकता था और आत्मशुद्धि का भी यह अद्भुत प्रयास था। राष्ट्रवाद के लिए अस्पृश्यता की भावना अहितकर थी क्योंकि विदेशी शासकों ने भी इससे लाभ उठा कर विभेद-नीति द्वारा अछूतों को अपनी ओर मिलाना चाहा था। इसके अतिरिक्त अछूत ईसाई धर्म को भी अपनाते जा रहे थे। निस्सन्देह गांधी जी को इसमें सफलता मिली थी। आत्मबल अथवा नैतिक बल प्रयोग द्वारा दक्षिण के कुछ मन्दिरों के द्वार अछूतों के लिए खुल गए थे। भारत ग्रामों का देश है। गांधी जी ने विशेष रूप से ग्राम सुधार एवं ग्रामवासियों की शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए स्वयं सेवकों का सगठन किया था। हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक एकता गांधी जी के जीवन का महान व्रत था। विदेशी भाषा के स्थान पर वे देश-भाषा की प्रतिष्ठा करना चाहते थे इस प्रकार राष्ट्रीय नेताओं एवं स्वयंसेवकों द्वारा किए गए कार्यों, साधनों और उपायों के रचनात्मक पक्ष की भी अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य में मिलती है।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। *साहित्य में राष्ट्रीय दुर्दशा का यह चित्रण निष्प्रयोजन नहीं किया गया* था। इन रचनाओं ने जनता को देश-दशा सुधारने की प्रेरणा दी थी। प्रत्यक्ष रूप में जो रचनात्मक कार्य किये गए थे, वे हिन्दी साहित्य में मार्मिक अभिव्यक्ति प्राप्ति

१ किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन पृ० १२२

करने मे असमर्थ रहे थे। राष्ट्रीय कविता मे देश-जीवन के कष्टो, जेल, शहीद, कैदी, स्वदेश-प्रेम, आन्दोलन, राजनीतिक असन्तोष, बलिदान आदि की अभिव्यक्ति अधिक मिलती है।

स्वदेशी का प्रयोग एव विदेशी का बहिष्कार

राष्ट्रीय क्षेत्र मे गाधी जी के आगमन के पूर्व ही स्वदेशी-आन्दोलन तीव्र गति से चल चुका था। अतः स्वदेशी-प्रचार, प्रयोग तथा अभिवृद्धि सम्बन्धी काव्य द्विवेदी युग मे अधिक मात्रा मे लिखा गया था। गाधी जी ने स्वदेशी आन्दोलन को अधिक क्रियात्मक रूप देने के लिए स्वयसेवको की सेना का सगठन किया था जो घर घर और विदेशी वस्तुओ की दुकानो पर जाकर धरना देते थे। इस प्रकार कष्ट सहन का आदर्श रख कर देशवासियों का हृदय-परिवर्तन इनका लक्ष्य था। काव्य की अपेक्षा उपन्यासो एव कहानियो मे इसका विस्तृत चित्रण मिलता है, क्योकि उसमे इसकी अभिव्यक्ति की अधिक सभावना थी। काव्य मे स्वदेशी की उन्नति का सकेत अथवा सूक्ष्म उल्लेख मात्र मिलता है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'स्वदेशी सगीत' मे भारतवासियों को मिल जुल कर अपना व्यापार बढाने का उपदेश दिया है।[१] क्योकि विदेशी वस्तुओ के प्रयोग से राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था विच्छिन्न हो रही थी। रूपनारायण पाडेय ने चर्खे को सुदर्शन चक्र माना है,जिसके द्वारा भारतवासियो को विजय प्राप्त होगी।[२] "चर्खे का महत्त्व"[३] प्रतिपादित करते हुए उन्होंने भी चर्खे द्वारा विदेशियो को परास्त करने का प्रण किया था।[४] गाधी जी ने देश की साम्प्रदायिक एव आर्थिक स्थिति का सूक्ष्म अवलोकन कर खादी और चर्खे के प्रचार पर बल दिया था। खादी और चर्खे के प्रचार द्वारा समाज की विधवाओ को अपने भरण पोषण का साधन मिल सकता था जिससे समाज मे उनकी स्थिति सुदृढ हो सकती थी और उन्हे दूसरो के भिक्षा-दान पर जीवित न रहना पडता। सियारामशरण गुप्त ने 'खादी की चादर'[५] नामक करुण कथा काव्य मे इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है। असहाय, निराश्रित एव सामाजिक अत्याचार से पीडित चम्पा, चर्खे से सूत कात कर दो आने पैसे का दूध खरीद कर गगा की लहरो को समर्पित कर देती है कि वे उसे उसकी भूख से मृत बच्ची की भूखी हड्डियो तक पहुचा दें। सियाराम जी की खादी की 'बेडौल बुनी चादर' राष्ट्र की करुणा के ताने बाने से बुनी हुई है।

सोहनलाल द्विवेदी ने गाधी जी के खादी सम्बन्धी विचारो को काव्य-रूप प्रदान करते हुए, प्रत्येक दृष्टि से राष्ट्रीय उत्थान के लिए उपयोगी ठहराया है।

१ मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश सगीत : पृ० ६६

२ रूपनारायण पाडेय : पराग : पृ० ३५

३. वही : पृ० ३२

४. वही : पृ० ३६

५. सियारामशरण गुप्त : आर्द्रा : पृ० ६८

उनके मत मे राष्ट्रीय एकीकरण आर्थिक सुसम्पन्नता, ग्राम सुधार, एव विदेशी साम्राज्यवाद रूपी शत्रु पर विजय प्राप्ति का एकमात्र साधन खादी है । द्विवेदी जी के शब्दो मे—

खादी ही बढ, चरणो पर पड नूपुर-सी लिपट मनायेगी,
खादी ही भारत से रूठी आजादी को घर लायेगी;[1]

गाधी जी के स्वदेशी सबधी रचनात्मक कार्यक्रम के सदेश को काव्यमयी वाणी द्वारा घर घर पहुचाने का श्रेय इन कवियो को मिलेगा ।

अस्पृश्यता निवारण

गाधी जी की राष्ट्रीय भावना मे अस्पृश्यता निवारण अथवा अछूतो की दयनीय स्थिति का निराकरण अत्यधिक महत्त्व रखता था । हिन्दू-समाज एव राष्ट्रीयता के लिए, वे इस भेदभाव अथवा ऊच-नीच की भावना को घातक समझते थे । वर्ण व्यवस्था मे विश्वास रखने पर भी वे अस्पृश्य जातियो अथवा निम्न वर्ग को समाज मे *समानाधिकार दिलाना चाहते थे । मैथिलीशरण गुप्त ने गाधी जी की इस विचारधारा* का अनुमोदन करते हुए 'अछूतोद्धार' कविता मे लिखा है—

देकर सबको आदर-दान
दो निज मनुष्यत्व को मान ।[2]

गाधी जी की भाति मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय भावना भी अति विशाल एव वर्णाश्रम धर्म समर्थक है । नीची जातियो के प्रति वैष्णव कवि की पूर्ण सहानुभूति है । 'पचवटी' खडकाव्य मे लक्ष्मण निम्न वर्ग को समान भाव से देखते हैं । 'स्वदेश सगीत' मे 'छूत' नामक कविता मे अस्पृश्यता निवारण पर विशेष बल दिया है ।[3] उनकी यही 'वैदिक विनय' थी कि देशवासी धर्म, कर्म मे अटल रह चारो वर्ण अपने अपने गुणो का विकास करें, युवक उपकारी हो, नारी रूप शील-युत हो, पशु पुष्ट हो, दूध की धार बहे मेघ समय पर जल बरसायें और आपस मे मेल बढे ।[4]

सियारामशरण गुप्त ने 'एक फूल की चाह' नामक कथा-काव्य मे अछूत जीवन से सबधित मार्मिक कथा लिखकर अप्रत्यक्ष रूप से पाठको की सहानुभूति अछूतो के प्रति अर्जित कर, अछूतोद्धार की प्रेरणा दी है

रूपनारायण पाडेय ने गाधी जी के अस्पृश्यता निवारण सबधी रचनात्मक कार्यक्रम से प्रभावित होकर 'अछूतोद्धार' कविता लिखी थी ।[5] इस प्रकार काव्य की अनेक शैलियों मे गाधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के इस पक्ष का उल्लेख मिलता है ।

१ सोहनलाल द्विवेदी भैरवी पृ० ८
२ मैथिलीशरण गुप्त · हिन्दू : पृ० ११४
३ *मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश सगीत : पृ० १०७*
४ वही पृ० १३६
५ रूपनारायण पांडेय पराग पृ० १२६

ग्राम सुधार

अपने राष्ट्र का विस्तार ग्रामो मे ही हुआ है। किन्तु दुर्भाग्यवश ग्रामवासी अति दीन, हीन दशा मे,अज्ञानान्धकार मे कूपमण्डूक बने निज अधिकारो से वचित हैं। गाधी जी का विशेष ध्यान इस ओर गया था। ग्राम सुधार उनके रचनात्मक कार्यक्रम का महत्वपूर्ण अग था। मैथिलीशरण गुप्त ने गाधी जी के ग्राम सुधार योजना को काव्य द्वारा वाणी प्रदान की है। उनके मत मे आज का युवक वर्ग अपनी विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त कर ग्रामो को मिथ्या विश्वास, सक्रामक रोग, आर्थिक शोषण के अभिशाप से मुक्त कर, ग्रामवासियो के साहस, विश्वास निर्भयता स्वास्थ्य आदि वरदानो से सुसज्जित कर, देश-विदेश का समाचार सुना कर, उनके कला-कौशल, ज्ञान विज्ञान का विकास कर, उन्हे अपने निज स्वत्व के प्रति सचेत कर सकता है। इस नवयुवक वर्ग को लक्षित कर गुप्त जी ने कहा है—

करना है यदि देशोद्धार,
तो कुछ त्याग करो स्वीकार।[1]

नगर जीवन का सुख त्याग कर रही शिक्षित नवयुवक वर्ग ग्राम सुधार तथा देशोद्धार कर सकता था। धन जन से श्रेष्ठ नहीं है। अत शिक्षित नवयुवक वर्ग अंग्रेजों की प्रथम चाकरी की अपेक्षा उत्तम खेती द्वारा स्वावलम्बी बन कर देश का अधिक कल्याण कर सकता है।[2]

सोहनलाल द्विवेदी ने ग्राम-जीवन का मार्मिक चित्र खीचते हुए, गावो मे बसे हिन्दुस्तान का पुनर्निर्माण करने को प्रोत्साहित किया है। गाधी ने सेगाव (सेवाग्राम) को एक आदर्श ग्राम बना दिया था—कवि की आकाक्षा है कि सभी गाव सेगाव बन जाए।

सेगाँव बनें सब गाव आज हम मे से मोहन बने एक,
उजड़ा वृन्दावन बस जावे, फिर सुख की वशी बजे नेक;
गूजे स्वतन्त्रता की तानें गगा के मधुर बहावों मे।
है अपना हिन्दुस्तान कहां वह बसा हमारे गाँवो मे।।[3]

सोहनलाल द्विवेदी ने देशवासियो को गाधी जी के सदृश झोपडियो की ओर चलकर अन्याय, अनीति, युग युग के दुख दैन्य मिटाने के लिए अभिप्रेरित किया है।[4] वस्तुत ग्राम सुधार द्वारा स्वतन्त्रता अपने सच्चे अर्थों मे चरितार्थ हो सकती थी।

समाज सुधार

काव्य के इस छायावादी युग मे नारी को सामती रूढ़ियों से मुक्त कर, उसके

१. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू पृ० ८५
२ वही : पृ० ८६
३ सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी : पृ० १६
४. वही : पृ० १७

आदर्श रूप को सम्मुख रखने का कार्य कर, छायावादी कवियो ने राष्ट्रीय आन्दोलन के *समाज सुधारक अंग को अपना सहयोग प्रदान किया।* 'नैतिकता की पुरानी रूढियो को तोड कर उसने मानव-विवेक पर आधारित प्रेम सबधी नवीन नैतिक मूल्यो की स्थापना की; सूखे सुधारवाद की जगह छायावाद ने रागात्मक आत्म सस्कार का बीजारोपण किया, मध्य वर्ग को व्यावसायिक प्रयोजन शीलता तथा अत्यन्त उपयोगितावादी दृष्टिकोण से मुक्त कर आदर्शवाद के उच्च आकाश मे विचरण करने की प्रेरणा दी।'[१] निराला की 'विधवा' कविता मे नारी के नैतिकतापूर्ण उच्च आदर्श रूप की प्रतिष्ठा की गई है। प्रो० क्षेम ने अपनी पुस्तक 'छायावाद के गौरव चिह्न' मे यह सिद्ध किया है कि अप्रत्यक्ष एव मौन रूप से छायावादी कवियो ने गाधी जी की राष्ट्रीय भावना तथा *राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण की योजना को ही मुखरित किया है*—

'उसमे उदार *गाधीवाद* चेतना का औदात्य और भीतर ही भीतर *बिना घोषणा* किए ही वे जन-मन मे एक ऐसा उदार परिष्करण ला रहे थे, जो देश मे सद्य-घटित सम्भावनाओ के सर्वथा अनुकूल था। समाज के बाह्य स्तर पर जैसा मन परिष्कार राजनीति के क्षेत्र मे गाधी जी कर रहे थे, साहित्य की भूमि से छायावादी युग भी अपने विश्वासी पाठको मे वैसी ही सास्कृतिक परिष्कृति सम्भव कर रहा था।'[२]

मैथिलीशरण गुप्त स्त्री के स्वावलम्बन मे विश्वास रखते हैं। 'साकेत' एव 'पचवटी' मे उन्होने सीता के जिस स्वावलम्बी स्वरूप की ओर दृष्टि आकृष्ट की है वह अप्रत्यक्ष रूप से उनके अपने युग की नारी की प्रगति से सबधित भावना है। काव्य मे *समाज-सुधार सबधी प्रत्यक्ष चित्रो का प्राय अभाव है।* रूपनारायण पाडेय की 'स्त्री-शिक्षा' कविता मिलती है।[३] इतिवृत्तात्मक शैली मे रचित समाज-सुधार की कविताए युगीन काव्य की विशेषता थी।

स्वभाषा प्रेम की शिक्षा

निज भाषा राष्ट्रीयता का एक प्रमुख तत्व है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने निज भाषा पर प्यार का सदेश दिया है। गाधी जी के सदृश उनके मतानुसार भी भाषा ही अवनति से आक्रान्त, अन्धकार मे भूले भटके भारत को अपने मधुर स्निग्ध स्पर्श से पार लगा सकती है।[४] सुभद्राकुमारी चौहान ने *'मातृ मन्दिर'* कविता मे स्वभाषा हिन्दी का भविष्य अति उज्जवल देखा था। वे राष्ट्र के प्रत्येक कार्य के लिए अपने देश की भाषा के प्रयोग मे विश्वास रखती थी। उन्होंने लिखा था—

तू हो आधार, देश की पार्लमेण्ट बन जाने मे।
तू होगी सुख-सार, देश के उजड़े क्षेत्र बसाने मे॥[५]

---

१. नामवरसिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां : पृ० २८
२. प्रो० क्षेम छायावाद के गौरव चिह्न पृ० ३२
३ रूपनारायण पाडेय पराग . पृ० ३२
४ मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश सगीत : पृ० ७३
५. सुभद्राकुमारी चौहान . मुकुल पृ० १००

राष्ट्रीय एकता एव विकास के लिए अपनी भाषा ही सहायक होती है। गाँधी जी अपनी विदेशी भाषा की अपेक्षा अपनी भाषा मे देशवासियो को शिक्षित करना अधिक श्रेयस्कर समझते थे। परन्तु स्वभाषा प्रेम की शिक्षा देने वाली कविताएँ हिन्दी साहित्य मे अधिक उपलब्ध नही होती।

साम्प्रदायिक एकता

गांधी जी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओ द्वारा साम्प्रदायिक एकता का जो प्रयास किया जा रहा था उसका उल्लेख हिन्दी काव्य मे भी मिलता है। अधिकाश कवि साम्प्रदायिकता की भावना से मुक्त थे। वे हृदय से हिन्दू मुस्लिम सांस्कृतिक एकता के समर्थक थे। अग्रेजो ने भेद-नीति द्वारा हिन्दू मुसलमानो को धर्म तथा जाति के आधार पर विभाजित कर राष्ट्रीयता के उद्रेक मे बाधा डालने की कुटिल नीति प्रचारित की थी। अत कविवर 'त्रिशूल जी भेद का भण्डाफोड कर एकता के सूत्र मे बधने के लिए भारत के युवक वर्ग को प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं—

उठो युवकगण उठो, भेद का भण्डा फोड़ो,
आडे आयें अगर रूढि के बन्धन तोडो ॥
सम्मुख उन्नति पथ प्रशस्त है इसे न छोडो,
राष्ट्र बनाओ और देश से नाता जोडो।
जाग्रत हो जातीयता उन भावो का ध्यान हो।
भारत के अरमान हो तुम्हीं देश की जान हो ॥[1]

कवि की यह महती अभिलाषा थी कि सम्पूर्ण देश ऐक्य सूत्र मे बध कर राष्ट्र के विकास मे योग दे तथा स्वातन्त्र्य की सोमसुधा का पान कर भारत की मृतप्राय राष्ट्रीयता तथा जातीयता को जाग्रत कर स्वराज्य की वशी बजाये।[2] श्रीधर पाठक ने भारत की सभी जातियो की एकता, सभी धर्मों के भ्रातृ भाव मे भारत का उत्थान माना था। उन्होंने गाधी जी के स्वर मे स्वर मिला कर गाधी जी के साम्प्रदायिक एकता के रचनात्मक कार्य को अपना सहयोग दिया है —

हिन्दू मुसलमान ईसाई
बौद्ध पारसी, जैनी भाई
मदिर, मूरत, तीरथ, मसजिद
मक्का, प्राग, हज्ज, हरद्वारा ॥
प्यारा हिंदुस्तान हमारा ॥[3] (३०-१-२१)

'बनें शुभ राज्य भक्ति की खान, प्रेम की पावें शक्ति महान्' अर्थात् प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, भ्रातृ-अनुराग, सेवा, सत्यता, मन वचन कर्म की पवित्रता तथा धर्म

१ त्रिशूल : राष्ट्रीय मच : पृ० ३०
२ वही : पृ० १५
३ श्रीधर पाठक : भारत गीत : पृ० १२६

की एकता द्वारा समस्त विश्व को प्रेम का सन्देश दे भारत की राष्ट्रीयता विकसित हो सकती है—पाठक जी का ऐसा दृढ मत था।[1] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध की राष्ट्रीयता अहिंसात्मक और अधिक सहिष्णु न हो कर कुछ प्रतिहिंसात्मक थी।[2] किन्तु साम्प्रदायिक एकता के वे भी बहुत बड़े समर्थक थे। हिन्दुओं को सावधान करते हुए 'हरिऔध' जी ने यह कहा है कि अपने भाइयों के साथ फूट वैर और एक दूसरे को दबाने का ही यह बदला मिला है कि देश को विदेशियों के अधिकार में विवश हो कर रहना पड़ता है।[3] मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दू धर्म एवं जातीयता की विशालता का परिचय देकर भारत की अन्य विधर्मी जातियों के प्रति सहिष्णु भाव प्रकट किया है —

हिन्दू धर्म मुक्ति का द्वार,
करे प्रवेश सर्व संसार।[4]

गाधी जी भी हिन्दू धर्म के उस विस्तृत एवं विशाल रूप को मान्यता देते थे, जिसमें सभी धर्मों का समावेश हो सकता था। गुप्त जी की विचारधारा गाधी जी की धार्मिक एकता की नीति के अनुकूल है।

'हिन्दू' में साम्प्रदायिक एकता के प्रयास-वश ही गुप्त जी ने पारसी, मुसलमानों और ईसाइयों के प्रति एकत्व भावना से पूर्ण काव्य लिखा है। पारसियों से अति पुरातन धर्मगत एकता का सम्बन्ध है —

वेद अवस्ता दो ही नाम।।
पुरातत्व के हैं विश्राम।।[5]

मुसलमान भी इसी देश के वासी हैं। मुसलमान भाइयों की प्रतिहिंसा की भावना को शान्त करते हुए और हिन्दू भाइयों को उनसे प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए राष्ट्र-कवि ने लिखा है :—

डालो अपने ऊपर दृष्टि
तुम अधिकांश यहीं की सृष्टि।।[6]

ईसाइयों को धार्मिक एकता के नाते अंग्रेजी शासकों का बहुत विश्वास था, और वे राष्ट्रीयता से विमुख थे। उनकी इस भ्रान्त धारणा का निवारण करते हुए कवि ने कहा था —

१ श्रीधर पाठक भारत गीत : पृ० १२६
२ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' . चुभते चौपदे : पृ० ८
३. वही : पृ० २६
४. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ११४
५ वही : पृ० १८८
६ मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० १८६

करो न तुम औरों की आस,
रक्खो भारत का विश्वास ॥[२]

इसी प्रकार 'गुरुकुल' की रचना द्वारा मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दू-सिक्ख एकता पर बल दिया है।

सियारामशरण गुप्त ने साम्प्रदायिक एकता के लिए जीवन अर्पण करने वाले अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान की कथा लिख कर काव्य द्वारा साम्प्रदायिकता के विष को मारने का प्रयत्न किया है। रूपनारायण पांडेय ने 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' नामक कविता रच कर, साम्प्रदायिक एकता का प्रचार किया था।[३]

हिन्दी-नाट्य साहित्य मे रचनात्मक कार्यक्रम

स्वदेशी— चर्खा, खादी तथा अन्य ग्रामोद्योग'—नाटको मे भी खादी, चर्खा के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। जयशंकर प्रसाद के 'कामना' नाटक मे गांधी जी की राष्ट्रीय विचारधारा के इस तत्व का पूर्ण विकास मिलता है। गांधी जी नगर के कृत्रिम जीवन, कल-मशीनो की अपेक्षा ग्राम के नैसर्गिक एवं प्रकृत जीवन तथा हस्तकला उद्योग के पक्षपाती थे। अत प्रसाद जी के इस नाटक मे जिस द्वीप एवं जाति का प्रारम्भ मे वर्णन किया गया है वह प्रकृति के बीच स्वाभाविक जीवन व्यतीत करती है। चर्खा कातना, रूई ओटना,कृषि-कार्य मे हाथ बटाना तथा प्रेमपूर्वक सम्मिलित भाव से रहना इनकी विशेषता है। प्रच्छन्न रूप से इस नाटक मे प्रसाद जी ने अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा प्रचारित पूंजीवादी व्यवस्था, मद्यपान, हिंसा, व्यभिचार आदि को अशान्ति का कारण माना है। गांधी जी के सदृश प्रसाद जी ने भी देशवासियों को पुन प्राचीन नैसर्गिक किन्तु संघर्ष-विहीन शान्तिमय जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित किया है। भारत का कल्याण इसी मे था कि वह अपने ग्रामोद्योगो का विकास करता।

उग्र जी ने 'महात्मा ईसा' नाटक मे प्रच्छन्न रूप से गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन के वर्णन के साथ ईसा तथा उनके शिष्यों को मोटे वस्त्रो मे दिखा कर राष्ट्रीय संग्राम के लिए गाढे अथवा खादी को आवश्यक बताया है।

'महाराणा प्रतापसिंह अथवा देशोद्धार नाटक' मे नाट्यकार लक्ष्मीनारायण ने अपने युग की राष्ट्रीय भावना तथा चर्खाखादी आदि रचनात्मक कार्य का आरोपण ऐतिहासिक महापुरुष महाराणा प्रताप तथा उनके पारिवारिक जीवन मे भी किया है। महाराणा प्रताप आभूषण, साडिया आदि परित्याग कर मोटे वस्त्र धारण करने का आदेश देते हैं और उनका पुत्र अमर खादी के वस्त्र धारण करने का प्रण करता है :—

---

२ मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू . पृ० २०२
३. रूपनारायण पांडेय . पराग : पृ० १२८

पहन के खादी मैं बढ़ूंगा देश-सेवा धर्म पर ।
प्राण जाये तो जाये पर बढ़ता रहूंगा कर्म पर ।।[1]

इस प्रकार स्वदेशी, खादी, चर्खा आदि का उल्लेख कतिपय नाटकों में मिल जाता है ।

नाटकों में ग्राम-सुधार की कार्य-प्रणाली का वर्णन

मैथिलीशरण गुप्त ने 'अनघ' नामक गीति-नाट्य में भगवान बुद्ध का साधनावतार 'मघ' गाव भर के सुधार का सारा भार अपने ऊपर ले लेता है। वह अहिंसात्मक नीति का पालन करता हुआ समाज तथा शासक-वर्ग के अन्याय से संघर्ष कर मानव धर्म की स्थापना करना चाहता है। इस नाटक में गुप्त जी ने आदर्श ग्राम-पंचायत का रूप रखा है जिससे गाव के झगड़े आपस मे सुलझ जायें।[1] ग्राम-सुधार की कार्य प्रणाली के संबंध मे गुप्त जी का अभिमत है कि ग्रामवासियो के सम्मिलित उद्योग, मेलो, उत्सवो द्वारा सेवा-सुधार एव प्रेमप्रचार का कार्य कर ग्राम-सुधार संभव है।[2] 'मघ' ने ग्राम सुधार का पूर्ण प्रयत्न कर ग्रामो की उन्नति का थी।

'पंजाव केसरी' नाटक मे बाबू जमनादास मेहरा ने लाला लाजपतराय के जीवन-चरित्र की झलक दिखाते हुए सुधार-कार्य के क्रियान्वित रूप का वर्णन भी किया है। देश की दुर्दशा से व्यथित होकर लालाजी ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का व्रत लिया था। इस नाटक मे वे राष्ट्रीय स्वय सेवकों की सहायता से अकाल, भूकम्प आदि दैवी विपत्तियों एव विदेशी शासकों की क्रूर नीति मे पीडित ग्रामीण जनता की सेवा करते दृष्टिगत होते हैं।[3] पंजाबकेसरी द्वारा उत्साहपूर्ण शब्दो मे लेखक ने कहलाया है—'भाइयो ! जाओ मैं आगे चलता हू तुम पीछे-पीछे आओ, ग्राम-ग्राम मे चलकर पहले उन भूखे भाइयो की अन्न से भेंट कराओ। हम किसी तरह बच रहेंगे तो अन्याय की दुहाई मचायेंगे और ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि 'हमे अन्न प्राप्त हो।'[4]

सेठ गोविन्ददास के 'प्रकाश' नाटक मे प्रकाश द्वारा ग्राम-सुधार के कार्य का आयोजन किया गया है। प्रकाशचन्द्र 'सत्य-समाज' की स्थापना द्वारा गाव मे सुधार कार्य प्रारम्भ करने की योजना निर्धारित कराता है।[5] इस नाटक की रचना सन् ३० के सत्याग्रह आन्दोलन के उपरान्त हुई थी। लेखक ने इस बात का संकेत किया है कि यदि 'सत्य-मार्गों द्वारा ग्राम और नगर-निवासियो के दु खों का परिमार्जन हो जाता तो

१ लक्ष्मीनारायण . महाराणा प्रतापसिंह अथवा देशोद्धार नाटक पृ० ३९
१ मैथिलीशरण गुप्त अनघ पृ० ६२
२ वही पृ० ८०
३. पंजाब केसरी : पृ० ४१
४ वही : पृ० ५१
५. सेठ गोविन्ददास : प्रकाश : पृ० ५५

सत्याग्रह आन्दोलन असफल न होते। गांधी जी ने भी इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया था और इसी कारण आन्दोलन समाप्त होते ही वे पुनः रचनात्मक कार्यों मे सलग्न हो गए थे। वस्तुतः इस नाटक मे प्रकाशचन्द्र की विचारधारा गांधी जी के अनुरूप है।

समाज सुधार

जयशंकरप्रसाद के ऐतिहासिक नाटको मे, प्रच्छन्न रूप मे समाज सुधार के रचनात्मक कार्यक्रम की अभिव्यक्ति मिलती है। 'ध्रुवस्वामिनी' मे ऐतिहासिक कथा के माध्यम से विधवा-विवाह की पुष्टि की गई है। 'अजातशत्रु' नाटक में वारविलासिनी श्यामा के अन्तर मे सद्वृत्तियो के उन्नयन द्वारा प्रसाद जी ने घृणित वेश्यावृत्ति के प्रति ग्लानि उत्पन्न की है। अत मे गौतम बुद्ध के उपदेश द्वारा आम्रपाली के रूप मे श्यामा शान्तिलाभ करती है। 'अजातशत्रु' की मल्लिका और 'राज्यश्री' नाटक की राज्यश्री समाज-सुधार की भावना से अभिप्रेरित प्रसाद जी की अमर नारी पात्र हैं। गांधी जी ने राष्ट्रीय स्वयसेवको को समाज-सुधार के लिए भी सगठित किया था। अपने युग की वेश्यावृत्ति सबधी समाजसुधार कार्य का विस्तृत चित्रण सुदर्शन जी के नाटक 'जब आँखें खुलती हैं' मे मिलता है।[1] स्वय सेवक तारा-वेश्या के घर जाकर धरना देते हैं, जिससे वह इस अधम वृत्ति का परित्याग कर दे। राष्ट्रीय स्वय सेवको का आत्म-विश्वास, उच्चादर्श एव त्याग भावना तारा का हृदय-परिवर्तन कर देती हैं। वह भी राष्ट्रीय स्वय-सेवक-दल मे सम्मिलित होकर अन्य वेश्याओ के उद्धार का कार्य करती है।

मैथिलीशरण गुप्त के 'अनघ' गीति नाट्य मे नारी के महत्व की स्थापना मिलती है।

नाटकों में अस्पृश्यता-निवारण

प्राय. इस युग के नाटको मे पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथा के माध्यम से अछूतोद्धार का सफल प्रयत्न किया गया है। जयशंकर प्रसाद के '*जनमेजय का नागयज्ञ*' नामक नाटक के प्रारम्भ में ही सरमा के कथन मे वर्ण-साम्यता को आर्य जाति की विशेषता माना है :—

'............श्रीकृष्ण की उस अपूर्व प्रतिमा ने मेरी नस नस मे मनुष्य मात्र के प्रति एक अविचल प्रीति और स्वतन्त्रता भर दी थी। शूद्र गोप से लेकर ब्राह्मण तक की समता और प्राणी मात्र के प्रति समदर्शी होने की अमोघ वाणी उनके मुख से कई बार सुनी थी। वही मेरे उस आत्म-समर्पण का कारण हुई'।[2] इसके द्वारा प्रसाद जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि आज समाज मे प्राप्त ऊँच-नीच, सवर्ण-अवर्ण की भावना कालान्तर का परिणाम है।

१. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० १५५
२. जयशंकर प्रसाद : जनमेजय का नागयज्ञ : पृ० १

हिन्दी नाटकों में अछूतोद्धार अथवा वर्णसाम्य का सर्वाधिक प्रयत्न उदयशंकर भट्ट के 'दाहर अथवा सिन्धपतन' नाटक मे मिलता है। आज से शताब्दियो पूर्व ईसा की सातवी शताब्दी मे सिन्ध के महाराजा दाहर ने नीच जातियो को क्षत्रियो के समान युद्ध करने का अधिकार दिया था। लोहार, जाट, गूजर आदि जातियो ने अपनी वीरता का प्रमाण भी दिया था। गाधी जी वर्णाश्रम-धर्मव्यवस्था मे विश्वास रखते हुए भी शूद्र वर्ग को उनके कर्म के आधार पर नीच मानने को तत्पर नही थे। उनकी इस विचारधारा को नाट्यकार ने दाहर तथा उनके मन्त्री क्षपाकर के कथन मे अभिव्यक्त किया है —

'पुरोहित—कर्म और जन्म के विचार से एक पशु कभी तप करने पर भी ब्राह्मण नही बन सकता महाराज!

अन्य ब्राह्मण—पुरोहित जी ठीक कह रहे हैं।

दाहर—नहीं कर्म की श्रेष्ठता प्रत्येक व्यक्ति के अपने दैनिक व्यवहार पर निर्भर है। लोहार, जाट और गूजरो मे वैसा ही क्षत्रियत्व है जैसा कि वीरता का कार्य करने वाले अन्य क्षत्रियो मे।

क्षपाकर—पुरोहित जी, ससार मे कोई ऊचा नीचा नही है। यह भेद-भावना मनुष्य-कृत है। देखिये, भगवान् का बनाया हुआ सूर्य सबको एक-सा प्रकाश देता है। वायु सबको एक-सा जीवन देता है, तुम्हें अधिक और उनको, जिन्हें तुम नीच कहते हो, न्यून जीवन नही प्रदान करता।'[1]

इन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि जिन वेद-स्मृतियो के नाम पर धार्मिक अध विश्वास फैला है, उनमे भी समय के अनुसार ऋषियो ने परिवर्तन किया था, इन जातियो को बहुत समय पश्चात् नीच समझा गया। वीरता किसी की बपौती नही है, साहस किसी के घर पैदा नही होता, नीच जाति मे भी देश के लिए सर्वस्व समर्पण का उच्च भाव है।[2] गाधी जी यह भलीभाति जानते थे कि इस नीच कहलाने वाली जाति को साथ लेकर ही स्वतन्त्रता-सग्राम मे विजय मिल सकती है और तभी स्वतन्त्रता स्थायी भी हो सकेगी।

मैथिलीशरण गुप्त के 'अनघ' नामक गीति नाट्य मे मघ द्वारा अछूतोद्धार के कार्य का वर्णन मिलता है। यह शूद्रों को द्विजो से कम नही समझता था[3]। सुरभि के गान मे मघ के चरित्र की इस विशेषता का उल्लेख मिलता है —

वे ऊच नीच का भेद नहीं कुछ रखते,
हैं मनुज मात्र को एक समान निरखते।[4]

---

१ उदयशंकर भट्ट : दाहर अथवा सिन्ध पतन : पृ० ६७

२ उदयशंकर भट्ट दाहर अथवा सिन्ध पतन : पृ० ६६

३. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ : पृ० ४१

४ वही, पृ० ३३

प्राचीन समाज के विरोध करने पर भी मघ ने देश की जडो को खोखला बना देने वाले छुआछूत की सकीर्ण विचारधारा को मिटाकर सच्चे अर्थों मे राष्ट्रवाद की स्थापना का प्रयास किया है। उसने निम्न वर्ग को समाज की आधार शिला माना है।[१] गुप्तजी ने मघ द्वारा गाधी जी के अस्पृश्यता सबधी रचनात्मक कार्य को भी मूर्त रूप दिया है।

मादक द्रव्य-निषेध

हिन्दी-नाट्य साहित्य मे मादक द्रव्य निषेध संबंधी रचनात्मक कार्यक्रम का वर्णन भी साकेतिक प्रच्छन्न अथवा प्रत्यक्ष रूप मे किया गया है। जयशकर प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक नाटक 'अजातशत्रु' मे एक पक्ति मे इसका सकेत किया है कि गौतम बुद्ध ने मद्यपान निषेध सबधी प्रवचनो का उदयन जैसे सम्राटो पर भी प्रभाव पडा था।[२] 'दाहर अथवा सिन्ध पतन नाटक मे उदयशकर भट्ट ने गाधी जी के मद्यपान-निषेध का अनुमोदन बगदाद के खलीफा द्वारा कराया है —

'खलीफा—नही हैजाज, मैं इस उत्सव को हर तरह बुरा समझता हू, शराब मनुष्यता के विरुद्ध, धर्म के विपरीत, आचार के प्रतिकूल है। मै अपने पूज्य खलीफाओ की तरह इस अपवित्र वस्तु से घृणा करता हू।'[३] भट्ट जी ने भारत के मुसलमानो को भी मद्यपान से विमुख करने के लिए, इस नाटक मे विशेष रूप से यह दिखाया है कि बगदाद मे शराब पीना मना था, क्योकि यह धर्मविरुद्ध और इस्लाम के विपरीत था। लेखक ने खलीफा के शब्दो मे यह स्पष्ट कर दिया है कि कुरान शरीफ मे शराब के विरुद्ध मुसलमानो को उपदेश दिया गया है कि 'ऐ मुसलमानो, शराब शैतान की बनाई हुई चीज है, इसे छोड दो।'[४]

मैथिलीशरण गुप्त ने 'अनघ' म मघ द्वारा मधुपान की कुप्रथा को मिटाने का सदुद्योग कराया है। इस गीतिनाट्य मे शराब की दूकानो पर धरना देकर इसके दुष्परिणामो मे जनता को अविदित कराते दिखाया गया है। मघ के सत्-प्रयत्न से बहुत से कलाल यह निकृष्ट कार्य त्याग देते हैं।[५] निःसन्देह गाधी जी को भी इस क्षेत्र मे सफलता मिली थी।

नाटको मे साम्प्रदायिक एकता का प्रयास

हिन्दी नाटक-साहित्य की रचना द्वारा हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक एकता का सर्वाधिक प्रयास हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने किया है। 'रक्षाबन्धन नाटक में राजपूत रानी कर्मवती द्वारा हुमायू को राखी भेज कर अपनी रक्षा के लिए आमन्त्रित करते दिखाया है। कर्मवती कहती है—'जिस समय देश पर विपत्ति के बादल घिरे हुए हैं, बिजली कडक रही है, शत्रु पैशाचिक अट्टहास कर रहे हैं, उस समय पृथक्-पृथक् जातियो और

१ मैथिलीशरण गुप्त : अनघ, पृ० ४१
२ जयशकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृ० ४६
३. उदयशकर भट्ट दाहर अथवा सिन्ध पतन : पृ० २०
४. वही, पृ० २१
५ मैथिलीशरण गुप्त : अनघ : पृ० ६८

देशों के मानापमान और अधिकारों की चर्चा कैसी।......'[1] 'उन्होंने धार्मिक भेद-भाव, जातीय अन्तर भुलाकर हुमायूं को भाई बनाया था। लेखक ने कर्मवती द्वारा अपने युग के हिन्दुओं को मुसलमानों से भ्रातृत्व संबंध स्थापित कर प्रेम करने का संदेश दिलाया है—'चौंकती क्यों हो जवाहर बाई। मुसलमान भी इन्सान हैं उनके भी बहनें होती हैं। सोचो तो बहन, क्या वे मनुष्य नहीं हैं? उनके हृदय नहीं है? वे ईश्वर को खुदा कहते हैं मन्दिर में न आकर मस्जिद में जाते हैं, क्या इसीलिए हमें उनसे घृणा करनी चाहिए?'[2] गांधी जी ने साम्प्रदायिक एकता पर इसी कारण विशेष बल दिया था कि मुसलमान भी भारत के अविभाज्य अंग बन गए थे। 'मुसलमान भारत के शत्रु हैं' इस भ्रान्त धारणा का निवारण करते हुए इस नाटक में कर्मवती कहती है कि मुसलमानों को भी भारत में ही मरना जीना है। 'अब उन्हें काफिले में लादकर अरब नहीं भेजा जा सकता।'[3] हुमायूं दोनों जातियों की मित्रता के बीच मजहब को दीवार नहीं मानता।[4] शाहशेख औलिया द्वारा मुसलमानों को साम्प्रदायिक भेद भाव भूल कर देशोद्धार के लिए कटिबद्ध होने का संदेश दिया गया है।[5] इसी प्रकार 'शिवा-साधना' नाटक में शिवा जी का चरित्र भिन्न रूप में सम्मुख आता है। इसके पूर्व शिवाजी के जिस रूप का प्रतिपादन साहित्य में किया गया था, वह यवनों का घोर शत्रु एवं हिन्दू जातीयता की भावना से युक्त था। प्रेमीजी ने गांधीजी के सदृश अति उदारता एवं धार्मिक सहिष्णुता से कार्य लिया। भारत में शक, हूण आदि अनेक जातियां आईं और भारतीय संस्कृति में घुल मिल कर एक हो गईं, लेकिन मुसलमान उसमें अपने को समाहित न कर सके।[6] स्वराज्य प्राप्ति के लिए यह आवश्यक था कि उसमें मुसलमानों की भी स्वतन्त्रता सुरक्षित रहती। इसीलिए प्रेमी जी के इस नाटक में शिवाजी कहते हैं —किन्तु यदि स्वराज्य केवल हिन्दुओं तक ही सीमित रह गया तो मेरी साधना अधूरी रह जायगी। मैं जो बीजापुर और दिल्ली के राज्यों की जड़ उखाड़ डालना चाहता हूं वह इसलिए नहीं कि वे मुस्लिम राज्य हैं, बल्कि इसलिए कि वे आततायी हैं, एक तन्त्र हैं लोक-मत को कुचल कर चलने में अभ्यस्त हैं।'[7] शिवाजी गांधी जी के सदृश सभी वर्गों और जातियों को धर्म संबंधी स्वतन्त्रता देकर, उनका संग्रह करना चाहते हैं। कुरान का भी उतना ही आदर करते हैं जितना अपने धर्म का।[8] अफजल खां की लाश को आदरपूर्वक दफनाने की आज्ञा देते हुए शिवाजी

१ हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा बन्धन। पृ० ११
२ वही, पृ० ३६
३ वही, पृ० ३७
४. वही, पृ० ४८
५ वही, पृ० ५४
६ वही, पृ० ११
७ वही पृ० १६
८. वही, पृ० १७

ने स्पष्ट कह दिया है कि 'हमारा किसी व्यक्ति विशेष से द्वेष नहीं, हम तो एक महान् साधना के साधक हैं'।[1] प्रेमी जी का नाट्य साहित्य द्वारा साम्प्रदायिक एकता का प्रयास प्रशंसनीय है।

जयशंकर प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर चन्द्रगुप्त एवं विदेशी कन्या कार्नेलिया के विवाह द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से यह संकेत किया है कि युग युग से हिन्दू धर्म ने अपनी सहिष्णुभावना के कारण अन्य धर्मों को समाहित किया है। मैत्री-संबंध के लिए धर्म बाधक नहीं है और मानवता सर्वोपरि धर्म है। डा० श्यामबिहारी मिश्र एवं शुकदेव बिहारी मिश्र रचित मौलिक ऐतिहासिक नाटक 'शिवाजी'[2] में भी शिवाजी का चरित्र हिन्दूमुस्लिम एकता समर्थक है।

इस युग में राजनीतिक नाटकों का प्रायः अभाव होने के कारण प्रत्यक्ष रूप में हिन्दी में गाँधीजी की साम्प्रदायिक भावना मिटाने वाले नाटक नहीं मिलते।

हिन्दी कथा-साहित्य में रचनात्मक कार्यक्रम का वर्णन

काव्य अथवा नाट्य साहित्य की अपेक्षा हिन्दी कथा साहित्य में, रचनात्मक कार्यक्रम के विभिन्न पक्षों के अनेक दृश्य, वर्णन अथवा कथोपकथन मिलते हैं।

(क) स्वदेशी का प्रचार अथवा विदेशी का बहिष्कार

स्वदेशी के प्रचार का मूल कारण था, देश की अर्थ-व्यवस्था को नियंत्रित कर पराधीनता के अभिशाप को मिटाना। इसी कारण गाँधीजी ने खादी, चर्खे का प्रचार कर अन्य ग्रामोद्योगों के विकास का भी प्रयास किया था। हिन्दी उपन्यास-साहित्य में प्रेमचन्द एवं राधिकारमण प्रसाद सिंह ने गाँधी जी के राष्ट्रवाद के इस पक्ष की भी सशक्त अभिव्यक्ति की है। प्रेमचन्द जी के 'कर्मभूमि' उपन्यास का नायक अमरकान्त केवल मौखिक रूप से ही राष्ट्रीय कार्यकर्ता नहीं है, व्यवहार रूप में भी सच्चा राष्ट्र-वादी है। धनवान पिता की सम्पत्ति ठुकराकर, खादी के विक्रय का स्वतन्त्र व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए वह खादी का गट्ठर पीठ पर लाद कर बेचता है।[3] इस स्वदेशी के प्रचार के लिए वह हाथ से कर्म करना अधिक उपयुक्त समझता है—'अमर के अन्तःकरण में क्रान्ति का तूफान उठ रहा था। उसका बस चलता तो आज धनवालों का अन्त कर देता, जो ससार को नरक बनाये हुए हैं। वह बोझ उठाकर दिखाना चाहता था, मैं मजूरी करके निर्वाह करना इससे कहीं अच्छा समझता हूं कि हराम की कमाई खाऊं। तुम सब मोटी तोंदवाले हरामखोर हो, पक्के हरामखोर हो। तुम मुझे नीच समझते हो इसलिए कि मैं अपनी पीठ पर बोझ लादे हुए हूं। क्या यह बोझ तुम्हारी अनीति और अधर्म के बोझ से ज्यादा लज्जास्पद है, जो तुम अपने सिर पर लादे फिरते हो, और शर्माते जरा भी नहीं? उल्टे और घमंड करते हो।'[4]

१. हरिकृष्ण प्रेमी . शिवा साधना : पृ० ५३
२. डा० श्याम बिहारी मिश्र—शुकदेव बिहारी मिश्र : शिवाजी · पृ० ६५
३ प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १२१
४. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १२१

राधिकारमण प्रसाद सिंह के उपन्यास 'पुरुष और नारी' में तत्कालीन राजनीतिक गतिविधि, आन्दोलन के विस्तृत वर्णन के रचनात्मक कार्यक्रम का विवरण भी मिलता है। असहयोग आन्दोलन की समाप्ति पर अजीत गाँव में आश्रम की स्थापना कर चर्खा और खादी का प्रचार करता है। राष्ट्रीय स्वयसेवकों का वस्त्राभूषण तो खादी था ही[1] सामान्य जनता भी खादी के रग मे रग गई थी। सुधा भी परिवार का बन्धन तोड उसके हाथ बंटाने पहुँच जाती है। वह देहात की महिलाओं में चर्खे का प्रचार करती है—'सुधा मे लगन तो थी ही, धुन भी थी। देहात मे घर-घर छा गई। बहू बेटियो ने तो उसे सर पर चढ़ा रखा था। दर-दर उसकी पैठ हो गई। चरखे तो चले ही करघे भी जम गए। खादी की वन्दापरवरी लोगो के दिल में घर करने लगी। कोरदार मलमली साडी, गद्दीखाने की बोतल की तरह, एकाध जगह परदे मे रह गई।'[2] द्वितीय आन्दोलन के समय खादी के सम्मुख विलायती कपडा एक तमाशा बन गया था।[3] शादी की महफिल भी खादी की सादगी मे रग गई।[4]

उपन्यास की अपेक्षा कहानियों मे स्वदेशी प्रचार की कार्य प्रणाली, जन-जीवन मे स्वदेशी के प्रभाव, खादी चर्खे आदि का वर्णन अधिक मिलता है। प्रेमचन्द सुदर्शन, निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान, सियारामशरण गुप्त आदि की कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्द को होली का उपहार'[5], 'पत्नी से पति'[6], 'सुहाग की साडी,'[7] कहानियों मे स्वदेशी के प्रचार की सम्पूर्ण प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है। 'होली का उपहार' कहानी मे अमरकान्त पत्नी को होली का उपहार देने के लिए विदेशी वस्त्र की प्रसिद्ध दूकान के पीछे के द्वार से साडी लाता है क्योंकि मुख्य द्वार पर स्वयसेवकों का धरना था। बाहर आने पर उसे स्वयसेवकों का सामना करना पड़ता है, और एक खद्दरधारी युवती की भर्त्सना सुननी पडती है। वास्तव में वह खद्दरधारी महिला उन की पत्नी थीं। दूसरे दिन वे भी स्वयसेवक बन धरना देते हैं और कारावास का दड भोगने के लिए सहर्ष चले जाते हैं। 'पत्नी से पति' नामक कहानी मे भारतीयो की उस पतित मनोवृत्ति की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है जिसमे स्वदेशी वस्तुओ को ही नही, भारतीयता को ही लज्जास्पद माना जाता था। मि० सेठ इसी मनोवृत्ति के थे, लेकिन उनकी पत्नी गोदावरी राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत आदर्श नारी थी। वे

१. राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी : पृ० ८०
२. वही, पृ० १११
३ वही, पृ० ११२
४ वही, पृ० ११५
५ प्रेमचन्द : राजनीतिक कहानियाँ और समरयात्रा : पृ० ११०
६ प्रेमचन्द : मानसरोवर (भाग ७) : पृ० १७
७. वही, पृ० २७०

स्वदेशी की रक्षा के हेतु पति का भी तिरस्कार करती हैं। प्रिंस आफ वेल्स के भारत-गमन पर विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई थी, उसका उल्लेख भी प्रेमचन्द जी ने अपनी इस कहानी में किया है। पति द्वारा स्वदेशी अंगीकार करने पर पारिवारिक जीवन में नवीन प्रेममय प्रकरण का प्रारम्भ होता है। 'सुहाग की साड़ी' कहानी में राष्ट्रीय धर्म की प्रतिष्ठा के लिए विदेशी कपड़े से निर्मित सुहाग की साड़ी भी अग्नि में भस्म कर दी जाती है, 'विलायत का एक सूत भी घर में रखना मेरे प्रण को भंग कर देगा।"[1] यह कितने ही राष्ट्र प्रेमियों का व्रत था। 'इसी कपड़े की बदौलत हम गुलाम बने, यह गुलामी का दाग मैं अब नहीं रख सकता।'[2] यह देशवासियों को भली प्रकार समझ में आ गया था। प्रेमचन्द जी ने विदेशी के बहिष्कार का सजीव चित्र इस छोटी सी कहानी में खींचकर रख दिया है जिससे राष्ट्रीय भावना एवं स्वदेशी को प्रोत्साहन मिलता है—'विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाई जा रही थीं। स्वयंसेवकों के जत्थे भिखारियों की भाँति द्वारों पर खड़े होकर विलायती कपड़ों की भिक्षा माँगते थे और ऐसा कदाचित ही कोई द्वार था, जहाँ उन्हें निराश होना पड़ता हो। खद्दर और गाढ़े के दिन फिर गए थे। नयनसुख नयनदुख, मलमल मनमल और तनजेब तन बन्द हो गये थे।' विधि की यह कठोर विडम्बना थी कि सुहाग की साड़ी जैसा पवित्र परिधान भी विदेशी मलमल का बनता था।"[3] इस स्वदेशी आन्दोलन द्वारा आत्मा का परिष्कार हुआ, स्वदेशानुराग ने स्वदेशी के उपयोग एवं विदेशी के बहिष्कार की ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा कराई कि अमंगल का भय भी सुभद्रा को सुहाग की विदेशी साड़ी को भस्म करने से न रोक सका। प्रेमचन्द जी ने देश जीवन पर स्वदेशी के प्रभाव का भी उल्लेख किया है। देश में नया आत्म-सम्मान आया, जुलाहे और कोरियों को फिर से आजीविका का आधार मिला और देश की श्री सम्पत्ति घर लौट आई। सुहाग की साड़ी ने भस्म होकर देश जीवन को, देश के व्यापार को एक नई चमक से भर दिया।[4]

प्रेमचन्द जी की राष्ट्रीय परम्परा में 'सुदर्शन' जी को भी रखा जायेगा। रचनात्मक कार्यक्रम एवं उसकी प्रक्रिया के विस्तृत वर्णन सुदर्शन जी की कहानियों में भी मिलते हैं। इनकी 'हार जीत' कहानी में विदेशी कपड़ों के प्रसिद्ध व्यापारी सेठ नरोत्तमदास की विदेशी कपड़ों के व्यापार की नीति का विरोध उनका पुत्र और पत्नी करते हैं।[5] स्वदेश आन्दोलन की प्रबल लहर में, गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति के लिए साधारण जन ही नहीं, ऐश्वर्य में पले धनिक वर्ग के युवक भी बह गये

१ प्रेमचन्द : मानसरोवर (भाग ७) पृ० २९४
२ वही, पृ० २९६
३ वही, पृ० २९४
४ वही, पृ० ३०२
५ सुदर्शन · सुप्रभात पृ० ८३

थे। इसके लिए उन्होने धन, ऐश्वर्य, सुख-भोग सभी का त्याग अंगीकार किया था। इस कहानी मे, अपने पुत्र को स्वयंसेवक के वेश मे दूकान पर धरना देते देखकर सेठ जी की जो मानसिक दशा हुई थी, उसका अत्यधिक मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है—'एकाएक उनकी दृष्टि लखमीचन्द पर पडी। उनके हौसले टूट गये। जिस तरह उडता हुआ कबूतर बाज को देखकर सहम जाता है, उसी तरह पुत्र को स्वयसेवको मे देखकर उनका जोश बैठ गया। मन मे सोचा, यही लडका है जो कभी मोटर के बिना दो पग भी नही चलता था, आज इसके पाँव मे जूता नही। सिर के बाल खुश्क हो गये हैं। कपडे खद्दर के, परन्तु चेहरा उसी तरह चमक रहा है। परन्तु अपना कोई स्वार्थ नही, जो कुछ करता है, देश और जाति के हित के लिए और इस समय कैद होने को भी तैयार है।'[1] सेठ नरोत्तमदास जैसे कितने ही बडे व्यापारियो का हृदय-परिवर्तन हुआ था, जिन्होंने विदेशी कपडे का व्यापार बन्द कर देश का कल्याण किया था। सुदर्शन जी की 'अन्तिम आकाक्षा'[2] कहानी मे रायबहादुर की पत्नी सुशीला स्वदेशी का महान व्रत लेती हैं, लेकिन जब वह द्वार पर खडे स्वयसेवको को विदेशी कपडो की गठरियाँ भेज रही थी, रायसाहब इस महान अनुष्ठान मे विघ्न सम आ खडे होते हैं। सुशीला की प्रतिज्ञा भग हो गई। इस चिन्ता मे घुट-घुटकर उसने अपने प्राणो की बलि दे दी। जो कार्य अपने जीवन काल मे सुशीला न कर सकी, वह उसने मरण के पश्चात् किया, रायसाहब ने विदेशी कपडो की होली जलाकर क्रिया-कर्म के आध्यात्मिक कार्य को पूर्ण किया।[3] सुशीला की दिवगत आत्मा को इससे सन्तोष मिला।[4] 'कैदी'[5] और 'हार जीत'[6] कहानियो मे सुदर्शन जी ने खादी के महत्त्व का प्रकाशन किया है।

सुभद्राकुमारी चौहान के 'सीधे सादे चित्र'[7] की गोरी खद्दरधारी विधुर सीताराम जी की ओर सहज ही देशभक्ति के कारण आकृष्ट हो जाती है। नारी और पुरुष युवक और वृद्ध सभी के हृदय पर खादी ने सिक्का जमा लिया था। चारो ओर खादी स्वदेशी और चर्खे की धूम थी। आचार्य चतुरसेन ने 'प्रभाव' कहानी मे कठोर एव नृशस राजनीतिक दासता की अवस्था मे अग्रेजी वस्त्र ही नही, उस काँट छाँट और ठाठ के वस्त्रो का धारण करना भी स्वाभिमान एव देशभक्ति के लिए हेय समझा है—'देश के पुरुषो का सम्मान, सगठन देशभक्ति और स्वात्माभिमान की कल्पना से होगा।

१. सुदर्शन . सुप्रभात · पृ० ६६
२ वही, पृ० ९३
३ वही, पृ० १०२
४. वही, पृ० १०१
५. वही, पृ० ८०
६. वही पृ० ६१
७. सुभद्राकुमारी चौहान : सीधे सादे चित्र : पृ० ११

यह बढ़िया विदेशी ठाठ और काट के वस्त्र पहिनना और मोर के पर खोस कर कौवे की तरह हास्यास्पद बनना अत्यन्त पाप कर्म है। मैं आज से यह सब त्यागता हूं।"[1]

स्वदेशी प्रचार एव विदेशी बहिष्कार सम्बन्धी कहानियों से यह स्पष्ट अभिव्यजित है कि स्वदेशी और विदेशी का प्रश्न केवल राष्ट्रीय जीवन मे ही नही, पारिवारिक का भी अभिन्न अग बन गया था। इस प्रश्न को लेकर पति-पत्नी, पिता-पुत्र मे सघर्ष छिड गया था। राष्ट्र प्रेम के सम्मुख अन्य प्रेम सम्बन्ध, आदर्श मान्यतायें गौण हो गई थी। राष्ट्रीयता सर्वोपरि धर्म था। स्वयसेवक सत्य एव अहिंसा का निर्वाह करते हुये, इस कार्य की सफलता के लिए चुपचाप कठोर शारीरिक यत्रणायें सह लेते थे। सुदर्शन की 'अन्तिम साधन' प्रसिद्ध कहानी है।[2] प्राय सभी कहानियो मे लेखको ने स्वदेशी की विजय और विदशी की पराजय दिखाई है। गाँधी जी ने खादी के प्रचार द्वारा राष्ट्रीय द्रव्य बचत का जो हिसाब लगाया था उसका पूर्ण विवरण प्रेमचन्द जी की 'लाल फीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा' नामक कहानी मे मिलता है। यह नि सन्देह कहा जा सकता है कि हिन्दी कहानियों द्वारा स्वदेशी प्रचार के रचनात्मक कार्यक्रम को भी सुसम्पन्न किया गया है।

मादक द्रव्य निषेध

गाधीजी द्वारा नियोजित स्वयसेवक नगर तथा ग्राम मे मद्य निषेध का कार्य अत्यन्त सुचारुता के साथ कर रहे थे। देश के कल्याण के लिए यह आवश्यक था कि देशवासियों के नैतिक चरित्रोत्थान के लिए उन्हे इस प्रकार के घृणित दुर्व्यसनो से बचाया जावे। हिन्दी-कथा साहित्य मे रचनात्मक कार्य क्रम के इस पक्ष की भी पुष्टि मिलती है। प्रेमचन्द जी के 'कर्मभूमि' उपन्यास का अमरकान्त ग्रामवासियो को मद्यपान के घातक परिणाम बताकर, उन्हें इस दुर्व्यसन से मुक्त करने का प्रयास करता है। बूढ़ा चौधरी अमरकान्त के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कहता है—'चाहे दरद हो चाहे बाई हो, अब पीऊँगा नही। जिन्दगी मे हजारो रुपये की दारू पी गया। सारी कमाई नशे मे उडा दी। उतने रुपये से कोई उपकार का काम करता, तो गाँव का भला होता और जस भी मिलता। मूरख को इसी से बुरा कहा है। साहब लोग सुना है, बहुत पीते हैं, पर उनकी बात निराली है। यहाँ राज करते हैं। लूट का माल मिलता है, वह न पीयें, तो कौन पीये। देखती है, अब काशी और प्रयाग को भी कुछ पढ़ने-लिखने का चस्का होने लगा है।'[3] गाधीजी के सदृश अमरकान्त भी यह चाहता है कि इस निषेधात्मक कार्य को बलपूर्वक न किया जाय वरन् हृदय परिवर्तन द्वारा लोगो मे इसके विरुद्ध घृणा का प्रचार हो। 'फिर वही डाँट फट-

१. चतुरसेन शास्त्री : मरी खाल की हाय . पृ० ३५
२. सुदर्शन : सुप्रभात · पृ० १२२
३. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १५५

कार की बात ? अरे दादा ! डाट फटकार से कुछ न होगा । दिलो मे बैठिये । ऐसी हवा फैला दीजिये कि ताडी शराब से लोगो को घृणा हो जाय । आप दिन भर अपना काम करें और चैन से सोयेंगे,तो यह काम हो चुका । यह समझ लो कि हमारी बिरादरी चेत जायेगी, ब्राह्मण ठाकुर आप ही चेत जायेंगे ।'[1]

प्रेमचन्द जी ने इस उपन्यास मे अमरकान्त द्वारा ग्रामो मे और सुखदा तथा शान्तिकुमार द्वारा नगर मे मद्य-निषेध का कार्य सुचारु रूप से चलाया है ।' इधर सुखदा और शान्तिकुमार का सहयोग दिन-दिन घनिष्ठ होता जा रहा था । धन का अभाव तो था नही, हरेक मुहल्ले मे सेवाश्रम की शाखायें खुल रही थी और मादक वस्तुओं का बहिष्कार जोरो से हो रहा था ।'[2]

बेचन शर्मा उग्र का 'शराबी' उपन्यास मद्य-निषेध पर आधारित सामाजिक उपन्यास है । इस उपन्यास का हतभागी पिता शराब के फेर मे अपनी प्रतिष्ठा, मर्यादा, धन-सम्पत्ति के साथ अपनी कुमारी कन्या को भी ससार मे भटकने के लिए गँवा बैठता है । पारिवारिक जीवन को विनष्ट कर मस्तिष्क की विकृतावस्था मे भी पारस एक क्षण को शराब के दुष्परिणाम को भूल नही पाता । उसे पागल-पियक्कड़ों' का शराब पीना असह्य है, वह जानता है कि 'मतलबी कलाल लोगो को हलाल कर पैसे' बनाते हैं ।'[3] पारस शराबखानो मे राष्ट्रीय-स्वय सेवको की भाति धरना देकर बैठ जाता है ।

राधिकारमणप्रसाद सिंह के उपन्यास 'पुरुष और नारी' मे ग्रजीत ग्राम-सुधार कार्य के अन्तर्गत मद्य-निषेध पर भी विशेष बल देता है । उन्होने इस उपन्यास मे लिखा है—'बोतलबाजी की तो कमर टूट गई। जो लुक-छिप कर एकाध चुल्लू पी पाते, वे घर आकर चुल्लू-भर पानी मे डूब मरते । औरतों की हड़ताल से आगे मर्दों के पाव उखड गये । पुराने अखाडियो ने चीं चपड तो जरूर की, मगर जब छोटी-छोटी बच्चियां राह चलते तालियां पीटने लगीं, तो लाचार हो घुटने टेक दिये ।'[4]

प्रेमचन्द जी की कहानियो मे भी मद्य-निषेध के विभिन्न अहिंसात्मक उपायो का, सत्याग्रही वीरो द्वारा प्रयोग द्रष्टव्य है । इनसे सम्बन्धित उनकी प्रसिद्ध कहानियां हैं—'शराब की दूकान',[5] और 'मैकू'[6] । इन दोनो कहानियों मे शराब की दूकान पर स्वयसेवको द्वारा पहरा देना, ग्राहको को इस कार्य से विनम्रता पूर्वक रोकना अहिंसात्मक रीति से कष्ट सहन द्वारा उनके हृदय परिवर्तन आदि का विस्तृत एव यथार्थ

१. प्रेमचन्द . कर्मभूमि पृ० २८०
२. वही : पृ० २३२
३. बेचन शर्मा : उग्र शराबी : पृ० १८०-१८१
४. राधिकारमणप्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० ११०
५. प्रेमचन्द : मानसरोवर (भाग ७) : पृ० ६७
६. प्रेमचन्द : राजनीतिक कहानियां और समरयात्रा पृ० ६१

चित्र मिलता है। यह सत्याग्रही वीर जमीन पर लेट जाते थे और शराब के ग्राहकों को अपनी छाती पर पैर रखकर जाने को कहते थे। यदि कोई क्रुद्ध होता, मारता, पीटता तो सहर्ष कष्ट सहते, किन्तु मन मे मलाल भी न लाते क्योंकि गांधी जी ने अहिंसात्मक नीति पालन का कठिन आदेश दिया था। 'शराब की दुकान' कहानी मे जयराम अहिंसा, त्याग एव साहस का पुतला है। वह चोट सह कर भी धरना देता है। 'मैकू' कहानी मे मैकू राष्ट्रीय स्वयसेवक पर शारीरिक बल प्रयोग कर शराब की दुकान मे प्रविष्ट तो हो गया किन्तु उसकी आत्मा उसे धिक्कार उठी। उसका हृदय परिवर्तन हुआ, उसमे ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि उसने पियक्कडो तथा ठेकेदार को पीटा और शराब के बर्तन उठा कर फेंक दिये।

शराब की दुकान पर धरना देने का कार्य केवल पुरुषों ने ही नहीं किया था, नारियों ने भी उसमे भाग लिया था और पुरुषो से अधिक सहनशीलता तथा धैर्य का परिचय दिया था 'शराब की दुकान कहानी मे प्रेमचन्द जी ने जयराम के सत्याग्रह धर्म से विचलित हो जाने पर अर्थात् अधिक उग्र हो जाने पर मिसेज सक्सेना द्वारा त्याग तथा कष्ट सहन का दृष्टान्त रख कर शराबियों का हृदय परिवर्तन कराया है। अत. मद्यनिषेध से सम्बन्धित कुछ सुन्दर प्रभावोत्पादक एव राष्ट्रीय जागरण का चित्र प्रस्तुत करने वाली कहानियां मिलती हैं।

ग्राम-सुधार तथा ग्राम-शिक्षा

प्रेमचन्द जी के 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' उपन्यासो मे ग्राम सुधार एव ग्रामीण शिक्षा के कार्यक्रम का क्रियान्वित रूप दिया गया है। प्रेमाश्रम मे प्रेमशंकर ग्राम-सुधार के सिद्धान्तो को कार्य रूप देने के लिये आदर्श आश्रम की स्थापना करते हैं। कृषि-विकास के नवीन वैज्ञानिक अनुसंधानो का प्रयोग कर, ग्रामीणो को शिक्षित तथा अपने अधिकारो के प्रति सचेत करके ग्राम जीवन को उन्नत एव विकसित करना चाहते हैं।[1] 'कर्मभूमि' उपन्यास का नायक अमरकान्त ग्राम-सुधार एव ग्राम शिक्षा का सफल उद्योग करता है। वह हरिद्वार के पास जाकर एक गाँव मे टिकता है जिसमे अधिकतर निम्न वर्ग के चमार लोग रहते हैं। मद्य पान निषेध के साथ वहा के अशिक्षित जनसमूह मे वह शिक्षा का भी प्रचार करता है— शिक्षा का लोगो को कुछ ऐसा चस्का पड गया था कि जवान बूढे भी आ बैठते और कुछ-न-कुछ सीख जाते। अमर की शिक्षा शैली आलोचनात्मक थी। अन्य देशों की सामाजिक और राजनीतिक प्रगति, नये-नये आविष्कार, नये-नये विचार उसके मुख्य विषय थे।[2] वह ग्रामवासियो का ऐसा स्वभाव बना देना चाहता था कि सफाई उनके जीवन का अंग बन जाये। वह स्वय हाथो द्वारा परिश्रम कर गाव के लोगो को प्रेरणा देता है।[3]

१. प्रेमचन्द : प्रेमाश्रम : पृ० १८६
२ प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १७२, १७३
३. वही : पृ० २७६

वह दिखावा नहीं, ठोस कार्य करना चाहता है । पचायतो को ग्राम सुधार के लिए उपयुक्त साधन मानता है । गोदान' उपन्यास मे प्रेमचन्द जी ने ग्रामीण कथा के साथ नागरिक कथा इसी उद्देश्य से जोडी है कि नगर के शिक्षित जन ग्राम सुधार का काय करें । गाधी जी ने प्रादर्श भारत की रूपरेखा मे लिखा था—

'शहरो और गावो मे एक स्वस्थ और नैतिक सम्बन्ध तभी स्थापित होगा जब कि शहरी लोग उन्हे शोषित करने की स्वार्थपूर्ण भावना का त्याग करेंगे और यह महसूस करेंगे कि जो ग्रन्न, जल और शक्ति उनके द्वारा हमे प्राप्त हो रही है, उसका उचित प्रतिदान करना हमारा कर्तव्य है। यदि नगर के बालक यह चाहते हैं कि सामाजिक सगठन के इस महत् काय मे हम अपना पार्ट अदा करें तो जिस प्रणाली से वे शिक्षा प्राप्त करते हैं वह ग्रामो की आवश्यकताओ से सीधा सम्पर्क रखें ।'[1] गाँधी जी की इस योजना के अनुरूप पाश्चात्य शिक्षा मे दीक्षित रगीन तितली सी मालती का हृदय परिवर्तन होता है और वह होरी के गाव जाकर अशिक्षित अज्ञानी, निरीह ग्रामवासियो के सुधार का कार्य करती है ।

राधिकारमणप्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास का नायक अजित भी प्रेमचन्द जी के प्रमाश्रम' के प्रेमशकर की भाति ग्राम सुधार के लिये गाव मे आश्रम की स्थापना करता है । राधिकारमणप्रसाद जी ने गाधी जी के रचनात्मक कार्यों का अधिक विस्तार से उल्लेख किया है । असहयोग आन्दोलन के पश्चात रचनात्मक कार्य सम्बन्धी तत्कालीन परिस्थितियो के विषय मे लिखा है । अजीत जैसे कितने ही युवको की 'नस नस मे सेवा का रस भीग' रहा था । साबरमती का पानी पीने के बाद देश के लिये लहू को पानी बनाने का सकल्प आ गया था । आन्दोलन समाप्त हो जाने पर भी गाधी जी द्वारा प्रारम्भ रचनात्मक कार्य सुचारु रूप से चलते रहे । ग्राम सुधार तथा उनमे चेतना प्रसार का कार्य विशेष रूप से किया गया । अजीत ने रेवा के तट पर कच्चा-पक्का आश्रम बाधा—उसी के नाम अपनी जायदाद भी वक्फ कर दी । खेतीबारी का सिलसिला रखा । 'चरखे तो चले ही, करघे भी जारी हुए । और भी कितने छोटे मोटे उद्योग धन्धे आश्रम की देख रेख म नमूदार हुए ।'[2] अजीत द्वारा किये गये कार्यों के विषय म लेखक ने लिखा है— अजीत ने अपने जिम्मे देहात का काम रखा । गावो म घूम घूम गवारो की ग्राखो म उगलिया डाल, उनकी आखो का परदा उठान लगा । देहातियो के सर से भूत और भभूत का भूत उतारना परम्परा की अँधेरी पगडण्डियो से घसीट कर उन्ह दुनिया की रोशनी मे ला खडा करना, उनके दिल म देव-बल की जगह आत्मबल का विश्वास भरना—उसके यौवन की तमाम उमगो के लिए काफी मैदान निकल ।'[3] सुधा जैसी नारियो ने भी अदम्य उत्साह एव

१ मोहनदास कर्मचन्द गांधी आदर्श भारत की रूपरेखा पृ० २६
२ राधिकारमणप्रसाद सिंह पुरुष और नारी पृ० ६५
३ वही पृ० ६५

त्याग-भाव से इस कार्य को अपना सहयोग दिया था। अन्धविश्वास, अशिक्षा एवं अर्थाभाव में जकड़ी ग्रामीण जनता का सुधार राष्ट्रीय जीवन का नितान्त आवश्यक स्तम्भ था—गाँव ही तो राष्ट्र का प्राण है और वही आज निष्प्राण हो रहा है। बस, उसाँस ही उसके जीवन को ग्रास है। गाव ही नही पनपा, तो फिर यह देश क्या शहर की शुहरत पर बुलन्द होगा ?' लेकिन यह कार्य सहज नहीं था—'देहात की छाती पर सदियो से चिन्तियाँ जम आई हैं—उनको उठाना खेल है ? बडो-बडो के पित्त पानी हो गए। देहाती तो किवाड बन्द कर मौत की नीद सो रहे हैं बहुत सर पीटने पर वे करवटें ले पाते हैं। बन्द किवाड खुल पाते, तो वहाँ रोशनी जाती या हवा पहुचती।'[1] गाधी जी द्वारा सचालित द्वितीय आन्दोलन के पश्चात् ग्रामो की स्थिति मे सुधार आ गया था। गाँधी जी एवं राष्ट्रीय सेवक दल का प्रयास निष्फल नही गया था। उसका उल्लेख भी इस उपन्यास मे मिल जाता है।[2]

अछूतोद्धार

प्रेमचन्द जी ने गाधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के अन्य पक्षों की भांति ही अछूतोद्धार का भी क्रियान्वित रूप पाठकों के सम्मुख रखा है। अछूतों की दशा मे सुधार करना, उन्हें समानाधिकार देना तथा उनके प्रति घृणा की भावना को मिटा कर सहानुभूति पूर्ण दृष्टि की स्थापना का विस्तृत चित्रण उनके 'कर्मभूमि' उपन्यास मे मिलता है। 'कर्मभूमि' उपन्यास की रचना, गाधी जी द्वारा सचालित द्वितीय आन्दोलन काल मे हुई थी। सरकारी नीति तथा शासन प्रणाली की सविनय अवज्ञा के साथ ही अछूतोद्धार आन्दोलन भी इस समय अपनी पूर्ण प्रगति पर था। अंग्रेजी साम्राज्यवादी भेदप्रवण नीति हिन्दू-मुसलमानो के बीच साम्प्रदायिक विद्वेष की प्रबल अग्नि प्रज्वलित कर ही शान्त न हुई। अब उन्होंने अछूतों के लिए भी पृथक् निर्वाचन क्षेत्र स्थापित कर सवर्ण तथा अवर्ण के बीच भेदभाव बढा कर राष्ट्रीय अनेकता द्वारा अपना 'शासन करो' का मन्तव्य सिद्ध करना चाहा। अत इस काल मे विशेष रूप से यह आवश्यक हो गया था कि अछूतों अथवा शूद्र वर्ण को सवर्णों के समान अधिकार मिले। 'कर्मभूमि' उपन्यास मे शान्तिकुमार तथा सुखदा द्वारा इस आन्दोलन अथवा रचनात्मक कार्य का नेतृत्व किया गया है। शान्तिकुमार ने अछूतो को उनके मन्दिर-प्रवेश के अधिकार से परिचित कराते हुए उन्हे अपने स्वत्व के प्रति जागरूक किया—'तुम्हारा बस उस समय तक कुछ नहीं है, जब तक तुम समझते हो कि तुम्हारा बस नहीं है। मन्दिर किसी एक आदमी या समुदाय की चीज नही है। वह हिन्दू मात्र की चीज है यदि तुम्हे कोई रोकता है तो उसकी जबर्दस्ती है। मत टलो उस मन्दिर के द्वार से, चाहे तुम्हारे ऊपर गोलियो की वर्षा ही क्यो न हो। तुम जरा जरा-सी बात के पीछे अपना सर्वस्व गवा देते हो, यह तो धर्म की बात है; और धर्म हमे जान से

१. पुरुष और नारी . पृ० १०२
२. वही : पृ० २०६

प्यारा होता है। धर्म की रक्षा सदा प्राणों से हुई है और प्राणों से होगी।"[1] डा० शान्तिकुमार पांडे पुजारियों के डंडे खाकर भी अछूतों को ठाकुर जी के नाम पर बलिदान होने की प्रेरणा देते हैं।[2] धर्म के लिए अछूतों ने प्राण दिये, तथा अन्त में सुखदा द्वारा प्रोत्साहन पाकर उन्हें विजय मिली, मन्दिर के द्वार खुल गये।[3]

गोविन्दवल्लभ पंत के 'जूनिया' उपन्यास की मूल प्रेरणा अवर्णों की समस्या है। अवर्णों के प्रति सामाजिक अत्याचार का उल्लेख करते हुए पंत जी ने यह सिद्ध किया है कि अर्थाभाव एवं सामाजिक भेदभाव से विक्षुब्ध होकर अवर्ण दूसरा धर्म अपना लेते थे। इस उपन्यास का अवर्ण नाम पात्र जूनिया धर्म के मूल तत्व को प्राप्त कर लेता है। पंत जी गांधी जी की धार्मिक विचारधारा से प्रभावित थे। इसी कारण वे इस उपन्यास द्वारा सवर्ण अवर्ण अथवा धार्मिक भेदभाव को मिटा कर समता का उपदेश देते हैं। पीटरलाल द्वारा उन्होंने कहलाया है 'प्रभु के राज्य में सब समान हैं। उसका मन्दिर जब किसी के प्रवेश से अशुद्ध हो जाता है तो उसकी सबको पवित्र करने की शक्ति में संशय उत्पन्न होने लगता है।'[3] सदियों से कुचली हुई जाति के उत्थान में ही देश का कल्याण था।

साम्प्रदायिक एकता अथवा धार्मिक एकता

कथा-साहित्य में भी गांधी जी के साम्प्रदायिक एकता सम्बन्धी रचनात्मक कार्यक्रम का उल्लेख मिलता है। प्रेमचन्द जी के रंगभूमि उपन्यास की नायिका सोफिया ईसाई है किन्तु नायक विनयसिंह हिन्दू। प्रेमचन्द जी ने साम्प्रदायिक एकता की भावना से अभिप्रेरित होकर दोनों को प्रेम-सम्बन्ध में बांधा है। सोफिया का हृदय साम्प्रदायिक अत्याचार का विचार कर अति खिन्न हो जाता है। वह सोचती है कि यदि वह ईसा की अनुचरी न होकर राजपूतनी होती तो रानी जाह्नवी उसे सहर्ष स्वीकार करती। साम्प्रदायिक भेदों द्वारा आत्मा पर जो अत्याचार हो रहा था, वह उसे असह्य है।[5] साम्प्रदायिकता का भौतिक आवरण विनय और सोफिया के आत्मिक मिलन में बाधक नहीं हो पाता। ईसाई सोफिया, विनयसिंह की मृत्यु के पश्चात गंगा की गोद में आत्मसमर्पण पर जिस महान् आदर्श की स्थापना करती है उसके द्वारा प्रेमचंद जी ने साम्प्रदायिक मतभेद मिटाने का संकेत किया है।

गोविन्दवल्लभ पंत के 'जूनिया' उपन्यास में गांधी जी की धार्मिक नीति का पुष्ट प्रतिपादन मिलता है। साम्प्रदायिक एकता गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का प्रमुख अंग थी। इसे भारतीय जीवन के व्यावहारिक पक्ष में घटित करने के लिए

१ प्रेमचन्द कर्मभूमि पृ० २०३
२ वही, पृ० २०६
३ गोविन्दवल्लभ पंत जूनिया पृ० ४५
४ प्रेमचन्द कर्मभूमि, पृ० २११
५ प्रेमचन्द, रंगभूमि पृ० १४६

उन्होने धर्म के मूल तत्व की एकता का उद्घाटन किया था। जैसा कि गाधी जी की धार्मिक नीति के सम्बन्ध मे स्पष्ट किया जा चुका है, वे सभी धर्मों को एक ही लक्ष्य की ओर ले जाने वाले विविध मार्ग मानते थे। 'जूनिया' उपन्यास मे पत जी ने लिखा है—'सच बात जो यह है कि प्रत्येक धर्म के मूल-सूत्र समान हैं। प्रचारक को इस बात पर ध्यान रखना चाहिए। वह अपने धर्म की श्रेष्ठता साबित करे, पर दूसरे के धर्म को नीचा बना कर नहीं।'[1] जूनिया द्वारा उन्होने कहलाया है— 'धर्म! धर्म कोई चीज नही। ससार की सरल और सीधी आबादी को ठगने के लिए एक शब्द। और ईश्वर, उसे भयभीत बनाये रखने के लिए एक शस्त्र।[2] गाधी जी के अनुसार सत्य ही धर्म था। इस उपन्यास मे भी सत्य को ही धर्म माना है। भाषा की भिन्नता से भी प्रभु मे भेद नही पड सकता।[3] भारत के विभिन्न धर्मावलम्बी जनता को एकता के सूत्र मे बाधने के लिए पत जी ने कहलाया है — क्या भाई बनने के लिये एक ही धर्म का होना आवश्यक है फिर धर्म तो सब एक ही हैं। आप मुझे क्यो अपना भाई नही समझते? मैं तो आपको भाई समझता हू, फिर आप मेरे लिये क्यो अपने मन मे घृणा का भाव रखते हैं।[4] गाधी जी ने 'हिन्दू' शब्द का भी बडा विस्तृत अर्थ लिखा था। उनके हिन्दू का अर्थ था सत्य का साधक। इस उपन्यास मे जूनिया कहता है—'हिन्दू सच बोलने को कहते हैं मैं भी सच बोलने की कोशिश करता हू, तो फिर हिन्दू क्यो नही।'[5] वह धर्म को बहस की चीज नही मानता और सचाई ही उसका धर्म है। निसन्देह पत जी का जूनिया उपन्यास धार्मिक एकता के लिए अद्भुत प्रयास है।

हिन्दी कहानीकारो मे प्रेमचन्द, जयशकर प्रसाद विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक आदि ने कहानी द्वारा साम्प्रदायिक एकता का सफल प्रयास किया था। प्रेमचन्द जी ने 'जिहाद'[6] कहानी में साम्प्रदायिकता के भीषण परिणाम को दिखाकर, अप्रत्यक्ष रूप से धर्मान्धता के विकास को विनष्ट करना चाहा है। पच परमेश्वर[7] कहानी मे ग्रामीण जीवन को साम्प्रदायिकता से मुक्त दिखाया है। ग्रामीण जीवन मे साम्प्रदायिकता का विष नही फैला था, तभी जुम्मनशेख और अलगु चौधरी पचायत के सरपच बन कर उचित न्याय कर सके। जयशकर प्रसाद जी की 'सलीम'[8] कहानी इस दिशा मे

१ गोविन्दवल्लभ पत जूनिया पृ० १६५
२ वही पृ० २२२
३ वही पृ० २२६
४ वही पृ० २३८
५ वही पृ० २३६
६. प्रेमचन्द मानसरोवर (भाग ७) पृ० १७३
७ वही, पृ० १५२
८. जयशकरप्रसाद इन्द्रजाल पृ० १३

सुन्दर प्रयत्न है। इसमें उन्होंने मानवता के सम्मुख साम्प्रदायिकता की हार दिखाई है। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के एक छोटे से गाव में हिन्दू मुस्लिम एकता का अद्भुत दृश्य देखकर हिजरती सलीम आश्चर्य से भर गया था—'मनुष्यता का एक पक्ष वह भी है जहा वर्ण, धर्म और देश को भूलकर मनुष्य मनुष्य के लिए प्यार करता है।'[1] प्रसाद जी ने साम्प्रदायिकता के गरल को मानवता के अमृत के सम्मुख तुच्छ दृष्टि से देखा है। इनकी मानवता का पर्यवसान विश्व-बन्धुत्व की महती भावना में होता है। वह राष्ट्रीयता की सीमा भी पार कर जाती है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'हिन्दुस्तान'[2] कहानी में हिन्दू मुस्लिम एकता का भाव केन्द्रीभूत है। हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक विद्वेष अधिक बढ़ता जा रहा था। मुसलमानों के लिए हिन्दुओं के पर्व त्योहार घृणा की वस्तु बन गये थे।[3] और हिन्दू अपनी कट्टर धार्मिक भावना के कारण मुसलमानों से खान-पान का सबध नहीं रखते थे। खा साहब और किशोरीलाल में घनिष्ट मित्रता थी। एक दूसरे के घर पर्व त्योहारों पर मिठाइया भेजी जाती थी लेकिन खा साहब के पुत्र बशीर अहमद को खा साहब की यह धार्मिक सहिष्णुता खटकती थी। एक बार किशोरीलाल के घर भूल से खाँ साहब पर रग पड गया, घर आने पर पुत्र, पत्नी और नौकर सभी को उनका रग में सराबोर होना धार्मिकता के प्रतिकूल आचरण लगा। खा साहब भारतीयता के लिये धार्मिकता को बाधा नहीं मानते थे। उनका सिद्धान्त था कि 'हिन्दू मुसलमानों को इस तरह रहना चाहिये गोया दोनों भाई-भाई हैं।'[4] लेकिन बशीर अहमद के मतानुसार 'इसलाम कभी कुफ्र का शरीक नहीं हो सकता।'[5] इसके तर्क में उसने हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों को निकृष्ट समझे जाने का उदाहरण प्रस्तुत किया। वह किशोरीलाल के घर से आई हुई की मिठाई इसीलिए वापस कर देता है कि हिन्दू मुसलमानों की छुई चीज क्यों नहीं खाते। किशोरीलाल तथा बशीर अहमद की बातचीत में 'कौशिक जी' ने दोनों सम्प्रदायों के दोषों पर प्रकाश डाला है। बशीर अहमद केवल धार्मिक मामलों में ही हिन्दुओं पर आक्षेप नहीं करता वरन् राजनैतिक दृष्टि से भी हिन्दू मुस्लिम एकता को असभव मानता है—'क्या आप बतला सकते हैं कि अगर हमको ब्रिटिश कौम की गुलामी से छुटकारा मिल गया तो हिन्दू मुसलमानों के या मुसलमान हिन्दुओं के मातहत होकर रह सकेंगे। मैं तो कहता हू यह गैर मुमकिन है। इसलिए यह नतीजा निकलता है कि अगर हिन्दुस्तान आज आजाद हो तो हिन्दू मुसलमानों में तास्सुब और छुआछूत के ऐसे झगड़े उठ खड़े होंगे कि हम एक

१ जयशंकरप्रसाद इन्द्रजाल पृ० २१
२ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल २४१
३ वही · पृ० २४२
४ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक कल्लोल पृ० २४७
५ वही, पृ० २४७

बला से निकल कर दूसरी बला मे फस जायेंगे, जो पहली से ज्यादा खतरनाक है ।"[1] इसके प्रत्युत्तर मे किशोरीलाल ने भी मुसलमानों की धार्मिक कट्टरता का दृष्टान्त रखा कि मुसलमान हिन्दू को काफिर समझते हैं और गाय की कुर्बानी करते हैं । राजनीतिक मामलों मे भी—'आप हिन्दुस्तान मे पैदा हुये, हिन्दुस्तान के अन्न से पले, हिन्दुस्तान मे रहते हैं लेकिन आपकी मुल्की दिलचस्पी टर्की के साथ रहती है । अगर आज हिन्दुस्तान आजाद हो जाये और कल टर्की हिन्दुस्तान पर कब्जा जताने की नीयत से इस पर हमला करे तो क्या आप हिन्दुस्तान के साथ खड़े होकर हिन्दुस्तान को टर्की के पंजे से बचाने की कोशिश करेंगे ?'[2]

इसके उपरान्त कौशिक जी ने हिन्दू मुसलमानो की साम्प्रदायिक एकता की दृढता के लिए धार्मिकता को बाधा नही समझा है. किशोरीलाल जी के शब्दो मे उनका यह दृढ मत है कि यदि भारत के मुसलमान अपने को 'हिन्दुस्तानी' समझें, सभी मजहबों मे भ्रातृभाव की भावना हो, हिन्दुस्तान की हिफाजत के लिये कुर्बानी कर सकें तो हिन्दू भी उनके साथ बैठ कर खाना खाने लगें । अन्त मे कौशिक जी ने गाधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के सबसे महत्त्वपूर्ण अग हिन्दू मुसलमानो की एकता को मूर्त रूप मे रखा है । किशोरीलाल बशीर अहमद को अपने तर्कों से लज्जित कर देते हैं, वह कुरान शरीफ को गवाह कर कसम खाता है कि आज से अपने को हिन्दुस्तानी समझेगा और उन तमाम बातो को मानेगा जो हिन्दुस्तानी के लिए मानना जरूरी है । किशोरीलाल जो ने भी खा साहब तथा बशीर अहमद के साथ बैठ कर भोजन किया । उस समय उन दोनो मे न कोई हिन्दू था न मुसलमान, वरन् तीन हिन्दुस्तानी थे जो अपने हिन्दुस्तानी होने का प्रमाण कार्य रूप मे दे रहे थे ।"[3] यही गाधी जी के आदर्श भारत का स्वप्न था, यही उनके रचनात्मक कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन था, जिसकी पूर्ति इस कहानी मे हुई है । हिन्दी-कथा साहित्य मे भी साम्प्रदायिक एकता का स्तुत्य प्रयास है ।

हिन्दी-साहित्य मे गाधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम की भी पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है । रचनात्मक कार्यक्रम साहित्यकारो की सवेदना का स्पर्श कर शुष्क एवं नीरस राष्ट्र-सुधार-कार्य मात्र नही रह गया था, अपितु सरस, भावात्मक एव प्रभावोत्पादक बन गया था । इस कार्यक्रम को साहित्य मे प्रतिबिंबित करने के लिए इतिवृत्तात्मक शैली मे प्रचारात्मक साहित्य की ही रचना नही हुई, वरन् कथा-साहित्य मे मानव मनोवृत्ति के सूक्ष्म एव मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा शाश्वत एव अनुभूतिपरक शुद्ध-साहित्य की रचना की गई । साहित्यिक परिधान से सुसज्जित होकर रचनात्मक कार्यक्रम युग युग के लिए देश-जीवन को राष्ट्र-निर्माण की प्रेरणा देगा ।

१ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक · कल्लोल : पृ० २५४
२. वही, पृ० २५४
३. वही : पृ० २५६

हिन्दी-साहित्य मे स्वराज्य पार्टी के सिद्धान्तो की अभिव्यक्ति

असहयोग आन्दोलन की सफलता के पश्चात् कांग्रेस मे स्वराज्य पार्टी का विशेष जोर था। वस्तुत ये कांग्रेस से भिन्न न थे, केवल कौंसिलप्रवेश द्वारा वे शासको के साम्राज्यवादी गढ को जीत लेना चाहते थे। अन्य सभी सिद्धान्तो मे ये गाधी जी की नीति का अनुकरण करते थे।

स्वराज्यवादियो की कौंसिल प्रवेश नीति का केवल उल्लेख मात्र यत्र तत्र साहित्य मे मिलता है, विशेष रूप से कथा-साहित्य मे अधिकाशत कवि गाधीवाद *विचारधारा से प्रभावित थे। काव्य मे स्वराज्यवादियो के कौंसिल प्रवेश-नीति का* वर्णन प्राय नगण्य सा है। प्रेमचन्द जी ने अवश्य अपने उपन्यासो तथा कहानियो मे स्वराज्यवादियो की कुछ चर्चा की है किन्तु प्रमुखतया उनकी असफलता पर ही प्रकाश डाला है। 'रगभूमि' उपन्यास मे डा० गगोली स्वराज्य पार्टी से सबधित हैं, और कौंसिल प्रवेश द्वारा स्वराज्य के प्रश्न को हल करना चाहते हैं। इनके कार्यों का विस्तृत उल्लेख नही मिलता केवल सकेत मात्र प्रेमचन्द जी ने किया है।

प्रेमचन्द जी ने 'कानूनी-कुमार' नामक सवादात्मक कहानी मे कौंसिल मे बिल प्रस्तुत कर देश-सुधार की नीति का उल्लेख किया है। प्राय स्वराज्य पार्टी के अधिकाश नेतागण कानूनी-कुमार की भाति कौंसिल मे बिल पेश कर यश और नाम अर्जित करने की महत्त्वाकाक्षा भी रखते थे। कानूनी-कुमार देश की दुर्दशाग्रस्त अवस्था पर सरकार द्वारा ध्यान न दिये जाने पर 'इसको कानून से रोकना चाहिए, नही तो अनर्थ हो जायगा' मे विश्वास रखते थे।[1] देश के चारित्रिक पतन, नारियो की पिछडी अवस्था भिखमगो के बहिष्कार आदि से सबधित बिल पास करने की योजना बनाते हैं। *अन्त मे प्रेमचन्द जी ने कानून द्वारा भारत की दशा के सुधार की निरर्थकता का* वर्णन मिसेज कुमार द्वारा कराया है। गाधी जी ने कांग्रेस मे स्वराज्यवादियो को कौंसिल प्रवेश तथा अड गा नीति के सबध मे पूरी स्वतन्त्रता दे दी थी। असहयोग आन्दोलन स्थगित करने के पश्चात् कुछ वर्ष तक वे तटस्थ रूप से राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के रचनात्मक कार्य मे लगे रहे थे। वे भली प्रकार यह जानते थे कि कानून अथवा कौंसिल प्रवेश की नीति द्वारा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण मे सफलता नही मिल सकती। अत प्रेमचन्द जी ने मिसेज कुमार के शब्दों मे गाधी जी की नीति का ही समर्थन किया है—

"...मैं यह नही कहती कि सुधार जरूरी नही है। मैं भी शिक्षा का प्रचार चाहती हू, मैं भी बाल-विवाह बद करना चाहती हू, मैं भी चाहती हू, बीमारिया न फैलें, लेकिन कानून बना कर, जबर्दस्ती यह सुधार नहीं करना चाहती। लोगो मे शिक्षा और जागृति फैलाओ, जिसमें कानूनी भय के बगैर यह सुधार हो जाय। आपसे कुरसी तो छोडी जाती नहीं, घर से निकला जाता नही दफ्तरों की विलासिता को एक दिन

1 ११ राजनैतिक कहानियाँ और समरयात्रा पृ० १७

के लिए भी नही त्याग सकते और सुधार करने चले हैं आप देश का। इस तरह सुधार न होगा, हा, पराधीनता की बेडी और कठोर हो जायगी।"[1]

स्वराज्यवादियों को स्वय अपनी भूल का ज्ञान हो गया था और साइमन कमीशन आगमन काल मे पुन गाधी जी ने आन्दोलन का सचालन किया तथा इस दल की समाप्ति हो गई।

हिन्दी-साहित्य मे समाजवादी राष्ट्रीय विचारधारा

श्रमिक वर्ग के सगठन के साथ ही समाजवादी विचारधारा का प्रचार भी प्रारम्भ हो गया था। कांग्रेस के अन्तर्गत जवाहरलाल नेहरू एव अन्य राष्ट्रीय नेताओ ने, विशेषकर युवक वर्ग ने समाजवाद को राष्ट्र के लिए हितकर मान कर, उसका समर्थन किया था। सन १९३५ मे कांग्रेस-सगठन के अन्तर्गत समाजवादी दल की स्थापना की गई थी। यह समाजवाद मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित था। रूसी क्रान्ति के प्रभाव से देश अछूता नही बचा था। हिन्दी-साहित्य अपने युग की इस नवीन विचारधारा से विशेष रूप से प्रभावित हुआ। सन् १९३६ मे 'प्रगतिशील सघ' की स्थापना हुई जिसके सभापति प्रेमचन्द जी थे।[2] अब साहित्य ने युगीन विचारधारा के अनुरूप नवीन मोड लिया, जिसमे यह प्रतिध्वनित किया गया कि समाज के वर्तमान दुख क्लेश का तथा वैषम्य का कारण पूजीवाद है। पूजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन से ही वर्ग-गत स्वार्थों की समाप्ति हो सकती है। समाज और देश-जीवन में आमूल परिवर्तन के लिये क्रान्ति को आवश्यक माना गया। १९३७ ई० के पूर्व समाजवादी विचारधारा से अनुरजित साहित्य अधिक नही मिलता। १९३७ ई० के उपरान्त, अवश्य समाजवादी साहित्य प्रचुर मात्रा मे लिखा गया।

हिन्दी कविता और समाजवाद

भारत मे समाजवाद राष्ट्रवाद का सहायक था क्योकि विदेशी साम्राज्यवाद पूजीवादी व्यवस्था पर आधारित था, जिससे देश का अत्यधिक अहित हो रहा था। इस व्यवस्था ने राष्ट्र-जीवन को दो बडे वर्गों मे विभाजित कर दिया था—शोषक और शोषित। भारत की अधिकाश जनता श्रमिक एव कृषक वर्ग की थी, अत इस दलित वर्ग के उत्थान के लिए समाजवादी क्रान्ति अति अनुकूल थी। बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारीसिंह दिनकर, सुमित्रानन्दन पत, नरेन्द्र शर्मा प्रभृति कवियो पर समाजवाद का विशेष प्रभाव लक्षित होता है। बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारीसिंह दिनकर और नरेन्द्र शर्मा ने असहाय दलित वर्ग के शोषण से विक्षुब्ध होकर विध्वस, महानाश और प्रलय का साधन अपनाया है। नि सन्देह यह मार्क्स-सम्मत समाजवादी विचारो का ही प्रभाव है। राष्ट्र के नवनिर्माण के आकाक्षी कवि 'नवीन' ने ऐसी

१ ११ राजनैतिक कहानियां और समरयात्रा पृ० २८
२. विजयशंकर मल्ल . हिन्दी काव्य मे प्रगतिवाद : पृ० ३१

तान छेडनी चाही थी जिससे उथल-पुथल हो जाती अथवा ऐसा अनल गान गाना चाहा था, जिससे नाश ही नहीं, महानाश हो जाता—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए

× × ×

प्राणों के लाले पड जाएँ, त्राहि-त्राहि-रव नभ मे छाए,
नाश और सत्यानाशो का-धुआंधार जग मे छा जाए
बरसे आग, जलद जल जाए, भस्मसात भूधर हो जाएं,

× × ×

नाश ! नाश ! हॉ महानाश !! की प्रलयकारी आँख खुल जाए,
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे अग अग झुलसाए···।[1]

विदेशी साम्राज्य के अत्याचार शोषण और राष्ट्र की दुर्गति देखकर कवि का क्रोधानल प्रलयकारी हो जाता है। उन्होने क्षणिक आवेश अथवा कोरी भावुकतावश क्रान्ति-आह्वान नही किया था, यह प्रलय का राग उनके हृदय के रक्त से लिखा गया था।[2]

रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भी वर्तमान के दुख, दैन्य और दारुण कष्ट को मिटाने के लिए विप्लव अथवा ताडव का आह्वान किया था—

कह दे शकर से आज करें वे प्रलय नृत्य एक बार
सारे भारत मे गूँज उठे हर-हर-बम का फिर महोच्चार।[3]

देश की सम्पूर्ण व्यवस्था को मिटाकर दिनकर जी ने उसे पुन नवीन जीवन से स्पदित करना चाहा था—

प्रभु ! तव पावन नील गगन-तल
विदलित अमित निरीह-निबल-दल
मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्र-जन
आह ! सभ्यता आज कर रही
असहायों का शोणित शोषण
पूछो, साक्ष्य भरेंगे निश्चय, नभ के ग्रह नक्षत्र-निकर
नाचो हे ! नाचो नटवर

कवि ने कविता को राजवाटिका छोड वन-फूलो की ओर मोड दिया था क्योकि *ग्राम, ग्राम-जीवन और कृषक-वृन्द ही राष्ट्र की विभूति हैं* और समाजवाद दलित वर्ग को शोषण से विमुक्त करने मे विश्वास रखता है। 'नवीन' जी की भाँति 'दिनकर' मे भी पौरुष ओज और साहस का अभाव नही था। प्रो० कामेश्वर वर्मा ने दिनकर की

१ बालकृष्ण शर्मा नवीन . कुकुम पृ० ६ से ११
२. वही पृ० १२
३ रामधारीसिंह दिनकर हुंकार : पृ० ८

राष्ट्रीय-भावना को 'आतंकवादी, हिंसावादी और विध्वंसकारी' कहा है।[1] दिनकर के काव्य में विध्वंस का राग अवश्य अलापा गया है, लेकिन वे हिंसावादी नहीं हैं। सशस्त्र क्रान्तिकारी दल की साधना पद्धति में उनका विश्वास नहीं था। वे उसी अर्थ में क्रान्तिवादी अथवा आतंकवादी हैं जिस अर्थ में बालकृष्ण शर्मा नवीन। रूसी क्रान्ति अथवा खूनी क्रान्ति के पक्ष में वे नहीं थे। उनकी राष्ट्रीय भावना भी भारत के नवनिर्माण से अनुप्रेरित थी।

दिनकर और नवीन जी के काव्य में देश का उद्दीप्त यौवन पुकार रहा है। दोनों ही प्राणों को हथेली पर रखकर साम्राज्यवाद को भस्म कर देना चाहते थे। दोनों कवियों की राष्ट्रीयता का अधिक संबंध मानवता का कल्याण कर उसे सत्य, शिव, सुन्दर के पथ पर ले जाता है। इनकी समाजवादी विचारधारा राष्ट्रीयता में साधक है। राष्ट्रवाद के विकास को क्रांतिवाद के योग से पूर्ण विकास प्राप्त हुआ था।

गांधीवादी राष्ट्रीय कवि सियारामशरण गुप्त भी अपने युग के ध्वंस राग से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे थे। उन्हें भी जीवन के लिए, नई सृष्टि के नवोल्लास के लिए, ध्वंस को आवश्यक माना था—

> कुछ भी मूल्य नहीं जीवन का हो यदि उसके पास न ध्वंस,
> ओ कृतान्त, हमको भी दे जा निज कृतान्तता का कुछ अंश।[2]

सुमित्रानन्दन पंत की 'युगान्त' के बाद की रचनाएं समाजवाद अथवा मार्क्सवादी भूतवाद की ओर मुड़ गई हैं। स्वयं कवि ने 'युगवाणी' के 'दृष्टिपात' में लिखा है कि इसमें मुख्यतः पांच प्रकार की विचारधारा मिलती हैं—(१) भूतवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय, जिसमें मनुष्य की चेतना का पथ प्रशस्त बन सके। (२) समाज में प्रचलित जीवन की मान्यताओं का पर्यालोचन एवं नवीन संस्कृति के उपकरणों का संग्रह, (३) पिछले युगों के उन मृत आदर्शों और जीर्ण रूढ़ि रीतियों की तीव्र भर्त्सना जो आज मानवता के विकास में बाधक बन रही हैं, (४) मार्क्सवाद और फ्रायड के प्राणिशास्त्रीय मनोदर्शन का युग की विचारधारा पर प्रभाव, जन-समाज का पुनः संगठन एवं दलित लोक समुदाय का जीर्णोद्धार, (५) बहिर्जगत के साथ अंतर्जगत के संगठन की आवश्यकता। राग भावना का विकास तथा नारी जागरण पदार्थ। पदार्थ और चेतना को पंत जी ने दो विचारों के समान माना है—

> भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
> जहां आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान।

---

१. प्रो० कामेश्वर शर्मा : दिग्भ्रमित राष्ट्र कवि पृ० १६

२. सियारामशरण गुप्त : पाथेय : पृ० ११७

नहीं जानता युग विवर्त मे होगा कितना धन क्षय
पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय।[1]

कवि ने गाधीवाद को साम्यवाद के सम्मिश्रण मे राष्ट्र का कल्याण माना था। जग-जीवन से दैन्य, अभाव और परवशता मिटा कर मानवतावाद की स्थापना उनका इष्ट था।[2]

असहयोग आन्दोलनों की असफलता ने गाधी जी के सत्य अहिंसा के साधन द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति की आशा पर तुषारापात किया था। क्रान्तिवाद अथवा मार्क्स-सम्मत समाजवाद के प्रचार का यह कारण भी था। इसी कारण नरेन्द्र शर्मा ने लिखा था—

आओ, हथकड़िया तड़का दूँ, जागो रे नतशिर बन्दी!
उन निर्जीव शून्य श्वासों मे आज फूंक दू लो नवजीवन,
भर दू उनमे तूफानो का, अगणित भूचालों का कंपन,
प्रलयवाहिनी हो, स्वतन्त्र हों, तेरी ये सासें बन्दी।[3] (१९३४)

मार्क्सवाद के अनुरूप नरेन्द्र शर्मा भी दैवी शक्ति की अपेक्षा, मानव की शक्ति मे विश्वास रखते हैं—

व्यक्त रूप मे हो असीम तुम, सृष्टि श्रेष्ठ। तुम मे असीम है,
निबल! तुम्हारा बल तुम मे है ज्यो तुम मे जग-ज्योति लीन है,
उठो सूर्य-से चीर तिमिर को, उठो, उठो, नतशिर बन्दी।[4]

वह महाप्रलय के वीर घोष से दलित वर्ग का उद्धार करना चाहते हैं—

भोगी की तम-निन्द्रा टूटे, योगी की समाधि हो क्षय,
शख नाद मे घोषित हो, कवि एक बार न्यायी की जय!
त्याग-तप्त सतप्त अस्थियों का तुम विद्युत वज्र बना
उभड़ा दो निज ज्योति-ज्वाल से, वीर घोष के महाप्रलय।[5]
(कृषिकों की अन्तरात्मा - कवि के प्रति–१९३५)

नरेन्द्र शर्मा के काव्य मे 'नवीन जी अथवा दिनकर' की भांति प्रबल ओज नही मिलता। नवीन जी क्रांतिवाद के अग्रदूत हैं। इन सभी कवियों ने राष्ट्रवाद के विकास मे युग की विचारधारा का सामजस्य किया है।

---

१ सुमित्रानन्दन पत युगवाणी पृ० १
२. वही : पृ० ४
३ नरेन्द्र शर्मा : प्रभात फेरी पृ० १
४. नरेन्द्र शर्मा : प्रभात फेरी : पृ० ३
५. वही . पृ० १६

हिन्दी-नाटकों में समाजवादी विचारधारा

सेठ गोविन्ददास के नाटकों मे गाधीवादी विचारधारा के साथ मार्क्सवादी विचारधारा का सम्मिलन हुआ है 'प्रकाश' नाटक के प्रारम्भ मे ही लेखक ने इस ओर सकेत कर दिया है कि सत्याग्रह आन्दोलनो की असफलता के पश्चात् देश की सर्वेसर्वा कांग्रेस की स्थिति मे परिवर्तन आ गया था। इसके अतिरिक्त अन्य देशों की भांति इस देश में भी आर्थिक प्रश्न की प्रधानता हो रही थी।[1] समाजवाद का मूलाधार ही मानव मात्र मे अर्थ-साम्य की समस्या थी। प्रकाशचन्द्र नाटक का नायक है जिसे समाज के अन्तर्गत धनियो और निर्धनो, पठितो और अपठितों अथवा किसी भी कारण से उच्च स्थान रखने वालो और पतित व्यक्तियो का परस्पर भेदभाव अमान्य है।[2] वह धनिक वर्ग को सबोधित कर कहता है—'आप लोग अपने भाइयो पर हँसते हैं। महाशयो! यह हँसने की नही, गभीरता से विचार करने की बात है। यदि मेरे इन भाइयो को अपनी पतित अवस्था का ज्ञान नही है, और इस अवस्था तक मे ये आनन्द मनाते हैं, तो इसमे इनका दोष कम और आपका अधिक है। आज शताब्दियो से आपने ही इन्हे दबा कर रखा है, इनके हृदयो के स्वतन्त्र भावो को कुचला है।'[3] करोडो निर्धनो अथवा अपठितो मे आ रही जागृति की ओर भी उसने सकेत किया है। पूंजीवाद के अन्याय और अत्याचार का भी उल्लेख किया है। वह भी इसी पूंजीवादी साम्राज्यवाद रूपी चक्र व्यूह का विध्वस करना चाहता है।[4]

हिन्दी-कथा-साहित्य मे समाजवाद की अभिव्यक्ति

प्रेमचन्द्र जी के 'कर्मभूमि' उपन्यास मे ही समाजवाद के कुछ बीज बिखरे मिल जाते हैं जो 'गोदान' मे पनप उठे हैं। प्रेमचन्द जी मूलत गाधीवाद थे। गाधीवाद का समाजवाद से विरोध भी नहीं था क्योकि दोनो ही सामाजिक विषमता के अवसाद को मिटा कर मानवतावाद की स्थापना मे विश्वास रखते थे। केवल दोनो के साधन भिन्न थे। अत गाधीवादी प्रेमचन्द का समाजवाद की ओर झुकाव भी अस्वाभाविक अथवा असंगत नही था। उनका यह परिवर्तन तो युग की परिवर्तित परिस्थितियो की स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप मे हुआ था। 'कर्मभूमि' उपन्यास मे अमर बोझ उठा कर यह दिखाना चाहता है—'मैं मजूरी करके निबाह करना इससे कहीं अच्छा समझता हू कि हराम की कमाई खाऊँ। तुम सब मोटी तोंदवाले हरामखोर हो, पक्के हरामखोर हो। तुम मुझे नीच समझते हो, इसलिए कि मैं अपनी पीठ पर बोझ लादे हुए हू। क्या यह बोझ तुम्हारी अनीति और अधर्म के बोझ से ज्यादा लज्जास्पद है, जो तुम अपने सिर पर लादे फिरते हो और शर्माते जरा भी नही? उल्टे और घमड

१. सेठ गोविन्ददास : प्रकाश पृ० ११
२. सेठ गोविन्ददास , प्रकाश : पृ० १८
३. वही : पृ० १६
४. वही : पृ० २०

करते हो।'[1] पूंजीवाद का विरोध प्रारम्भ हो गया था। सुखदा कहती है—'गरीब को तुम अब तक कुचलते आये हो, वही अब सांप बन कर तुम्हारे पैरों से लिपट जायेंगे।'[2] इसी प्रकार अमर और ग्राम के चौधरी की बातचीत मे बड़े छोटे से भेद पर विवाद होता है। वर्ग-भेद के प्रति ग्रामीण कृषकवर्ग सजग हो रहा था। इस जागृति के फलस्वरूप चौधरी को 'पूर्व जन्म के सस्कार' और 'कर्म के फल' पर विश्वास नही रह गया था।[3] आदर्शवाद के स्थान पर भूतवाद की प्रधानता हो रही थी।

'गोदान' मे प्रेमचद जी ने शिष्ट एव शिक्षित जन के बीच समाजवाद पर विवाद कराया है। रायसाहब समाजवाद का विश्लेषण करते हुए कहते हैं—'बुद्धि अगर स्वार्थ से मुक्त हो, तो हमे उसकी प्रभुता मानने मे कोई आपत्ति नही। समाजवाद का यही आदर्श है। हम साधु-महात्माओ के सामने इसीलिए सिर भुकाते हैं कि उनमे त्याग का बल है। इसी तरह हम बुद्धि के हाथ मे अधिकार भी देना चाहते हैं, सम्मान भी, नेतृत्व भी, लेकिन सम्पत्ति किसी तरह नही। बुद्धि का अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ चला जाता है, लेकिन उसकी सम्पत्ति विष बोने के लिए, उसके बाद और भी प्रबल हो जाती है। बुद्धि के बगैर किसी समाज का संचालन नही हो सकता। हम केवल इस बिच्छू का डक तोड देना चाहते हैं।'[4] रायसाहब जैसे जमीदार भी समाजवाद जैसे विषयों पर विचार करने लगे थे। इस उपन्यास की मूल समस्या आर्थिक है। कृषक एव श्रमिक वर्ग की आर्थिक विपन्नता का मार्मिक चित्रण कर प्रेमचन्द जी ने वर्ग सघर्ष को जन्म दिया है। नि सन्देह प्रेमचन्द जी इस उपन्यास के रचना-काल मे समाजवाद से अत्यधिक प्रभावित हुए होगे।

विश्वभरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियो मे श्रमिक वर्ग के प्रति मिल मालिको के अत्याचार, मजदूरो की हडताल आदि का उल्लेख मिलता है।[5] 'उद्धार' कहानी मे लेखक ने मजदूरो की आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए यह आवश्यक माना है कि उन्हे उनके परिश्रम का उचित मूल्य मिले।[6] कौशिक जी समाजवाद के सिद्धान्तो से पूर्ण प्रभावित दिखाई देते हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी की 'वह चोर था' कहानी मे गरीबो के प्रति सहानुभूति मिलती है।[7] उपेन्द्रनाथ अश्क की 'तीन सौ चौबीस' कहानी मे पूंजीवादी सभ्यता पर कटु व्यग्य कसा गया है।[8] यह भी समाजवाद का प्रभाव था,

१. प्रेमचन्द कर्मभूमि · पृ० १२१
२ प्रेमचन्द कर्मभूमि पृ० २५२
३ वही, पृ० १५१
४ प्रेमचन्द गोदान पृ० ५९-६०
५ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक · चित्रशाला · पृ० २२
६ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक चित्रशाला : पृ० ३४
७ बेनीपुरी ग्रन्थावली : पृ० ४१
८. उपेन्द्रनाथ अश्क : पृ० ३१४

जो कहानीकारो का ध्यान देश की आर्थिक समस्या, उसके उत्पादन और वितरण की प्रक्रिया की ओर आकृष्ट कर रहा था।

जहा तक राष्ट्रीय हित की दृष्टि से, साहित्य मे इस विचारधारा का आरोपण हुआ है, वहा तक इस साहित्य की राष्ट्रीयता मे सदेह नही किया जा सकता। इस के मार्क्सवाद के पिष्टपेषण मे अवश्य राष्ट्रीयता की भावना अविच्छिन्न नही रह पाती। १६३७ ई० के पूर्व जो भी साहित्य समाजवादी विचारधारा से प्रभावित मिलता है, उसने सामाजिक भावना एव राष्ट्रीयता के विकास मे सहयोग देकर, देश मे राष्ट्रवाद के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित किया था।

सशस्त्र क्रान्तिकारी दल

भारत मे राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए प्रयत्न शील एक अन्य दल भी था, जिसकी देशभक्ति ने उसे हिंसात्मक साधनो के अवलम्ब के लिए बाध्य किया था। यह दल अ यन्त सीमित था, इसे जनता का विशेष सहयोग भी प्राप्त नही हो सका था। किन्तु इसके साहस, धैर्य तथा कुशलता ने विदेशी सरकार को आतंकित कर दिया था। सशस्त्र क्रान्तिकारी दल ने ब्रिटिश शासको द्वारा किए गए अत्याचारो और अन्याय का बदला हिंसात्मक रीति द्वारा, ब्रिटिश सत्ता को मिटा कर लेना चाहा। क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रारम्भ का ठीक समय निश्चित करना कठिन है। गदर के समय से ही ब्रिटिश सत्ता को मिटा देने के लिए यह प्रवृत्ति कार्य कर रही थी। सन् १८६४ ई० मे चाफेकर बधुओ ने 'हिंदु धर्म सरक्षिणी सभा' बनाई, शिवाजी तथा गणपति उत्सव पर जिन श्लोको का गान हुआ था, उनमे सशस्त्र राष्ट्रीय सग्राम का आह्वान तथा राष्ट्रीय युद्ध मे प्राणोत्सर्ग की प्रेरणा दी गई थी। अग्रेजो का बहिष्कार ही नही, उनकी जीवन-लीला समाप्त कर देने का सदेश देशवासियो को दिया गया था।[१] 'शिवाजी-उत्सव' द्वारा अग्रेज जाति के विरुद्ध विद्वेष का प्रचार किया गया। १८६७ ई० मे पूना मे ताऊन (प्लेग) का विशेष जोर था, तथा मि० रैण्ड ने कठोरता से बीमारी का दमन किया। इस सबध मे लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' मे लिखा था कि सरकार बीमारी के बहाने से जनता की आत्मा कुचलना चाहती है, मि० रैण्ड अत्याचारी हैं और सरकार की आज्ञा से ऐसा कर रहे है।[२] पुलिस रिपोर्ट के अनुसार लोकमान्य तिलक ने श्रीमद्भगवत् गीता से उद्धरण देकर, भारतवासियों को हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा अग्रेजी शासन से मुक्ति का सदेश दिया था। सन् १८६७ मे महारानी विक्टोरिया के ६०वें राज्याभिषेक दिवस पर दामोदर चाफेकर ने मि० रैण्ड की हत्या कर दी।[३] अग्रेजी शासक वर्ग अधिक सतर्क हुआ, उसकी दमन नीति अधिक कठोर हुई। श्री लोकमान्य तिलक को तार्किक रूप से राजनीतिक हत्या के समर्थन के अपराध मे कारावास का दण्ड मिला।

---

१ मन्मथनाथ गुप्त भारतमे सशस्त्र क्रान्ति चेष्टाका रोमाचकारी इतिहास पृ० १७

२. वही, पृ० १६

३. वही, पृ० २१

श्यामजी वर्मा ने १९०५ ई० मे 'इडिया होमरूल सोसाइटी' नामक सभा की स्थापना की। इसका उद्देश्य स्वराज्य प्राप्त करना, उसके लिए इगलैंड में जनमत जाग्रत करना तथा वहा के भारतीय स्नातको मे स्वतन्त्रता की भावना भरना था। इगलैंड मे 'भारतीय भवन' सच्चे देशभक्तो का विशेष स्थान था जिसमे 'गदर दिवस' मनाया गया और सभाओ मे गुप्त हत्या के लिए उत्तेजित किया गया था। इसमे बम बनाने के मसालो पर वक्तृता दी जाती थी।[1] विनायक दामोदर सावरकर इगलैंड और तत्पश्चात् पेरिस गए और वहा राजद्रोहात्मक बातें छापी, जिनके पर्चे भारत आया करते थे, तथा भारत मे सशस्त्र क्राति की प्रवृत्ति को उभारने मे सहायक होते थे। सन १९०६ मे लन्दन मे धीगरा ने पिस्तौल से लार्ड कर्जन को समाप्त कर दिया।[2] गणेश सावरकर भारत मे क्रान्तिकारी दल का सगठन कर रहे थे। १९०८मे उन्हे 'लघु अभिनव भारत मेला' नाम से कुछ उत्तेजित करने वाली देशभक्तिपूर्ण कविताओ के प्रकाशन के कारण काले पानी की सजा मिली। विदेशो से भारत शस्त्र भेजने का कार्य भी चल रहा था। औरगाबाद मे २१ दिसम्बर १९०६ को मिस्टर जैक्सन को गोली मार दी गई।

नासिक तथा ग्वालियर मे षड्यन्त्र किए गए। सन १९१२ मे दिल्ली मे लार्ड हार्डिग पर बम फेंका गया। यद्यपि प्रारम्भ मे बगाल मे इस क्रान्तिकारी दल का विशेष जोर था किन्तु सयुक्त प्रान्त महाराष्ट्र और पजाब मे भी इस दल ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था। सन् १९०७ मे इलाहाबाद शहर म विप्लव का कार्य प्रारम्भ हुआ। बनारस म १९०८ मे शचीन्द्र नामक युवक ने अनुशीलन समिति' द्वारा यह कार्य आरम्भ किया।[1] इन हिंसात्मक क्रान्तिकारियो को ब्रिटेश शासकों ने कठोर से कठोर दड दिया किन्तु इसका कार्य बढ़ता गया गया। श्री रासबिहारी बोष तथा लाला हरदयाल का दल समय समय पर विप्लव की चिगारिया छोडता रहा। सम्पूर्ण देश मे इस दल के अड्डे थे तथा विदेशों मे भी इनकी सस्थाए थी। लाला हरदयाल ने अमेरिका म गदर' नाम का पत्र निकाला था। पजाब मे विदेशों से लौटे सिक्खो ने जिनम बाबा गुरुदत्त का नाम विशेष महत्व रखता है, इस विद्रोह मे सहयोग दिया। सन् १९१४ मे विष्णु पिंगले नामक एक महाराष्ट्री युवक ने पजाब जाकर बगाल के षड्यन्त्रकारियो से सहयोग स्थापित किया। पजाब मे क्रान्तिकारियो की एक सभा बनाई गई, जिसम सरकारी खजाना लूटने भारतीय सैनिको मे विद्रोह का प्रचार तथा हथियार सग्रह के लिए डकैती की योजनाए बनाई गई थी। इन लोगो न फिरोजपुर मे सरकारी खजाना लूटने, ६ डाके तथा ६ बार रेल उलटने का उद्योग किया था। सरकार के जासूसो को इनका पता लगते ही इनके अड्डो पर धावा बोल इन्हें नजर-

१ मन्मथनाथ गुप्त भारत में सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास पृ० २६
२ वही, पृ० ३०
३ पंडित शकरलाल तिवारी बेढब : भारत सन् १८५७ के बाद पृ० ९२

बन्द कर दिया गया।[1] १६१५ म जमनी से मार्टिन वेषधारी युवक ने जर्मनी से एक जहाज में ३००० राइफलें, प्रत्येक बन्दूक के लिए ८०० के हिसाब से कारतूस व दो लाख रुपये नकद भेजे किंतु सरकार ने उनकी आशा विफल कर दी।

अत १६२० ई० के पूर्व ही भारत म सशस्त्र क्रान्ति की ज्वाला प्रज्ज्वलित हो गई थी, जिससे साधारण जनता की राष्ट्रीय चेतना की जागृति मे सहयोग मिलता रहता था यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति का यह साधन उनकी नैतिकता तथा मानवता के विपरीत था। इस हिंसात्मक क्रान्ति को 'रूसी क्रान्ति' से विशेष प्रेरणा मिली थी। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक में लिखा है

'यह कह देना आवश्यक है कि इन अलमस्तों का हमारी राष्ट्रीय सुषुप्त चेतना पर गहरा असर पडा और राष्ट्रीय मनोजगत् मे इसकी बहुमुखी प्रतिक्रिया हुई।'[2]

सन् १६२० २२ मे गाधी जी ने असहयोग आन्दोलन का देशव्यापी प्रचार किया। किन्तु सयुक्त प्रात मे घटित चौरी चौरा की हिंसात्मक प्रवृत्ति से उन्हे दुख हुआ और उन्होंने असहयोग आन्दोलन भग कर दिया। गाधी जी हिंसात्मक क्रान्ति को अमानुषिक, बर्बर एव नृशस मानते थ। असहयोग आन्दोलन की समाप्ति ने विप्लववाद के अनुकूल वातावरण का निर्माण किया क्योंकि अहिंसा द्वारा स्वराज्य प्राप्ति की आशा निराशा में परिणित हो चुकी थी। सशस्त्र क्रान्तिकारी दल का कार्य पुन वेग से प्रारम्भ हो गया। ३ अगस्त सन् १६२३ ई० को कलकत्ते के शाखारी-टोला से पोस्ट आफिस को लूटने का प्रयास हुआ तथा कुछ प्राप्ति न होने पर वहा के पोस्ट मास्टर की हत्या की गई। इस पर नरेन्द्र नामक युवक को आजीवन काले पानी का दण्ड मिला।[3]

इस प्रसग म काकौरी षड्यन्त्र अत्यधिक प्रसिद्ध है, जिसका मुख्य उद्देश्य था क्रान्ति की अग्नि भडकाने के लिए धन की प्राप्ति। इसका विशेष सबध हिन्दी-प्रदेश मे था।

'असहयोग आन्दोलन की विफलता के बाद क्रातिकारियो ने फिर सिर उठाया। बनारस षड्यन्त्र के बाद श्री शचीन्द्र ने फिर एक नवीन दल की स्थापना की। इसका केन्द्र स्थान लखनऊ रखा गया। श्री शचीन्द्र ने इस दल मे बहुत से युवक भरती किए। इस दल का मुख्य उद्देश्य था धन की प्राप्ति, जिससे क्रान्ति की आग जोरो से भडकाई जा सके।'[4] ६ अगस्त सन् १६२५ ई० को अवध-रुहेलखड रेलवे के काकोरी स्टेशन पर गाड़ी रोक कर खजाना लूट लिया गया। इस षड्यन्त्र का भेद खुलने पर रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिडी, श्री रोशनसिंह तथा अशफाक उल्ला

१. पडित शकरलाल तिवारी 'बेढब' भारत सन १६५७ के बाद पृ० १००
२. मन्मथनाथ गुप्त भारत मे सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास: पृ० ३३
३. पण्डित शंकरलाल तिवारी 'बेढब' : भारत सन् ५७ के बाद : पृ० ८६
४. वही, पृ० १०४

खा आदि शहीद हो गए थे।[1] इसके मुखिया थे चन्द्रशेखर आजाद किन्तु वे फरार हो गए।

सन् १९३० ई० मे यह विप्लव अपनी चरम सीमा पर पहुच गया था। २५ अगस्त सन् १९३० को कलकत्ते मे पुलिस कमिश्नर पर दो बम फैंके गए किन्तु वे बच गए। इस प्रकार की अन्य घटनाए भी वहा घटी। दिल्ली मे 'दिल्ली क्रान्तिकारी दल' का सगठन किया गया जिसका प्रारम्भ सन् १९२३ के पहले ही हो चुका था। इस दल के सगठनकर्ता शैलेन्द्रनाथ चक्रवर्ती थे। इसने अपने कार्यकर्ताओ द्वारा विभिन्न प्रान्तो मे क्रान्तिकारी साहित्य द्वारा सशस्त्र क्रान्ति आन्दोलन का प्रचार किया।

अब यह दल बम बनाने लगा था तथा बम बनाने की छोटी छोटी फैक्टरिया भी स्थापित हो गई थी। धन की आवश्यकता के लिए ये सरकारी खजाने लूटते थे तथा ट्रेन उडाते थे। दिल्ली दल के प्रसिद्ध सशस्त्र क्रान्तिकारी थे चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिह, कैलाश व राजगुरु। ये सभी नवयुवक थे। इन लोगो ने काग्रेस अहिसात्मक आन्दोलन के विरोध मे भी एक पर्चा निकाला था। इन्होने साडर्स की हत्या की योजना बनाई तथा अपनी योजना की पूर्णता के निमित्त ट्रेन उडाने का प्रबध किया। किन्तु उनके दल के कुछ विश्वासघातियों के कारण उनका षड्यन्त्र असफल हुआ।

'दिल्ली षड्यन्त्रकारियो के पास धन का बहुत अभाव था। साथ ही उनका सगठन छिन्न भिन्न था। दल के सभी व्यक्तियो पर पुलिस का ज्यादा सन्देह था और प्रत्येक व्यक्ति की कार्य शैली पर पुलिस की काफी निगरानी रहती थी। षड्यन्त्रकारियों में अधिकतर युवक ही थे, जिन्हें इस बात का पता हो न था, कि हमारे दल के भीतर ही ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं, जो प्रति मिनट की खबर सरकार को देते हैं। इसी से प्राय सभी षड्यन्त्र फेल हो गए। नवजवानो ने अपनी हस्तियां विश्वासघातियों के जरिए फना कर दी।'[2] भगतसिह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी दी गई।

इन लोगो ने नेशनल बैंक की डकैती की, वाइसराय की हत्या का प्रयत्न किया, खानबहादुर अब्दुल अजीज तथा सरकारी वकीलो के मारने का प्रयास किया। *मि० साडर्स की हत्या चन्द्रशेखर आजाद की गोली से हुई* क्योंकि उन्होने भगतसिह आदि को फाँसी की अन्तिम आज्ञा दी थी। अन्त मे प्रयाग की भूमि चन्द्रशेखर आजाद के रक्त से पवित्र हुई। देश की स्वतन्त्रता के लिए बलि होने वाले इन क्रान्तिकारी शहीदो की वीरता तथा साहसपूर्ण त्याग का विशेष आदर एव सम्मान हुआ। इनकी राष्ट्रीय भावना जनता पर अपनी अमिट एव स्थायी छाप छोड गई। चन्द्रशेखर आजाद की लाश के उठते ही उनके रक्त से लाल मिट्टी तक लोग उठा ले गय थे— 'लाश के जाते ही लोग उसके खून से सनी हुई मिट्टी लेने के लिये टूट पडे और जिसे जितनी मिली उठा ले गए। + + + आजाद की लाश लोगा को नहीं दी गई

१. पडित शकरलाल तिवारी बेढब : भारत सन् ५७ के बाद पृ० १०४

२ वही, पृ० १४२

इसलिए उनकी अरथियों का बड़ा भारी जलूस निकाला गया। पुरषोत्तमदास पार्क में एक विराट-सभा की गई, जिसमें कमला नेहरू, बाबू पुरषोत्तमदास टण्डन आदि के जोरदार व्याख्यान हुए।"[1] यद्यपि गांधीजी भारतीय नवयुवकों के लिए इस मार्ग का अनुसरण देश के हित के लिए घातक समझते थे, किन्तु उन्होंने भी इन विप्लवकारियों की भूरि-भूरि प्रशसा की सरकार की दमनकारी नीति तथा भगतसिंह आदि के बलिदान से भारतीय जनता मे विशेषकर शिक्षित भारतीयों मे असन्तोष तथा विदेशी शासकों के प्रति आक्रोश की भावना अधिक प्रबल हो गई। इस दल का सगठन टूटने की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ हो गया।

कलकत्ते मे क्रांति के काले मेघ अधिक सघन हो गए थे। हत्याओं, गिरफ्तारियों, फांसी, निर्वासन, नजरबन्दियों की बाढ आ गई थी। सरकार का दमनचक्र तीव्र था तथा क्रांतिकारी दल का हिंसात्मक कार्यक्रम अपने पूर्ण उत्साह पर। सशस्त्र एव हिंसात्मक क्रान्ति मे केवल पुरुषों ने ही सहयोग नहीं दिया था वरन भारतीय नारियों, विशेषकर बगाल की कतिपय प्रतिष्ठित महिलाओं ने, इस दल के कार्य को साहसपूर्ण सुचारु रूप से किया। ये स्त्रियाँ शस्त्र का प्रयोग भलीभांति जानती थी। एक स्थान से दूसरे स्थान पर इस दल का सवाद पहुचने का कार्य प्राय स्त्रियों द्वारा लिया जाता था। बनारस बम केस मे तीन बगाली स्त्रिया थी तथा मेरठ षड्यन्त्र केस मे क्रान्तिकारियों की धन द्वारा सहायता भी स्त्रियों द्वारा की गई थी।

सशस्त्र क्रांतिकारी दल की राष्ट्रीयता का स्वरूप

सशस्त्र क्रान्तिकारी दल की राष्ट्रीयता का मूलाधार मानव की हिंसात्मक पशु प्रवृत्ति थी। आदिकाल मे जब मानव असभ्य तथा बर्बर अवस्था मे था वह हिंसा द्वारा अपने अधिकारों की प्राप्ति तथा उनका विकास करता था। इसी आदिम पद्धति को इस दल के राष्ट्रवादी नेताओं ने स्वीकार किया था। अपने देश की विदेशी आक्रान्ताओं से रक्षा तथा उसकी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए शस्त्र का सहारा लेकर विदेशी शासकों तथा वासना के बन्धन मे जकड़ने वाली प्रत्येक कड़ी को मिटा डालने मे इन्हे किसी प्रकार का सकोच नहीं होता था। अत सशस्त्र क्रांतिकारी दल की राष्ट्रीयता हिंसात्मक तथा क्रूर थी।

इस दल विशेष के सदस्यों ने अपना कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए भिन्न भिन्न स्थानों पर गुप्त रूप से अपने अड्डे बना रखे थे तथा इनका कार्यक्रम निश्चित तथा गुप्त रीति से होता था। नायक के आदेश का पालन इस दल के प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य था तथा उसका उल्लघन मृत्युदड होता था।

इस दल की राष्ट्रीयता के कार्यक्रम मे विदेशी शासकों तथा विदेशी शासन मे योग देने वाले व्यक्तियों की हत्या को प्रमुखता दी गई थी। दल के कार्य को सुविधा-

1 पंडित शकरलाल तिवारी बेढ़ब : भारत सन् ५७ के बाद : पृ० १६७

पूर्वक तथा सुचारु रूप से चलाने के लिए धन की आवश्यकता होती थी। इस धन को एकत्रित करने के लिए ये सरकारी खजानों तथा बैंकों को लूटते थे। रेलगाड़ियों को रोककर उन्हें लूटना इनके अतीव साहस का परिचय देता है।

सशस्त्र क्रान्तिकारी दल की राष्ट्रीयता का विशेष उद्देश्य था विदेशी शासकों *तथा नौकरशाही को हत्या द्वारा आतंकित करना,* जिससे वह भयभीत हो इस देश को मुक्त कर दें। अपने साहसपूर्ण हिंसात्मक कृत्यों द्वारा उसने भारतीयों की वीरता तथा साहस का परिचय दिया।

साधारण जनता ने इनकी वीरता तथा साहस की मुक्तकंठ से प्रशंसा की किंतु वह अपना सहयोग न दे सकती थी। चन्द्रशेखर आजाद की मृत्यु पर जनता ने उनके प्रति जो अपनी श्रद्धा एवं अपनी संवेदना प्रकट की उससे यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि इस दल की क्रूरता की ओट में जो देशभक्ति और राष्ट्रीयता छिपी हुई थी, उसका देश ने आदर किया था। विदेशी शासक भी इनके साहस को देखकर आश्चर्यान्वित रह गए थे, क्योंकि ये स्वतन्त्रता के अलमस्त पुजारी फाँसी की वेदी पर हँसते हँसते बलि हो जाते थे। अंग्रेजी साम्राज्यवाद की शृंखला को खोलने में इस दल का भी महत्त्वपूर्ण योग था। इन्होंने अपने साहस से विदेशी शासकों को आतंकित कर दिया था।

'गीता' इनका पवित्र धर्म ग्रन्थ था तथा गीता के उपदेश को ही इन्होंने अपना ध्येय बनाया था।

सशस्त्र क्रान्तिकारी दल की राष्ट्रीयता का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

सशस्त्र क्रान्तिकारी दल का इतिहास तथा उसकी राष्ट्रीयता के स्वरूप का विवेचन किया जा चुका है। अतः यह स्पष्ट है कि भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जो संघर्ष चल रहा था, उसके दो भिन्न मार्ग थे—अहिंसात्मक तथा हिंसात्मक। सशस्त्र क्रान्तिकारी दल के अतिरिक्त जितने भी दल थे, उन सभी का विश्वास देश को गाँधीजी द्वारा प्रदत्त सत्य तथा अहिंसा से मुक्त करने में था। सशस्त्र क्रान्तिकारी दल के राष्ट्रीय नेता अथवा नायक उसके विपरीत हिंसा का सहारा ले रहे थे। साहित्यकार स्वभाव से ही शान्तिप्रिय तथा ब्राह्मण प्रवृत्ति के होते हैं अतः उनकी *कलात्मक प्रतिभा का सामंजस्य इस दल की विचारधारा कार्यप्रणाली तथा सिद्धान्तों* में नहीं हो सकती थी। अधिकांश हिन्दी साहित्य प्रणेताओं की विशेष श्रद्धा, विचारधारा का सामंजस्य तथा विश्वास अहिंसात्मक पद्धति तथा महात्मा गाँधी के साथ रहा। हिंसा की प्रणाली के प्रति वे संवेदनशील न हो सके। हिन्दी साहित्य में इस दल के कार्य-क्रम, घटनाओं तथा उद्देश्य की चर्चा तथा उनके साहस के प्रति प्रशंसा का भाव मिलता है।

काव्य

काव्य क्षेत्र में श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक मार्ग से अधिक सन्तुष्ट नहीं हैं। उनकी राष्ट्रीयता गाँधीजी की भाँति उदार एवं अहिंसात्मक

भी नही है वह प्रतिहिंसात्मक है तथा मानव की शारीरिक शक्ति मे अधिक विश्वास करती दिखाई पडती है—

पाजियो को गाल क्यों दें मारने । सामने दुख फिरकियाँ फिरती रहें ।।
जिस तरह हो चीर देंगे गाल हम । चिर गई तो उगलियाँ चिरती रहें ।।'

वे साहस तथा पौरुष मे सभी कार्यों की सिद्धि मानते थ । भारतेन्दु हरिश्चद्र के समान व दासवामिया द्वारा मिलकर आँसू बहाने की अपेक्षा रणक्षेत्र मे सघर्ष करने का सदेश देते हैं—

सब दिनो मुँह देख जीवट का जिये । लात अब कायरपने की क्यों सहे ।।
क्यो न बैरी को विपद मे डाल दें । हम भला क्यों डालते आसू रहें ।।

उन्हे यह सह्य नही है कि भारतवासी मौन रूप से दासता के अत्याचार सहन कर ल । 'हरिऔध' जी की प्रतिहिंसा की भावना पर प्राचीन क्षात्र धम (महाभारत, गीता आदि) क विचारो का प्रभाव था । नि सदेह क्रान्तिकारी दल ने भी गीता' *की युद्ध नीति तथा हिंसात्मक सघर्ष का आह्वान किया था । हरिऔध' जी का सशस्त्र* क्रान्तिकारी दल से सीधा सबन्ध न होने पर भी अप्रत्यक्ष रूप मे इस दल की हिंसात्मक नीति का कुछ अशो मे प्रभाव पडा होगा । इसके अतिरिक्त देश के अन्तर मे प्रतिहिंसा की ज्वाला जल रही थी वह अपने अत्याचारो को मिटाकर, अपना हृदय शीतल करना चाहता था इसी कारण गाधी जी के अथक प्रयत्न के उपरात भी युक्त-प्रान्त म चौरीचौरा की हिंसात्मक घटना घट गई थी । हिन्दी कविता के क्षेत्र म अन्य कवि अवश्य अहिंसावादी हैं लेकिन हरिऔध जी को विचारधारा उनके कुछ विपरीत अथवा प्रतिकूल है ।

कथा साहित्य

हिन्दी कथा साहित्य म इस दल की कार्य-प्रणाली घटनाओ तथा उद्देश्य आदि का वणन मिलता है । राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए, यह दल निरन्तर क्रियाशील था । । प्रेमचन्द जी न रगभूमि उपन्यास म इस दल की ओर भी इगित किया है । 'रगभूमि राजनीतिक उपन्यास है जिसमे उस समय की प्रमुख राष्ट्रीय *सस्था कायस तथा गाधी जी के नेतृत्व म सचालित अहिंसात्मक असहयोग* आन्दोलन का विस्तृत वर्णन मिलता है । लखक के गांधीवादी विचारधारा तथा अहिंसात्मक आन्दोलन स अत्यधिक प्रभावित होने पर भी राष्ट्रीय सग्राम की हिंसात्मक पद्धति को *विस्मृत नहीं किया है । वीरपालसिंह क्रान्तिकारी दल की पद्धति का प्रतिनिधित्व* करता है । डाकू के वेश मे य राष्ट्रभक्त अधिक क्रूर बन गय थ । रक्तपात द्वारा शोषित जनता की सहायता तथा उनके प्रति पूर्ण सहानुभूति इनका ध्येय था । विदेशी शासक वर्ग के प्रति इनमे प्रतिशोध की प्रबल भावना थी । सोफिया को इस दल ने

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध चुभते चौपदे . पृ० ८
२ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध . चुभते चौपदे पृ० १०

आश्रय दिया था। विनयसिंह के राष्ट्रीय मार्ग से भटक जाने पर वीरपालसिंह के साथी उसके रक्त के प्यासे हो गए थे। डाके डालना, सरकारी खजाने लूटना, आततायियो का विनाश करना इनका साधन था। इस उपन्यास मे प्रेमचन्द जी ने इन सबका उल्लेख तो अवश्य किया है किन्तु सांकेतिक रूप मे, तथा उनकी विशेष सहानुभूति भी इस दल के साथ लक्षित नही होती।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के उपन्यास 'अप्सरा' मे भी क्रान्तिकारी दल का थोडा सा उल्लेख मिल जाता है। चन्दन एक राजकुमार का मित्र है जिसे लखनऊ षड्यन्त्र के मामले मे गिरफ्तार कर लिया जाता है। राजकुमार को यह समाचार पत्र द्वारा ज्ञात होता है।[1] वास्तव मे चन्दनसिंह क्रान्तिकारी नहीं हैं, केवल किसानो का सगठन कर रहे थे।[2] उस समय स्वतन्त्रता की शिक्षा देने वाली फ्रास, रूस, चीन, अमेरिका, भारत मिश्र, इगलैंड की विप्लवात्मक पुस्तको को रखना भी अपराध था। इसका सकेत भी इस उपन्यास मे मिल जाता है।[3] राजकुमार, चन्दनसिंह के घर से इन पुस्तको को निकाल कर अपने घर ले आता है। अन्त मे इन पुस्तको के आधार पर ही चन्दनसिंह को गिरफ्तार कर लिया जाता है। निराला जी ने इन राजनीतिक प्रसगो का उल्लेख सोद्देश्य नही किया है जैसा कि उन्होने वक्तव्य मे स्वय ही कह दिया है।

प्रेमचन्द के पश्चात् जैनेन्द्र कुमार ने अपने उपन्यास सुनीता मे क्रान्तिकारी दल की ओर पाठको का ध्यान आकृष्ट किया है। इस उपन्यास का नायक हरि प्रसन्न क्रान्तिकारी दल का सदस्य है। सुनीता उसके मित्र की पत्नी है। वह गृहिणी सुनीता को क्रातिकारी दल की प्रेरणादायिनी शक्ति बना देना चाहता है—'हरि प्रसन्न के मन मे आज एकाएक नया विचार उदय हो आया मानो जिसको सुदूर से अनुभव करता था, आज वह प्रत्यक्ष हुआ है। यह सुनीता आज घर मे है, गृहणी है। वह रण मे रणदेवी क्यो न बने? पौरुष कहाँ से साहस लेता है? युवको मे कहाँ से स्फूर्ति भरनी होगी? वे कहाँ से मद पायेंगे? जीवन की स्पृहा उनमे कैसे जागेगी? उसके लिए एक नारी की आवश्यकता है। हा नारी। वह देवी हो वह चण्डी हो, वह माया हो। कर्त्तव्यो मे से नही आयगा उल्लास उल्लास जागेगा माया के आकर्षण मे से। माया योग्य नहीं है, माया मरीचिका है। ' वह मायामयी नारी घर मे ही क्यो—वह बृहत्क्षेत्र मे क्यो नही? वह भाभी ही क्यों? अरे वह ध्वजाधारिणी क्यो नही?[4] दुर्भाग्यवश जैनेन्द्रकुमार का नायक अति दुर्बल है। नैतिकता की जिस दृढ़ आधारशिला पर इस दल की राष्ट्रीयता की स्थापना

१ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अप्सरा पृ० ८७
२. वही · पृ० ९७
३. वही, पृ० ९९
४ जैनेन्द्रकुमार सुनीता : पृ० १२५-१२६

की गई थी, हिंसा एवं क्रूरता जिसका साधन था, उसकी राष्ट्रीयता पर मानव प्रकृति की दुर्बलता विजय पा जाती है। सुनीता को दल की रानी बनाने की अपेक्षा, वह अपनी प्रेम भावना अथवा वासना की तृप्ति का साधन बनाना चाहता है, खतरे की लाल रोशनी देखकर उसमे कूदने की अपेक्षा नारी मे अपनी निर्बलता का बहाना ढूंढता है—'तुम जानती हो, अकेला होता तो अब क्या करता ? वहा सकट है। उस सकट के मुह को जाकर मैं पकड़ता। लेकिन आज तो मैं उधर ताकता दूर खड़ा हू। मैं कुछ भी नही कर सकता।

और उसी भांति एकाएक झुक कर अपने हाथ से सुनीता की ठोडी ऊपर उठा कर बोला—'क्यो ? क्योंकि मैं अकेला नही हू और प्रेम आदमी को निर्बल बना देता है।'[1]

राष्ट्रीयता के पथ पर मृत्यु का आलिंगन करने वाले वीर का नारी के प्रेम मे लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाना, प्रेम मे सत्य पथ को भुला देना क्रान्तिकारी दल के सदस्य के लिए अनुचित लगता है। मानव-मनोविज्ञान की दृष्टि से यह उचित ठहर सकता है किन्तु राष्ट्रवाद की दृष्टि से अहितकर एव सघातक है। यह वह युग था जब चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह जैसे वीर क्रान्तिकारी युवक परिवार और जीवन का मोह त्याग कर राष्ट्र की वेदी पर हंसते-हसते अपने प्राणो की बलि दे रहे थे। इस दल के नियम इतने कठोर थे, तथा राष्ट्रीय भावना इतनी प्रबल थी कि उसमे मानवीय दुर्बलता का अधिक अवकाश ही नही था। इस उपन्यास मे क्रान्तिकारी दल का लक्ष्य भ्रष्ट होकर रह गया है। इसमे सन्देह नही कि लेखक की इस दल के साथ सहानुभूति अवश्य थी, इसी कारण उन्होंने उपन्यास के नायक को क्रान्तिकारी दल का सदस्य दिखाया है। सुनीता पातिव्रत की अवहेलना कर हरिप्रसन्न के पथ का अनुगमन करने तथा उसे अपना सर्वस्व समर्पण करने को तत्पर हो जाती है तथा अन्त मे हरी दुर्बलता को दबा सदैव के लिए मृत्यु के पथ का राही बनने चला जाता है, यह भी इसकी पुष्टि करता है। क्रान्तिवाद अथवा इसके साधनो, घटनाओ, गुप्त सभाओ आदि का विवेचन उपन्यास मे नही मिलता। अत. उपन्यास का लक्ष्य क्रान्तिवाद की अपेक्षा मानव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषणमात्र है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की कुछ कहानियो मे इस दल के नीति कार्य प्रणाली तथा राष्ट्रवादिता का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। खूनी' तथा 'क्रान्तिकारिणी' कहानियों का सम्बन्ध इस दल विशेष से है। आचार्य जी ने इन कहानियो मे क्रान्तिवाद के सिद्धान्त, उद्देश्य साधन आदि का विस्तार से विवेचन किया है। 'उन्होंने सशस्त्र क्रान्तिकारी दल की क्रूरता, कठोरता, नियमबद्धता आदि का दृश्य अकित किया है। किस प्रकार इस दल की गुप्त सभाए हुआ करती थी तथा नायक का आदेश निर्विवाद रूप से सदस्यो को मान्य होता था, किसी प्रकार के तर्क अथवा रहस्योद्घाटन

१ जैनेन्द्रकुमार : सुनीता, पृ० १८०

का दण्ड मृत्यु' था तथा 'गीता इनका प्रमुख धर्मग्रन्थ था,' इन सब बातो का उल्लेख 'खूनी' कहानी मे मिलता है।[1] यह दल विदेशी सरकार के साथ, अपने हत्या सबधी षड्यन्त्रो के विरोधियो को भी मिटाना अपना कर्त्तव्य समझता था। इसी कारण खूनी कहानी मे गाव के जमीदार के इकलौते बेटे को सरकारी मुखबिर होने के सदेह मे नायक के आदेश पर मौत के घाट उतार दिया गया। क्रान्तिकारी आन्दोलन मे नारियो ने भी अत्यधिक सजगता एव सचेतना से कार्य किया था। उनमे बुद्धि, चातुर्य एव निःशकता थी। 'क्रान्तिकारिणी' कहानी मे, मेरठ षड्यन्त्र केश मे व्यय करने के लिए जिस कौशल एव साहस के साथ अभियुक्तो के मुकदमे के लिए महिला द्वारा रुपया भेजा जाता है, वह रोचक एव प्रशसनीय है। क्रान्तिकारी आन्दोलन मे स्त्रियो ने भाग लिया था, दल के कार्य को सुचारु रूप से चलाया था उसी का यथार्थ चित्रण इसमे किया गया है। जैनेन्द्रकुमार की 'सुनीता' का नायक नारी के जिस चण्डी रूप की इच्छा रखता है उसी का मूल रूप आचार्य जी की क्रान्तिकारिणी कहानी मे मिलता है। पाठकों की जिज्ञासा उनका कुतूहल अन्त तक बना रहता है तथा अत मे वह क्रान्तिकारिणी तथा वकील साहब दोनों के बुद्धि चातुर्य पर मुग्ध हो जाता है। पुलिस दरोगा और डिप्टी इन्स्पेक्टर अपना मुह लेकर रह जाते हैं तो पाठकों की जिज्ञासा हर्ष मे परिणत हो जाती है।

आचार्य जी ने क्रान्तिकारी दल उसकी कार्य प्रणाली उनके साहस का पाठकों को विस्तृत परिचय दिया है किन्तु इस दल के साधन के प्रति अपनी घृणा को भी उन्होंने स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त कर दिया है। 'खूनी' कहानी में उन्होंने अन्त मे लिखा है —

अब मैं रो उठा। मैंने कहा—मुझे मेरे वचन फेर दो, मुझे मेरी प्रतिज्ञाओ से मुक्त करो, मैं उसी के समुदाय का हू। तुम लोगो मे नगी छाती पर तलवार के घाव खाने की मर्दानगी न हो तो तुम अपने को देशभक्त कहने मे संकोच करो। तुम्हारी इन कायर हत्याओ से मैं घृणा करता हू। मैं हत्यारो का साथी सलाही और मित्र नहीं रह सकता तुम तेरहवी बुर्जी को जला दो।"[2]

लेखक की आत्मा को अनीतिपूर्ण उपाय से स्वतन्त्रता प्राप्ति इष्ट नहीं थी उन्हें गाधी जी का आत्म बलिदान का ही मार्ग अधिक मान्य था किन्तु इस दल के सदस्यो के साहस तथा कौशल के वर्णन से भी वे विमुख नहीं हुए हैं। 'खूनी' कहानी के सम्बन्ध मे स्वय लेखक ने लिखा है—'यह कहानी प्रताप मे सन् २३ या २४ मे छपी थी, उस समय प० माखनलाल चतुर्वेदी उसका सपादन करते थे। उन्होंने लिखा

१. चतुरसेन शास्त्री : मरी खाल की हाय पृ० २२
२. चतुरसेन शास्त्री मरी खाल की हाय पृ० २५
३. वही, पृ० ४०

है—'खूनी को छाप कर प्रताप निहाल हो गया।'[1] आचार्य जी ने चन्द्रशेखर आजाद तथा भगतसिंह जैसे वीर नवयुवकों के कारण आधुनिक काल को वीरगाथा काल कहना उचित समझा है।

अज्ञेय जी की कोठरी की बात में क्रान्तिकारी दल से सबंधित सुन्दर, भावात्मक कहानियां मिलती हैं। जैसा कि इस पुस्तक की भूमिका से विदित है कि इसकी प्रथम छः कहानियां जेल में लिखी गई थीं लेखक का विश्वास है कि यद्यपि जिन क्रान्तिकारियों का चित्रण इन कहानियों में मिलता है वह युग बीत चुका है, लेकिन उनके जीवन के भीतर स्पन्दित होने वाली मानवता इतनी जल्दी पुरानी पड़ने वाली चीज नहीं है।[2] अज्ञेय जी की इन कहानियों में सशस्त्र क्रान्तिकारी दल की साधना पद्धति के साथ मानवीय सम्बन्धों और आकांक्षा के भी चित्र मिलते हैं, 'छाया' कहानी का कार्य क्षेत्र कारावास है। अरुण बाबू को दस वर्ष का कठोर कारावास मिला था क्योंकि उन्होंने हिंसात्मक क्रान्ति में भाग लिया था—'मैंने सुना था, उसने कई खून किये हैं, मगर मुल्तानी गवाह के पलट जाने से सबूत नहीं मिला, इसलिए दस ही साल की सजा रह गई।'[3] यह क्रान्तिकारी अपनी धुन में मस्त रहते थे। सुषमा इस कथा की क्रान्तिकारिणी नायिका है। कारावास में उसने अरुण के पास जो पत्र भेजा था उससे क्रान्तिकारी दल की कार्य-प्रणाली का पता चलता है कि किस प्रकार ये क्रान्तिकारी गुप्त दलों का संगठन कर बम आदि का प्रयोग कर विदेशी शासकों को आतंकित करते थे।[4] इस कहानी का प्रथम गीत ही सशस्त्र क्रान्ति का आह्वान करता है —

> वेदी तेरी पर मां, हम क्या शीश नवाएं ?
> तेरे चरणों पर मां, हम क्या फूल चढ़ाए ?
> खग हमारे हाथों में है,
> लौह मुकुट है शिर पर।[5]

छाया जैसी युवतियों में भी अदम्य साहस था। हंसते हंसते फांसी के तख्ते पर चढ़ जाती थी।[6] विवेक से बढ़ कर[7] और 'कैसेंड्रा का अभिशाप'[8] रूसी क्रान्ति से सम्बन्धित कहानियां हैं। कदाचित् लेखक ने इन कहानियों द्वारा भारतवासियों को रूस की क्रान्ति के अनुगमन की प्रेरणा दी है। निःसन्देह अज्ञेय जी का इस दल में विश्वास ही नहीं था, इन क्रान्तिकारियों के प्रति हृदय से सहानुभूति थी।

१ आचार्य चतुरसेन शास्त्री मरी खाल की हाय पृ० २५
२ अज्ञेय कोठरी की बात पृ० १०
३ वही, पृ० १६
४ अज्ञेय कोठरी की बात पृ० ११
५ वही, पृ० २६
६ वही : पृ० ६०
७ वही पृ० १०१

नाटक .

हिन्दी नाटको मे भी क्रान्तिवाद अथवा इस दल के साधन का विशेष उल्लेख नही मिलता । प्राय. इस युग के नाटक ऐतिहासिक कथा पर आधारित थे, जिनमे युद्ध आदि का वर्णन मिलता है, लेकिन इसे सशस्त्र क्रान्तिकारी दल का प्रभाव नही कहा जा सकता । नाटकों मे युद्ध आदि का वर्णन अतीत गौरव, पूर्वजो की वीर-भावना का लक्ष्य रख कर किया गया है ।

बेचन शर्मा 'उग्र' के 'महात्मा ईसा नामक नाटक मे प्रच्छन्न रूप से हिंसात्मक पद्धति का भी सक्षिप्त उल्लेख मिलता है महात्मा ईसा महात्मा गाधी की अहिंसात्मक साधना पद्धति द्वारा देशोद्धार का प्रयत्न करते हैं तो डाकू बरव्बा हिंसात्मक नीति को अपना कर राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति मे अपना सहयोग देता है। डाकू बरव्बा महारानी हैरोदिया की हत्या द्वारा प्रतिशोध लेकर स्वय बन्दी बन जाता है—'मैं स्वत. अपने को गिरफ्तार कराता हू । अब मेरा काम हो गया । पकड लो मुझे ।'[1] क्रान्तिकारी भी अपना कार्य पूरा करने के बाद बन्दी बनकर फासी के तख्ते पर भूल जाया करते थे । अत इस दल की कार्य प्रणाली तथा उद्देश्य का सांकेतिक वर्णन इस नाटक मे मिलता है ।

हिन्दी साहित्य इस दल की राष्ट्रीयता से प्रभावित अवश्य था किन्तु तटस्थ रूप से ही, उसमे घुलमिल कर एक हो जाने की क्षमता नही थी ।

---

१. बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा . पृ० १२०

: ६ :

राष्ट्रवाद का आदर्श

हिन्दी साहित्य में स्वराज्य तथा भारत के भविष्य का चित्रण

हिन्दी साहित्यकारों ने अपनी लेखनी द्वारा राष्ट्रवाद के विभिन्न तत्वों को उभार कर, अपनी समस्त मेधा से अभावों और आवश्यकताओं की पूर्ति की योजनाएँ भी कला द्वारा प्रस्तुत की थीं। गांधी जी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने भारतवासियों को जिस स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित कर मुक्ति-पथ पर अग्रसर कर दिया था, उससे भविष्य का सुन्दर चित्र सजीव हो गया था। अतः द्विवेदी युग से ही हिन्दी साहित्य में आशामय भविष्य का स्वर निनादित होने लगा था। अतीत की स्वर्णिम स्मृति ने भारत के भविष्य के लिए आदर्श-मान्यताएं प्रस्तुत की और वर्तमान के संघर्ष ने स्वराज्य प्राप्ति का पथ कंटक विहीन बना लिया। हिन्दी साहित्य में स्वराज्य अथवा स्वतन्त्रता का विवेचन किया गया और आदर्श की रूपरेखा निर्मित हुई।

हिन्दी कविता

सर्वप्रथम मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में 'भविष्यत् खण्ड' की रचना कर भावी भारत के लिए आदर्श प्रस्तुत किये थे। इनके उपरान्त प्रायः सभी कवियों ने स्वराज्य, स्वतन्त्रता अथवा राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में लिखना प्रारम्भ कर दिया। राष्ट्रीय-स्वातन्त्र्य-संग्राम का यही लक्ष्य था कि भारत को पूर्णतया स्वतन्त्र कर, उस आदर्श स्थिति तक पहुंचा देना, जहाँ मानव को मानव के प्रति पूर्ण सहानुभूति हो। 'त्रिशूल' जी ने 'राष्ट्र' की परिभाषा देते हुए लिखा था—

ऐक्य, राज्य, स्वातन्त्र्य यही तो राष्ट्र-अंग हैं,
सिर, धड़, टांगों सदृश जुड़े हैं सग संग हैं॥[1]

त्रिशूल के सदृश रामचरित उपाध्याय ने भी स्वतन्त्रता की विवेचना करते हुए लिखा था—

स्वतन्त्रता है साम्यवाद की सहधर्मिणी समझ रखिये,
परतन्त्रता, उसे वैतरिणी दुखदायिनी समझ रखिये॥[2]

---

१. त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : पृ० २६
२. रामचरित उपाध्याय : राष्ट्र-भारती : पृ० ३६

उपाध्याय जी भारत को स्वर्ग बनाना सीखना और सिखाना चाहते थे।[1] कवि को भारत के भविष्य के विषय मे पूरी आशा थी कि स्वराज्य मिलेगा और सत्य की विजय होगी। रूपनारायण पाँडेय ने दीनो की रक्षा को सत्य-स्वाधीनता माना था, और राष्ट्र को न्याय निष्ठ हो नियम धर्म से डरने का उपदेश दिया था।[2] जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने 'उगता राष्ट्र' मे नवनिर्मित होते राष्ट्र की विशेषताओ के विवेचन मे उज्जवल भविष्य का भी सकेत किया था।[3]

मैथिलीशरण गुप्त ने स्वराज्य का उल्लेख मात्र ही नही किया अपितु स्वराज्य के पश्चात् आदर्श राष्ट्र का स्वप्न भी सजोया था।[4] इन्हें भारत के भविष्य निर्माण के लिए गाँधी जी का 'राम राज्य' पूर्णतया मान्य था। 'साकेत' महाकाव्य मे गुप्तजी की आदर्शवादी प्रवृत्ति ने प्रारम्भ मे ही साकेत नगरी के भव्य रूप का चित्रण किया है वस्तुत वह उनके स्वतन्त्र भारत का आदर्श है। उन्होंने भारत को स्वस्थ, शिक्षित शिष्ट, उद्योगी बना कर उसके जीवन म आध्यात्मिकता की श्रेष्ठता का आदर्श रखा था।[5] पर वे राष्ट्र को सुदृढ देखना चाहते थे।[6] राजा और प्रजा का भेद उन्हे मान्य नहीं था। इसी कारण उन्होंने साकेत मे राम से कहलाया है .

प्रजा नहीं तुम प्रकृति हमारी बन गये,
दोनों के सुख दुःख एक से सन गये॥
मैं स्वधर्म से विमुख नहीं हूंगा कभी
इसीलिए तुम मुझे चाहते हो सभी॥[7]

सियारामशरण गुप्त की आशावादिता ने असफलता मे भी भारत के भविष्य के गर्भ मे छिपी सफलता को देख लिया था—

नहीं आज में ही परिसीमित,
है असीम यह काल विराट,
कल का पथ क्या रोक सकेगा
तुच्छ आज के उर के पार।
जो तेरा उपहास कर रहे
आज तिरस्कृत कर तुमको

---

१ रामचरित उपाध्याय • राष्ट्रभारती पृ० ३५
२ रूपनारायण पांडे माधुरी पृ० २३
३ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द • जीवन सगीत पृ० ६३
४ मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश सगीत पृ० १२०
५ मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृ० २२
६ मैथिलीशरण गुप्त साकेत : पृ० २४
७ वही, पृ० १२६

कल ही वे तेरे कीर्तन से
गुंजित कर देंगे पथ घाट ॥[1]

सुभद्राकुमारी चौहान की कल्पना ने प्यारे स्वतन्त्र देश का स्वागत करते हुए लिखा था—

ओ स्वतन्त्र प्यारे, स्वदेश आ स्वागत करती हू तेरा।
तुझे देखकर आज हो रहा दूना प्रमुदित मन मेरा ॥[2]

कविवर दिनकर और नवीन' जी ने विध्वस मे नवनिर्माण देखा था। दिनकर' ने आशामय भविष्य से अभिप्रेरित होकर हुकार मचाई थी।

गत विभूति, भावी की आशा ले युग धर्म पुकार उठे
सिंहों की घन अन्ध गुहा मे जागृति की हुकार उठे ॥[3]

बालकृष्ण शर्मा नवीन ने वात्सल्यभावना के आश्रय मे भारत के पुरातन मानवतावाद को पुन शिशुरूप म प्रकट होते देखा था —

आज विश्व शैशव अपनी गोदी मे खिला रही हू मैं,
सुविगत, वर्तमान, मधुरस भावी को पिला रही हू मैं,
शत शत साकारो की धारा, मेरे स्तन से बही अपारा,
बनकर पयस्विनी करती हू, मै भविष्य निर्माण दुलारा,
मेरे शिशु मे प्रगटी मानवता की रुचिर पुरातन धुन
रन झुन झुन झुन रुनन झुनुन ॥[4] (सन् १९३२)

हिन्दी कवियों को गाधी जी की भाँति राष्ट्रवाद के चरम विकास के लिए और आदर्श भारत के निर्माण के लिए मानवतावाद ही इष्ट था। आदर्श भारत की रूपरेखा के लिए प्राय सभी कवियो ने भारत के चिरपुरातन अध्यात्म, दर्शन और सस्कृति का आधार लिया था।

हिन्दी नाटक साहित्य

जयशकर प्रसाद के नाटको में इतिहास की पृष्ठभूमि पर एक स्वतन्त्र एव सगठित राष्ट्र की योजना उभरी है। उनके चन्द्रगुप्त, स्कदगुप्त, अजातशत्रु राज्यश्री आदि सभी नाटक अतीत के महत्त्वपूर्ण प्रसगो के साथ आदर्श भारत की रूपरेखा प्रस्तुत करते है। चन्द्रगुप्त नाटक इस दिशा मे सर्वाधिक सफल रहा है। उसके सपूर्ण कथानक मे 'एक आर्यावर्त्त', 'एक देश' 'एक राष्ट्र', का सदेश गूँज रहा है। हिन्दी साहित्य म सर्वप्रथम प्रसाद जी ने हिमालय से अन्तरीप तक फैले अखड भारत को एक छत्र राज्य अथवा पुष्ट राष्ट्र के रूप म देखा। भारत की प्राचीन सस्कृति के

१ सियारामशरण गुप्त पृ० ४२
२. सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल पृ० ११९
३. रामधारीसिंह दिनकर हुकार पृ० ९
४. बालकृष्ण शर्मा नवीन : रश्मि रेखा : पृ० ६६

आधार पर नवीन सांस्कृतिक निर्माण प्रसाद जी की अनुपम देन है। 'अजातशत्रु' नाटक म राष्ट्र की अहिंसा और आत्मत्याग के आधार पर एकता के सूत्र में बंध जाने का सन्देश दिया गया है। चन्द्रगुप्त नाटक में छोटे-छोटे राज्यों और दलों को स्वत एक दूसरे के अस्तित्व म विलीन होकर एक राष्ट्र बनाने का आदेश दिया गया है। अत स्वतन्त्रता की भावना के साथ प्रसाद जी के राष्ट्रवाद का आदर्श भारतीय इतिहास का वह स्वर्ण युग था, जब देश किसी भी विदेशी सत्ता से आक्रान्त नहीं हुआ था।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द के नाटक 'प्रताप-प्रतिज्ञा' मे स्वाधीनता के आह्वान के साथ भावी भारत के प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली अपनाने का सदेश दिया गया है। इस नाटक मे यह स्पष्ट शब्दों मे कहा गया है कि 'राजा प्रजा का सेवक है—दास है,' प्रजा उसकी अन्नदाता है। वह उस गद्दी पर चढा भी सकती है, उतार भी सकती है बना भी सकती है, बिगाड भी सकती है।'[1]

'प्रेमी जी के नाटकों ने भारत के मुस्लिम-काल की ऐतिहासिक कथाओ मे दृष्टान्त रख कर भारत के लिए हिन्दू मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय का आदर्श रखा था। रक्षा-बन्धन', शिवा साधना', नाटक इसके उदाहरण हैं। मुसलमान भी इस देश का एक अग बन गये थे। गांधी जी के सदृश प्रेमी जी ने इन नाटकों मे यह स्पष्ट किया है कि इन दोनों के सांस्कृतिक एकीकरण मे ही राष्ट्र का भविष्य सुरक्षित रह सकता था। निःसदेह यदि हिन्दू और मुसलमान एक हो सकते तो आज देश हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो अगो मे न बँट सकता।

इस युग के हिन्दी नाटकों मे राष्ट्रवाद को ऐतिहासिक आधार मिला और भविष्य निर्माण के लिये अपनी एक सुव्यवस्थित परम्परा भी मिली।

हिन्दी कथा-साहित्य और भारत का भविष्य

हिन्दी कथा-साहित्य मे भी भारत के भविष्य से सम्बन्धित अनेक सकेत बिखरे पडे हैं। उपन्यास एव कहानीकारों ने भारत के स्वातन्त्र्य आन्दोलन, राष्ट्रीय चेतना, रचनात्मक कार्यक्रम के साथ उज्ज्वल भविष्य की ओर भी इंगित किया था। राष्ट्र निर्माण की योजना इनके मस्तिष्क मे भी क्रियाशील थी। आदर्श राष्ट्र का रग इनकी कल्पना मे अधिक गहरा हो गया था। प्रेमचन्द जी के प्रत्येक उपन्यास मे राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण की ध्वनि गूँज रही है। सेवा सदन, रगभूमि, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, गोदान आदि सभी उपन्यास स्वतन्त्रता एव राष्ट्र-सुधार का प्रयोजन सिद्ध करते हैं। 'सेवा सदन' में वेश्याओं की कन्याओं के लिए सेवासदन की स्थापना मे देश के नैतिक उत्कर्ष का प्रयत्न है। 'रगभूमि' मे देश की स्वतन्त्रता का आह्वान है। 'प्रेमाश्रम' मे प्रेम-शंकर आदर्शवाद का नमूना प्रस्तुत कर ग्रामोन्नति का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। 'कर्मभूमि' मे अछूतोद्धार की समस्या ही नहीं है उसका समाधान भी है। अछूतों के

१. जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द : प्रताप-प्रतिज्ञा : पृ० २

लिये मन्दिर का द्वार खुल जाता है, जो भारत के सुन्दर भविष्य का पूर्वाभास है। 'गोदान' में नागरिक पात्रो जैसे मालती द्वारा ग्रामीणों के जीवन मे रुचि लेना भावी भारत के लिए आशीर्वाद है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' भी अपने उपन्यासों मे निरन्तर भविष्य निर्माण के लिए प्रयत्नशील दिखाई पडते हैं। 'अप्सरा' मे वेश्या की कन्या को कुलवधू के रूप मे समाज द्वारा ग्रहण करा कर भविष्य के लिए आदर्श रखा है।

इस युग की कहानिया भी राष्ट्र के अभावो को मिटा कर नवनिर्माण का सन्देश देती हैं, जैसा कि राष्ट्रवाद के अभावात्मक एव भावात्मक पक्षो के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है।

उपन्यास अथवा कहानीकार की दृष्टि अपने युग की ओर रहती है, अत भविष्य के स्वप्न को प्रत्यक्ष रूप से वर्णित करना असभव होता है। अत कथा-साहित्य मे भारत के भविष्य के सम्बन्ध मे प्रत्यक्ष अथवा प्रच्छन्न सकेत मात्र मिलते हैं।

इस समय लिखित ऐतिहासिक उपन्यासो की सख्या अति अल्प है। कहानिया अवश्य सुन्दर मिल जाती हैं। जयशकर प्रसाद, प्रेमचन्द, सुदर्शन आदि की ऐतिहासिक कहानियो म अवश्य स्वतन्त्र भारत के लिए आदर्श एव मानदण्ड मिल जाते हैं। प्रसाद जी की 'सालवती' कहानी मे गणतन्त्र प्रणाली की ओर सकेत किया गया है, प्रेमचन्द ने 'रानी सारन्धा', 'वीर हरदौल', आदि कहानियो मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उसकी रक्षा का सन्देश दिया है। सुदर्शन की 'पथ की प्रतिष्ठा' कहानी मे राजा की अपेक्षा प्रजा की शक्ति के महत्त्व का प्रदर्शन किया है।

इस युग के साहित्य मे स्पष्ट अभिव्यजित है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत, आध्यात्मिकता, नैतिकता आदि सत्य गुणो का आधार ग्रहण कर ही अपनी स्वाधीनता सुरक्षित रख सकेगा और पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त होगा। साहित्य निर्माताओ का यह राष्ट्र निर्माण कार्य एव भविष्य के प्रति आशान्वित दृष्टिकोण स्पृहणीय है।

चेतना से प्रावृत्त उपन्यास का इस युग मे अभाव रहा, यद्यपि वृन्दावनलाल वर्मा ने इसकी पूर्ति का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। सन् १९३७ के पश्चात् औपन्यासिक क्षेत्र ने भी इस दिशा मे प्रगति की है। युगीन राजनीतिक आन्दोलन राष्ट्र के अभावो एव स्वतन्त्रता प्राप्ति के विविध साधनो का भी यथार्थ, मार्मिक एव प्रभावोत्पादक वर्णन किया गया था। देश जीवन मे क्षय के कीटाणुग्रो से व्याप्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक न्यूनताओ का सबसे अधिक सफल चित्र कथा साहित्य मे हुआ है। नि सन्देह साहित्य ने अपने सामाजिक राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अनुभूति चिन्तन और कल्पना के माध्यम से सरस, स्वच्छ और युग प्रेरक रूप दे दिया था। इस क्षेत्र मे प्रेमचन्द जी विशेष श्रेय के पात्र है। राष्ट्र के भविष्य निर्माण के लिए भी साहित्यकार राष्ट्रीय नेताओ से कुछ कम गतिशील नही थे। द्विवेदी युग तक प्राय हिन्दी साहित्य मे हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तानी के स्वर की ही प्रधानता थी। साहित्य म भी राष्ट्रीयता का अर्थ हिन्दू पुनरुत्थान ही था। अब गाधी जी के प्रभावस्वरूप विकसित राष्ट्रीयता ने साहित्य-प्रणेताओ की मनोवृत्ति को भी उदार, विकसित एव प्रखर बना दिया। हिन्दी साहित्य भी हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी, सिक्ख, जैन और बौद्ध-समन्वित एक देश अथवा एक राष्ट्र के आदर्श के स्पदन से मुखरित हुआ।

सन् १९२० से हिन्दी का साहित्य गाधी जी के राष्ट्रवाद से सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। इस समय के प्राय सभी प्रतिनिधि एव प्रतिष्ठित हिन्दी साहित्यकार गाधी जी के सहयोगी थे। गाधी जी ने उन्हे अपने व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित किया था—'भाषा और साहित्य की प्रतिष्ठा भी स्वतन्त्र राष्ट्र मे किस तरह हो इस दिशा म गाधी जी बहुत सतर्क थे। जहा वे नवयुवको को स्वतन्त्रता आन्दोलन मे बडी कुशाग्र बुद्धि से जूझने का आमत्रण दिए जा रहे थे, उसी तरह उन्होने साहित्यकारो को भी अपनी निष्ठावान वाणी से प्रभावित किया था।"[1] अत. हिन्दी साहित्य मे गांधी जी के राष्ट्रवादी सिद्धान्तो की पुष्ट अभिव्यजना मिलती है। यह सिद्धान्त विवेचन भारतीय जीवन को शक्ति प्रदान करने मे पूर्णतया समर्थ है। गाधी जी से प्रेरणा पाकर इस युग का राष्ट्रवादी साहित्य भी ठोस आध्यात्मिकता पर आधारित है। सच्चे अर्थों मे मोक्ष-प्राप्ति ही साहित्य का भी उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त गाधी जी के सदृश साहित्य मे भी देश के व्यावहारिक जीवन को राष्ट्रवाद की सक्रिय चेतना से सवेष्ठित कर देने की शक्ति है। सरस्वती के इन वरद पुत्रो ने राष्ट्र-परक साहित्य ही नही समष्टिपरक राष्ट्रीय साहित्य भी रचा था। राष्ट्रवाद मे मानवतावाद का समाहार कर,गाधीजी ने विश्व के सम्मुख राष्ट्रवाद के जिस पूर्ण एव आदर्श रूप को समुपस्थित किया था, राष्ट्रवाद का वही रूप हिन्दी साहित्य मे भी सन्निहित मिलता है। हिन्दी के मेधावी कलाकारो को राष्ट्रीयता के प्रबल प्रवाह मे वह दृष्टि मिल गई थी जिसमे वे भारत और विश्व को एक साथ रख कर देख रहे थे।

१ राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ : पृ० १९६

हिन्दी कविता के इस विशेष युग मे दो प्रवृत्तियाँ स्पष्ट लक्षित होती हैं—छायावाद और राष्ट्रीय-सास्कृतिक कविता। छायावाद के अन्तर्गत सूक्ष्म-अतीन्द्रिय सौन्दर्य से अनुप्राणित कविताएँ रखी जायेंगी और राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता का सीधा सबध राष्ट्रवाद से है। काव्य की इन दोनो प्रमुख प्रवृत्तियो को गाधी जी के राष्ट्रवाद से प्रेरणा मिली थी। छायावादी काव्य को तत्कालीन विचारधारा से पृथक् नही रखा जा सकता। यद्यपि छायावाद का जन्म गाधी जी के राष्ट्रीय क्षेत्र मे आगमन के पूर्व ही हो चुका था लेकिन इसमे सन्देह नही कि गाधी जी के पहले ही लोकमान्य तिलक, अरविन्द घोष जैसे राष्ट्रवादी नेता भारत की राष्ट्रीयता को आध्यात्मिक-चेतना-सम्पन्न कर चुके थे। गाँधी जी ने इसी विकसित राष्ट्रवाद को अधिक परिष्कृत एव समुन्नत कर जन जीवन मे भर दिया था। अत छायावाद और तत्कालीन राष्ट्रवाद का मूल दर्शन भारतीय अद्वैतवाद एव अध्यात्म ही था। इस सबध मे डा० नगेन्द्र का भी यही मत है कि गाधीवाद और छायावाद का मूल दर्शन एक ही है—'छायावाद ने इसके दो मूल तत्वो को सौन्दर्य और प्रेम के रूप मे ग्रहण किया है, गाधीवाद ने सत्य और अहिंसा के रूप मे। भावना के क्षेत्र मे जो सौन्दर्य है, वही चिन्तन और विचार के क्षेत्र मे सत्य है, पहले जो प्रेम है, वही दूसरे मे अहिंसा है।'[1] छायावादी अथवा रहस्यवादी कविता तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना की अन्त प्रवृत्ति का प्रकाशन है तो राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता राष्ट्रवाद के भावात्मक और क्रियात्मक रूप की अभिव्यक्ति।

राष्ट्रवाद के आविर्भाव काल से ही हिन्दी साहित्य मे उसकी सजग अभिव्यक्ति हुई है। भारतेन्दु युग मे राष्ट्रीयता देश दशा सुधार, समाज-सुधार धर्म-सुधार तक सीमित थी अत उस युग के साहित्य ने भी अपने युग की व्यथा को अपने अन्तर मे सचित कर साहित्य-सृजन किया। इस युग के साहित्य मे भी पूर्णतया हिन्दू राष्ट्रीय भावना मिलती है जो केवल देश-दशा मे सुधार मात्र चाहती थी। द्विवेदी युग मे राष्ट्रवाद अधिक विकसित हुआ। साहित्य मे देश के अल्पसंख्यक अन्य धर्मावलम्बियो के प्रति भी सहिष्णु भावना आई। स्वतन्त्रता की पुकार की गई और विदेशी शासन का विरोध। गाधी जी के आगमन के पश्चात राष्ट्रवाद का चरम विकास हुआ अत छायावादी युग का साहित्य राष्ट्रवाद के सर्वांगो से पूर्ण मिलता है। इस युग के साहित्य निर्माताओ ने केवल वाणी से ही नही, अपने व्यक्तित्व से भी आन्दोलन को सक्रिय सहयोग दिया था। मैथिलीशरण गुप्त माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सेठ गोविन्ददास आदि सभी प्रतिनिधि हिन्दी साहित्यकार कारावास की यातना सह चुके थे। राष्ट्रीय भावना इनके लिए कोरी कल्पना न थी, इनके जीवन का अनुभूत विषय थी। इनका जीवन, राष्ट्रीय-चेतना और साहित्य एक ही दिशा मे गतिशील थे।

भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास मे हिन्दी साहित्य ने अपना पूर्ण योगदान

१. डा० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ पृ० ३

दिया था। साहित्यिक कलाकार ने अपने युग की देशव्यापी राष्ट्रीय भावना के स्थूल बाह्य रूप की ही अभिव्यक्ति नहीं की थी, अपितु उसकी अन्तश्चेतना का भी स्पर्श कर लिया था। राष्ट्रीयता के विकास में सक्रिय सहयोग देते हुए उसकी सूक्ष्म से सूक्ष्म वृत्तियों का भी प्रकाशन किया था। इनकी राष्ट्रीयता का क्षेत्र हिन्दी प्रदेश मात्र नहीं था, बल्कि पूर्ण राष्ट्र साहित्य के सूत्रों में गुथ गया था। हिन्दी साहित्य ने काव्य द्वारा राष्ट्रीय भावना की आग को राग दिया, कथा साहित्य द्वारा युगीन परिस्थिति का विशद चित्र खींचा, नाटकों की रचना कर राष्ट्रवाद को अभिनीत बना दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय भावना को कला के परिधान से सुसज्जित कर, नाना रंगों से चमका कर, शब्द शक्ति से पुष्ट कर, अभिव्यंजना की अनेक शैलियों में मुखर कर साहित्यकार ने अपने कर्म का और धर्म का परिचय दिया। राष्ट्रीय भावना के मर्म को समझने वाले कवियों, नाट्यकारों और कथाकारों की संख्या कम न थी। राष्ट्रवाद के विकास में हिन्दी साहित्य ने जो अपना कार्य संपादित किया है वह अविस्मरणीय है और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

हिन्दी साहित्य के विकास में भी राष्ट्रीय-भावना अति सहायक रही है। भारतेन्दु युग में ही काव्य को शृंगारिकता की संकीर्ण परिधि से उन्मुक्त कर देश जीवन की ओर उन्मुख करने का बहुत कुछ श्रेय, तत्कालीन उद्‌भूत होती हुई राष्ट्रीयता को ही दिया जायेगा। विकसित राष्ट्रीय भावना ने ही साहित्यकार को स्व की सीमित रेखा से निकाल कर समष्टिपरक बना दिया था। जीवन के अन्य पक्षों की ओर दृष्टि डालने में यह समर्थ हुआ। काव्य की भाँति ही विकासशील गद्य-साहित्य के विविध रूपों को युग-जीवन से अनेक वर्ण्य विषय मिले। राष्ट्रीय चेतना ने साहित्य को विकसित चेतना, युगदर्शन की व्यापक संवेदनशीलता एवं क्रियाशक्ति प्रदान कर दलित वर्ग की सम्पत्ति बना दिया। रीतियुगीन साहित्य आभिजात्य वर्ग की सम्पत्ति बन गया था लेकिन आधुनिक काल में विशेषकर गांधी युग में साहित्य जन-जीवन की शक्ति बन गया। राष्ट्रवाद ने साहित्य का मानदण्ड बदल दिया, आदर्श बदल दिया और उसे नवीन मूल्य प्रदान किये। प्राचीन आचार्यों ने भाव-विवेचन के अन्तर्गत जितने भावों का उल्लेख किया था, उनका विश्लेषण ही साहित्य में किया गया था। राष्ट्रीयता जैसे किसी भाव का विवेचन नहीं किया गया था। अतः इस युग के स्वातन्त्र्य आन्दोलन ने हिन्दी साहित्य को राष्ट्रीयता जैसा प्रबल भाव प्रदान किया। राष्ट्रीयता की बलि-वेदी पर सर्वस्व समर्पित करने के उत्साह ने अन्य स्थायी भावों – वात्सल्य, रति शोक आदि का रंग फीका कर दिया। राष्ट्रीयता में इन सभी भावों का समाहार हो गया था। यह सिद्ध किया जा चुका है कि हिन्दी साहित्य में भी ऐसी कथाओं की योजना की गई जिसमें दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन को ठुकरा कर राष्ट्रीयता की अग्नि तीव्र की गई थी। राष्ट्रीयता जैसी व्यापक भावना में मानवतावाद का समावेश कर हिन्दी साहित्यिक सार्थक हो गया है।

राष्ट्रीयता का विशेष सम्बन्ध मानव की विकसित एवं उदात्त रागात्मक प्रवृत्ति

से है। राग में उत्साह के समावेश से साहित्य द्वारा सचेतन राष्ट्रवाद सम्मुख आया। स्वार्थ के परित्याग का अमोघ उद्देश्य लिए हिन्दी साहित्य ने अपने युग-युग के अभाव की पूर्ति की है।

राष्ट्रीय साहित्य के संबंध में प्राय यह भ्रामक धारणा है कि यह साहित्य घटनापरक, सामयिक अथवा क्षणिक होता है। वर्ण्यविषय की सामयिकता अथवा असामयिकता साहित्य की स्थिरता, अस्थिरता का निर्णय नहीं करती। इस संबंध में रामेश्वर शर्मा का यह मत नितान्त संगत है—'साहित्य के क्षणजीवी अथवा स्थायी होने का आधार उसकी कथावस्तु का सामयिक अथवा सामयिक होना नहीं है, वरन् उसमें पाई जाने वाली संवेदना का स्वर, उसके कलात्मक गुण तथा उसकी सामाजिक चेतना ही उसका नियोजन करती है।'[1] इस युग के साहित्य-निर्माता की सामाजिक चेतना इतनी प्रबुद्ध थी कि राष्ट्रीयता उसकी प्रेरक संवेदना बन गई थी। उन्होंने साहित्य में कुछ इस प्रकार के राष्ट्रीय व्यक्तित्व की योजना की थी कि राष्ट्रीय युग और काल के बंधन से मुक्त होकर युग युग के लिए अनुकरणीय बन गई। मानवीय प्रवृत्तियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, प्रकृति और दर्शन के सामंजस्य में साहित्य का राष्ट्रवाद सम्पूर्ण है।

हिन्दी में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का अधिकांश साहित्य शुद्ध साहित्य है। कुछ रचनाएँ अवश्य प्रचारात्मक साहित्य के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं क्योंकि आज की परिवर्तित परिस्थितियों में उनका विशेष मूल्य नहीं रह गया है। त्रिशूल राम चरित उपाध्याय, रूपनारायण पाडेय, श्यामनारायण पाडेय आदि द्विवेदीयुगीन कवियों का इतिवृत्तात्मक शैली में लिखा हुआ काव्य जिसमें असहयोग अथवा सत्याग्रह आन्दोलन, असहयोगी के कर्त्तव्य, सत्य-अहिंसा, स्वतन्त्रता आदि का वर्णन मिलता है, प्रचारात्मक साहित्य के अन्तर्गत रखा जायेगा। सीधी सादी स्पष्ट भाषा में आन्दोलन के स्थूल रूप का जहा परिचय दिया गया है वह शाश्वत साहित्य नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार जहा साहित्य द्वारा गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम अथवा गांधीजी के सिद्धान्तों का पिष्टपेषण मात्र हुआ है, वह भी प्रचारात्मक साहित्य के अन्तर्गत रखा जाएगा, क्योंकि उससे आज साधारण पाठक को आनन्द नहीं मिल सकता। मैथिलीशरण गुप्त सियारामशरण गुप्त माखनलाल चतुर्वेदी सोहनलाल द्विवेदी आदि की कुछ कविताये और प्रेमचन्द विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन आदि की कुछ कहानियों को इसके अन्तर्गत रखा जा सकता है।

ओज की बदली हुई स्थिति में भी जिस राष्ट्रीय साहित्य का पढ़कर हृदय ओज उत्साह, करुणा देशप्रेम से भर जाये, वही शुद्ध साहित्य कहा जाएगा। राष्ट्र को एकता का संदेश देने वाला राष्ट्रीय जीवन को सस्कारशील बनाने वाला एव सहृदय को मुदित करने वाला राष्ट्रीय साहित्य शुद्ध एव शाश्वत साहित्य है। जैनेन्द्र-कुमार जी ने शुद्ध साहित्य की परिभाषा दी है—'इसीलिए साहित्य की कसौटी वह

१ रामेश्वर शर्मा : राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य : पृ० ४६

संस्कारशीलता है, जो हृदय से हृदय का मेल चाहती है और एकता में निष्ठा रखती है। जो सहृदय का चित्त मुदित करता है वह साहित्य खरा है, जो संकुचित करता है, वह खोटा है।"[1] इस परिभाषा पर कसने पर हिन्दी का अधिकांश राष्ट्रीय साहित्य खरा उतरता है अथवा शुद्ध कहा जा सकता है। भारत के अतीतगौरव से संबंधित हिन्दी साहित्य आज भी देशवासियों को उस संस्कारशीलता का सन्देश देता है, जिससे मानव मानव के हृदय का मेल हो और राष्ट्र एकीकरण के सूत्र में आबद्ध हो। राष्ट्रवादी हिन्दी-साहित्य के मूल में मानवतावाद का महान् आदर्श निहित है आज स्वतन्त्रता के पश्चात् भी इस युग का अधिकांश साहित्य राष्ट्रीयता के भाव को अक्षुण्ण एवं प्रबुद्ध रखने में समर्थ है। सहृदय के चित्त को मुदित करने की भी इसमें शक्ति है। जहाँ कवि, नाट्यकार अथवा कथाकार ने अपने युग के विष को अन्तरस्थ कर अमृत उडेल दिया था, वह राष्ट्रवादी साहित्य युग-युग तक अमर रहेगा। वह केवल भारतवासियों को ही नहीं, मानवमात्र को राष्ट्रीयता की प्रेरणा देता रहेगा। यह साहित्य देश और काल की सीमा के परे है। इसमें सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक बलिदान का महत्व प्रतिपादित मिलता है। निर्जीव तथ्यों और राष्ट्र की गतिविधि को भावनाओं और अनुभूतियों के प्रकाशन ने शुद्ध साहित्य की संज्ञा प्रदान की है।

रस की दृष्टि से भी इस युग का राष्ट्रवादी साहित्य श्रेष्ठ ठहरता है। यद्यपि इस समय के राष्ट्रवादी साहित्य का मूलरस वीर है, लेकिन अन्य सभी रसों का राष्ट्रवाद में समाहार हो जाता है। देश-प्रेम में रति, देश की दुर्दशा के चित्रण में करुणा, देश के लिए संघर्ष में वीर, देश सुधार के लिए क्रांति में रौद्र, विदेशी शासकों की निर्दयता के वर्णन में घृणा एवं बीभत्स, देश पर भारी विपत्ति की आशंका में भयानक और भारत माता की पूजा में भक्ति आदि सभी स्थायीभाव उद्बुद्ध होकर रस की कोटि तक पहुंच जाते हैं। वीर रस के प्रायः सभी संचारियों और अनुभावों का विकास राष्ट्रीयता में होता है। द्विवेदी युग की अपेक्षा सन् १६२० के पश्चात् साहित्य में अनुभूति तत्त्व की प्रमुखता हुई। सत्य शिव और सुन्दर के समन्वय में राष्ट्रवाद को सच्ची कला मिली। भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली—साहित्य के सभी तत्त्व इस राष्ट्रीय साहित्य के मिल जाते है। साधारण से साधारण घटना को कल्पना के रंग में रंग कर राष्ट्रीयता को भव्य रूप दिया गया था। इस युग के साहित्य में करुणा की शत शत धाराएँ उद्वेलित हुई। कल्पना के बल पर साहित्यकार ने राष्ट्रीयता के सूक्ष्म भाव को भी स्थूल रूप में प्रस्तुत किया। बुद्धि के बल पर तथ्यों और सिद्धान्तों का भी राष्ट्रीयता में समावेश हुआ था। इसी कारण साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना का चित्रण स्वाभाविक एवं उचित रूप में हुआ है।

अन्त में यह निर्विवाद एवं निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी-साहित्य का यह विशेष युग राष्ट्रवाद की चरम परिणति का युग है। राष्ट्रभावना ने साहित्य को और साहित्य ने राष्ट्रभावना को समृद्ध किया।

●

---

१. जैनेन्द्रकुमार : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृ० १३२

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

१. कांग्रेस का इतिहास	पट्टाभिसीतारम्मया
२. भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास	गुरुमुख निहालसिंह
३ माता भूमि	वासुदेवशरण अग्रवाल
४. भारतीय सवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास	डॉ० रघुवंशी
५ स्वाधीनता की चुनौती	प्रो० शान्तिप्रसाद वर्मा
६ हमारा स्वाधीनता संग्राम	कृष्णदत्त पालीवाल
७ यंग इण्डिया	महात्मा गांधी
८ कांग्रेस का सरल इतिहास	ठाकुर राजबहादुरसिंह
९ हमारी राजनैतिक समस्याएं	प्रो० शान्तिप्रसाद वर्मा
१० आदर्श भारत की रूपरेखा	मोहनदास कर्मचन्द गांधी अनुवादक देवराज उपाध्याय
११ भारत सन् ५७ के बाद	प० दामरलाल तिवारी 'वेढब'
१२ गांधी विचार दोहन	किशोरीलाल मशरूवाला
१३ बापू और भारत	कमलापति त्रिपाठी
१४ गांधीवाद और मार्क्सवाद	श्रीकृष्णदत्त पालीवाल
१५ समाजवाद	डा० सम्पूर्णानन्द
१६ पूंजीवाद समाजवाद ग्रामोद्योग	डा० भारतन् कुमारप्पा
१७ गांधी गीता अथवा अहिंसा योग	प्रो० इन्द्र
१८ भारत मे सशस्त्र क्रान्तिचेष्टा का रोमांचकारी इतिहास	मन्मथनाथ गुप्त
१९ राष्ट्रीय संस्कृति	डा० आबिद हुसैन
२ हिन्दी-कविता मे युगान्तर	डा० सुधीन्द्र
२१ आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
२२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
२३ आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास	डा० श्रीकृष्णलाल
२४ भारतेन्दु साहित्य	श्री रामगोपाल
२५ भारतेन्दु ग्रन्थावली —तीनों भाग	ना० प्र० सभा काशी
२६ प्रेमघन सर्वस्व	"
२७ गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त—जीवन और साहित्य	डा० नत्थनसिंह
२८ प्रताप-लहरी	प्रतापशाह
२९ राधाकृष्ण ग्रन्थावली	सम्पादक—श्यामसुन्दरदास

३० भारतगीत	श्रीधर पाठक
३१ गुप्त निबन्धावली	बि० रा० प० पटना
३२ हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट	पंडित राजेन्द्र शर्मा
३३ भारतेन्दु जी का नाट्य-साहित्य	डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल
३४ भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि	किशोरीलाल गुप्त
३५ शंकर सर्वस्व	नाथूराम शंकर शर्मा
३६ माता	माखनलाल चतुर्वेदी
३७ हिमकिरीटिनी	"
३८ प्रिय प्रवास	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
३९ कल्पलता	"
४०. चुभते चौपदे	"
४१ पद्य-प्रसून	"
४२ भारत भारती	मैथिलीशरण गुप्त
४३ रंग में भंग	"
४४ जयद्रथ वध	"
४५ किसान	"
४६. द्वापर	"
४७ हिन्दू	"
४८ साकेत	"
४९ स्वदेशी संगीत	"
५० सिद्धराज	"
५१ अनघ	"
५२ गुलेरी जी की अमर कहानियाँ	सम्पादक—शक्तिधर गुलेरी
५३ वीर-सतसई	वियोगी हरि
५४ पराग	रूपनारायण पांडेय
५५ राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त, अभिनन्दन ग्रन्थ	
५६ जनमेजय का नागयज्ञ	जयशंकर प्रसाद
५७ इन्द्रजाल	"
५८ प्रतिध्वनि	"
५९ अजातशत्रु	"
६० चन्द्रगुप्त	"
६१ विशाख	"
६२ राज्यश्री	"

६३ आकाशदीप	जयशंकर प्रसाद
६४. तितली	"
६५ कंकाल	"
६६ लहर	"
६७ महाराणा का महत्त्व	"
६८ छाया	"
६९ पूर्ण पराग	"
७० कृषक-क्रन्दन	गयाप्रसाद शुक्ल सनेही
७१ भारत विजय	शुकदेव बिहारी मिश्र
७२ रत्नाकर	नागरी प्रचारिणी सभा काशी
७३ मेवाड़ गाथा	लोचन प्रसाद पाण्डेय
७४ महाराष्ट्र वीर	बाबू रामप्रताप गुप्त
७५ पद्म पुंज	गिरिधर शर्मा
७६ मिलन	रामनरेश त्रिपाठी
७७ पथिक	"
७८ मानसी	"
७९ सेवासदन	प्रेमचन्द
८० प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियां	"
८१ प्रेमाश्रम	"
८२ निर्मला	"
८३ रंगभूमि	"
८४ गबन	"
८५ कायाकल्प	"
८६ प्रतिज्ञा	"
८७ कर्मभूमि	"
८८ गोदान	"
८९ मानसरोवर	"
९० प्रेम-पचमी	"
९१ प्रेम चतुर्थी	"
९२ राजनैतिक कहानियां और समययात्रा	"
९३ कर्बला	"
९४. मौर्य विजय	सियारामशरण गुप्त
९५ दूर्वादल	"
९६ आर्द्रा	"
९७ गोद	"
९८ आत्मोत्सर्ग	"

९९. पुण्य पर्व	सियारामशरण गुप्त
१००. पाथेय	"
१०१ बापू	"
१०२. पराग	रूपनारायण पाडेय
१०३. संगम	वृन्दावनलाल वर्मा
१०४ लगन	"
१०५ प्रेम की भेंट	"
१०६ गढ़ कुण्डार	"
१०७. कुण्डली-चक्र	वृन्दावनलाल वर्मा
१०८. नदन-निकुंज	चन्डीप्रसाद हृदयेश
१०९. नूरजहा	ठाकुर गोपालशरण सिंह
११०. सचित्ता	"
१११ रामचरित चिन्तामणि	रामचरित उपाध्याय
११२ राष्ट्र-भारती	प० रामचरित उपाध्याय
११३ राष्ट्रीय मन्त्र	श्री त्रिशूल
११४. मुक्ति-मन्दिर	प० रामचरित उपाध्याय
११५ जयहिन्द-काव्य	सम्पादक-श्री चन्द्र
११६. अलका	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
११७. निरुपमा	"
११८. लिली	"
११९ अनामिका	"
१२० अपरा	"
१२१ परिमल	"
१२२. अप्सरा	"
१२३. तुलसीदास	"
१२४ शिवाजी	डा० श्यामबिहारी मिश्र शुकदेव बिहारी मिश्र
१२५. कुंकुम	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
१२६ चित्रशाला	विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक
१२७ कल्लोल	"
१२८. महात्मा ईसा	पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र'
१२९. तक्षशिला	उदयशंकर भट्ट
१३० विक्रमादित्य	"
१३१. दाहर अथवा सिंध पतन	"
१३२. सुदर्शन सुधा	सुदर्शन

१३३ तीर्थयात्रा	सुदर्शन
१३४ सुप्रभात	सुदर्शन
१३५ मुकुल	सुभद्रा कुमारी चौहान
१३६ सीधे साद चित्र	'
१३७ उन्माद	कमला चौधरी
१३८ परख	जैनेन्द्रकुमार
१३६ सुनीता	"
१४० मरी खाल की हाय	आचार्य चतुरसेन शास्त्री
१४१ उत्सर्ग	"
१४२ महाराणा प्रतापसिंह व दशोद्धार नाटक	लक्ष्मीनारायण
१४३ राजमुकुट	गोविन्दवल्लभ पंत
१४४ जूनिया	"
१४५ गर्मा	द्विवदी
१४६ रूपराशि	डा० रामकुमार वर्मा
१४७ जीवन संगीत	जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द
१४८ प्रताप-प्रतिज्ञा	"
१४६ रेणुका	रामधारीसिंह दिनकर
१५० इतिहास के आंसू	"
१५१ दिल्ली	'
१५२ हुँकार	"
१५३ अशोक	्मीनारायण मिश्र
१५४ रक्षा-बन्धन	रिकृष्ण प्रेमी
१५५ शिव-साधना	"
१५६ गोविन्ददास ग्रन्थावली	ठ गोविन्ददास
१५७ राजसिंह	तुरसेन शास्त्री
१५८ दुर्गावती	बदरीनाथ भट्ट
१५६ भैरवी	मोहनलाल द्विवेदी
१६० पंजाब-केसरी	जमानादास मेहरा
१६१ अस्सी कहानियां	विनोदशंकर व्यास
१६२ पुरुष और नारी	राधिकारमणप्रसाद सिंह
१६३ बेनीपुरी ग्रन्थावली भाग १	बेनीपुरी प्रकाशन, मुजफ्फरपुर
१६४ सत्तर श्रेष्ठ कहानियां	उपेन्द्रनाथ अश्क
१६५ पतिता की साधना	भगवतीप्रसाद वाजपेयी
१६६ प्रमपथ	"
१६७ त्यागमयी	
१६८ भिखारिणी	

१६९ राष्ट्रीय झंकार (दूसरा भाग) संग्रहकर्त्ता-निहालचन्द वर्मा
१७० युगान्त सुमित्रानन्दन पंत
१७१ युगवाणी ,,
१७२ प्रारम्भिक रचनाएं बच्चन
१७३ प्रकाश सेठ गोविन्ददास
१७४ प्रभातफेरी नरेन्द्र शर्मा
१७५ मधुकरी सम्पादक विनोदशंकर व्यास
१७६ साहित्यकार पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी अभिनन्दन ग्रन्थ
१७७ हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा० दशरथ ओझा
१७८ आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत डा० केसरीनारायण शुक्ल
१७९ हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन डा० ब्रह्मदत्त शर्मा
१८० आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां डॉ० नामवरसिंह
१८१ महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग डा० उदयभानु सिंह
१८२ राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य रामेश्वर शर्मा
१८३ आधुनिक हिंदी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां डा० जगदीशनारायण त्रिपाठी
१८४ आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त डा० सुरेशचन्द गुप्त
१८५ साहित्य का श्रेय और प्रेय जैनेन्द्रकुमार
१८६ आधुनिक हिंदी-कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां डा० नगेन्द्र
१८७ कला, कल्पना और साहित्य डा० सत्येन्द्र
१८८ हिन्दी साहित्य विमर्श पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
१८९ दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि प्रो० कामेश्वर वर्मा
१९० प्रियप्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन डा० द्वारिका प्रसाद
१९१ हिन्दी-उपन्यास डा० सुषमा धवन
१९२ प्रेमचंद और गांधीवाद रामदीन गुप्त
१९३ मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता उमाकान्त गोयल
१९४ छायावाद के गौरव चिह्न प्रो० क्षेम
१९५ हिन्दी-काव्य में प्रगतिवाद विजयशंकर मल्ल
१९६ भारत का स्वतन्त्रता प्राप्ति संबंधी आन्दोलन और हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव कीर्तिलता अग्रवाल (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)
१९७ हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय भावना (साहित्य के आदिकाल से १८८५ ई० तक) शैलकुमारी गुप्त (अप्रकाशित शोध-प्रबंध, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

अंग्रेजी की पुस्तकें

1. Mahatma A Life of Mahatma Karamchand Gandhi Published by Vithalbhai K Zhaveri & Tandulker
2. The Idea of Nationalism by Hans Kohn
3. Nationalism and Internationalism by Raimsey Muir
4. The Fundamental Unity of India
5. Studies in Modern History—G P Gooch
6. *Political Science and Government—Majumdar*
7. Twentieth Century—Hans Kohn
8. How India Wrought Her Freedom—Annie Besant
9. Social Background of India Nationalism—A R Desai
10. The legacy of the Lokmanya, The Political Philosophy of Bal Gangadhar Tilak—Theodore L Shay
11. A History of Indian Nationalist Movement—Sir Verney Lovett
12. Life of Lord Curzon—Ronald Shay
13. The Development of Indian Political Thought —Dr M A Buch
14. Rise and Growth of Indian Nationalism—Dr Buch
15. India Today—R Palme Dutt
16. The Political Philosophy of Mahatma Gandhi — Gopinath Dhawan
17. Selections from Mahatma Gandhi—Nirmal Kumar Bose
18. *Truth is God* — ,, ,,
19. My Religion — ,, ,,
20. Centpercent Swadeshi — ,, ,, ,,
21. Hindu Dharma — ,, , ,
22. Satyagrah — ,, , ,,
23. A Nation Builder At work—Pyarelal
24. The Life of Mahatma Gandhi—Louis Fischer
25. Indian Nationalist Movement and Thought —Dr Raghuvanshi.
26. The Political Movement In India—J N Vajpeyi

से है। राग में उत्साह के समावेश से साहित्य द्वारा सचेतन राष्ट्रवाद सम्मुख आया। स्वार्थ के परित्याग का अमोघ उद्देश्य लिए हिन्दी साहित्य ने अपने युग-युग के अभाव की पूर्ति की है।

राष्ट्रीय साहित्य के संबंध में प्रायः यह भ्रामक धारणा है कि यह साहित्य *घटनापरक, सामयिक अथवा क्षणिक होता है। वर्ण्यविषय की सामयिकता अथवा* असामयिकता साहित्य की स्थिरता, अस्थिरता का निर्णय नहीं करती। इस संबंध में रामेश्वर शर्मा का यह मत नितान्त संगत है—'साहित्य के क्षणजीवी अथवा स्थायी होने का आधार उसकी कथावस्तु का सामयिक अथवा सामयिक होना नहीं है, वरन् उसमें पाई जाने वाली संवेदना का स्वर, उसके कलात्मक गुण तथा उसकी सामाजिक चेतना ही उसका नियोजन करती है।'' इस युग के साहित्य निर्माता की सामाजिक चेतना इतनी प्रबुद्ध थी कि राष्ट्रीयता उसकी प्रेरक संवेदना बन गई थी। उन्होंने साहित्य में कुछ इस प्रकार के राष्ट्रीय व्यक्तित्व की योजना की थी कि राष्ट्रीय युग और काल के बंधन से मुक्त होकर युग युग के लिए अनुकरणीय बन गई। मानवीय प्रवृत्तियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, प्रकृति और दर्शन के सामंजस्य में साहित्य का राष्ट्रवाद सम्पूर्ण है।

हिन्दी में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का अधिकांश साहित्य शुद्ध साहित्य है। कुछ रचनाएँ अवश्य प्रचारात्मक साहित्य के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं क्योंकि आज की परिवर्तित परिस्थितियों में उनका विशेष मूल्य नहीं रह गया है। त्रिशूल राम चरित उपाध्याय, रूपनारायण पांडेय, श्यामनारायण पांडेय आदि द्विवेदीयुगीन कवियों का इतिवृत्तात्मक शैली में लिखा हुआ काव्य जिसमें असहयोग अथवा सत्याग्रह आन्दोलन, असहयोगी के कर्त्तव्य, सत्य-अहिंसा, स्वतन्त्रता आदि का वर्णन मिलता है, प्रचारात्मक साहित्य के अन्तर्गत रखा जायेगा। सीधी सादी स्पष्ट भाषा में आन्दोलन के स्थूल रूप का जहां परिचय दिया गया है वह शाश्वत साहित्य नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार जहां साहित्य द्वारा गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम अथवा गांधीजी के सिद्धान्तों का पिष्टपेषण मात्र हुआ है वह भी प्रचारात्मक साहित्य के अन्तर्गत रखा जाएगा, क्योंकि उसमें आज साधारण पाठक को आनन्द नहीं मिल सकता। मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी आदि की कुछ कविताये और प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन आदि की कुछ कहानियों को इसके अन्तर्गत रखा जा सकता है।

संस्कारशीलता है, जो हृदय से हृदय का मेल चाहती है और एकता में निष्ठा रखती है। जो सहृदय का चित्त मुदित करता है वह साहित्य खरा है, जो संकुचित करता है, वह खोटा है।"[1] इस परिभाषा पर कसने पर हिन्दी का अधिकांश राष्ट्रीय साहित्य खरा उतरता है अथवा शुद्ध कहा जा सकता है। भारत के अतीतगौरव से सवलित हिन्दी साहित्य आज भी देशवासियों को उस संस्कारशीलता का सन्देश देता है, जिससे मानव मानव के हृदय का मेल हो और राष्ट्र एकीकरण के सूत्र में आवद्ध हो। राष्ट्रवादी हिन्दी-साहित्य के मूल में मानवतावाद का महान आदर्श निहित है आज स्वतन्त्रता के पश्चात् भी इस युग का अधिकांश साहित्य राष्ट्रीयता के भाव को अक्षुण्ण एवं प्रबुद्ध रखने में समर्थ है। सहृदय के चित्त को मुदित करने की भी इसमें शक्ति है। जहाँ कवि, नाट्यकार अथवा कथाकार ने अपने युग के विष को अन्तरस्थ कर अमृत उडेल दिया था, वह राष्ट्रवादी साहित्य युग युग तक अमर रहेगा। वह केवल भारतवासियों को ही नहीं, मानवमात्र को राष्ट्रीयता की प्रेरणा देता रहेगा। यह साहित्य देश और काल की सीमा के परे है। इसमें सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक बलिदान का महत्त्व प्रतिपादित मिलता है। निर्जीव तथ्यों और राष्ट्र की गतिविधि को भावनाओं और अनुभूतियों के प्रकाशन ने शुद्ध साहित्य की संज्ञा प्रदान की है।

रस की दृष्टि से भी इस युग का राष्ट्रवादी साहित्य श्रेष्ठ ठहरता है। यद्यपि इस समय के राष्ट्रवादी साहित्य का मूलरस वीर है, लेकिन अन्य सभी रसों का राष्ट्रवाद में समाहार हो जाता है। देश-प्रेम में रति, देश की दुर्दशा के चित्रण में करुणा, देश के लिए संघर्ष में वीर, देश-सुधार के लिए क्रांति में रौद्र, विदेशी शासकों की निर्दयता के वर्णन में घृणा एवं वीभत्स, देश पर भारी विपत्ति की आशंका में भयानक और भारत माता की पूजा में भक्ति आदि सभी स्थायीभाव उद्बुद्ध होकर रस की कोटि तक पहुंच जाते हैं। वीर रस के प्रायः सभी संचारियों और अनुभावों का विकास राष्ट्रीयता में होता है। द्विवेदी युग की अपेक्षा सन् १६२० के पश्चात् साहित्य में अनुभूति तत्व की प्रमुखता हुई। सत्य शिव और सुन्दर के समन्वय में राष्ट्रवाद को सच्ची कला मिली। भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली—साहित्य के सभी तत्व इस राष्ट्रीय साहित्य के मिल जाते हैं। साधारण से साधारण घटना को कल्पना के रंग में रंग कर राष्ट्रीयता को भव्य रूप दिया गया था। इस युग के साहित्य में करुणा की शत शत धाराएँ उद्वेलित हुईं। कल्पना के बल पर साहित्यकार ने राष्ट्रीयता के सूक्ष्म भाव को भी स्थूल रूप में प्रस्तुत किया। बुद्धि के बल पर तथ्यों और सिद्धान्तों का भी राष्ट्रीयता में समावेश हुआ था। इसी कारण साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना का चित्रण स्वाभाविक एवं उचित रूप में हुआ है।

अन्त में यह निर्विवाद एवं निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी-साहित्य का यह विशेष युग राष्ट्रवाद की चरम परिणति का युग है। राष्ट्रभावना ने साहित्य को और साहित्य ने राष्ट्रभावना को समृद्ध किया।

●

---

१. जैनेन्द्रकुमार : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृ० १३३